श्रीमद्भागवत-कथा

साप्ताहिक

प्रथम भाग

॥ श्रीकृष्ण शरणम् ममः ॥

लेखक :

आचार्य श्री राममूर्ति शास्त्री 'पौराणिक'

॥ श्रीकृष्ण परमात्मने नमः ॥

यह भागवत हरिरूप इसका जो सदा चिन्तन करें,
वह ज्ञान भक्ति विराग से हो पूर्ण उससे यम डरे।
विपदा हटे ममता घटे अरु सम्पदा घर में भरे;
सप्ताह की निर्मल कथा सुन कर्म का बन्धन टरे॥

-: पुस्तक प्राप्ति स्थल :-
श्री पौराणिक-भागवत भवन
एन. 11/28 सी-क, रानीपुर, महमूरगंज, वाराणसी
मो. : 09839886881
Email : dinkershashtri@gmail.com
Face book : Dinkar Ji Shashtri

9.5

श्रीमद्भागवत-कथा

(साप्ताहिक)

[प्रथम स्कन्ध से नवम स्कन्ध तक]

प्रथम-भाग

लेखक :

आचार्य श्रीराममूर्ति शास्त्री पौराणिक

भू.पू. पुराणविभागाध्यक्ष-श्री गोयनका संस्कृत महाविद्यालय
ललिताघाट, वाराणसी

◆

सम्पादक :

आचार्य श्री दिनकर देव पाण्डेय (पौराणिक)

धर्मोपदेशक तथा श्रीमद्भागवत एवं रामकथा के सरस प्रवक्ता

परिवर्द्धित
नवम संस्करण
११००

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
२०७२
२०१५

मूल्य : २०१/-

प्रकाशक :
दिनकर शास्त्री
श्री पौराणिक कार्यालय
रानीपुर महमूरगंज, वाराणसी-२२१०१०
मोबाइल : ०९४५४२३२५२०

राजकीय नियमानुसार सर्वाधिकार सुरक्षित

चेतावनी :

इस ग्रन्थ की सम्पूर्ण सामग्री भारतीय कापीराइट के अन्तर्गत रजिस्टर्ड है। अतः श्रीराममूर्ति शास्त्री पौराणिक जी कृत **'श्रीमद्भागवत कथा साप्ताहिकी'** में समाहित सम्पूर्ण सामग्री के लेखन व प्रकाशन का सम्पूर्ण अधिकार पौराणिक जी के सुयोग्य शिष्य दिनकर देव पाण्डेय शास्त्री जी—श्री पौराणिक-भागवत भवन, एन. ११/२८-सी-क, रानीपुर, महमूरगंज, वाराणसी के पास सुरक्षित है। अतः कोई भी सज्जन इस ग्रन्थ का नाम, टाइटिल, डिजाइन तथा भीतर के किसी भी प्रसंग को आंशिक या पूर्णरूपेण तोड़-मरोड़कर किसी भी भाषा में प्रकाशित करने का प्रयास न करे अन्यथा हर्जे-खर्जे व हानि के जिम्मेदार स्वयं होंगे।

मुद्रक :
श्रीजी प्रिण्टर्स
नाटी इमली, वाराणसी-०१
फोन : २२०११०४

श्रीमद्भागवते शास्त्रे कृतभूरिपरिश्रमः।
एषः पौराणिकः श्रीमान् राममूर्तिर्विराजते।।

आचार्य पं. श्रीराममूर्ति शास्त्री पौराणिक

आचार्य पं. श्री राममूर्ति शास्त्री पौराणिक जी
के परमकृपापात्र शिष्य

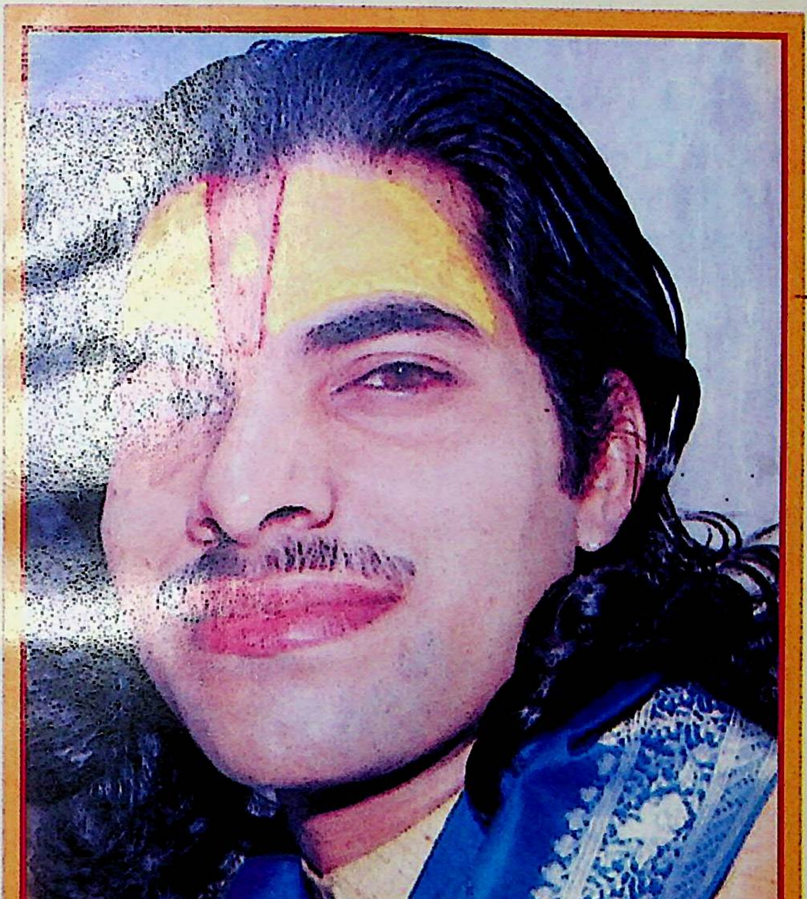

कथावाचक

पौराणिक दिंनकर देव पाण्डेय (शास्त्री जी)

महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर श्रीगोपीनाथ कविराज महोदय की सम्मति

श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मय के इने-गिने उज्ज्वलतम रत्नों में अन्यतम है। इसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का उत्स कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। पाप-ताप और दुःख दारिद्र्य की निवृत्ति के लिए इसके श्रवण और पारायण की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। भारतीय आस्तिक जनता के हृदय में सर्वश्रेष्ठ पुराण के रूप में ही नहीं साक्षात् भगवद्विग्रह के रूप में इस पर अत्यन्त आस्था है। भक्तसमाज में तो इसका और भी अधिक समादर है। बड़े-बड़े वैष्णवाचार्यों ने इस पर टीकाएँ और निबन्ध लिखे हैं। वोपदेव आदि मनीषियों ने भी इसके रस को अपनी वाणी के द्वारा जनता के सम्मुख उपस्थित करने के लिए नाना कृतियाँ रची हैं।

कई पुराण, महाभारत और ब्रह्मसूत्रों की रचना करने पर भी श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास का अपनी कृतियों से मनस्तोष नहीं हुआ। उन्हें अपनी कृतियों में कुछ अभाव-सा खटकता रहा। देवर्षि नारदजी के उपदेश से भगवद्गुणवर्धन प्रधान श्रीमद्भागवत की रचना करने पर उनका मानस कमल खिल उठा।

श्रीमद्भागवत भगवान् की मधुरतम लीला-कथाओं से ओत-प्रोत है, इसीलिए ज्ञानी, भक्त, मुमुक्षु और संसारी सभी को यह परम प्रिय है। इसके श्रवण और पारायण से पाप-ताप से व्याकुल चित्त को शान्ति मिलने के कारण ही भागवत सप्ताह, पारायण आदि का जनता में जितना प्रचार है उतना अन्य किसी पुराण का नहीं। इस पर शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सम्प्रदायों की समान आस्था है।

पण्डितप्रवर श्री राममूर्ति शास्त्री पौराणिकजी ने प्राञ्जल भाषा में इसका सार साप्ताहिक कथा के रूप में लिखकर भागवतप्रेमी जनता का बड़ा उपकार किया है। सुचारु रूप से भागवत प्रतिपाद्य विषयों का निरूपण करते हुए पण्डितजी ने बीच-बीच में भागवत तथा अन्य पुराणों के प्रसङ्गोपयोगी श्लोक दृष्टान्त, विशेष-विशेष पात्रों के पूर्वजन्म की कथाएँ भी दर्शाई हैं इससे इस ग्रन्थ की उपादेयता तथा रोचकता अत्यधिक बढ़ गयी है। गोपी-चीरहरण, रासलीला आदि विषयों पर भी प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

यह दुरूहं ग्रन्थ, जिसके लिए 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' कहावत चिरकाल से चली आ रही है, राष्ट्रभाषा हिन्दी में सर्वसाधारण के लिए सुलभ करा दिया है। मैं इस उत्कृष्टतम कृति के प्रणयनकर्ता राममूर्ति शास्त्री पौराणिक को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, साथ ही यह भी अपेक्षा करता हूँ कि पौराणिक जी की लेखनी से आगे भी ऐसे उत्तमोत्तम ग्रन्थरत्न प्रकाशित होते रहेंगे। श्रीमद्भागवत कथा पढ़कर जनता इससे लाभ उठाकर भगवद्भक्ति उपार्जन द्वारा अपना जीवन सफल करें ऐसी मेरी कमना है।

श्री गोपीनाथ कविराज

२/ए, सिगरा,
वाराणसी

❖

आत्म-निवेदन

अध्ययन-काल से ही श्रीमद्भागवत में मेरी विशेष अभिरुचि थी। तभी से यह विचार हृदय में अंकुरित था कि 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' ऐसी ख्यातिवाले अतिगहन, दुर्गम, सद्ग्रन्थ का सरल तथा सुबोधरूप में अनुवाद जनसाधारण के लाभार्थ प्रस्तुत करूँ। बीसों वर्ष के पुराणाध्यापनकाल में यह विचार पल्लवित तथा पुष्पित हुआ। आज उसी का यह सुफल मातृभाषा हिन्दी में **'श्रीमद्भागवत कथा'** के रूप में आपके सामने वर्तमान है।

श्रीमद्भागवत-सप्ताह सुनानेवाले अच्छे विद्वानों को भी कथा-प्रेमियों के समक्ष हिन्दी में जहाँ कथाभाग प्रस्तुत करना कठिन होता है। वहीं साधारण कथावाचकों को मूल विषय ठीक-ठीक हृदयङ्गम न होने के कारण और भी कठिनाई होती है। बहुत से हिन्दीप्रेमी अपार श्रद्धा एवं अभिरुचि रखते हुए भी इस व्यस्त जीवन में समयाभाववश सात दिनों तक नियमित रूप से कथा नहीं सुन पाते और उनकी यह सदिच्छा सदैव अतृप्त ही रह जाती है। बहुत से लोग अपने पारिवारिक जीवन को धार्मिक, शान्त तथा सुखी बनाने के लिए भी स्त्रियों, कन्याओं और बालकों के हाथों में सरल श्रीमद्भागवत देना चाहते हैं। ऐसे सभी लोगों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी होगा।

श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। यह भगवान् का साक्षात 'शब्दात्मक विग्रह' ही है। इससे व्यस्त एवं अशान्त मन सुस्थिर हो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में अग्रसर होता है एवं मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक अभीष्ट प्राप्तकर जीवन साफल्य का भागी बनता है।

इस संक्षिप्त हिन्दी भागवत में श्रीमद्भागवत का कोई अंश छूटा नहीं है। इस चतुर्थ संस्करण में विशेषरूप से मूल के गूढ़ांशों की व्याख्याकर अनेक उपयोगी विषय तथा श्लोकों का भी संकलन कर दिया गया है। साथ ही, 'रासपञ्चाध्यायी' जैसी जटिल गुत्थियाँ, जो इस बीसवीं शताब्दी के अति सुलझे मस्तिष्क को भी उलझन में डाल देती हैं, सुलझाने का साधिकार प्रयत्न किया गया है। अनेक जटिल एवं कठिन स्थलों को टिप्पणियों द्वारा सरलकर विविध शंकाओं का समाधान भी किया गया है।

इस प्रकार हिन्दी में सम्पूर्ण भागवत का यह सर्वाङ्गीण सुन्दर रूप संस्करण 'गागर में सागर' भरने का-सा प्रयास है। भागवत प्रेमी भक्तों ने इसका समादर किया

और मेरे परिश्रम को सफल किया जिसके परिणामस्वरूप नवम संस्करण प्रकाशित हुआ। इसकी समीक्षा मैं नीरक्षीर विवेकी पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

प्रस्तुत प्रयास की सफलता में सर्वप्रथम मैं भगवान् श्रीविश्वनाथ एवं माता श्रीअन्नपूर्णा के चरणों में नमनकर अपने इष्टदेवस्वरूप श्रीमद्भागवत के समक्ष नतमस्तक हूँ। मेरा विश्वास है कि श्रीमद्भागवत का ही बल मुझ जैसे निर्बल के लिए इस 'बहुजनसुखाय, बहुजनहिताय' कार्य में सहायक हुआ है।

प्रस्तुत/ग्रन्थ की साम्प्रतिक रूपरेखा एवं सम्पूर्ण सम्पादकीय कार्यों को पूर्णरूपेण निष्पन्न/सम्पन्न करने हेतु अपने परमप्रिय एकमात्र उत्तराधिकारी शिष्य दिनकर देव पाण्डेय को हृदय से आशीर्वाद दे रहा हूँ, जिनके सेवाभाव के कारण ही भागवत भगवान् की यह मूर्ति आप सभी के अवलोकनार्थ प्रस्तुत है।

इन्हीं शब्दों के द्वारा अपने इष्टदेव से यही प्रार्थना करता हूँ कि भविष्य में भी प्रभु अपनी अहैतुकी कृपा एवं भक्ति इसी प्रकार से इनके ऊपर बनाये रखें, जिससे इनकी सद्बुद्धि सदा सन्तों, गुरुजनों एवं भागवत भगवान् की सेवा में निष्काम भक्तिभाव से लगी रहे।

विद्वन्मूर्धन्य तपोमूर्ति कविराज श्रीगोपीनाथजी का भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपनी बहुमूल्य सम्मति प्रदान कर मेरा उत्साह बढ़ाया है।

अन्त में मैं अपने उन सभी सुहृदों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने किसी प्रकार से इस कार्य में सहायता पहुँचायी है।

कृपालु पाठकों से भी सादर निवेदन है कि मनुष्य अपूर्ण है उससे त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है। आप उसकी उपयोगिता परखें और अपने उचित सुझाव दें जिससे अगला संस्करण और भी सुष्ठु बना सकूँ। मेरे इस प्रयास से आपका जितना परितोष सम्भव होगा वही मेरा इस साधना की सफलता होगी जो सर्वात्मना जनकल्याण की कामना से प्रेरित है।

अबकी बार श्रीमद्भागवत के मूल श्लोकों सहित गूढार्थदीपिनी टीका भी प्रकाशित हो गयी है। संस्कृत के विद्वान् एवं छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी है जिसका मूल्य ४००/- है। महामहिम उपराष्ट्रपति श्रीशंकरदयाल शर्मा द्वारा इसका विमोचन किया गया है।

राममूर्ति शास्त्री पौराणिक

❖

महात्म्य सहित श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक की विषयानुक्रमणिका

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

माहात्म्य

१. नारदजी का भक्ति से वार्तालाप ३
२. भक्ति तथा ज्ञान-वैराग्य के प्रचारार्थ नारद-सनकादिका संवाद ६
३. ज्ञान-वैराग्य सहित भक्ति की स्थापना ८
४. सप्ताह-कथा में भगवान् का प्रादुर्भाव, धुन्धुकारी तथा गोकर्ण का उपाख्यान ११
५. प्रेत-योनि से धुन्धकारी की मुक्ति १६
६. सप्ताह-कथा-श्रवण की विधि १९

प्रथम-स्कन्ध

१. नैमिषारण्य में सूतजी से शौनकादि ऋषियों के छः प्रश्न २९
२. चार प्रश्नों के उत्तर और भक्ति का महत्त्व ३१
३. शेष दो प्रश्नों के उत्तर-अवतार और धर्म-स्थिति ३३
४. व्यासजी के आश्रम में नारदजी का आगमन ३५
५. व्यासजी के अपरितोष का कारण और नारदजी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त ३९
६. अपना वृत्तान्त पूरा सुनाकर नारदजी का गमन ४१
७. श्रीमद्भागवत की रचना, द्रौपदी के सुप्त पुत्रों का वध तथा अश्वत्थामा का निग्रह ४३
८. ब्रह्मास्त्र से परीक्षित् की रक्षा, कुन्तीकृत श्रीकृष्ण-स्तुति और युधिष्ठिर का शोक ४५
९. भीष्मोपदेश से युधिष्ठिर की शोक-निवृत्ति, भीष्मकृत श्रीकृष्ण-स्तुति और भीष्म का महाप्रयाण ४८
१०. युधिष्ठिर का राज्याभिषेक, भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारकागमन तथा मार्ग में उनका गुणगान ५१
११. श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश तथा सबसे यथायोग्य मिलन ५२
१२. महाराज परीक्षित् का जन्म और उनकी जन्मकुण्डली का फल ५३
१३. विदुरके उपदेश से धृतराष्ट्र का गान्धारी के साथ हिमालय-गमन ५४
१४. विविध अपशकुनों से युधिष्ठिर को चिन्ता तथा अर्जुन का द्वारका से प्रत्यागमन ५६

१५. भगवान् के तिरोधान से व्याकुल युधिष्ठिर द्वारा परीक्षित् का राज्याभिषेक तथा पाण्डवों का महाप्रस्थान ५७
१६. राजा परीक्षित् का दिग्विजय तथा पृथ्वी और धर्म का संवाद ५९
१७. परीक्षित् और धर्म का संवाद तथा कलिका निग्रह ६०
१८. राजा परीक्षित् को ऋषि-पुत्र शृङ्गी का शाप ६२
१९. राजा परीक्षित् का गङ्गातट पर अनशनपूर्वक निवास शुकदेवजी का आगमन और उनके द्वारा म्रियमाण पुरुष के कर्तव्यों का वर्णन। ६४

द्वितीय-स्कन्ध

१. शुकदेवजी द्वारा भगवान् के विराट् रूप में मन की धारणा का वर्णन ६६
२. सूक्ष्म रूप में मन की धारणा, सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति का वर्णन ६७
३. देवताओं की उपासना के विभिन्न फल और भगवद्विमुख इन्द्रियों की निरर्थकता ६९
४. राजा के सृष्टिसम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में ब्रह्म-नारद-संवाद का उपक्रम तथा भगवान् का स्तवन ७१
५. नारद से सृष्टिविषयक प्रश्न का उत्तर और अण्ड से विराट् पुरुष का प्रादुर्भाव ७३
६. विराट् पुरुष की विभूतियों का वर्णन ७४
७. भगवान् के लीलामय २४ अवतारों का वर्णन ७५
८. जीवेश्वर के देहसम्बन्ध पर राजा की आशङ्का तथा पुराणसम्बन्धी अनेक प्रश्न ७६
९. भगवान् नारायण का ब्रह्मा को चतु:श्लोकी भागवत का उपदेश ७८
१०. महापुराण के दश लक्षण, विराट्-सृष्टि तथा विदुर-मैत्रेय संवाद का उपक्रम ८०

तृतीय-स्कन्ध

१. विदुर द्वारा कौरवों का त्याग तथा विदुर-उद्धव-संवाद ८३
२. श्रीकृष्ण-विरह से व्याकुल उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन ८४
३. मथुरा और द्वारका की लीलाएँ तथा यदुकुल को ऋषियों का शाप ८६
४. उद्धव से यदुकुल का नाश सुनकर विदुर का मैत्रेय के समीप गमन ८६
५. महदादि तत्त्वों की उत्पत्ति और उनके द्वारा भगवान् की स्तुति ८८
६. महदादि से विराट्-शरीर की रचना और उसमें अधिदैवादि भेदों की कल्पना ९०
७. विदुर के विविध प्रश्न और उनका समाधान ९१
८. शेष-सनकादि का संवाद, नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति तथा उन्हें शेषशायी भगवान् का दर्शन ९२
९. ब्रह्मा द्वारा नारायण की स्तुति और उन्हें सृष्टिसामर्थ्यवर की प्राप्ति ९४

१०. दस प्रकार की सृष्टि का वर्णन ९५
११. काल, परमाणु आद के लक्षणों से युग, मन्वन्तर, घटी तथा देवादि की आयु का परिमाण ९६
१२. मानस सृष्टि से प्रजा की वृद्धि न होने पर यौनसृष्टि का आरम्भ ९८
१३. वराह भगवान् के द्वारा पृथ्वी का उद्धार और उनकी स्तुति १००
१४. दिति के हठ से सायंकाल में गर्भाधान और हिरण्याक्ष का जन्म १०२
१५. वैकुण्ठ-वर्णन एवं सनकादि कुमारों का जय-विजय को शाप १०४
१६. वैकुण्ठ से जय-विजय का पतन १०५
१७. हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपुका जन्म एवं नानाप्रकार के उत्पात १०८
१८. वराह भगवान् तथा हिरण्याक्ष का महायुद्ध १०९
१९. वराह भगवान् द्वारा हिरण्याक्ष का वध ११०
२०. ब्रह्माजी द्वारा नाना प्रकार की सृष्टि १११
२१. सृष्ट्यर्थ कर्दमजी की तपस्या और स्वायम्भुव मनु का आगमन ११३
२२. मनु-कर्दम संवाद एवं देवहूति का कर्दम से विवाह ११४
२३. विमान में कर्दम का देवहूति के साथ विहार और कन्याओं की उत्पत्ति ११९
२४. श्रीकपिलदेवजी का जन्म, कन्याओं का विवाह और कर्दमको संन्यासपूर्वक भगवत्प्राप्ति १२१
२५. कपिलदेव जी का माता के प्रति भक्तियोग का वर्णन १२३
२६. सांख्ययोग का वर्णन १२५
२७. प्रकृति-पुरुष के विवेक से मोक्ष का वर्णन १२७
२८. स्वरूप-ज्ञान के लिये अष्टांगयोग का वर्णन १२८
२९. भक्ति और भक्त के भेद तथा काल का महत्त्व वर्णन १२९
३०. कामी पुरुषों की अधोगति का वर्णन १३२
३१. जीव का गर्भ में प्रवेश और उसकी भगवान् से प्रार्थना १३४
३२. सकाम एवं निष्काम पुरुषों की गतियों का विवरण १३६
३३. कपिलजी का प्रस्थान और माता की मुक्ति १३७

चतुर्थ-स्कन्ध

१. मनु की कन्याओं के वंश और यज्ञ आदि भगवान् के अवतार १४०
२. भगवान् शिव के प्रति दक्ष के विद्वेष का कारण एवं परस्पर शाप १४६
३. दक्ष-यज्ञ में ज़ाने के लिए सती का आग्रह और शिव द्वारा निषेध १४७
४. सती का दक्ष-यज्ञ में गमन और योग द्वारा शरीर-त्याग १४८
५. दक्षयज्ञ-विध्वंस और दक्ष-वध १५०
६. ब्रह्मा जी के साथ देवताओं का कैलास-गमन और श्रीशिव जी से दक्ष को जीवित करने की प्रार्थना १५२
७. शिवजी की प्रसन्नता से यज्ञ में श्रीविष्णु का प्रादुर्भाव, उनकी स्तुति और यज्ञ का पुनः आरम्भ १५३

८. विमाता के दुर्वचनों से विद्ध ध्रुव का वृन्दावन में कठोर तप १५६
९. ध्रुव को भगवान् का सक्षात्कार, वर-प्राप्ति और राज्याभिषेक १५९
१०. ध्रुव के भाई उत्तम का यक्षों द्वारा वध और ध्रुव-यक्षयुद्ध १६१
११. मनु के उपदेश से ध्रुव की युद्ध से निवृत्ति १६२
१२. ध्रुव को कुबेर से वर-प्राप्ति और विमान द्वारा ध्रुव-लोक-गमन १६३
१३. ध्रुव के वंश में वेनका जन्म, उसके अत्याचारों से राजा अंग का गृह-त्याग १६५
१४. नास्तिक वेन का ऋषियों द्वारा वध और उससे निषाद की उत्पत्ति १६७
१५. वेन की भुजा से अर्चि-सहित महाराज पृथु का जन्म तथा उनका राज्याभिषेक १७०
१६. महाराज पृथु की स्तुति १७१
१७. पृथु का अन्नार्थ गोरूपधारिणी पृथ्वी पर कोप और पृथ्वी द्वारा पृथु की स्तुति १७२
१८. पृथ्वी से अन्न आदि पदार्थों का पृथु आदि के द्वारा दोहन १७३
१९. पृथु के सौवें अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र द्वारा यज्ञीय अश्व का अपहरण १७५
२०. भगवान् के ज्ञानोपदेश से इन्द्र और पृथु की परस्पर मैत्री १७७
२१. महाराज पृथु का विशाल सभा में प्रजा को धर्मोपदेश १७९
२२. महाराज पृथु को सनत्कुमार का ज्ञानोपदेश १८१
२३. महाराज पृथु का वानप्रस्थाश्रम तथा योग द्वारा सपत्नीक वैकुण्ठगमन १८४
२४. पृथु के प्रपौत्र प्राचीनबर्हि से प्रचेताओं का जन्म और उनको श्रीरुद्र का उपदेश १८६
२५. प्राचीनबर्हिको पुरञ्जन-कथा द्वारा नारद का तत्त्वोपदेश १८९
२६. पुरञ्जन का मृगयार्थ वनगमन तथा उसके विरह से कुपित रानी को सान्त्वना-प्रदान १९१
२७. पुरञ्जन का रानी से विहार, नगर पर चण्डवेग का आक्रमण और उसकी कन्या जरा का नारद को शाप १९२
२८. पुरञ्जन को स्त्रीत्व की प्राप्ति और सत्सङ्ग से उसकी मुक्ति १९३
२९. पुरञ्जनोपाख्यान का सरल आध्यात्मिक अर्थ और राजा प्राचीनबर्हिकी मुक्ति १९५
३०. प्रचेताओं को भगवान् विष्णु से वरप्राप्ति तथा उनका वार्क्षी कन्या के साथ विवाह २००
३१. दक्ष का राज्याभिषेक तथा नारद के उपदेश से प्रचेताओं की मुक्ति २०२

पञ्चम-स्कन्ध

१. प्रियव्रत को नारद से ज्ञान-प्राप्ति, राज्य का उपभोग तथा उनका वैकुण्ठगमन २०४
२. प्रियव्रत-पुत्र आग्नीध्र के पूर्वचित्ति अप्सरा से नौ पुत्रों का जन्म २०७
३. आग्नीध्र-पुत्र नाभि के राजभवन में भगवान् ऋषभदेव का अवतार २०८
४. ऋषभदेव के सौ पुत्रों का जन्म २०९

५. ऋषभदेवजी का पुत्रों को ज्ञानोपदेश तथा स्वयं परमहंसवृत्ति-धारण २११
६. ऋषभदेव का दिव्यविग्रह वनाग्नि में तिरोहित २१३
७. ऋषभ-पुत्र भरत का राज्य-पालन तथा पुलहाश्रम में तप २१९
८. मृग में आसक्ति से भरत को मृग-योनि की प्राप्ति और उससे मुक्ति २२०
९. राजर्षि भरत का ब्राह्मण कुल में जन्म और भद्रकाली द्वारा बलिदान से उनकी रक्षा २२२
१०. जड़भरत की सर्वज्ञताद्योतन के लिए रहूगण का उपाख्यान २२४
११. जड़भरत द्वारा राजा रहूगण को ज्ञानोपदेश तथा संसार के मिथ्यात्व का वर्णन २२७
१२. रहूगण की शङ्काओं का समाधान २२८
१३-१४. भवाटवी का वर्णन, रहूगण के सन्देह की निवृत्ति २३०
१५. भरतवंशीय राजाओं में महाराज गयका महत्त्व २३२
१६. जम्बूद्वीप के खण्ड, सुमेरु की स्थिति और परिमाण २३३
१७. गंगा का अवतरण और इलावृत खण्ड में शिव द्वारा संकर्षण का स्तवन २३५
१८. भद्राश्व आदि छः खण्डों के उपास्य एवं उपासकों का वर्णन २३८
१९. किम्पुरुष और भारतवर्ष में उपास्य-उपासक-भाव तथा भारत की श्रेष्ठता २३९
२०. शेष छः द्वीप और लोकालोक-पर्वत का वर्णन २४१
२१. सूर्य के रथ की गति का वर्णन २४२
२२. चन्द्र, शुक्र आदि ग्रहों के स्थान और उनकी गति से इष्टानिष्ट फल २४४
२३. ध्रुवलोक तथा शिशुमारचक्र का वर्णन २४७
२४. सूर्य के नीचे राहु आदि की स्थिति और अतलादि सात लोकों का वर्णन २४८
२५. पाताल के नीचे भगवान् शेष की स्थिति २५०
२६. पापियों के दण्डविधानार्थ नरकों का वर्णन २५२

षष्ठ-स्कन्ध

१. अजामिल का उपाख्यान २५८
२. महापापी अजामिल का भगवन्नाम से उद्धार २६१
३. यमराज और उनके दूतों का संवाद २६३
४. सृष्टि के लिए दक्षद्वारा भगवान् की आराधना २६५
५. नारद के गूढोपदेश से दक्षपुत्रों को वैराग्य और दक्ष का नारद को शाप २६८
६. दक्ष की ६० कन्याओं का वंश और अदिति पुत्र त्वष्टा से विस्वरूप का जन्म २७१
७. बृहस्पति से परित्यक्त देवताओं द्वारा विश्वरूप का पुरोहितरूप से वरण २७२
८. विश्वरूप के द्वारा इन्द्र को नारायणकवच का उपदेश २७४

९. इन्द्रद्वारा विश्वरूप का वध और वृत्रासुर की उत्पत्ति २७६
१०. दधीचि की अस्थियों से वज्र का निर्माण तथा इन्द्र का वृत्रासुर से युद्ध २७९
११. युद्ध में वृत्रासुर की भगवन्निष्ठा २८१
१२. इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का वध २८४
१३. इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण और भगवान् विष्णु द्वारा उनकी रक्षा २८६
१४. वृत्रासुर पूर्वजन्म में चित्रकेतु था २८७
१५. अङ्गिरा तथा नारद के ज्ञानोपदेश से चित्रकेतु की शोक निवृत्ति २९०
१६. नारद द्वारा चित्रकेतु को शेषतोषिणी महाविद्या का उपदेश २९१
१७. चित्रकेतु का पार्वती जी के शाप से वृत्रासुर होना २९३
१८. अदिति के अन्य सविता आदि आठ पुत्रों का वंश तथा दिति से ४९ मरुतों का जन्म २९५
१९. दिति को उपदिष्ट पुन्सवन-व्रत का विधान २९७

सप्तम-स्कन्ध

१. नारद-युधिष्ठिर-संवाद तथा जयविजय के तीन जन्मों का वृत्तान्त २९९
२. हिरण्याक्ष के वध से दुःखित परिवार को हिरण्यकशिपु द्वारा सान्त्वना-प्रदान ३०१
३. हिरण्यकशिपु की कठोर तपस्या और ब्रह्मा से वर-प्राप्ति ३०४
४. हिरण्यकशिपु का अत्याचार और प्रह्लाद की भगवन्निष्ठा ३०५
५. हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लाद के वध का प्रयास ३०७
६. प्रह्लाद द्वारा दैत्य-बालकों को भागवतधर्म का उपदेश ३१२
७. मातृगर्भ में प्राप्त नारदोपदेश का प्रह्लाद द्वारा वर्णन ३१४
८. भक्तरक्षार्थ नृसिंह भगवान् का प्रादुर्भाव तथा हिरण्यकशिपु का वध ३१७
९. प्रह्लादद्वारा नृसिंह भगवान् की स्तुति ३१९
१०. प्रह्लाद का राज्याभिषेक, भगवान् नृसिंह का अन्तर्धान और त्रिपुर-दहन ३२२
११. वर्णधर्म और स्त्रीधर्म का वर्णन ३२४
१२. ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ के धर्म ३२७
१३. संन्यासधर्म का वर्णन तथा अवधूत और प्रह्लाद का संवाद ३२८
१४. चारों आश्रम-धर्मों में गृहस्थधर्म की महत्ता ३३१
१५. गृहस्थ-धर्म से मोक्ष प्राप्ति और नारद जी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त ३३६

अष्टम-स्कन्ध

१. स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम और तामस चार मन्वन्तरों का वर्णन ३४३
२. गज और ग्राह का युद्ध ३४४
३. गजेन्द्र-ग्राहयुद्ध, गजेन्द्र-स्तवन तथा गजेन्द्र का मोक्ष ३४६
४. गज और ग्राह का पूर्व-वृत्तान्त और उनका उद्धार ३४८

५. रैवत तथा चाक्षुष मन्वन्तर का वर्णन ३४९
६. देवताओं की असुरों से सन्धि और अमृत के लिए उद्योग ३५०
७. समुद्रमन्थन तथा रुद्र द्वारा विष-पान ३५१
८. अमृत का कलश लिए भगवान् धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव, लक्ष्मी का स्वयंवर एवं मोहिनी अवतार ३५३
९. मोहिनी द्वारा देवताओं को अमृत प्रदान तथा राहु का शिरच्छेदन ३५५
१०. देवासुर-संग्राम ३५७
११. संग्राम में देवताओं की विजय ३५८
१२. मोहिनी द्वारा भगवान् शिव का विमोहन ३५९
१३-१४. शेष आठ मन्वन्तरों का वर्णन और उनके कार्य ३६१
१५. इन्द्रपुरी पर बलि का अधिकार और देवताओं का पलायन ३६२
१६. कश्यप द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश ३६३
१७-१८. भगवान् वामन का प्रादुर्भाव और बलि के यज्ञ में गमन ३६४
१९. वामन द्वारा तीन पैर पृथ्वी की याचना और शुक्राचार्य का निषेध ३६६
२०. तीन पैर पृथ्वी दान में बलि को भगवान् के विराट् रूप का दर्शन ३६७
२१. गरुड द्वारा बलि का वरुणपाश से बन्धन ३६९
२२. तीन पैर पृथ्वी के दान से भगवान् बलि के द्वारपाल ३७०
२३. बलि को सुतल का और इन्द्र को स्वर्ग का आधिपत्य प्रदान ३७२
२४. वामनावतार के समान मत्स्यावतार की कथा ३७४

नवम-स्कन्ध

१. वैवस्वत मनु के पुत्र सुद्युम्न को स्त्रीत्व की प्राप्ति ३७६
२. वैवस्वत मनु के दस पुत्रों में पाँच के वंश का वर्णन ३७८
३. शर्याति के वंश में उत्पन्न सुकन्या और रेवती का उपाख्यान ३७९
४. नभग और उनके पौत्र अम्बरीष का उपाख्यान ३८१
५. अम्बरीष की प्रार्थनापर सुदर्शन चक्र से दुर्वासा की प्राणरक्षा ३८४
६. इक्ष्वाकुवंशीय मान्धाता और सौभरि का उपाख्यान ३८५
७. मान्धाता के वंशज त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र का उपाख्यान ३८७
८. रोहित के वंश में सगर का जन्म और कपिल जी के अनादर से उनके पुत्रों का नाश ३८९
९. अंशुमान् के वंशज भगीरथ, सौदास एवं खट्वाङ्ग का चरित्र ३९०
१०. खट्वाङ्ग की वंश परम्परा में भगवान् श्रीराम का जन्म और चरित्र ३९२
११. राम द्वारा सीता का परित्याग एवं चारों भाइयों के वंश का वर्णन ३९३
१२. कुश के वंश का वर्णन ३९४
१३. निमि के वंश का वर्णन ३९५

१४. चन्द्रवंश का वर्णन तथा पुरुरवा का उपाख्यान ३९६
१५. ऐल वंश में गाधि का जन्म तथा उनके दौहित्र परशुराम द्वारा कार्तवीर्य का वध ३९८
१६. परशुराम द्वारा इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार तथा विश्वामित्र का वंश ४००
१७. ऐल के ज्येष्ठ पुत्र आयु के वंश का वर्णन ४०२
१८. नहुष के पुत्र ययाति का चरित्र ४०३
१९. ययाति और देवयानी की विषयभोग से विरक्ति ४०६
२०. पूरूवंशीय दुष्यन्त तथा भरत का चरित्र ४०७
२१. भरद्वाज के वंश में रन्तिदेव आदि प्रतापी राजाओं का जन्म ४०८
२२. दिवोदास का वंशवर्णन तथा जरासन्ध, पाण्डव आदि की जन्मकथा ४०९
२३. ययाति के अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु और यदु नामक पुत्रों के वंश का वर्णन ४११
२४. यदुवंशी विदर्भ आदि राजाओं का वंशवर्णन ४१२

परिशिष्ट

१. मुख्य कर्तव्य ४१५
२. अनसूया के पातिव्रत्य का प्रभाव, मृतक को जीवनदान, दृष्टान्त ४१७
३. चोरी के प्रसंग में शंख-लिखित का उपाख्यान (दृष्टान्त) ४२०
४. द्रौपदी के पाँच पतियों का भ्रमनिवारण ४२१
५. मदालसा का महत्त्वपूर्ण चरित्र ४२३
६. मृत्युसूचक अरिष्टों का वर्णन ४२७
७. अरिष्टनाशक एवं आयुर्वर्धक सदाचार का वर्णन ४२९
८. वैदिक विद्वानों का विशेष कर्तव्य ४३४
९. पापों के अनुसार नीच योनियों का वर्णन ४३४
१०. मृत्यु-समीक्षा ४३७
११. श्राद्ध की कुछ विशेषताएँ ४४०
१२. पुत्र की परिभाषा ४४२
१३. सवत्सा गौसेवा का अनन्त फल ४४५
१४. एकादशी दो क्यों? ४४७
१५. धर्मराज का आदर्श न्याय ४५२
१६. गुरुसेवा की महिमा में आरुणि और उपमन्यु का उपाख्यान ४५४

प्रथम भाग की विषयानुक्रमणिका समाप्त

❖

॥ जय श्रीकृष्ण ॥

प्रकाशकीय

श्रीपूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन वाञ्छाकल्पतरू भगवान् श्रीकृष्ण की पवित्र कल्पवृक्ष रूपी भागवत कथा का श्रवण करने को कौन ऐसा पुरुष होगा कि जिसका चित्त न चाहता हो, यह एक ऐसा मनोहर वर्णन है कि इसका श्रवण करने को विश्वभर के बाल, वृद्ध, नर-नारी, सभी लोग उत्कंठित रहते हैं। पूज्य व्यासजी महाराज ने एक ऐसी भागवत बनाई, जिसका संस्कृत के विद्वान् ही आनन्द लेते रहे, परन्तु संस्कृत विद्या अतिपरिश्रम साध्य हैं। इस कारण भाषा जानने वाले इस स्वाद से अनभिज्ञ रहते थे, केवल श्रवण मात्र से ही तृप्ति करते थे।

श्रीमद्भागवत कथा सरल भाषा में न होने के कारण भागवत का अध्ययन करना व कथामृत का पान करना लोगों को बड़ा कठिन था। केवल कहीं-कहीं भागवत कथा ही हुआ करती थी, भगवान् जी की प्रेरणा से कभी-कभी महान् सन्तों का युग-युग में इस धरा धाम पर आगमन होता रहता है और कुछ न कुछ संसार के लिए कर जाते हैं। जैसे इस कलियुग में श्री गोस्वामी तुलसीदास जी जो रघुनाथ जी के भक्तों में अग्रगण्य है। इस धरा-धाम में आने के बाद भगवान् के प्रेम में ऐसे मग्न हुए कि वह प्रेम भाषारूप होकर संवत् १६३१ में निर्गत हो **'तुलसीकृत रामायण'** इस नाम से जगत् में फैलकर विख्यात हुआ और चारों वर्ण में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं होगा कि जिसने देवनागरी पढ़कर इस रामायण का आनन्द न लिया हो। यहाँ तक की यूरोप के विद्वानों ने भी इसका भाषान्तर अंग्रेजी में करके आनन्द की अनूभूति की हैं और इतना सरल है कि विद्वान से लेकर बारह खड़ी तक के पढ़े हुए अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इसका आनन्द लूटते हैं। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत कथा भी काशी के मूर्धन्य विद्वान् शुकदेव स्वरूप अवतारी पुरुष परमश्रद्धेय आचार्य पं. श्री राममूर्ति शास्त्री पौराणिक जी के रोम-रोम में श्रीमद्भागवत समाया हुआ था, जिनको अठारह हजार श्लोक कण्ठस्थ थे। श्रीमद्भागवतमय शरीर बना लिये थे, पूज्य गुरुदेव ने व्यास जी के द्वारा रचित श्रीमद्भागवत की जो कठिन भाषा को सरल रूप में परिवर्तित किया।

धनञ्जये हाटकसम्परीक्षा, महारणे शस्त्रभृतां परीक्षा।
विपत्तिकाले गृहिणी परीक्षा, विद्यावतां भागवते परीक्षा॥

सोने की परीक्षा अग्नि से होती है, युद्ध क्षेत्र में शस्त्रधारियों की परीक्षा, आपत्तिकाल में धर्मपत्नी की परीक्षा, विद्वानों की भागवत में परीक्षा होती है, ऐसी श्रीमद्भागवत को कथा वाचकों के लिए इतना सरल बना दिया कि आज हजारों कथा

वाचक तैयार हो गये, इसी भागवतकथा की कृपा है कि इस समय कथावाचकों की लाइन लगी है और सब लोग भागवतामृत का पान कर रहे हैं। भागवत के एक-एक श्लोक में ऐसा स्वाद भरा है कि मनुष्य सुनकर ब्रह्मानन्द में मग्न हो जाते हैं यद्यपि इस भागवत को अनेक प्रकार से छापने के लिए महात्माओं ने प्रयास किया है, परन्तु जैसा मेरे पूज्य गुरुदेव ने सरस्वती जी की कृपा से लिखा, वैसी तुलना अभी तक किसी भागवत में नहीं हुई है, यह भागवत न जाने कितने संस्करणों में निकल चुकी है।

आज अनेक वर्षों से लगातार पुस्तक चल रही है। प्रति वर्ष सहस्त्रों प्रति बाहर पुस्तकालयों में चली जाती है। प्रत्येक स्थान पर यह भागवत उपलब्ध है। भारत में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी भागवत कथा की ज्योति जगमगा रही है। मेरापरम सौभाग्य है कि पूज्य गुरूदेव के चरणों में ग्यारह वर्ष तक रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। कुछ पूर्व जन्म का संस्कार और इस जन्म में माता-पिता व सन्तों की कृपा से ऐसे महान् विभूति की सेवा करने का सुन्दर अवसर मिला। उसे मैंने शिरोधार्य किया, उन्होंने यही भागवत कथा को प्रसाद के रूप में प्रकाशन का अधिकार मुझे सौंपा।

भागवत के कथाकारों के हमारे पास बहुत से प्रशंसा पत्र आते रहते हैं, यदि हम सबको लिखें तो एक और पुस्तक तैयार हो जाय इस कारण सबके नाम पृथक्-पृथक् न लिखकर अन्त:करण से धन्यवादपूर्वक उनके द्वारा प्रेषित पत्रों को स्वीकार करके उनके लिए सदा बाँकेबिहारी से मंगल की कामना करते हैं।

हमारे पौराणिक कार्यालय की समस्त पुस्तकों का मुद्रण श्रीजी प्रेस नाटी इमली से हुआ है। वाराणसी में इससे सुव्यवस्थित और यथा शीघ्र छापने वाला अन्य कोई दूसरा प्रेस नहीं है। प्रकाशनों के मुद्रणार्थ प्रेस के अधिकारी श्री अनूप नागर जी से सम्पर्क कर एक बार इसकी परीक्षा स्वयं कर सकते हैं। इस प्रेस का मैं सदा आभारी हूँ जो कई वर्षों से भागवत कथा को प्रकाशित कर रहे हैं। इनके लिए सदैव सदा मंगल की कामना करता हूँ कि इनके परिवार में भगवत कृपा बनी रहे।

धन्यवाद!

मङ्गलं भगवान् कृष्णो मङ्गलं तत्कथामृतम्।
मङ्गलं चास्य वक्तारः श्रोतारश्चापि मङ्गलम्॥
मङ्गलं मङ्गलं जाग्रन्मङ्गलं मङ्गलं स्वपन्।
एवं जपन्नवाप्नोति मङ्गलायतनं हरिम्॥

सभी भागवत प्रेमियों का कृपाभिलाषी—

दिनकर देव पाण्डेय (शास्त्री जी)
श्री पौराणिक आश्रम
आनन्द धाम (चतरवार)
सोनभद्र, यू.पी.

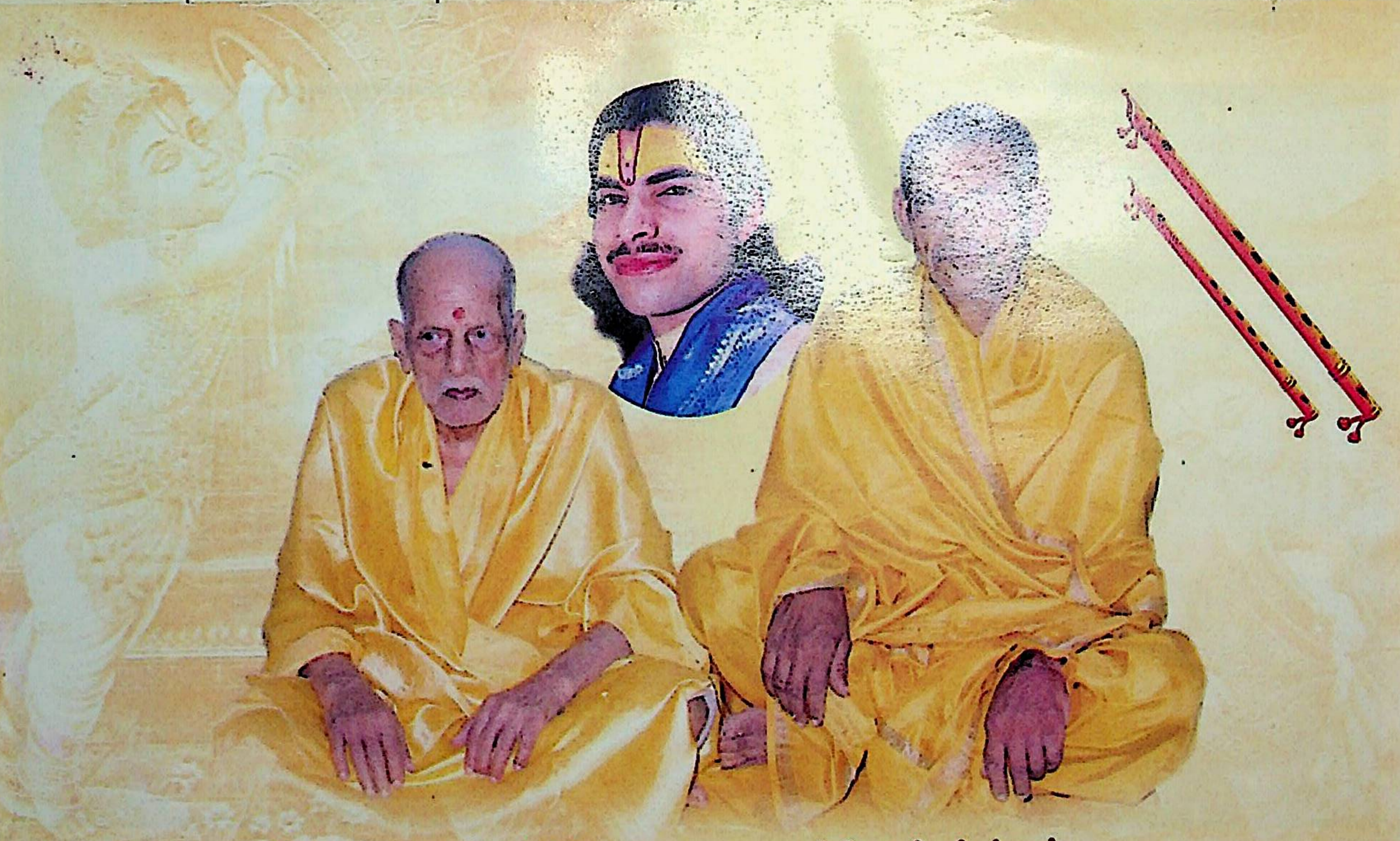

आचार्य पं. श्रीरामभूर्ति शास्त्री पौराणिक

पौराणिक पं. श्रीजगदीश देव पाण्डेय

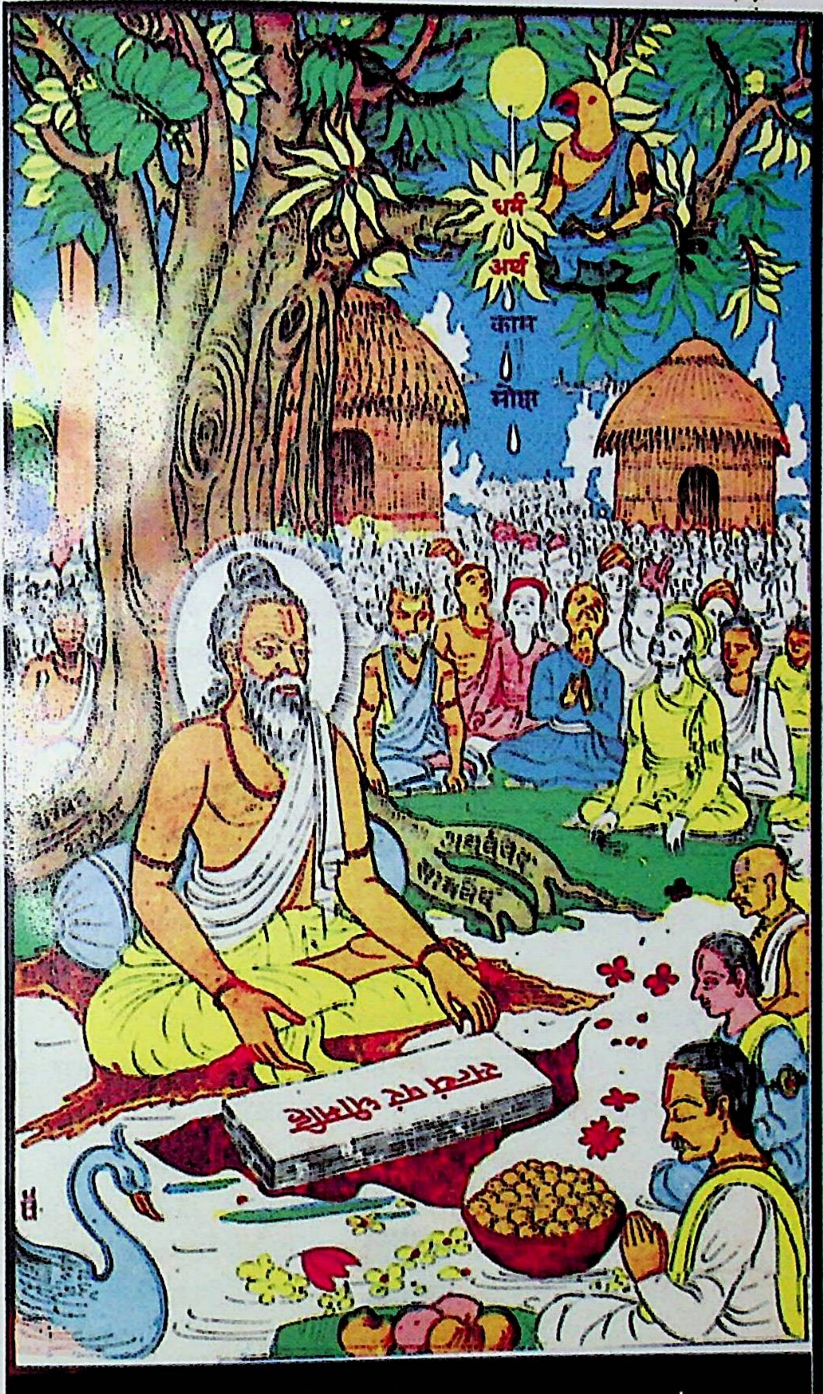
धर्म
अर्थ
काम
मोक्ष

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

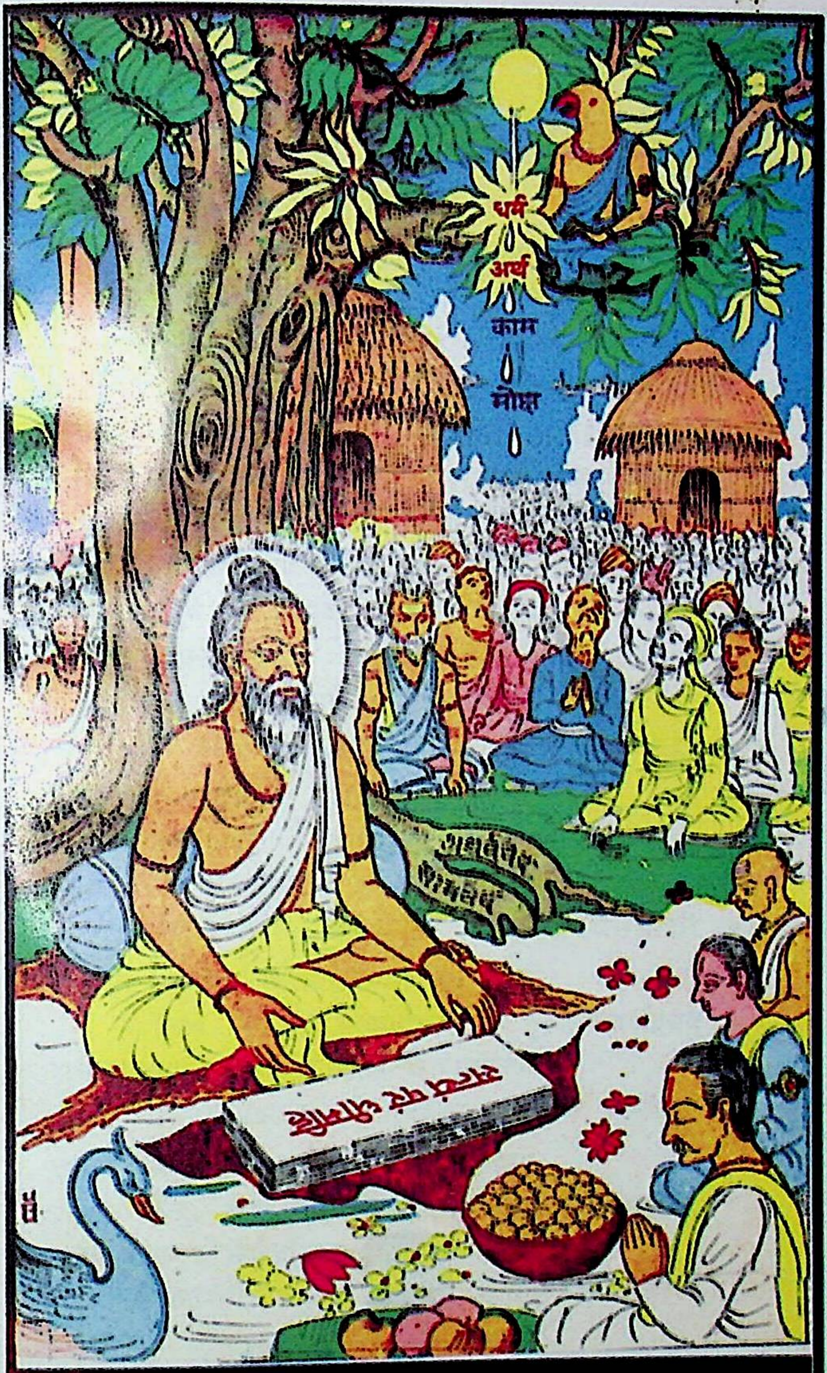
धर्म
अर्थ
काम
मोक्ष

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥

कथारम्भ में पठनीय श्लोक

* * *

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम्।
अमन्दानन्दसन्दोहबन्धुरं. सिन्धुराननम् ॥१॥
लम्बोदरं परमसुन्दरमेकदन्तं रक्ताम्बरं त्रिनयनं परमं पवित्रम्।
उद्यद्दिवाकरकरोज्ज्वलकायकान्तं विघ्नेश्वरं सकलविघ्नहरं नमामि ॥२॥
सञ्चिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दं वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥३॥
ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥४॥
मौलौ बर्हजुषे मनोज्ञवपुषे पद्मोल्लसच्चक्षुषे
कालीयाहिरुषे सलीलजनुषे नव्याम्बुवाहत्विषे।
गोपीतोषपुषे पयोदधिमुषे नीपाग्रमासेदुषे
जिष्णोः सख्यमुपेयुषे प्रणतयः कृष्णाय कंसद्विषे ॥५॥
मायारन्तरि पार्थयन्तरि सुराधीशद्विषां हन्तरि
त्रासत्रातरि धर्मदातरि दयादानव्रतस्थातरि।
पद्माभर्तरि पञ्चबाणपितरि क्षीराब्धिजामातरि
स्वात्मध्यातरि भक्तपातरि मनोभूयाद् बलभ्रातरि ॥६॥
यन्नाम्नः प्रथमाक्षरं विजयते भानौ द्वितीयाक्षरं
नित्यं नृत्यति सत्कवीन्द्रवदने भूत्वान्त्यवर्णद्वयम्।
रामो रावणमाजघान समरे शम्भोः शिरश्चारिणी
सा सर्वाक्षरमालिनी विजयते भाग्याय भागीरथी ॥७॥
लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा
धेनुः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भा च देवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधे
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु नः मङ्गलम् ॥८॥
यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥९॥

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान् ।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि ॥१०॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन यस्मै श्रीगुरवे नमः ॥११॥
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१२॥

सप्ताह-पारायण के विश्राम-स्थल

(कौशिकी-संहिता)

सप्ताहे पाठनियमं शृणु शौनक संयतः ।
मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि ॥१॥
ऋषभाख्यानपर्यन्तं द्वितीये दिवसे वदेत् ।
तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्धपूरणम् ॥२॥
कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थेऽहनि वाचयेत् ।
रुक्मिण्युद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेऽह्नि वदेत् सुधीः ॥३॥
श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽह्नि वाचयेद् ध्रुवम् ।
सप्तमे दिवसे कुर्याच्छ्रीभागवतपूरणम् ॥४॥

मासिक-पारायण का क्रम

मासश्रवणपक्षे तु नित्यमध्यायधूर्जटिम् ।
पञ्चाध्यायीं पठेद् विद्वान् समाप्तिदिवसेऽन्तिमाम् ॥५॥

❖

पाठं कुर्वन्न विरमेद् यावदध्यायपूरणम् ।
विरामे च तदध्यायं पुनरादित आरभेत् ॥६॥
स्कन्धस्याद्यन्तिमश्लोकौ द्विरावृत्त्या सदा पठेत् ।
पाठं शनैः शनैः कुर्याच्छ्रोतृहर्षविवर्धनम् ॥७॥

❖

।। श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।।

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

पहला अध्याय

नारदजी का भक्ति से वार्तालाप

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।
कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ।।३।।

एक समय नैमिषारण्य में विराजमान सूतजी को प्रणाम कर भगवत्कथारूपी अमृतरस के आस्वादन में परम प्रवीण शौनकजी ने पूछा—हे सूतजी! आप अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने में सूर्य के समान हैं। आप हमें कोई ऐसी उत्तम कथा सुनायें; जो कर्ण-प्रिय हों, जिससे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति हो, मायाजाल से छुटकारा मिले एवं विवेक का उदय हो। इस कलि-काल में जीव असुरभाव को प्राप्त हो गये हैं। नाना प्रकार के क्लेशों से पीड़ित हैं। इनकी दुःखनिवृत्ति कैसे हो? संसार में भगवत्प्राप्ति का जो उत्तम साधन हो उसे कृपा कर आप हमें बतायें। सूतजी ने कहा—हे शौनकजी, भगवान् की कथा के आप परम प्रेमी हैं, इसलिए मैं विचार कर आपको भगवत्प्राप्ति का उत्तम साधन बताता हूँ। आप सावधान होकर इसका श्रवण करें। कालरूपी महासर्प के भय से बचने के लिए शुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत का प्रवचन किया है। इसके श्रवण से भक्ति की वृद्धि एवं भगवान् की प्रसन्नता होती है। संसार में इससे बढ़कर चित्तशुद्धि का दूसरा उपाय नहीं है। जब पूर्वजन्म के पुण्यों का उदय होता है तभी भागवत-कथाश्रवण में रुचि होती है। भागवत-कथा अमृत से भी मधुर और महँगी है। जब शुकदेवजी राजा परीक्षित् को यह कथा सुनाने सिंहासन पर बैठे तब देवता अमृत का कलश लेकर उनके समीप आए—

सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ।।१३।।

और प्रणाम कर बोले—भगवन्! आप यह अमृत ले लें; इसके पीने से राजा अमर हो जाएँगे और कथारूपी अमृत हमें पिलायें; जिससे हम कृतार्थ हो जायँ। शुकदेवजी यह सुनकर हँस पड़े और उन्हें अभक्त जानकर अमृत के बदले में कथारूपी अमृत नहीं दिया। कारण है कि मणि और कांच की तुलना ही कैसी? भागवत की कथा के श्रवण-मात्र से राजा परीक्षित् की मुक्ति देखकर स्वयं ब्रह्माजी को भी बड़ा आश्चर्य

हुआ। उन्होंने अपने लोक में तराजू लगाकर एक पलड़े पर जप, तप, यज्ञ, दान आदि बहुत से पुण्य-साधन रखे और दूसरे पर श्रीमद्भागवत महापुराण को रखा। तौल में भागवत का ही पलड़ा भारी रहा। इस पर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और सबने भागवत को भगवान् का साक्षात् स्वरूप समझा। सप्ताह के रूप में इसका श्रवण करने पर यह भागवत निश्चित मुक्ति देती है। देवर्षि नारद ने पहले ब्रह्माजी से इसका श्रवण कर सनकादि महर्षियों से इसके सप्ताह-श्रवण की विधि सुनी थी।

शौनकजी ने पूछा—हे सूतजी! सुना जाता है, नारदजी तो प्राय: इधर-उधर लीलार्थ झगड़ा ही लगाते फिरते हैं। वे एक जगह स्थिर रहते भी नहीं। तब उन्हें सप्ताह की विधि सुनने का अवसर कैसे मिला और सनकादि महर्षियों से उनका समागम कहाँ हुआ?

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी, मैं इस प्रसंग में आपको एक भक्तिपूर्ण इतिहास सुनाता हूँ जिसे मैंने शुकदेवजी से सुना था। एक समय सनकादि चारों महर्षि सत्संग के लिए बदरिकाश्रम गये। वहाँ नारद को व्यग्रचित्त देखकर उनसे उन्होंने पूछा, हे ब्रह्मन्! आप उदास क्यों हैं? आपको किस बात की चिन्ता है? इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रहे हैं और कहाँ से आ रहे हैं? हमें इसका ठीक-ठीक कारण बतायें। नारदजी ने कहा—हे मुनीश्वरों, कर्मस्थली होने के नाते पृथ्वी को सर्वोत्तम समझकर मैं वहाँ गया था। उसमें भी काशी, प्रयाग, पुष्कर, गोदावरी आदि तीर्थों में भ्रमण करता रहा। किन्तु मेरे मन को कहीं भी शान्ति नहीं मिली। सर्वत्र कलि का आक्रमण देखा। मनुष्यों में सत्य, तप, दया, दान आदि कुछ भी नहीं रहा। वे केवल झूठ का अवलम्बन कर अपना पेट भरते हैं। घरों में स्त्रियों का प्रभुत्व देखा। साला सलाह देते देखा।

तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः—लोग कन्याओं का विक्रय करते हैं। स्त्री-पुरुष आपस में झगड़ते हैं। मनुष्य मन्दभाग्य एवं आलसी हो गये हैं। सन्त पाखण्डी दिखायी दिए। विरक्त संन्यासी परिवार जुटाकर गृहस्थ बन बैठे हैं। दुराचारियों ने तीर्थों पर अड्डा जमाकर अश्रद्धा पैदा कर दी है। कहीं भी योगी, सिद्ध, ज्ञानी पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होते। कलिरूपी दावानल से प्राय: सब साधन भस्म हो गये हैं—

कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥३५॥

कलि के ऐसे दोष देखकर मैं यमुना तट पर गया। वहाँ मुझे एक बड़ा आश्चर्यमय दृश्य दिखाई दिया, उसे आप सुनें। वहाँ एक युवती दु:खितचित्त बैठी थी। उसके पास दो बूढ़े अचेतन पड़े थे। वह उन्हें जगाती हुई रोदन करती चारों ओर दृष्टि डालकर अपने रक्षक को खोज रही थी। बहुत-सी स्त्रियाँ उसे धीरज बँधा रही थीं। मैं दूर से वह दृश्य देखकर कौतुकवश उसके निकट गया। मुझे देखते ही वह उठ खड़ी हुई और बड़ी विकलता से बोली—हे मुनिवर, आप थोड़ी देर रुककर मेरी चिन्ता दूर करते जायँ। आज बड़े भाग्य से आपका दर्शन हुआ है। आपके वचन से मुझे अवश्य शान्ति मिलेगी। यह सुनकर मैंने कहा—देवि, तुम कौन हो? तुम्हारे पास ये अचेतन पड़े दोनों

वृद्ध तथा सेवा में उपस्थित ये स्त्रियाँ कौन हैं? तुम्हें क्या दुःख है? तुम मुझे अपने दुःख का कारण बताओ। उस युवती ने कहा—हे मुने, मेरा नाम भक्ति है। ज्ञान और वैराग्य ये दो मेरे पुत्र हैं। काल के प्रभाव से ये वृद्ध हो गये हैं। ये स्त्रियाँ गङ्गा आदि नदियाँ हैं जो मेरी सेवा में उपस्थित हैं। फिर भी मुझे सुख नहीं है। मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न होकर कर्णाटक में वृद्धि को प्राप्त हुई। फिर, धीरे-धीरे गुर्जर आदि प्रान्तों में पाखण्डियों के द्वारा मैं क्षीण हो गयी और मेरे ये पुत्र भी बूढ़े हो गये। परन्तु इस वृन्दावन के प्रभाव से मैं तो युवती हो गयी, किन्तु मेरे पुत्रों का वृद्धत्व नहीं गया। लोक में माता वृद्ध एवं पुत्र युवा देखे जाते हैं—

घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥५३॥

पर यहाँ विपरीत हो गया है। इसी शोक से मैं व्याकुल हूँ। आप इस वैषम्य का कारण बतायें। अब मैं इस स्थान को भी छोड़कर अन्यत्र जाने का विचार कर रही हूँ। राजा परीक्षित् ने इस अधार्मिक कलि को आश्रय ही क्यों दिया जिसके आते ही सब वस्तुओं का सार नष्ट हो गया? नारदजी ने कहा—हे देवि, मैं तुम्हारे दुःख का कारण समझ रहा हूँ। तुम चिन्ता न करो। भगवान् तुम्हारा दुःख अवश्य दूर करेंगे। जिस दिन भगवान् पृथ्वी छोड़कर अपने धाम को चले गये उसी दिन से इस पृथ्वी पर कलि का आक्रमण हुआ। दिग्विजय करते समय राजा परीक्षित् ने उसे मारना चाहा था। किन्तु वह उनके पैरों पर जा गिरा। दयावश राजा ने उसका सारभूत गुण लेकर उसे छोड़ दिया। वह सारभूत गुण यह है—

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशवकीर्तनात् ॥६८॥

जो फल अन्य युगों में योग-समाधि से भी दुर्लभ था, वह इस युग में केवल भगवन्नामकीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है। इसी एक गुण के कारण राजा ने उसे मारा नहीं। यद्यपि उसने तप, तीर्थ, ध्यान, कथा आदि सभी के सार खींच लिये हैं।

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥७१॥
अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥७२॥

कुछ अल्पज्ञ ब्राह्मणों ने कण के लोभ से बिना बुलाये घर-घर में जाकर भागवती कथा का प्रचार कर दिया, इससे कथासार नष्ट हो गया। अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाले नास्तिक पापी मनुष्य तीर्थों में निवास करने लगे, इससे तीर्थों का सार नष्ट हो गया।

मनुष्यों की प्रकृति आसुरी हो गयी है। यह पृथ्वी स्पर्शयोग्य नहीं रह गयी। सर्वत्र अनाचार फैला हुआ है, तथापि ऐसे समय में जो धैर्य धारणकर रहता है वही ज्ञानी अथवा पण्डित है। वृन्दावन की भूमि के ही संयोग से तुम्हें युवावस्था प्राप्त हो गयी है।

पर यहाँ भी तुम्हारे इन पुत्रों का कोई ग्राहक नहीं है, इसलिए इसका वृद्धत्व नहीं गया। तुम चिन्ता न करो। यह युग का धर्म है। इसी से भगवान् भी इसे सहन कर रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक, यह सुनकर भक्ति बोली—आप धन्य हैं। बड़े भाग्य से मुझे आपका दर्शन हुआ। अब मेरा दुःख अवश्य दूर हो जायेगा। जिन आपके उपदेशों से पाँच वर्ष का बालक ध्रुव माया को जीतकर ध्रुवलोक प्राप्त कर सका उन परम मङ्गलमय भगवत्कृपापात्र आपको मैं प्रणाम करती हूँ—

सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥८०॥

॥ पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यका पहला अध्याय समाप्त ॥

◆

दूसरा अध्याय

भक्ति तथा ज्ञान-वैराग्य के प्रचारार्थ नारद-सनकादिका संवाद

नारदजी ने भक्तिदेवी से कहा—

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम्।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥१॥

हे बाले, खेद न करो। चिन्ता से व्याकुल क्यों हो रही हो? भगवान् के चरणों का स्मरण करो उसी से तुम्हारा दुःख दूर हो जायेगा। जिन्होंने कौरवरूपी दुःखसागर से द्रौपदी का उद्धार किया तथा गोपकन्याओं की रक्षा की वे भगवान् कहीं चले नहीं गये। तुम तो उन्हें प्राण से भी अधिक प्रिय हो। तुम्हारे बुलाने पर तो भगवान् नीचों के घर भी चले जाते हैं। ज्ञान वैराग्य सत्ययुग आदि में साधक अवश्य थे। किन्तु कलियुग में भगवान् का साक्षात्कार कराने वाली केवल भक्ति ही है। भगवान् ने इसी विचार से भक्तों के पालनार्थ तुम्हें यहाँ भेजा है। साक्षात् रूप से तो तुम वैकुण्ठ में निवास करती हो। यहाँ तुम्हारी छाया है। मुक्ति भी तुम्हारी दासी है। फिर चिन्ता किस बात की? तुम्हारे पुत्र ज्ञान-वैराग्य यद्यपि लोगों की उपेक्षा से वृद्ध हो गये हैं तथापि मैं इन्हें जगाने का उपाय सोच रहा हूँ। याद रखो, यदि मैं घर-घर तुम्हारा प्रचार न कर दूँ तो मैं भगवान् का दास नहीं। भक्ति से बढ़कर कलियुग में भगवत्प्राप्ति का दूसरा साधन है ही नहीं। भक्ति द्वारा भगवान् बड़ी सरलता से सम्मुख हो दर्शन देते हैं—

कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥१९॥

भक्ति से द्रोह करने वालों की दुर्दशा के ज्वलन्त उदाहरण दुर्वासा जी वर्तमान हैं। भक्ति के सामने व्रत तीर्थ, योग, यज्ञ तप, दान आदि का कोई महत्त्व नहीं। केवल भक्ति ही मुक्ति देने में समर्थ है।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक, इस प्रकार भक्ति अपना माहात्म्य सुनकर बड़ी प्रफुल्लित हो नारदजी से बोली—हे मुनिवर, आप धन्य हैं, धन्य हैं। मुझमें आपकी बड़ी प्रीति है। मैं आपका कभी त्याग न करूँगी। सदैव आपके हृदय में विराजमान रहूँगी। क्षणमात्र के संग से आपने मेरी बाधा दूर कर दी है। अब आप किसी प्रकार मेरे पुत्रों को जगाने का उपाय करें, तभी मुझे वास्तविक शान्ति प्राप्त होगी। यह सुनकर नारदजी ज्ञान-वैराग्य को हाथों से हिला-डुलाकर जगाने की चेष्टा करने लगे। उनके कान के समीप मुख ले जाकर उन्होंने ऊँचे स्वर से कहा—हे ज्ञान, हे वैराग्य उठो-उठो, जागो जागो—

ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥२६॥

वेद, वेदान्त एवं गीता के बारम्बार पाठ से वे थोड़ा-सा उठे तो सही किन्तु जम्हाई लेकर फिर सो गये। पुनः स्वापपरायणौ यह देखकर ऋषि को बड़ी चिन्ता हुई उन्होंने उनकी निद्रा एवं वृद्धता दूर करने के लिए भगवान् का स्मरण किया। स्मरण करते ही तत्काल आकाशवाणी हुई—हे मुनिवर, खेद न करो, तुम्हारा उद्योग सफल होगा। इसके लिए तुम कोई सत्कर्म करो। उससे ये दोनों जाग जायेंगे और भक्ति का भी सर्वत्र प्रचार होगा। इस सत्कर्म का उपदेश तुम्हें महात्मा लोग करेंगे। यह सुनकर नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे इन तीनों को वहीं छोड़कर तीर्थों में घूमते हुए मार्ग में मिले महात्माओं से उपाय पूछने लगे। पर किसी ने उनके प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। कोई तो प्रश्न सुनकर मौन हो जाते, कोई असाध्य बताते और कोई भाग ही जाते। चारों ओर इस चर्चा को लेकर एक तहलका-सा मच गया। सभी ऋषि-मुनि आपस में कहते—जब स्वयं नारद ही इसका उपाय न जान सके, तब और साधारण मनुष्य क्या बता सकेंगे।

इस प्रकार सब ऋषि-मुनियों की असमर्थता जानकर नारदजी चिन्ता से व्याकुल होकर बदरिकाश्रम गये। वहाँ उसके निमित्त तप करने का विचार कर ही रहे थे कि सामने से आते सनकादिक महर्षियों को उन्होंने देखा—

तावद् ददर्श पुरतः सनकादीन् मुनीश्वरान् ॥४४॥

नारदजी ने प्रणाम कर मुनियों से कहा—मैं आकाशवाणी द्वारा कहे उस सत्कर्म के ज्ञानार्थ तप करने यहाँ आया हूँ। आज बड़े भाग्य से ही आपके दर्शन हुए। आप कृपाकर बताएँ कि वह सत्कर्म क्या है जिसका संकेत आकाशवाणी ने किया है। सनकादिक ने कहा—हे नारद, चिन्ता न करो, चित्त प्रसन्न रखो। वह साधन तो अत्यन्त सरल एवं सुखसाध्य है। वैसे तो ऋषियों ने संसार में इसके बहुत से उपाय बताये हैं। पर वे सब परिश्रमसाध्य और स्वल्प फल देने वाले हैं। वैकुण्ठ प्राप्त करनेवाले साधन तो गोप्य ही हैं। उसका ज्ञाता बड़े ही भाग्य से मिलता है। सुनो—

सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ।
श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥६०॥

'सत्कर्म' का अर्थ विद्वानों ने 'ज्ञानयज्ञ' किया है और वह 'ज्ञानयज्ञ' 'श्रीमद्भागवत की कथा' ही है। इसकी ध्वनि से ही कलि के दोष एवं उन तीनों के कष्ट निवृत्त हो जायेंगे और तब भक्ति ज्ञान और वैराग्य के साथ घर-घर जाकर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में क्रीड़ा करेगी। नारदजी ने पूछा—हे मुनीश्वरों, जब वेद, वेदान्त और गीता के पाठ से भी ज्ञान-वैराग्य जाग न सके तब भागवत की कथा से वे कैसे जाग जायेंगे? मुझे यह सन्देह है कि कृपया आप इसे निवृत्त करें। सनकादि ने कहा—देवर्षे, वेद और उपनिषदों के सारभूत तत्त्व से ही श्रीमद्भागवत की कथा का आविर्भाव हुआ है। इसी से यह सर्वोत्तम मानी गयी है। आम आदि के वृक्षों में मूल से छोर तक रस भरा रहता है, किन्तु उसमें आम के रस का स्वाद नहीं मिलता। जब वह एकत्र होकर फल के रूप में आता है। तब विश्व का मन हर लेता है। जैसे दूध में घृत का और गन्ने में शक्कर का पूरा स्वाद नहीं मिल पाता; पृथक् होने पर ही दोनों रसों की पूर्णतया अनुभूति होती है, उसी प्रकार यह भागवत की कथा भी साररूप होने से परम मधुर है, इसकी रचना ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की स्थापना के लिए हुई है। स्मरण करें जब व्यासजी के मन में अपनी कृतियों पर मोहवश अपरितोष हुआ था तब चतु:श्लोकी भागवत के उपदेश से ही तो आपने उसे दूर किया था। फिर, उसकी महत्ता में आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है? नारदजी ने कहा—हे मुनीश्वरों, आज मुझे आपके दर्शन से बड़ी शान्ति मिली, सचमुच सत्पुरुषों का सङ्ग बड़े ही भाग्य से मिलता है जिससे अज्ञानजन्य मोह मद का नाश होकर विवेक की प्राप्ति होती है। आपने शेष जी के मुख से जिस कथामृत का पान किया है; उसी प्रेमामृत का प्रकाश मेरे लिए भी करें। मैं आपकी शरण में हूँ—

प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥७५॥

।। पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्य का दूसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

तीसरा अध्याय

ज्ञान-वैराग्य सहित भक्ति की स्थापना

नारदजी ने सनकादि से आगे कहा—

ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥१॥

मुनीश्वरों, मेरा विचार वही 'ज्ञानयज्ञ' करने का है जिससे संसार में सर्वत्र भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य की स्थापना हो। आप अब ऐसा उत्तम स्थान बतायें जहाँ मैं वह 'ज्ञानयज्ञ' आरम्भ करूँ। वहाँ आपही भगवान की महत्ता का वर्णन करें। यह कथा कितने दिनों तक सुननी चाहिए? इसकी विधि क्या है? इन सब बातों पर प्रकाश

डालने की कृपा करें। सनकादि ने कहा—हे नारद, सुनो हम तुम्हें उत्तम स्थान बताते हैं। हरिद्वार के समीप आनन्द नामक गङ्गातट है। वह ऋषि, मुनि एवं देवताओं से सुशोभित, बड़ा ही पवित्र, एकान्त और रमणीय है। वहाँ जाने पर मनुष्यों के हृदय में वैर की भावना नहीं उठती। तुम वहीं ज्ञानयज्ञ आरम्भ करो। वहाँ रस से भरी अपूर्व कथा होगी, जिसका शब्द सुनते ही तीनों तरुण होकर वहाँ पहुँच जायेंगे।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक, यह कहकर सनकादि महर्षि नारदजी के साथ गङ्गा तट पर गये। इनके वहाँ पहुँचते ही तीनों लोकों में इसकी चर्चा फैल गयी और चारों ओर से भगवान् के भक्त भृगु, वशिष्ठ, च्यवन, गौतम, परशुराम, विश्वामित्र, व्यास, पराशर वहाँ आ गये एवं गङ्गा-प्रभृति पुण्य नदियाँ, तीर्थ, क्षेत्र, पुण्यवन आदि के अधिष्ठाता देवगण भी वहाँ उपस्थित हो गये। इस प्रकार एक विशाल समारोह वहाँ हो गया। जयशब्द, नमःशब्द तथा शंखध्वनि के साथ सुगन्धित अबीर, गुलाल, खील एवं पुष्पों की वृष्टि होने लगी। विमानों में चढ़े देवगण भी कल्पवृक्ष के पुष्प बरसाने लगे। कथा में रुचि न रखनेवाले विषयासक्त संसारी जीवों को भी भृगु स्वयं प्रेरित कर ले गये। इस प्रकार जब सभी स्थिरचित्त होकर कथा-श्रवणार्थ अपने-अपने आसन पर बैठ गये तब चारों कुमारों में ज्येष्ठ श्रीसनत्कुमार ने भागवत का माहात्म्य कहना आरम्भ किया। वह बोले—

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥२५॥

हे नारद, भागवती कथा का सदा सेवन करना चाहिए, कारण इसके श्रवणमात्र से भगवान् हृदय में आ विराजते हैं। मनुष्य अज्ञान से संसार में तभी तक भ्रमण करता है जब तक यह मङ्गलमयी कथा उसके कानों में नहीं पड़ती। विविध वेदों से भ्रम उत्पन्न करनेवाले नाना शास्त्र एवं अन्यान्य पुराणों के श्रवण से ऐसा अलभ्य लाभ नहीं हो पाता। मुक्ति प्रदान के लिए केवल भागवती कथा ही समर्थ है। गंगा, गया, काशी, प्रयाग, कोई भी इस कथा की तुलना नहीं कर सकते। यदि मनुष्य सद्गति चाहे तो उसे अपने मुख से इस भागवत का एक या आधा श्लोक अवश्य नित्य पढ़ना चाहिए। जो प्रतिदिन सरल लोकभाषा में भागवत का अर्थ सुनाता है उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। मरणकाल में जिसके कानों में भागवत कथा की ध्वनि पड़ जाती है, वह प्राणी भी सीधे वैकुण्ठ चला जाता है। जो मनुष्य सुवर्ण के सिंहासन पर भागवत पुराण रखकर विद्वान् को दान करता है वह भगवान् कृष्ण के साथ 'सायुज्यमुक्ति' पाता है।

आजन्ममात्रमपि येन शठेन किञ्चित्
चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता।
चाण्डालवच्च खरवद् बत तेन नीतं
मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा ॥४२॥

जिस मूर्ख ने जीवन में एक बार भी चित्त लगाकर भागवती कथा का श्रवण नहीं किया उसने चाण्डाल और गधे के समान अपना जीवन व्यर्थ कर डाला और माता का भी जीवन अपने जन्म से कलंकित किया। पृथ्वी के भारभूत ऐसे जीवन्मृतक पापी को स्वर्ग के देवतागण धिक्कारते हैं। यह कथा करोड़ों जन्मों के पुण्यों के उदय से प्राप्त होती है। इसलिए इसके सुनने में दिनों का कोई नियम नहीं है। सर्वदा ही श्रद्धा-भक्ति से इसका श्रवण किया जा सकता है। कलियुग में मनुष्यों की आयु थोड़ी है। विघ्न बहुत हैं। यम, नियम आदि साधन भी कठिन है। इसलिए शुकदेवजी के आदेशानुसार सप्ताह-श्रवण करना चाहिए। जप, तप, योग, समाधि एवं माघ-स्नान का जो फल है वह सप्ताह-श्रवण से ही प्राप्त हो जाता है।

योगाद् गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति।
किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥५२॥

सप्ताह के सामने योग, ध्यान, ज्ञान सबकी गर्जना समाप्त हो जाती है। इसके समक्ष कोई टिक नहीं पाता। सब साधनों को तृणवत् कर सप्ताह निरन्तर गर्जता रहता है। भागवत की ऐसी महिमा सुनकर शौनकजी ने पूछा—हे सूतजी, इस पुराण का इतना महत्त्व क्यों हैं? सूतजी ने कहा हे शौनक, भगवान् श्रीकृष्ण जब पृथ्वी का त्याग कर अपने धाम को जाने लगे तब उद्धव ने कहा—हे भगवन्, आप तो जा रहे हैं, आगे कलियुग आने वाला है, उसमें बड़े दुष्ट, दुराचारी पुरुष पैदा होंगे, जिनके सङ्ग से सत्पुरुषों की बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी। उनकी रक्षा का कोई उपाय तो आप बताते जायँ। इस पर भगवान् अपना दिव्य तेज भागवत में निहित कर स्वयं ही उसमें प्रविष्ट हो गये—

स्वकीयं यद् भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात्।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥६१॥

'तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।' इस कारण यह साक्षात् भगवान् की मूर्ति ही है। इसके श्रवण, पठन और दर्शन से सम्पूर्ण पापराशि भस्म हो जाती है। कलियुग में सबसे प्रधान धर्म 'सप्ताह-श्रवण' ही माना गया है। सूतजी बोले—हे शौनक, जब इस प्रकार सभा में सनकादि महर्षियों ने सप्ताह का महत्त्व वर्णन किया उस समय एक बड़ा आश्चर्य हुआ।

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽविरासीत्।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥६७॥

भक्ति के दोनों पुत्र ज्ञान और वैराग्य तरुण हो गये और भक्ति स्वयं उनके साथ भगवन्नाम-कीर्तन करती सभा में सहसा प्रकट हो गयी। उसे देखकर सभासद आश्चर्यचकित हो गये और परस्पर कहने लगे यह देवी दिव्य रूप धारण कर मनुष्यों के मध्य में कैसे आ गयी। श्रीसनत्कुमार ने कहा—अरे यह देवी तो भागवती कथा के

प्रेमरस से आविर्भूत हुई है। इस पर भक्ति देवी नम्रतापूर्वक कुमारों से बोली—आपने तो कथारस से मुझे पुष्ट कर दिया। आज्ञा कीजिए मैं अब कहाँ निवास करूँ? सनत्कुमार ने कहा—हे देवि, तुम सर्वदा भक्तों के हृदय में निवास करो। तभी से भक्ति भक्तों के हृदय में निवास करने लगी। संसार में वे प्राणी धन्य हैं जिनके हृदय में भक्ति निवास करती है। भगवान् भी भक्तिसूत्र में बँधकर वहीं आ जाते हैं। हे नारद, मैं इस पुराण के महत्त्व का वर्णन कहाँ तक करूँ। इसके कथन श्रवण और मनन से वक्ता और श्रोता दोनों ही कृष्णरूप हो जाते हैं—

यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥७४॥

।। पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्य का तीसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

चौथा अध्याय

सप्ताह-कथा में भगवान् का प्रादुर्भाव, धुन्धुकारी तथा गोकर्ण का उपाख्यान

सूतजी बोले—हे शौनक, भक्तों के हृदय में इस प्रकार अलौकिक भक्ति देखकर. भगवान् सपरिवार दिव्यरूप से सभामण्डप में प्रकट हो गये। भगवान् का दर्शन पाकर सबके सब प्रफुल्लित हो उठे। चारों ओर आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। जय-जयकार की ध्वनि तथा शंखध्वनि से आकाश गूँज उठा। सुगन्धित अबीर, गुलाल एवं पुष्पों की वृष्टि से सभास्थल की शोभा अपूर्व हो गयी। वहाँ बैठे लोगों को देह गेह की भी सुधबुध न रही। देहगेहात्मविस्मृतिः ऐसी तन्मय अवस्था देखकर नारदजी ने कहा—अहो, इस सप्ताह की अद्भुत महिमा मैंने आज देखी। धूर्त, मूर्ख, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग तक सभी पापमुक्त हो गये हैं। चित्तशुद्धि के लिए संसार में इस कथा से उत्तम कोई दूसरा साधन नहीं है। अब आप बतायें कि इस सप्ताह यज्ञ से किन-किन पापियों की शुद्धि होती है?

सनत्कुमार ने कहा—

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥११॥

जो मनुष्य दुष्ट पुरुषों के आचरण में निरत रहकर पाप कर्म करते हैं, कुमार्ग में चलनेवाले, काम-क्रोधरूपी अग्नि से दग्ध, कुटिल तथा कामी हैं वे भी सप्ताह-श्रवण से पवित्र हो जाते हैं। जो सत्य से हीन, माता-पिता को कष्ट देने वाले, कुलकलंकी, आश्रमधर्म से विहीन, दूसरों के उत्कर्ष को सहन न करने वाले तथा हिंसक हैं; वे सभी सप्ताह यज्ञ के द्वारा पवित्र हो जाते हैं।

पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१३॥

जो पाँच प्रकार के महापापों से युक्त हैं, ब्राह्मण के धन से पुष्ट हैं, क्रूर-प्रवृत्तिवाले हैं, पिशाच के समान निर्दयी हैं, छल-कपट से भरे हैं और निरन्तर व्यभिचार ही करते रहते हैं, वे भी सप्ताहयज्ञ से पवित्र हो जाते हैं।

पाँच महापापी निम्नलिखित हैं—

ब्रह्मघ्नश्चैव गोघ्नश्च स्वर्णस्तेयी च मद्यपः।
तत्संसर्गी पञ्चमश्च ह्युग्रपापाः प्रकीर्तिताः॥

ब्रह्मघाती, गोघाती, सुवर्ण चुरानेवाला, मदिरा पीनेवाला तथा उनका सङ्ग करनेवाला—

हे नारद, इस विषय में हम एक प्राचीन इतिहास कहते हैं जिसके श्रवण से मनुष्य पापरहित हो जाता है। इसे ध्यान से सुनो।

तुङ्गभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम्।
यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥१६॥

तुङ्गभद्रा नदी के तट पर एक अत्यन्त रमणीय नगर था। उसमें आत्मदेव नामक एक तेजस्वी ब्राह्मण रहता था; जो श्रौत एवं स्मार्त कर्म में पारङ्गत था। धनी होते हुए भी वह भिक्षुकवृत्ति करता था। उसकी धुन्धुली नाम की पत्नी बड़ी ही कृपण एवं क्रूर स्वभाव की थी। अकारण ही झगड़ा कर वह पुष्टि भी अपनी ही बात की करती थी। ऐसे ही गृहस्थ-जीवन में दोनों का बहुत समय बीत गया किन्तु कोई सन्तान न हुई। बाद में पुत्र के निमित्त नाना प्रकार के दान-अनुष्ठान किये गये, पर कोई फल नहीं हुआ। एक दिन चिन्ता से व्याकुल हो आत्मदेव वन में चला गया। वहाँ मध्याह्न में पानी पीने वह एक तालाब पर गया। जल पीकर वह दुखिया वहीं बैठ गया। दो घड़ी बाद एक संन्यासी वहाँ आये। वह उनके चरणों पर गिर कर रोने लगा। संन्यासी ने कहा—अरे ब्राह्मण, रोते क्यों हो? कौनसी चिन्ता है? अपने दुःख का कुछ कारण तो कहो। ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैं अपना दुःख क्या कहूँ। मैं बड़ा अभागा हूँ। मेरे पितर आँसू को पीकर रहते हैं। मेरी दी हुई वस्तु देवता या ब्राह्मण भी ग्रहण नहीं करते। संतान न होने से मैं अत्यन्त दुःखित हूँ। यहाँ प्राण त्यागने आया हूँ। पुत्र के बिना जीवन या कुल सब व्यर्थ है। अपना दुःख मैं कहाँ तक बताऊँ। मैंने जो गौ पाली, वह तक वन्ध्या हो गयी। वृक्ष लगाया, वह भी सूख गया। कोई मुझे फल दे जाता है तो वह भी मेरे हाथों में आते ही सूख जाता है। ऐसे भाग्यहीन निर्वंशी के जीने से क्या लाभ—

महाराज, आप महादयावान् हैं। दयावानों की विभूतियाँ परोपकारार्थ ही होती हैं—

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारेण न चन्दनेन॥

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
अम्भोधरो वर्षति नात्महेतोः परोपकाराय सतां विभूतयः॥
(कौशिकी-संहिता २-४४, ३-४४)

हाथ दान से विभूषित होता है, कंकण से नहीं, कानों की शोभा कथा श्रवण से होती है कुण्डल से नहीं एवं दयावानों का शरीर परोपकार से सुशोभित होता है चन्दन से नहीं।

नदियाँ अपना जल स्वयं नहीं पीतीं, वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते, मेघ अपने लिए जल नहीं बरसाते, सन्त महात्माओं की विभूतियाँ परोपकार के लिए होती है।

और भी कहा है—

यो नात्मना न च परेण च बन्धुवर्गे।
दीने दयां न कुरुते न च भृत्यवर्गे॥
किं तस्य जीवितफलं हि मनुष्यलोके।
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते॥

जो अपने से दूसरे के द्वारा अपने परिवार पर, दीनों पर, अपने भृत्यों पर दया नहीं करता उसके जीवन से क्या लाभ यों तो कौआ भी जीता है और अपना पेट भरता है। काक दृष्टान्त से यह सूचित किया गया कि जो दया या उपकार नहीं करता वह दूसरे जन्म में कौआ होता है।

यह कहकर वह ब्राह्मण जोर-जोर से चिल्लाकर रोने लगा। उसे दुःखित देखकर संन्यासी को दया आ गयी। उन्होंने उसके मस्तक में लिखित ब्रह्माक्षर बाँचे और उससे कहा—

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः।
विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम्॥३४॥

हे ब्राह्मण, पुत्र का यह मोह छोड़ दे। कर्म की गति बड़ी बलवती है। उसे कोई टाल नहीं सकता। विवेक का आश्रय लेकर संसारवासना त्याग दे। मैंने तुम्हारा प्रारब्ध देख लिया है। उसमें सात जन्म तक तेरे पुत्र होने का योग नहीं है।

सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च॥३५॥

याद रखो, सन्तान से तुम्हें सुख न होगा। राजा सगर एवं अंग की तरह दुःख ही भोगना पड़ेगा। इसलिए पुत्र का आग्रह छोड़ दो। संन्यास में सर्वथा सुख ही सुख है। ब्राह्मण ने कहा—दीनदयालु, इस सूखे विवेक से मेरा क्या होगा? जैसे भी हों, आप मुझे पुत्रप्राप्ति का वर दें। अन्यथा मैं अभी आपके ही चरणों में प्राण त्याग दूँगा।

पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि।
गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः॥३८॥

संसार में पुत्र-पौत्र से परिपूर्ण गृहस्थाश्रम ही सरस है। इन सबसे रहित संन्यास अत्यन्त सूखा है। मैं उसे लेकर क्या करूँगा? ब्राह्मण का ऐसा आग्रह देखकर संन्यासी ने आम का एक फल उसके हाथ में दिया और कहा—जाओ अपनी पत्नी को यह फल खिला दो। उससे तुम्हारे अत्यन्त सुन्दर एक पुत्र होगा। यह कहकर संन्यासी चले गये। ब्राह्मण भी लौटकर घर आया। पत्नी को खाने के लिए वह फल देकर स्वयं किसी कार्य से बाहर चला गया। इधर उसकी कुटिल पत्नी ने अपनी सखी से रोकर कहा—हे सखि, अब मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। इस फल को मैं नहीं खाऊँगी। इससे गर्भ होकर मेरा पेट बढ़ जायेगा। भूख मारी जायेगी। घर का कामकाज भी न कर पाऊँगी। उठना बैठना भी कठिन हो जायेगा। कहीं गर्भ टेढ़ा हो गया तो मैं मर ही जाऊँगी। मुझे अस्वस्थ देखकर कहीं मेरी ननद ही सब सामान उठा न ले जाय। पुत्र का लालन-पालन भी एक बड़ी समस्या है। मेरी समझ में तो बन्ध्या या विधवा नारियाँ सर्वथा सुखी हैं। ऐसे ही अनेक कुतर्क कर उसने वह फल नहीं खाया। जब पति ने आकर उससे पूछा कि तुमने फल-खाया तब उसने कह दिया हाँ खा लिया—

पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ।।५०।।

एक दिन दैवात् उसके घर उसकी छोटी बहन आयी। उसने सारा वृत्तान्त अपनी बहन को कह सुनाया। वह बोली तू चिन्ता न कर। मेरे गर्भ है। मैं अपने बच्चे को तुझे दे दूँगी। तबतक गर्भवती बनकर गुप्तरूप से घर में बैठी रह। मेरे पतिदेव को अपने स्वामी से धन दिला देना। वे बच्चा सौंप देने में आपत्ति न करेंगे। मैं प्रचारित करा दूँगी कि मेरा छः मास का बच्चा मर गया। प्रतिदिन आकर मैं तेरे बच्चे का पालन-पोषण करती रहूँगी। तू परीक्षार्थ यह फल गौ को खिला दे। स्त्री-स्वभाव से धुन्धुली ने वैसा ही किया। समय आने पर उसकी बहन को बालक हुआ और वह चुपचाप आकर एकान्त में उसे अपना बच्चा दे गयी। पुत्र का जन्म सुनते ही आत्मदेव आनन्द-विभोर हो उठे। दरवाजे पर बाजों के साथ ही माङ्गलिक गान भी होने लगे। पत्नी ने स्वामी से कहा—मेरे स्तनों में दूध नहीं है। ऊपर के दूध से इसका पालन कठिन होगा। इसलिए आप मेरी बहन को बुला लें। वह बच्चे का पोषण कर देगी। सुना है, उसका बच्चा मर गया है। पति ने ऐसा ही किया। उधर तीन मास बाद गौके भी बच्चा हुआ। वह बालक इतना सुन्दर था कि उसे देखने दूर-दूर से लोग आने लगे। उसके कान गौके समान होने से पिता ने उसका नाम गोकर्ण रक्खा। आगे चलकर वह बड़ा पण्डित एवं ज्ञानी हुआ। इधर धुन्धुली का पुत्र धुन्धुकारी हुआ। वह महाक्रूर प्रकृति का, दुराचारी एवं वेश्यागामी निकला। शौच-आचार से हीन वह दीन और अन्धे प्राणियों को सताता था, दूसरों का घर जला डालता था। कुत्ते पालने वाला तथा चोर वह निपट चांडाल सिद्ध हुआ। खेल में बालकों को ले जाकर कुएँ में डाल देता। उसने वेश्याओं के कुसङ्ग में पड़कर पिता का सारा धन नष्ट कर डाला। एक दिन पिता को पीटकर वह उसके सोने-

चाँदी के सारे बर्तन ले गया। पिता को इससे बड़ा दुःख हुआ। वह रो-रोकर कहने लगे कि अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, मेरा दुःख कौनं दूर करेगा? पुत्र न होना अच्छा है, किन्तु कुपुत्र का होना अच्छा नहीं। उसी समय गोकर्ण ने आकर कहा—पिताजी, आप दुःख न करें। यह संसार ही असार है, यहाँ कौन किसका पुत्र और किसका धन है। इन वस्तुओं में आसक्ति करनेवाला सर्वदा जलता ही रहता है। इसलिए आप इन सबका मोह त्यागकर वन-गमन करें और वहाँ स्वस्थ चित्त से भगवान् की आराधना करें। पिताजी—

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥७९॥

शरीर में हड्डी, मांस और रुधिर ही तो भरा है। आप इसमें अहंबुद्धि न करें। स्त्री-पुत्रादि की ममता त्यागकर जगत् की क्षणभंगुरता पर ध्यान दें और वैराग्य धारण कर भगवान् की भक्ति में लग जायँ। इससे आपका सम्पूर्ण दुःख निवृत्त हो जायेगा।

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥८०॥

काम्य धर्मों का त्याग कर निष्काम धर्म का आचरण करें, सत्पुरुषों का संग करें, विषय वासना को हृदय से हटा दें एवं दूसरों की स्तुति-निन्दा में न पड़कर भगवत्कथारूपी अमृत का सदा पान करें।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक, इस प्रकार पुत्र के उपदेश से आत्मदेव वन में चले गये और वहाँ प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा एवं भागवत के दशमस्कन्ध के पाठ से भगवत् स्वरूप को प्राप्त हो गये—

श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥८१॥

।। पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यं का चौथा अध्याय समाप्त ।।

❖

पाँचवाँ अध्याय

प्रेत-योनि से धुन्धकारी की मुक्ति

सूतजी बोले—हे शौनक,

पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम्।
क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत्॥१॥

पिता के मरने पर एक दिन धुन्धुकारी ने अपनी माता को भी खूब पीटा और कहा—जल्द बता धन कहाँ गड़ा है, नहीं तो लातों के प्रहार से तुझे मार ही डालूँगा। पुत्र के भय से व्याकुल धुन्धुली उसी रात कुएँ में गिरकर मर गयी। गोकर्ण पहले ही तीर्थ-यात्रा करने चले गये थे। उनका कोई शत्रु या मित्र न था। घर में धुन्धुकारी अकेला रह गया था। उसने वहाँ पाँच वेश्याएँ रख लीं और चोरी के धन से उनका पोषण कर कुकर्मों में निरत रहने लगा। एक दिन उन वेश्याओं ने उससे वस्त्र-आभूषण लाने का आग्रह किया। वह कामान्ध कहीं से बहुत से भूषण-वस्त्र चोरी कर ले भी आया। सोने-चाँदी के बहुमूल्य सामान को देखकर रात्रि में वेश्याओं ने विचार किया कि वह तो प्रतिदिन ही चोरी करता है, एक दिन राजा इसे पकड़कर मार ही देगा और साथ में हमें भी मारकर सारा धन छीन लेगा। इसलिए हम स्वयं ही क्यों न इसे मारकर धन लेकर कहीं अन्यत्र चली जायँ। ऐसा निश्चयकर एक रात उन सबने सोते समय उसके हाथ पैर बाँधकर गले में फाँसी लगा दी। ऐसा करने पर भी जब वह नहीं मरा तब उन दुष्टाओं ने जलते अंगारे उसके मुख में ठूँस दिये। अग्नि की ज्वाला से छटपटाकर वह मर गया। उसके मरते ही उन साहसी वेश्याओं ने वहीं गड्ढा खोदकर उसे गाड़ दिया—

तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः।
अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः॥११॥
तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः॥१२॥

इस रहस्य का किसी को भी पता न चला। जब लोग धुन्धुकारी का हाल पूछते तो वेश्याएँ कह देतीं कि वह धन के लोभ में कहीं दूर चले गये हैं। आशा है, एक वर्ष में आ जायेंगे। स्त्रियों का हृदय बड़ा कठोर होता है। इसलिए उनका विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। पर यह बात पतिव्रताओं पर लागू नहीं होती। बाद में वे वेश्यायें सब धन लेकर एक दिन कहीं अन्यत्र चली गयीं और धुन्धुकारी अपने कुकर्मों से बड़ा भयंकर प्रेत हो गया। वह वायुरूप धारणकर, भूख-प्यास से व्याकुल, इधर-उधर भटकता चिल्लाता फिरता था। गोकर्ण ने कुछ काल बाद लोगों से उसका मरना सुनकर उसके निमित्त विधिपूर्वक गया-श्राद्ध कर दिया। वे जिस किसी तीर्थं में जाते, उसके निमित्त श्राद्ध किया करते थे। एक दिन तीर्थाटन करते-करते वे अपने घर आये। रात्रि में आँगन में सो रहे थे कि आधी रात के समय धुन्धुकारी भयंकर रूप धारणकर उनके पास

आया। वह कभी भेड़, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी राजा, कभी अग्नि बनकर और फिर कभी साधारण पुरुष के रूप में उनके पास आ खड़ा होता—

सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥२२॥

गोकर्ण ने धैर्यपूर्वक उससे पूछा—अरे, तू कौन है? प्रेत है, पिशाच है अथवा राक्षस है? कैसे ऐसी दुर्गति को प्राप्त हो गया है? यह पूछने पर धुन्धुकारी भयंकर ध्वनि कर उच्च स्वर से रोने लगा, किन्तु स्पष्ट कुछ बोल न सका। उसने केवल संकेत किया। तब गोकर्ण ने मन्त्र पढ़कर उसपर जल का छींटा मारा, जिससे उसका कुछ पाप नष्ट हुआ और उसे बोलने की शक्ति प्राप्त हुई। उसने कहा—

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ।
स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥२७॥

मैं तुम्हारा ही भाई धुन्धुकारी हूँ। मेरे कुकर्मों की संख्या नहीं। मैंने स्वयं अपने ब्राह्मणत्व का नाश कर डाला। वेश्याओं ने बुरी तरह मेरी हत्या कर मुझे गड्ढे में गाड़ दिया, जिससे में प्रेत हो गया हूँ। केवल वायु पीकर रहता हूँ। मेरे दयालु भैया, मैं बहुत प्यासा हूँ मुझे जल पिलाओ। मेरा मुख सुई के समान है। मैं स्वयं जल नहीं पी सकता। तुम्हारे द्वारा दिया गया जल ही मुझे मिल सकेगा—त्वया दत्तं लभे जलम्। मेरा उद्धार करो, मैं बड़े कष्ट में हूँ। यह सुनकर गोकर्ण के नेत्रों में अश्रु छलक आये। उन्होंने कहा—भैया! मैंने तो तुम्हारे निमित्त गया में विधिपूर्वक पिण्डदान भी कर दिया। फिर तुम मुक्त क्यों नहीं हुए? यह तो बड़ा आश्चर्य है। प्रेत ने कहा—भैया

गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥३३॥

गया में एक क्या सौ श्राद्ध करने पर भी मेरी मुक्ति न होगी। आप कोई दूसरा उपाय सोचें। यह सुनकर गोकर्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—भैया, तब तो तुम्हें इस योनि से मुक्त करना बड़ा ही कठिन है—

अच्छा, इस समय तुम अपने स्थान पर चले जाओ। मैं विचारकर तुम्हारी मुक्ति का कोई दूसरा उपाय करूँगा। गोकर्ण के कथनानुसार प्रेत अपने स्थान पर चला गया। इधर गोकर्ण रात्रिभर चिन्तामग्न होकर उसकी मुक्ति का उपाय सोचते रहे, किन्तु उन्हें कोई उपाय सूझा नहीं। तब गोकर्ण ने बड़े-बड़े विद्वानों से इसके बारे में परामर्श किया, किन्तु कोई भी कुछ उपाय बता न सका। इस पर सबकी सम्मति से गोकर्ण ने मन्त्र द्वारा सूर्य का स्तम्भनकर उन्हीं से मुक्ति का उपाय पूछा। सूर्य ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु ॥४१॥

भागवत के सप्ताह-वाचन से इसकी मुक्ति होगी। यह सुनकर गोकर्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सप्ताह बाँचने का निश्चय किया। इस निश्चय को सुनकर देश और ग्राम से बहुत बड़ी संख्या में जनता आने लगी। प्रेत भी अपने लिए स्थान खोजता हुआ सात ग्रन्थिवाले एक बाँस में आ घुसा। गोकर्ण ने प्रथम स्कन्ध से कथा आरम्भ की। सायंकाल जब कथा समाप्त हुई तब बाँस की एक ग्रन्थि फट गई। दूसरे दिन दूसरी ग्रन्थि, तीसरे

दिन तीसरी ग्रन्थि, इसी प्रकार सात दिनों में बाँस की सातों ग्रन्थियाँ फट गई और धुन्धुकारी प्रेतयोनि से मुक्त होकर पीताम्बर पहने मुकुट और कुण्डलों से सुशोभित दिव्य रूप धारण कर प्रकट हो गया। गोकर्ण को सप्रेम प्रणाम कर वह बोला—भैया, आपने मेरा उद्धार कर दिया। प्रेतबाधा दूर करनेवाली भागवत की यह कथा धन्य है—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ॥५३॥

जिसके प्रभाव से मैं आज प्रेतयोनि से मुक्त हो गया हूँ। सप्ताह भी धन्य है, जिससे भगवद्धाम वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। जब मनुष्य सप्ताह सुनने का संकल्प करता है, तब उसके पाप काँपने लगते हैं और कहते हैं यह कथा तो हमारा प्रलय ही कर डालेगी, अब हम भागकर कहाँ जायँ। पूर्व जन्म के पुण्यों से इस भारतवर्ष में जन्म पाकर भी जिसने सप्ताह की कथा का श्रवण नहीं किया, उसका जन्म देवताओं ने व्यर्थ बताया है। नाना प्रकार के सुन्दर सुस्वादु पकवानों के भोजन से जिस शरीर को परिपुष्ट किया जाता है, वह शरीर भी नश्वर है। इस अस्थिर शरीर से जो मनुष्य स्थिर धर्मादिका उपार्जन नहीं करता, वह निरा पशु ही है।

जिस भागवत की कथा से सूखे बाँस की ग्रन्थियाँ फट गयी, उस कथा में दत्तचित्त होकर बैठे हुए मनुष्यों की हृदयग्रन्थि (वासना) नष्ट हो जाय, तो आश्चर्य ही क्या है। इस कथा के श्रवण से भगवान् शीघ्र ही हृदय में आ विराजते हैं और श्रोता के समस्त संशय तथा पाप-ताप नष्ट कर उसे मुक्त कर देते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत का माहात्म्य कहते हुए सनत्कुमारजी ने नारदजी से कहा—हे मुने! दिव्यरूपधारी धुन्धुकारी के ऐसा कहने पर उसी क्षण आकाश से एक दिव्य विमान उतरा, उसमें भगवान् के पार्षद विराजमान थे, उन्होंने सबके देखते-देखते धुन्धुकारी को विमान में बैठा लिया। गोकर्ण ने भगवान् के पार्षदों से पूछा—हे महानुभावों, यहाँ तो कथा के बहुत से श्रोता बैठे हैं, इनके लिए विमान क्यों नहीं आये? पार्षदों ने कहा—महाराज, प्रेत ने सात दिन तक उपवास कर स्थिर चित्त से सप्ताह का श्रवण एवं मनन किया है। दूसरों ने ऐसा नहीं किया, इसी कारण फल में यह भेद हुआ। दूसरी बार जब पुनः स्थिरचित्त हो भागवती कथा का श्रवण कर उसका मनन करेंगे, तब ये भी अवश्य मुक्त हो जायेंगे। इतना कहकर भगवान् के पार्षद धुन्धुकारी को गोलोक ले गये। फिर गोकर्ण ने श्रावण मास में पुनः सप्ताह की कथा आरम्भ की, जिसमें सबने स्थिर चित्त से कथा का श्रवण एवं मनन किया। कथा समाप्त होते ही सैकड़ों विमानों सहित भगवान् विष्णु स्वयं प्रकट हो गये। चारों ओर जय-जयकार और नमो नमः की ध्वनियाँ गूँजने लगीं भगवान् ने भी हर्ष से अपना शंख बजाया और गोकर्ण को हृदय से लगाकर अपना ही स्वरूप दे दिया। अन्य सब श्रोता भी दिव्य रूप धारण कर पृथक्-पृथक् विमानों द्वारा भगवान् के लोक को चले गये। पश्चात् गोकर्ण के साथ भगवान् स्वयं गोलोक पधारे। यह सारा प्रकरण सुनाकर सनत्कुमार ने नारद से कहा—हे मुने, सप्ताह की कथा के श्रवण से मनुष्यों को जो

---

१. इन्द्री नृपमात्रमपि। वाचस्पत्याभिधानम्।

अनन्त फल प्राप्त होता है, उसका महत्व मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। जिन्होंने एकाग्रचित्त होकर गोकर्ण द्वारा कही जा रही सप्ताह कथा का एक पद भी सुन लिया था, उसको फिर मातृगर्भवास की यातनाएँ नहीं भोगनी पड़तीं।

वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसञ्चितैः ।
योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति याम् ॥८८॥

वायु-जल पीकर, पत्ते खाकर, कठोर तपस्याओं से शरीर को सुखाकर और योग द्वारा भी जो गति नहीं मिलती, वह सप्ताह-कथा-श्रवण से प्राप्त हो जाती है।

मुनीश्वर शाण्डिल्य इस पुण्यप्रद इतिहास को चित्रकूट पर पढ़ते हुए परमानन्द में निमग्न रहा करते हैं। एक बार भी जो इस परम पवित्र इतिहास का रसास्वाद कर लेता है। उसकी पापराशि भस्म हो जाती है। पार्वण श्राद्ध में इसके पाठ से पितरों की अनन्त तृप्ति होती है। प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करने से मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता है—

नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥९०॥

॥ पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्य का पाँचवा अध्याय समाप्त ॥

❖

छठा अध्याय

सप्ताह-कथा-श्रवण की विधि

श्री सनत्कुमार ने आगे कहा—हे नारद!

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ।
सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥१॥

अब मैं तुम्हें सप्ताह-श्रवण की विधि बताता हूँ। इसका ध्यानपूर्वक श्रवण करो। यदि स्वतन्त्र रूप से सप्ताह कराने का सामर्थ्य न हो, तो आठ सहायक मिलकर इस शुभ कार्य को करें। सर्वप्रथम ज्योतिषी से मुहूर्त पूछें। इसमें स्वयं व्यासजी का यह मत है—

भौमार्किवर्जिता वारा भानि ध्रुवमृदूनि च ।
शुभयोगे तिथौ लग्ने कथारम्भः प्रशस्यते ॥
नित्यायां च कथायां च पुराणानां मुनीश्वर ।
द्वादशीं वर्जयेत् प्राज्ञः सूत-सूतकसम्भवात् ॥
सप्ताहे न निषेधोऽस्ति प्राहुरेवं पुराविदः ।

(पद्मपुराण)

मलमासं च शुक्रास्तं तथास्तं गुरुचन्द्रयोः ।
गुर्वादित्यं क्षयतिथिं सर्वथा परिवर्जयेत् ॥

(कौ. संहिता ५/८)

सप्ताह के लिए चैत्र और पौष को छोड़कर सभी मास शुभ बताये गये हैं। मलमास, शुक्रास्त एवं गुरु-चन्द्र के अस्त में, गुर्वादित्य (खरमास-मीन और धनु की संक्रान्ति अर्थात् चैत्र और पौष) में, क्षय तिथि में सप्ताह करने का विधान नहीं है। वारों में मंगल तथा शनि त्याज्य है। नित्य कथा में द्वादशी तिथि को कथा सुनाना वर्जित है, क्योंकि सूतजी के देहावसान के कारण उस दिन सूतक मनाया जाता है। सप्ताह-कथा में द्वादशी तिथि वर्जित नहीं है, ऐसा व्यासजी का कथन है। नान्दीश्राद्ध कर मण्डल का निर्माण करायें। चारों दिशाओं में श्रीफल सहित कलशों की स्थापना करें। गणेश, नवग्रह, षोडश, मातृका एवं पौराणिक आचार्यों का प्रतिदिन पूजन करें। मण्डल में शालग्रामशिला अवश्य रखें। एक पल सोने की विष्णु-प्रतिमा बनवाकर उसे प्रधान कलश पर स्थापित करें। पाँच, सात अथवा तीन ब्राह्मण कथा के आरम्भ से अन्त तक गणेश, गायत्री एवं द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करें। जिन मासों में जिन खाद्य-वस्तुओं का त्याग बताया गया है, उनका सप्ताह में भी सेवन न करें। निमन्त्रण-पत्र भेजकर देश-देश से अपने कुटुम्बियों को बुलायें। यहाँ सात दिनों तक ज्ञानी महात्माओं का समाज एकत्र रहेगा। उसमें अपूर्व रसमयी श्रीमद्भागवत की कथा होगी। आप इस अमृतरस का पान करने के लिए सपरिवार अवश्य पधारें। यदि अधिक अवकाश न हो तो भी कृपा कर एक दिन के लिए तो अवश्य पधारें, क्योंकि ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता। यहाँ सप्ताह-कथा का एक-एक क्षण दुर्लभ है।

आगन्तुकों के लिए स्थान, भोजन आदि का समुचित प्रबन्ध करें। तीर्थ में, वन में अथवा घर में, जहाँ भी विशाल स्थान हो, वहीं कथा का मण्डप बनायें। वक्ता के लिए एक सुन्दर सिंहासन की व्यवस्था करें, जो गद्दा-तकिया आदि से सुसज्जित हो, यदि वक्ता उत्तरमुख बैठे तो, प्रधान श्रोता यजमान पूर्व मुख बैठे। यदि वक्ता पूर्वमुख हो, तो श्रोता उत्तरमुख बैठे। वक्ता के सामने सात पंक्तियाँ रहें। पहली पंक्ति सत्यलोक बतायी गयी है, जिसमें संन्यासी बैठें, दूसरी पंक्ति तपोलोक है, जिसमें वानप्रस्थ बैठें, तीसरी पंक्ति को जनलोक कहा है, जिसमें ब्रह्मचारी बैठें, चौथी पंक्ति महर्लोक है, जिसमें ब्राह्मण, पाँचवीं पंक्ति स्वर्गलोक है, जिसमें क्षत्रिय, छठी पंक्ति में भुवर्लोक जिसमें वैश्य और सातवीं पंक्ति भूलोक है, जिसमें शूद्र बैठकर कथा का श्रवण करें। स्त्रियाँ बायीं तरफ बैठें और कथा के समय आनेवाले श्रोता दक्षिण की ओर बैठें।

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ॥१६॥

इसका तात्पर्य पूर्वाचार्यों ने यही बताया है। वक्ता के ऊर्ध्व भाग में नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि उसका निषेध है।

इस प्रसंग में एक छोटी-सी कथा है। महाभारत युद्ध के आरम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण जब अर्जुन को गीता का उपदेश दे रहे थे, तब हनुमान् जी ने ध्वजा पर बैठे-बैठे गीता का श्रवण किया। गीता की समाप्ति पर अर्जुन की तरह हनुमान् जी ने भी भगवान् का पूजन कर उनसे कहा—भगवन्, मैं भी आपका शिष्य हूँ, कारण मैंने

ध्वजा पर बैठे-बैठे ही आपसे गीता सुनी है। इसपर भगवान् ने कहा—यह तो तुमने बहुत अनुचित किया। श्रोता का यह धर्म नहीं कि वह वक्ता से ऊपर बैठकर कथा सुने। इसलिए तुम पिशाच हो जाओ। इस पर जब हनुमान जी ने प्रार्थना कर शापनिवृत्ति का उपाय पूछा तब भगवान् ने गीता पर भाष्य करने को कहा। तदनुसार हनुमान् जी ने गीता पर भाष्य किया, वह पैशाचभाष्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार वे शापमुक्त हो सके थे। इसलिए कथा में वक्ता के बराबर या ऊपर आसन पर कभी न बैठें—

वक्त्रा समं न चैवोच्चं श्रोतृणामासनं वरम्।
समासनात्पुण्यहानिरुच्चाच्च निरयं व्रजेत्॥
(कौ.सं. ६/८७)

वक्ता को सप्ताह से पहले ही क्षौर करा लेना चाहिए। मध्य में क्षौर कराना वर्जित है। प्रातःकाल नियमानुसार भागवत् का मूल-पारायण और मध्यान्होत्तर कथा-प्रवचन करना चाहिए। सप्ताह में अर्थ का संकोच भले ही हो, पर कोई कथा छोड़नी नहीं चाहिए। मध्याह्न में दो घड़ी विश्राम करें। यह ध्यान रहे कि कक्षा में अप्रासङ्गिक बातें न आ जायें। श्रोताजन सात दिन व्रत धारण कर कथा-श्रवण करें। यदि रह सकें तो दुग्ध या फल का ही सेवन कर कथा सुनें। यदि इससे कथा में विघ्न की सम्भावना हो तो दैनिक कथा की समाप्ति पर एक बार पत्तल पर हविष्यात्र भोजन करें। यह उत्तम पक्ष बताया गया है। ब्रह्मचर्य से रहें। भूमि पर शयन करें। दाल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित, वासी अन्न एवं निषिद्ध शाकों का सर्वथा त्याग करें। कामक्रोधादि से बचे रहें। किसी की निन्दा न करें। रजस्वला, म्लेच्छ, नास्तिक, पतित आदि पुरुषों से वार्तालाप न करें। दरिद्र क्षयरोगी, अभागा, सन्तानहीन, पापी तथा मोक्षाभिलाषी पुरुष इस कथा को आवश्य सुनें।

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका।
स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः॥५२॥

जिस स्त्री को मासिक धर्म न होता हो, जिसे एक बार ही प्रसव हुआ हो, जिसको कभी प्रसव न हुआ हो, जिसके बच्चे मर जाते हों, जिसका गर्भ गिर जाता हो, ऐसी स्त्रियों को प्रयत्नपूर्वक इस कथा का श्रवण करना चाहिए। इस कथा के श्रवण से ये सारे दोष नष्ट हो जाते हैं। कथा के प्रारम्भ तथा अन्त में श्रीमद्भागवत की आरती उतारें। विवाह के तुल्य महोत्सव मनावें, वैष्णव के मुख से ही इस कथा का श्रवण करें—

अवैष्णवमुखाद् गाथा न श्रोतव्या कदाचन।
शुकशास्त्रं विशेषेण न श्रोतव्यमवैष्णवात्॥
(कौ.सं. ६/१९)

जो वैष्णव नहीं, उसके मुख से यह कथा कदापि नहीं सुननी चाहिए। भागवती कथा तो विशेष रूप से वैष्णव के मुख से ही सुननी चाहिए। पूर्वाचार्यों ने वैष्णव शब्द का अर्थ ब्राह्मण बताया है—

वैष्णवोऽत्र स विज्ञेयो यो विष्णोर्मुखमुच्यते।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमिति श्रुतेर्ब्राह्मण एव सः॥

(कौ.सं. ६/२०)

अर्थात् ब्राह्मणेतर से इसका कभी श्रवण न करें। गुरु भी ब्राह्मण को ही बनावें, अन्य जाति को नहीं। अन्यथा ब्राह्मण भी शूद्र हो जाता है—

विप्रो विप्रेतरगुरुरविप्रो जायते ध्रुवम्।
न च विप्रेषु पूजार्हस्तस्माद् विप्रं गुरुं चरेत्॥

(कौ.सं. ६/२७)

'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्' के अनुसार स्त्रियाँ पति से अतिरिक्त किसी को गुरु न बनावें। विधवा स्त्रियाँ भी पति का चित्र सामने रखकर गुरुबुद्धि से उसकी पूजा करें। अन्य किसी को गुरु न बनावें, अन्यथा उनका परलोक बिगड़ जाता है।

लेटकर कथा सुनने वाले अजगर की योनि तथा कथावाचक व्यासजी को बिना प्रणाम किये कथा सुननेवाले वृक्ष की योनि को प्राप्त होते हैं—

शयानाः परिश्रृण्वन्तो भवन्त्यजगरा जनाः।
असंप्रणम्य श्रृण्वन्तो वृक्षत्वं यान्ति मानवाः॥

(कौ.सं. ६/८८)

किन्तु यह नियम रोगी पर लागू नहीं होता। वक्ता के कथास्थल पर पहुँचने पर सबको उनका अभ्युत्थान करना चाहिए। श्रोतागण कथा के मध्य में किसी प्रकार का सन्देह होने पर वक्ता से प्रश्न न करें। जो कुछ भी प्रष्टव्य हो कथा के अन्त में विनयपूर्वक पूछें। अन्यथा कथारसभंग होने के साथ-साथ अनवसर पर पूछने वाले पर सरस्वती देवी कुपित होती हैं, जिससे वह जन्मान्तर में गूँगा होता है। तदनन्तर तीन जन्मों तक मूर्ख रहकर अन्त में कौए की योनि प्राप्त करता है।

व्यासासन पर आसीन आचार्य साक्षात् व्यासरूप माने गये हैं। वह ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, पिता, पितामह तथा गुरु से भी पूजनीय होते हैं, इसलिए वह किसी को प्रणाम न करें, न मुख से अमंगल शब्द का उच्चारण करें और न किसी का अभ्युत्थान ही करें, ऐसा करने से उनका धर्म नष्ट नहीं होता।

ब्रह्माजी ने ब्राह्मण में ही आचार्यत्व की स्थापना की है, अन्य वर्णों में नहीं। तपश्चर्या आदि के द्वारा भी अन्य वर्ण ब्राह्मण नहीं हो सकते। केवल चिह्नमात्र धारण करने से जाति की निवृत्ति अथवा प्राप्ति नहीं हो सकती। नापित यज्ञोपवीत आदि धारण कर लेने से कदापि ब्राह्मण नहीं हो सकता—

न नापितो ब्राह्मणतां याति सूत्रादिधारणात्।

(कौ.सं. २/३६)

कलियुग में ब्राह्मणत्व जन्म से ही प्राप्त होता है, तपस्या आदि से नहीं—

कलौ ब्राह्मणता वीर्यात्तपश्चर्यादिना नहि।

(कौ.सं. २/३७)

जो मोह से, स्नेह से अथवा हठ से अग्रभोजी ब्राह्मण को उच्छिष्ट भोजन कराता है, वह मूढ़ लालाभक्ष नामक नरक में गिरता है।

जो स्वयं हीनवर्ण होकर उत्तमवर्ण ब्राह्मण को शिष्य बनाने की कुचेष्टा करता है, वह प्रलयपर्यन्त मल-भक्षण करता रहता है और क्रम से शूकर, गर्दभ आदि पापयोनियाँ भोगकर चाण्डाल योनि को प्राप्त करता है।

'नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यात्' के अनुसार शीशे या चीनी-मिट्टी के बर्तनों में जो खाता है या खिलाता है, वह उच्छिष्ट ही खाता और खिलाता है। यह सदाचार के विरुद्ध होने से त्याज्य है। उच्छिष्टभोजी पुरुष कुत्ते की योनि प्राप्त करता है। **'उच्छिष्टभोजिनः श्वानाः।'**

श्रोता जो कुछ भी आचार्य को अर्पण करता है, उसका कभी क्षय नहीं होता, वह अक्षय हो जाता है। उसके स्वीकार से वक्ता प्रतिग्रही भी नहीं होता। श्रीमद्भावत के एक-एक श्लोक के श्रवण का निष्क्रय रत्नकोटि भी नहीं हो सकती। जिस आचार्य ने श्रद्धा से सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत की कथासुधा का पान कराया, वह श्रोता द्वारा समर्पित यत्किञ्चित् भेंट के स्वीकार से प्रतिग्रही कदापि नहीं हो सकता—

श्लोकैकश्रवणे यस्य रत्नकोटिर्न निष्क्रयः।
सर्वस्य तस्य यो वक्ता प्रतिग्राही कथं हि सः॥

(कौ.सं. ६/९५)

यदि शक्ति हो तो तीन पल (११२ माशे) का स्वर्णसिंहासन बनाकर उस पर श्रीमद्भागवत की पुस्तक रखकर आचार्य को अर्पण करें। ऐसा करने से मनुष्य सर्वपापरहित होकर संसारबन्धन से मुक्त हो जाता है। हे नारद, इस विधि से सप्ताह-कथा सुनने पर अवश्य अक्षय फल की प्राप्ति होती है। सप्ताह के अन्त में उद्यापन करने की विधि है। अकिञ्चन भक्तों के लिए उद्यापन आवश्यक नहीं है। वे कथा-श्रवण से ही कृतकृत्य हो जाते हैं। सभी श्रोतागण कथा-समाप्ति पर आचार्य एवं भागवत का आभूषण, वस्त्र, द्रव्य आदि से यथाशक्ति पूजन करें। ऐसे अवसरों पर शक्ति रहते कार्पण्य शास्त्रों द्वारा वर्जित कहा गया है। पूजा के पश्चात् प्रसाद और तुलसीदल ग्रहण कर घर जायँ। प्रसाद का अनादर न करें। दैनिक कथा के अन्त में आरती कर मृदङ्ग-तालवादनपूर्वक कीर्तन करें। कोई भी याचक आ जाय, तो उसे विमुख न करें और न उससे कटु वचन ही बोलें। सप्ताह समाप्त होने पर दूसरे दिन गीता का पाठकर उसका अर्थ सुनावें। फिर, दशमस्कन्ध के प्रतिश्लोक से पायस आदि द्वारा हवन करें।

कथान्ते हवनं कुर्याद् गायत्र्या त्वयुतं बुधैः।
न्यूनत्वपरिहारार्थं पठेन्नामसहस्रकम्॥

(कौ.सं. ६/६४)

अथवा दस हजार गायत्री मन्त्र से आहुति दें या अठारह सौ आहुति दें। न्यूनता आदि दोषनिवृत्ति के लिए विष्णुसहस्रनाम का पाठ करें। बारह ब्राह्मणों को खीर, पूड़ी, हलुवा आदि यथेष्ट भोजन करायें। यदि हवन करने की सामर्थ्य न हो, तो थोड़ा-सा हवन कर होमीय[1] द्रव्य जौ, तिल, धान, दूध, दही, घी, चावल आदि का दान कर दें अथवा इसके निमित्त उचित दक्षिणा ही दे दें।

सनकादि ने कहा—हे नारद! हमने इस प्रकार संक्षेपतः सप्ताह की विधि का वर्णन किया। सप्ताह-श्रवण से मनुष्यों को भोग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त हो जाते हैं। यों श्रीमद्भागवत का माहात्म्य सुनाकर सनत्कुमार ने सप्ताहक्रम से श्रीमद्भागवत की कथा सुनायी, जिसके श्रवण से ज्ञान और वैराग्य दोनों तरुण हो गये। भक्ति उन्हें साथ ले भगवन्नाम कीर्तन करती हुई तन्मय हो नाचने लगी। यह दृश्य देखकर नारदजी के आह्लाद की सीमा न रही। उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा, नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की धारा बह चली। परमानन्द में निमग्न हो हाथ जोड़कर गद्‌गद वाणी में वह सनत्कुमार से बोले—हे मुनीश्वर, आज मैं धन्य हो गया हूँ। आपने अनुग्रहपूर्वक मेरा मनोरथ पूर्ण कर दिया। भागवती कथा का श्रवण सब धर्मों से श्रेष्ठ माना गया है। यह भगवान् को अति प्रिय है। इसी से भगवान् वैकुण्ठ को छोड़कर सप्ताह यज्ञ में प्रकट हो जाते हैं।

नारदजी यह कह ही रहे थे कि इतने में भ्रमण करते षोडशवर्षीय योगेश्वर शुकदेवजी शनैः शनैः भागवत के पद्यों का उच्चारण करते हुए वहाँ आ गये। उन्हें देखते ही सब श्रोता उठ खड़े हुए और भक्तिभाव से उनका नमन पूजन कर एक दिव्य सिंहासन पर उन्हें बैठाया।

शुकदेवजी ने कहा—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।८०।।

हे रसज्ञ सज्जनों, यह श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पवृक्ष का सुमधुर फल है। यह भक्तिरस से ओत-प्रोत है। भगवत्कृपा से ही पृथ्वी पर भी प्राप्त हुआ है। आप लोग जीवन भर इस अमृतरस का पान करते रहें। हे भाग्यवानों, स्वर्ग और ब्रह्मलोक की तो बात क्या, कैलास तथा वैकुण्ठ में भी यह अमृतरस सुलभ नहीं है। इस रस का सर्वदा पान करते रहो। कभी भी इसका त्याग मत करो।

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः ।
अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ।।८३।।

शुकदेवजी यों भागवत की महिमा का उद्घोष कर ही रहे थे कि दिव्यमूर्ति भगवान् प्रह्लाद आदि भक्तों के साथ सभामध्य में प्रकट हो गये। भगवान् का दर्शन पाते

---

[1] पयो दधि यवागूश्च सर्पिरोदनतण्डुलाः ।
यवास्तिलास्तथा तैलमापो हौम्यं प्रकीर्तितम् ।। (आश्वलायनसूत्रभाष्ये)

ही सारी भक्तमण्डली आनन्द विभोर हो गयी। नारदजी ने भगवान् का प्रीतिपूर्वक पूजन कर सिंहासन पर बैठाया। भक्तमण्डली वीणा, ताल, मृदङ्ग आदि वाद्यों की सुमधुर ध्वनि के साथ कीर्तन करती हुई नाचने लगी। जयजयकार की ध्वनि से आकाश मण्डल गूँज उठा। चारों ओर आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। किसी को भी अपने तन-मन की सुधबुध न रही। भक्तों की तन्मयता को देखकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—भक्तवृन्द, आप लोग अभीष्ट वर माँगें। सब भक्तों ने एक स्वर से कहा—भगवन्, सप्ताह-कथा में इसी प्रकार प्रकट होकर आप भक्तों का मनोरथ पूर्ण करें, यही वरदान हमें दीजिए। भक्तवत्सल भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये। सनकादि सहित नारदजी ब्रह्मलोक चले गये। सूतजी कहते हैं—

यैर्नश्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो यैः पुरुषः पुराणः।
हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम्॥

(कौ.सं. १/६)

हे शौनक, मनुष्य शरीर पाकर जिसने भागवत का श्रवण नहीं किया, पुराण पुरुष भगवान् की आराधना नहीं की एवं ब्राह्मणों के मुखरूपी अग्नि में सुभोज्याहुति नहीं दी, संसार में उसका जन्म व्यर्थ है और पृथ्वी के लिए वह प्राणी भारभूत ही है।

भागवत का यह डिंडिमघोष है कि जो मनुष्य दारिद्र्यदु:खरूपी ज्वर के ताप से संतप्त है, सांसारिक माया-ममतारूपी पिशाची द्वारा कुचले गये हैं एवं संसारसागर में गोते खा रहे हैं, वे मेरी शरण में आवें, मैं उनका उद्धार करूँगा।

दारिद्र्यदु:खज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम्।
संसारसिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति॥९२॥

।। पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्य का छठा अध्याय समाप्त ।।

❖

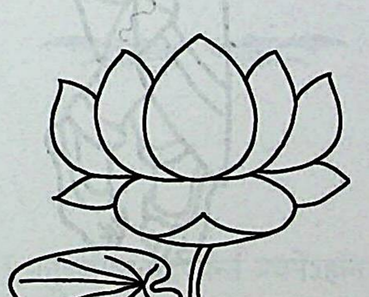

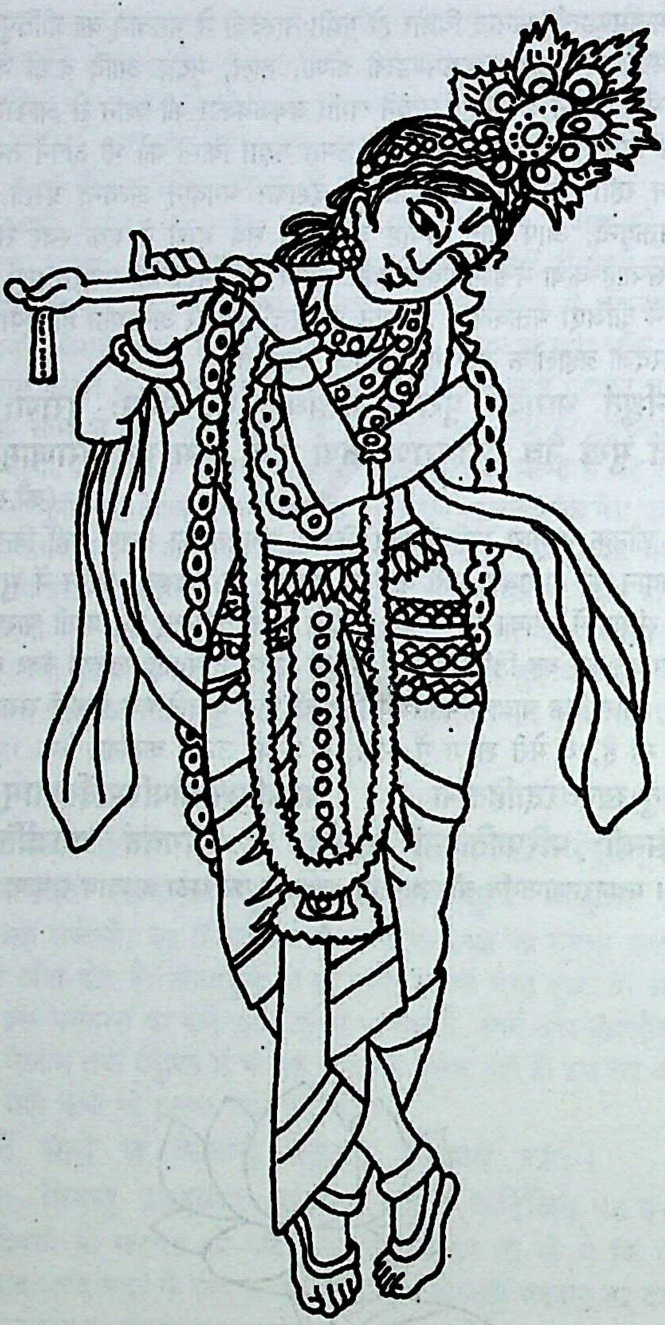

॥ श्री कृष्णाय वयं नुमः ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक

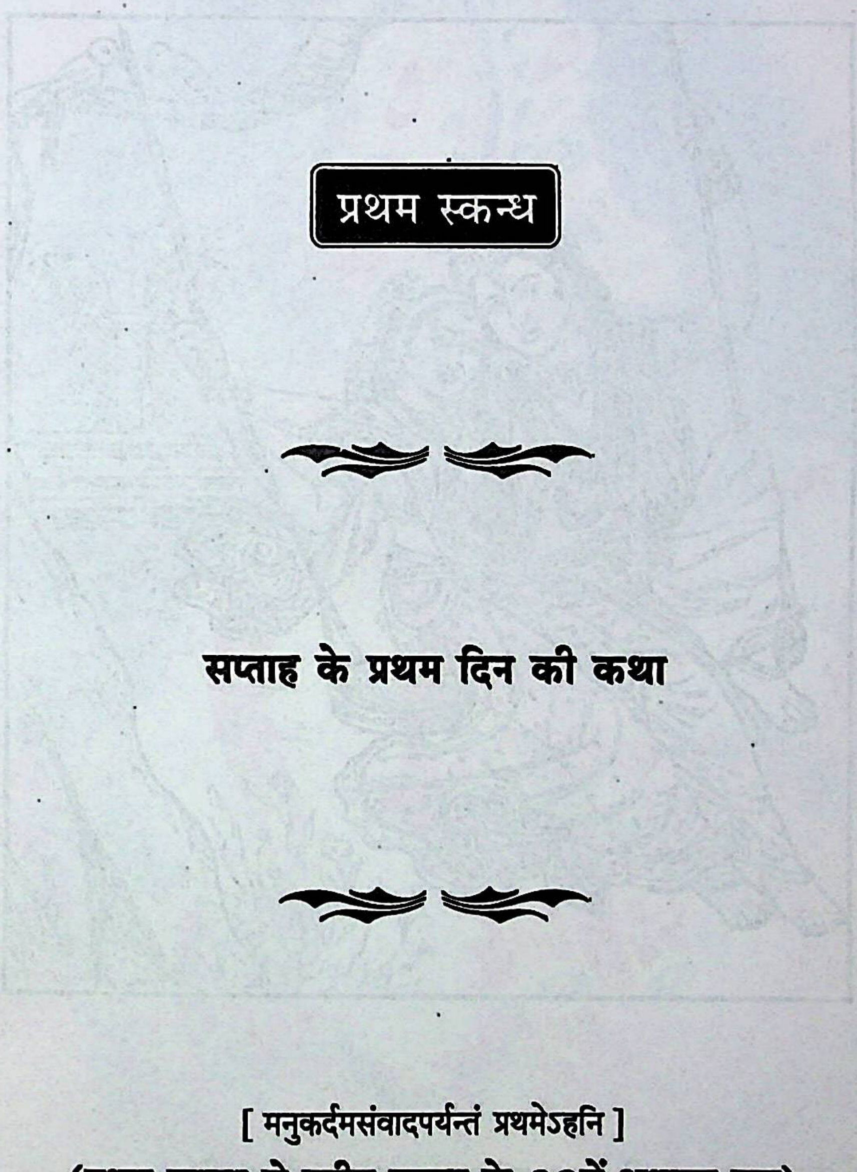

प्रथम स्कन्ध

* * *

सप्ताह के प्रथम दिन की कथा

* * *

[मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि]

(प्रथम स्कन्ध से तृतीय स्कन्ध के २२वें अध्याय तक)

॥ श्री राधा मुकुन्द युगलं तदहं नमामि ॥

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक

प्रथम-स्कन्ध प्रारम्भ

राधाकृष्णपदद्वन्द्वमद्वन्द्वं धारयन् हृदि।
कथां साप्ताहिकीं कुर्वे भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्॥

पहला अध्याय

नैमिषारण्य में सूतजी से शौनकादि ऋषियों के छः प्रश्न

किं श्रेयः शास्त्रसारः कः स्वावतारप्रयोजनम्।
किं कर्म केऽवताराश्च धर्मः कं शरणं गतः॥
इत्येते सूतमुद्दिश्य षट् प्रश्ना मुनिभिः कृताः।

पहले दिन आप लोग श्रीमद्भागवत का माहात्म्य सुन चुके हैं। अब श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध की कथा प्रारम्भ हो रही है। सावधान होकर आप इसका श्रवण करें। द्वापर के अन्त में व्यासजी ने प्रकट होकर इसकी रचना की थी। यह कथा कल्पवृक्ष के समान मनुष्यों के सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाली है। इसमें १२ स्कन्ध, ३३५ अध्याय और अठारह हजार श्लोक हैं एवं शुकदेव और राजा परीक्षित् का संवाद है। इसी को भागवत कहते हैं। इस कथा की निर्विघ्न समाप्ति हो, इसलिए व्यासजी आरम्भ में मंगलाचरण द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे हैं। आप लोग भी हाथ जोड़कर भगवान् का ध्यान करें।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥१॥

जो भगवान् विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले हैं, जिनका आकाश आदि कार्यों में, अन्वय (सम्बन्ध) एवं अकार्य खपुष्पादि से व्यतिरेक (अभाव) है, जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा प्रकाशस्वरूप हैं, जिन्होंने संकल्पमात्र से ब्रह्माजी को वेद का उपदेश किया था, जिसमें विवेकी विद्वानों को भी मोह हो जाता है। मरु-मरीचिका के

समान मिथ्या जगत् भी जिनके आधार से सत्यवत् प्रतीत हो रहा है एवं जिन्होंने अपने तेज से भक्तों का अज्ञान दूर किया है, उन सत्यस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण का हम ध्यान करते हैं।

इस ग्रन्थ में भक्तिलक्षण परमधर्म का निरूपण किया गया है, जिससे भगवान् श्रीकृष्ण का ज्ञान बड़ी सरलता से प्राप्त हो जाता है। इसका श्रवण, मनन तथा चिन्तन करने से जिस प्रकार भगवान् सरलता से हृदय में स्थिर हो जाते हैं, उस प्रकार अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से नहीं होते; यही इसकी विशेषता है।

हे रसज्ञों! यह श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पवृक्ष का रसमय फल है। यह भक्तिरस से भरा हुआ है। यह सुमधुर फल श्रीनारायण से ब्रह्माजी को, ब्रह्माजी से देवर्षि नारद को, श्रीनारदजी से सरस्वती के तट पर आसीन खिन्नचित्त श्रीव्यास जी को तथा व्यासजी से योगेश्वर श्रीशुकदेवजी को प्राप्त हुआ। श्रीशुकदेवजी ने गङ्गातट पर आसीन महाराज परीक्षित् को इसका रसास्वादन कराया। इस प्रकार शिष्यप्रशिष्य-परम्परा द्वारा यह दिव्य रसमय फल जीवों के कल्याणार्थ पृथ्वी पर प्राप्त हुआ है। आप लोग जीवनपर्यन्त सर्वदा इसका पान कर माया पर विजय प्राप्त करें। इस प्रसङ्ग में हम आप लोगों के समक्ष सूत और शौनक का संवाद उपस्थित करते हैं। उसे ध्यानपूर्वक सुनें।

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥४॥

एक समय नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषि भगवान् की प्राप्ति के लिए सहस्र वर्षों में पूर्ण होनेवाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। वे प्रातःकाल अग्नि में हवन कर भगवान् के ध्यान में निमग्न थे कि व्यासजी के शिष्य परमज्ञानी सूतजी वहाँ आ पहुँचे। ऋषियों ने उठकर उनका स्वागत किया और दिव्य आसन पर उन्हें बैठाकर उनसे पूछा—हे भगवन्! आपने समस्त इतिहास-पुराणों का अध्ययन और उनका प्रवचन भी किया है। व्यासजी जो रहस्य जानते हैं, उन सबका आपको भी पूर्णरूप ज्ञान है। श्रद्धालु और प्रेमी शिष्यों को गुरुजन गोप्य बातें भी बतला देते हैं। इसलिए अब आज कृपा कर यह बतायें कि (१) मनुष्यों के लिए मुख्य श्रेय का साधन क्या है?

पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥९॥

(२) शास्त्रों में जो कुछ वर्णन किया गया है, उसका सार अपनी बुद्धि से निकालकर आप हमें उपदेश करें, (३) यह भी बतलायें कि भगवान् देवकी के पुत्ररूप में किस कार्य के लिए अवतीर्ण हुए थे? (४) भगवान् के जो-जो अद्भुत चरित्र हैं, जिनका कवियों ने बहुधा वर्णन किया है; उन्हें भी आप हमें बतायें, (५) भगवान् की अवतार-सम्बन्धी जो कथाएँ हैं, उन्हें भी सुनायें। हम भगवान् के चरित्र सुनने के लिए लालायित बैठे हैं। दुस्तर संसारसागर को पार करने की इच्छावाले हम लोगों के लिए ब्रह्माजी ने आपको कर्णधार बनाकर यहाँ भेज दिया है। (६) आप यह भी बतलायें कि

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण जब अपने धाम को चले गये तब निराश्रय धर्म किसकी शरण में गया—

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त ।।

❖

दूसरा अध्याय

चार प्रश्नों के उत्तर और भक्ति का महत्त्व

कृष्णभक्तिः परं श्रेयः शास्त्रसारश्च सैव हि।
प्रयोजनं सतो रक्षा कर्म सृष्ट्यादिलक्षणम्॥
अवतारा असंख्येया धर्मो भागवते स्थितः।
चतुर्णामत्र शेषस्य तृतीये चोत्तरं कृतम्॥

सूतजी शौनकादि ऋषियों के छः प्रश्नों को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और श्रीशुकदेवजी का ध्यान कर कहने लगे—हे शौनक! आपने जो लोकमंगलकारी प्रश्न किये हैं उनके लिए आपको धन्यवाद है। कृष्ण-सम्बन्धी प्रश्नों से लोगों का महान् कल्याण होता है और आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है।

संसार में जीवों के श्रेय का मुख्य साधन और समस्त शास्त्रों का सार यही है कि मनुष्यों की श्रीकृष्ण में निश्चल भक्ति हो। इससे ज्ञान और वैराग्य शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं। धर्म का अनुष्ठान करने पर भी यदि भगवान् की कथा में रुचि नहीं हुई तो केवल परिश्रम ही हाथ लगता है, अन्य कुछ नहीं। संसार में धर्म का प्रयोजन मोक्ष है, अर्थोपार्जन नहीं। अर्थ का प्रयोजन भी धर्मोपार्जन है, विषय-सुख नहीं। विषय भी शरीर के निर्वाहार्थ हैं, इन्द्रियों की तृप्ति उनका प्रयोजन नहीं है। संसार में तत्त्व की जिज्ञासा ही जीव का प्रयोजन है, केवल कर्मजाल में फँसा रहना नहीं। तत्व भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। इसलिए सर्वदा निश्चल मन से उन्हीं का श्रवण, कीर्तन, ध्यान तथा पूजन करना चाहिए।

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥१४॥

इससे मनुष्यों का बन्धन-हेतु अहंकार निवृत्त हो जाता है और भगवान् की कथा में दृढ़ रुचि उत्पन्न हो जाती है। जब मनुष्य भगवत्कथा सुनने का दृढ़ संकल्प कर लेता है, तब भगवान् उसके हृदय में प्रकट होकर उसकी सम्पूर्ण वासनाएँ नष्ट कर देते हैं।

फिर चित्त कभी काम, क्रोध आदि शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता और उसके सब संशय सर्वदा के लिए निवृत्त हो जाते हैं। चित्त के सत्त्वगुण में स्थित होने के कारण यह परम शान्ति को प्राप्त होता है। प्रकृति से परे एक ही भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टि, पालन और संहार के हेतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे नाम गुणों के अनुसार धारण करते हैं।[1]

---

[1] जैसे काष्ठ से धूम और धूम से अग्नि श्रेष्ठ है, वैसे ही तमोगुण से रजोगुण तथा रजोगुण से सत्त्वगुण श्रेष्ठ है। तदनुसार ही त्रिदेवों में भी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता का वर्णन मिलता है। ब्रह्मा रजोगुणी हैं एवं रुद्र तमोगुणी हैं, इसलिए उनमें क्रमशः विक्षेपशक्ति तथा आवरणशक्ति रहने के कारण उनसे जीवों को परम सुख मिलना सम्भव नहीं, ऐसी कुछ लोगों की दृष्टि है। इस दृष्टि से शुद्धसत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव से ही वास्तविक श्रेय की प्राप्ति बतलायी गयी है—

श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः।

इससे ब्रह्मा तथा रुद्र का अपकर्ष नहीं समझना चाहिए, क्योंकि बिना एक का अपकर्ष दिखाये दूसरे का उत्कर्ष स्थापित नहीं हो सकता।

यदि रुद्र तमोगुणी ही हों, तो उनसे सृष्टि और पालन का सम्भव कैसे और यदि ब्रह्मा रजोगुणी ही हों तो उनसे पालन और संहार का सम्भव कैसे? इसी प्रकार यदि विष्णु सत्त्वगुणी ही हों, तो उनसे सृष्टि और संहारका सम्भव कैसे? क्योंकि प्रमाणों द्वारा त्रिदेवों से पृथक्-पृथक् तीनों गुणों के कार्य सृष्टि आदि का होना सिद्ध है। ये तीनों लीलार्थ परस्पर एक दूसरे की सृष्टि भी किया करते हैं। वायु ने कहा—

ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत्।
कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः॥
विष्णुश्च भगवांस्तद्वद् ब्रह्माणमसृजत्पुनः॥

इस प्रकार एक दूसरे से उत्पन्न होने के कारण भिन्न-भिन्न कल्पों के अनुसार इनके उत्कर्ष का तथा परस्पर एक दूसरे की उपासना का भी वर्णन मिलता है। इससे उनमें किसी एक की अधिकता (श्रेष्ठता) या न्यूनता की कल्पना कर लेना केवल अज्ञानमूलक भ्रम है। कूर्मपुराण का वचन है—

क्वचिद् रुद्रः क्वचिद् ब्रह्मा स्वचिद् विष्णुः प्रशस्यते।
नान्येन तेषामाधिक्यं न्यूनत्वं वा कथंचन॥
तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः।
तानि तानि प्रणीतानि विद्वांस्तत्र न मुह्यति॥

जिसका विवाह उसके गीत के अनुसार ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा की, शिवपुराण में शिव की तथा विष्णुपुराण में विष्णु की प्रधानता वर्णित है। इसी प्रकार मार्कण्डेयपुराण में शक्ति द्वारा विष्णु आदि देवों की उत्पत्ति बतलायी गयी है एवं गणेशपुराण में श्रीगणेशजी के द्वारा। वस्तुतः मूलतत्व एक ही है। उसमें तीनों गुणों का यथासमय आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है, अतः कहीं भी विरोध नहीं।

इस दृष्टि के अनुसार ब्रह्मा तथा रुद्र भी सत्त्वमूर्ति हैं, अतः उनकी उपासना भी श्रेय की हेतु है। उत्कृष्टता तथा अपकृष्टता का कारण केवल उपाधि है, स्वतः तीनों देवों की एकरूपता है।

वेद, यज्ञ, जप, तप आदि सब इन्हीं वासुदेव का प्रतिपादन करते हैं, क्योंकि ये सभी भगवत्प्राप्ति के उपाय हैं। हे शौनक! ऐसा जानकर पहले भी मुनियों ने यज्ञ, तप आदि से इन्हीं की आराधना की थी। अत: आप लोग भी इन्हीं का ध्यान, पूजन और आराधना करें, क्योंकि आरम्भ में यही अपनी माया से जगत् की सृष्टि कर अपने लीला-अवतारों से समस्त लोक एवं भक्तों का पालन करते हैं, इसमें सन्देह नहीं—

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥३४॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

तीसरा अध्याय

शेष दो प्रश्नों के उत्तर-अवतार और धर्म-स्थिति

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! आपने अवतार-सम्बन्धी जो प्रश्न किये थे, अब उनका उत्तर सुनें। भगवान् ने पहले लोक-रचना की इच्छा से पुरुषावतार ग्रहण किया था। उस समय भगवान्,जिनके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए एवं जिनके शरीर के अवयवों से समस्त लोक-रचना सम्भव हुई, योग-निद्रा का विस्तार कर जल में शयन कर रहे थे। विशुद्धसत्त्वमय भगवान् के इसी प्रधान रूप का योगी जन ज्ञानचक्षु से दर्शन कर सुशोभित हो रहे हैं। यह रूप बहुत से मुकुट, कुण्डल आदि आभूषणों से देदीप्यमान है। आप लोग हाथ जोड़कर इस रूप का ध्यान करें।

पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम्।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥४॥

इसी रूप से भगवान् के नाना अवतार होते हैं और फिर इसी में उनका लय हो जाता है। इसी के अंशांश ब्रह्मा, मरीचि तथा कश्यप से देवता, पशु-पक्षी तथा मनुष्यादि योनियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी रूप से जिन २४ अवतारों का प्रादुर्भाव हुआ था, उनके मङ्गलमय नामों का आप लोग श्रवण करें। (१) सनकादि महर्षियों का

यो विष्णुः स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः।
एकमूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥ (हरिवंश)

इस विषय को आचार्यवर श्रीवंशीधर जी ने भी स्पष्ट किया है—

इत्थं न कुत्रापि विरोधः सर्वेषां सत्त्वतनुत्वात् सत्त्वतनुत्वेन या ब्रह्मादेरुपासना सापि श्रेयो हेतुरिति सिद्धम्। उपाधिरेव वैशिष्ट्यावैशिष्ट्यहेतुः स्वतस्तु एकरूपतैव। एतेन तामसत्वेन रुद्रस्यापकर्षत्वरूपः प्रलापो मूर्खाणां निरस्तः।

अवतार, (२) वाराहावतार, (३) नारदावतार, (४) नरनारायणावतार, (५) कपिलावतार, (६) दत्तात्रेयावतार, (७) यज्ञावतार, (८) ऋषभावतार, (९) पृथु का अवतार, (१०) मत्स्यावतार, (११) कूर्मावतार, (१२) धन्वन्तरि का अवतार, (१३) मोहिनी का अवतार, (१४) नृसिंहावतार, (१५) वामनावतार, (१६) परशुरामवतार, (१७) व्यासावतार, (१८) रामावतार, (१९) बलदेवावतार, (२०) श्रीकृष्णावतार, (२१) हरि-अवतार, (२२) हंसावतार, (२३) बुद्धावतार और (२४) कल्कि-अवतार।

इस प्रकार भगवान् के असंख्य अवतार है और वे समय-समय पर प्रकट होकर जगत् की रक्षा करते हैं। जो मनुष्य सायं प्रातः इन अवतारों का श्रवण और कीर्तन करता है, वह दुःखमय संसार से मुक्त हो जाता है। जैसे नीरूप आकाश में वायु के आश्रित मेघों की और वायु में पार्थिव रेणुओं की अज्ञानवश कल्पना की जाती है, वैसे ही द्रष्टा आत्मा में अज्ञानियों ने दृश्यत्त्व (स्थूल और सूक्ष्म शरीर) का आरोप किया है। ये दोनों ही जीव के बन्धनहेतु संसार के कारण है। जब प्रेमलक्षणा भक्ति के द्वारा ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होता है, तब ये दोनों शरीर ज्ञानाग्नि में भस्म हो जाते हैं एवं जीव भगवान् का साक्षात्कार कर परम आनन्द का अनुभव करता है। प्रेमलक्षणा भक्ति भगवान् के जन्म, कर्म तथा लीलाओं के कीर्तन और चिन्तन से प्राप्त होती है।

स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।
योऽमायया सन्ततयानुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥३८॥

यद्यपि देहाभिमानी जीव तर्क आद कौशल के द्वारा भी भगवान् की लीलाओं का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, तथापि जो निष्कपट भाव से अहंकार का त्याग कर भगवान् के चरण-कमल-मकरन्द का पान करता है, उस पर शीघ्र भगवत्कृपा होती है, जिससे उसे लीलाओं के ज्ञान के साथ-साथ भक्ति द्वारा भगवान् के स्वरूप का ज्ञान बड़ी सरलता से प्राप्त हो जाता है। हे शौनक! आप लोग धन्य हैं, जो इस प्रकार भगवान् वासुदेव में निष्ठा रखकर कथा-श्रवण के लिए लालायित हैं। आप सब मुक्त ही हैं। अब मैं आप लोगों को ऐसा अनुपम पुराण सुनाऊँगा, जिससे आप कृतकृत्य हो जायेंगे। वह पुराण है[१] श्रीमद्भागवत।

---

[१] भागवत में चार अक्षर हैं। उनमें भा कीर्तिका, ग ज्ञान का, व सर्वाभीष्ट का तथा त विस्तार का वाचक है, अर्थात् कीर्ति, ज्ञान तथा सर्वाभीष्ट का विस्तार कर जो भक्तों को भक्ति प्रदान करता है, वह भागवत है।
अथवा धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष रूप चतुर्वर्ग को प्रदान करने के कारण इसका नाम भागवत है।

भाशब्दः कीर्तिवचनो गशब्दो ज्ञानवाचकः ।
सर्वेष्टवचनो वश्च तो विस्तारस्य वाचकः ॥

यह पंचम वेद कहा गया है। इसमें भगवान् के दिव्य मधुरतामय चरित्रों का वर्णन है। लोक-कल्याण के लिए ही इसका प्रादुर्भाव हुआ है। व्यासजी ने अपने पुत्र शुकदेवजी को इसका उपदेश दिया था। शुकदेवजी ने गंगातट पर स्थित महाराज परीक्षित् को इसे सुनाया। वहीं मैंने भी उनके श्रीमुख से इसका अध्ययन किया था। जैसा मैंने पढ़ा और जैसी मेरी बुद्धि है, तदनुसार मैं आप लोगों को उसका श्रवण कराऊँगा। भगवान् श्रीकृष्ण जब अपने धाम को चले गये, तब मन्दमति मनुष्यों के कल्याणार्थ इस पुराणरूपी सूर्य का उदय हुआ—

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥४४॥

धर्म भी अब इसी के आश्रय में रहता है। यह आपके छठे प्रश्न का भी उत्तर हो गया। अब आप और भी जो कुछ पूछना चाहते हों, वह पूछें।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

चौथा अध्याय

व्यासजी के आश्रम में नारदजी का आगमन

मुनियों की सभा में इस प्रकार उपदेश कर रहे सूतजी का सादर सम्बोधन करते हुए शौनकजी ने कहा—हे महाभाग! आप वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं। आप हमें भगवान् की वही कथा सुनायें, जो शुकदेवजी ने परीक्षित् को सुनायी थी। वह कथा किस स्थान में, किस कारण और किस युग में आरम्भ हुई? किससे प्रेरित होकर व्यासजी ने यह संहिता बनायी? व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी समदर्शी और योगी थे। उनकी कहीं आसक्ति और भेददृष्टि नहीं थी। वह उत्पन्न होते ही सब कुछ त्यागकर वन में जा रहे थे। मार्ग में एक सरोवर था। उसमें अप्सराएँ नग्न होकर जलविहार कर रही थीं। शुकदेवजी को देखकर उन अप्सराओं को न तो लज्जा हुई और न उन्होंने वस्त्रधारण किये। शुकदेवजी के ही पीछे हे पुत्र! हे पुत्र! कहते जब वृद्ध अनग्न व्यासजी आये, तब उन स्त्रियों को बड़ी लज्जा हुई। जल से निकलकर उन्होंने तुरन्त अपने-अपने वस्त्र

कीर्तेर्ज्ञानस्य सर्वेष्टस्य च विस्तारणादिदम्।
अस्य भागवतं नाम श्रीव्यासेनेति कीर्तितम्।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च वक्ति वर्णचतुष्टयी।
ते प्राप्यन्ते यतोऽनेन तस्माद् भागवतं स्मृतम्॥
(कौ.सं. ५-५३-५५)

भाति सर्वेषु लोकेषु गीयते नारदादिभिः।
वर्तते सर्वशास्त्रेषु तस्माद् भागवतं विदुः॥

पहन लिये। यह देखकर व्यासजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इसका कारण अप्सराओं से पूछा, तब वे बोलीं—

तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति।
स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥५॥

भगवन्! आपकी दृष्टि में स्त्री-पुरुष का भेद है, किन्तु आपके पुत्र की पवित्र दृष्टि में वह भेद नहीं है। व्यासजी यह सुनकर चकित हो मौन हो गये।

ऐसे निर्लिप्त, अनासक्त, ज्ञानी, शुकदेवजी के साथ परीक्षित् का संवाद कैसे हुआ? जो उन्मत्त और मूक के समान अवधूतवेश में हस्तिनापुर के आस-पास इधर-उधर विचरा करते थे। उन्हें लोगों ने कैसे पहचाना। इसके अतिरिक्त जब वह घूमते-फिरते कभी किसी गृहस्थ के यहाँ चले जाते, तो गोदोहन काल तक ही ठहरते थे, अधिक नहीं। तब परीक्षित् को सात दिनों तक उन्होंने कथा कैसे सुनायी? हमारे इस सन्देह को कृपया आप निवृत्त करें।

स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम्।
अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥८॥

शुकदेव-सा वक्ता होना कठिन है और श्रोता परीक्षित्-सा होना भी कठिन है, क्योंकि दोनों के जन्म और कर्म आश्चर्यमय ही हैं। महाराज परीक्षित् ने किस कारण राज्य का परित्याग किया? अन्न-जल का परित्याग कर वे गंगातट पर क्यों गये? और वहीं उन्होंने प्राणों का परित्याग भी क्यों किया? आप हमारे इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें, कारण आप समस्त शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता हैं।

सूतजी बोले—हे शौनक! व्यासजी द्वापर में महर्षि पराशर से उत्पन्न हुए। वह एक दिन सरस्वती नदी के तट पर आचमन कर बैठे थे। सूर्य का उदय हो रहा था, इसी समय व्यासजी के मन में विचार आया कि आगे कलियुग आनेवाला है। उसमें मनुष्य अल्पायु, दुर्बुद्धि, अश्रद्धालु और नास्तिक होंगे। दिव्य चक्षु से यह सब देखकर समस्त वर्ण और आश्रमों के हित का विचार कर उन्होंने एक वेद को चार भागों में विभक्त किया और अपने चार शिष्य पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु को उन्हें पढ़ा दिया। उन्हीं की कृपा से मेरे पिता रोमहर्षण इतिहास-पुराण के ज्ञाता हुए। स्त्री, शूद्र आदि के कल्याणार्थ सर्वदा तत्पर व्यासजी के हृदय में सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया कि मैंने दृढ़ संकल्प से वेद, गुरु और अग्नि की शुश्रूषा करते हुए सदा इनका आदर और आज्ञापालन किया है। फिर भी, खेद है कि मेरी आत्मा में सन्तोष नहीं हुआ। इसका कारण क्या है?

तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः।
कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥३२॥

इस प्रकार अपने में यह न्यूनता देखकर अत्यन्त खिन्न होकर वे बैठे हुए थे कि उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पहुँचे। उनको देखकर व्यासजी उठकर खड़े हो गये और प्रणाम कर एक दिव्य आसन पर बैठाकर उन्होंने अर्घ्यपाद्य से उनका विधिवत् पूजन किया।

शुकदेवजी की जन्मकथा

एक समय पार्वतीजी ने भगवान् शिव से निवेदन किया—भगवन्! मेरा आपसे कभी वियोग न हो और मुझे सर्वदा आत्मज्ञान बना रहे, कृपया इसका कोई उपाय बतायें। इस पर शिवजी ने कहा—प्रिये! प्रश्न तो तुमने बहुत अच्छा किया, पर पहले बाहर जाकर देख आओ कि हमारी बातें कोई दूसरा सुन तो नहीं रहा है। पार्वती ने बाहर जाकर चतुर्दिक् दृष्टि डाली, किन्तु उन्हें शुक के एक विगलित अण्डे के सिवा वहाँ अन्य कोई जीव दिखायी न दिया। ऐसी स्थिति में पार्वती ने तुरन्त ही लौटकर भगवान् शिवजी से निवेदन किया—नाथ! बाहर कोई नहीं है। तब भगवान् शिव ने सानन्द ध्यानस्थ मुद्रा में 'अमरकथा' का अमृत-प्रवाह आरम्भ किया और पार्वतीजी बीच-बीच में 'हुँकारी' भरती रहीं। भगवान् शंकर द्वारा वर्णित वह अमरकथा श्रीमद्भागवत ही है। कथा का क्रम प्रथम स्कन्ध से दशम स्कन्धपर्यन्त पहुँचने तक पार्वती बराबर हुँकारी भरती रहीं, पर ग्यारहवें स्कन्ध के आरम्भ में उन्हें निद्रा आ गई और इस बीच उस विगलित अण्डे से बाहर निकला हुआ शुक-शावक 'हुँकारी' भरता गया। बारहवें स्कन्ध की समाप्ति पर पार्वतीजी की जब निद्रा भङ्ग हुई, तब उन्होंने शिवजी से कहा—भगवन्! कृष्ण-उद्धव संवाद तो मैं नहीं सुन सकी। देव! क्षमा कीजिए, बीच में मैं निद्राग्रस्त हो गयी थी। इस पर शिवजी ने पूछा—तब 'हुँकारी' कौन भर रहा था? यह कहकर वे वास्तविकता जानने के लिए स्वयं ही बाहर आये और वहाँ उन्होंने सुग्गे का एक सुन्दर बच्चा बैठा देखा।

शुक-शावक को देखते ही भगवान् शिव ने व्यग्र होकर पार्वतीजी से प्रश्न किया आखिर यह यहाँ कैसे? क्या तुमने इसे देखा नहीं? पार्वतीजी ने सुविनीत भाव से मृदुल स्वर में उत्तर दिया—देव! यह तो यहाँ विगलित अण्डे के रूप में पड़ा था। मालूम होता है, यह भागवतरूपी अमृत-पान से जीवित हो गया। आप इस पर क्रोध न करें।

भगवन् गलितं चाण्डं जीवहीनमिहास्ति वै।
श्रीभागवतपीयूषसेकाज्जीवमवाप्तवान् ॥
अधुना देवदेवेश मा क्रोधं कुरु शङ्कर।
(कौ.सं. ५/२१)

किन्तु शिवजी इतने से ही शान्त नहीं हुए। 'अमरकथा' का इस प्रकार फूट जाना उनकी दृष्टि में कोई साधारण घटना न थी। अतः तुरन्त वे बड़े वेग से उस शुक-शावक को पकड़ने की इच्छा से उस पर झपटे। शुक-शावक भी शिवजी की यह मुद्रा देखकर

भागा और जम्हाई लेती हुई व्यासजी की पत्नी पिङ्गला के मुख में प्रविष्ट हो गया। इधर उसे न पाकर निराश हो शंकरजी अपने आश्रम में लौट आये। वही शुक-शावक श्रीव्यासजी के पुत्र शुकदेव के रूप में उत्पन्न हुआ।

श्रीशुकदेवजी के प्रसङ्ग में अन्य पुराणों की कथा है कि वे गोलोक में श्रीराधाजी के लीलाशुक थे। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतरण-काल में श्रीराधाजी ने स्वयं भी लीला-विग्रह धारण के समय अपने इस प्रिय शुक के साथ चलने को कहा था। वही शुक श्रीराधाजी के वियोग के कारण उक्त विगलित अण्डे के रूप में भगवान् श्रीशंकर के आश्रम के निकट आ पड़ा था, जहाँ उसे इस अमृतमयी कथा का अनुपम रसास्वाद स्वयं भगवान् शिव के श्रीमुख से प्राप्त हुआ।

श्रीव्यासजी की पत्नी के मुख से उदर में प्रविष्ट हुआ वह शुक १२ वर्षों तक वहीं स्थित रह गया। इस दशा पर व्यग्र होकर एक दिन व्यासजी कह बैठे—बेटा, बाहर क्यों नहीं आते? देखो तो इस स्थिति में तुम्हारी माता को कितना अधिक कष्ट हो रहा है। शुकदेवजी ने कहा—पिताजी, मेरे उदर में रहने के कारण माता को कुछ कष्ट नहीं हो रहा है। मेरे बाहर आने पर 'माया' मुझपर आक्रमण करेगी, तब मुझे कष्ट ही नहीं, कष्टराशि झेलनी पड़ेगी। इसलिए मेरा बाहर न आना ही अच्छा है।

ऐसी मर्ममयी वाणी सुनकर व्यासदेव चकित तो हो उठे। उन्होंने प्रश्न किया—तब तुम्हीं बतलाओ, किस दशा में तुम्हारा बाहर आना सम्भव हो सकता है? इस पर शुक ने कहा—पिताजी, द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण का यदि यह आश्वासन मिले कि माया का आक्रमण मुझ पर न होगा, तभी मैं इस पृथ्वी पर आ सकता हूँ, अन्यथा नहीं। जब श्रीव्यासदेव ने भगवान् श्रीकृष्ण से शुक पर माया का आक्रमण न होने का त्रिवाचिक आशीर्वाद सुलभ करा दिया तब श्रीशुकदेवजी पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए और आशीर्वाददाता भगवान् श्रीकृष्ण एवं माता-पिता के श्रीचरणों में सादर प्रणाम कर वन की ओर चल पड़े। व्यासजी पुत्रवात्सल्य से उनके पीछे-पीछे 'हे पुत्र! हे पुत्र!' कहते उन्हें बुलाते रहे।

द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।

किन्तु शुकदेवजी लौटे नहीं। एक पर्वत की कन्दरा में जाकर समाधिस्थ हो गये। व्यासजी विरह से व्याकुल होकर पुत्र के संस्कार को जागृत करनेवाले भागवत के भावपूर्ण श्लोकों का बार-बार उच्चारण करने लगे। उन श्लोकों में प्रथम श्लोक यह था—

अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽऽपाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

आश्चर्य! भगवान् की दयालुता का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। दुष्ट राक्षसी पूतना ने मारने की इच्छा से अपने स्तनों में कालकूट विष भरकर भगवान् को पिलाया, किन्तु भगवान् ने उसे माता की-सी उचित गति अपना लोक दे दिया। विष देनेवाले को भी

जो अमृत प्रदान करे, ऐसा दयालु दूसरा देवता कौन है, जिसकी मैं शरण लूँ।

यह श्लोक सुनते ही शुकदेवजी की समाधि टूट गयी। वह विह्वल होकर कन्दरा से बाहर आये और उन्मत्त की तरह उस श्लोक की ध्वनि का अनुसरण कर व्यासजी के समीप जा पहुँचे। वहाँ उनके चरणों पर गिरकर आँसू बहाते हुए बोले—पिताजी! एक बार पुनः वह श्लोक सुना दें। व्यासजी ने बड़े प्रेम से भावविभोर होकर पुत्र का आलिङ्गन किया और कहा—बेटा! आश्रम पर चलो, वहाँ हम तुम्हें ऐसे ही बहुत-से श्लोक सुनायेंगे। शुकदेवजी भगवान् के गुणों से आकृष्ट होकर उनके साथ आश्रम पर गये। वहाँ उन्होंने व्यासजी के श्रीमुख से सम्पूर्ण भागवत का अध्ययन किया।

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥

बाद में श्रीव्यासजी के सन्तोषार्थ, छायाशुक का निर्माण कर पुनः तप करने वन में चले गये। महाराज परीक्षित् ऋषि-पुत्र शृङ्गी का शाप होने पर जब वह आमरण अनशन पर गंगातट पर महर्षियों की सभा के मध्य बैठे थे। म्रियमाण पुरुषों के कर्तव्य-विषयक राजा के प्रश्न पर जब महर्षियों द्वारा समुचित निर्णय न हो सका, तब श्रीशुकदेवजी भ्रमण करते हुए स्वेच्छा से वहाँ पहुँच गये। महाराज परीक्षित् को उनके प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर देकर श्रीमद्भागवत का अपूर्व रसास्वादन कराया, जिससे वे मुक्त हो गये।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

❖

पाँचवाँ अध्याय

व्यासजी के अपरितोष का कारण और नारदजी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! इस प्रकार खिन्नचित्त व्यासजी को देखकर देवर्षि नारद मुस्कुराते हुए बोले—हे महाभाग व्यासदेव! आपका शरीर और मन प्रसन्न तो है? जो कुछ आपको करना था, वह सब आप कर चुके और जो कुछ जानने योग्य था, उसे आपने जान भी लिया। फिर भी आप अपने को अपूर्ण-सा मानकर उदास क्यों हैं? व्यासजी बोले—हे नारदजी! आपने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है। फिर भी मुझे सन्तोष नहीं हो रहा है। इसका कारण कृपया आप बताएँ? मुझमें क्या न्यूनता रह गयी है? इसे भी अपनी दिव्य दृष्टि से देखने की कृपा करें। आप सूर्य के समान तीनों लोकों में भ्रमण करते हैं। पुराण-पुरुष भगवान् की आपने उपासना की है इसलिए आपसे कुछ छिपा नहीं है। नारदजी बोले—हे मुनिवर! सब कुछ करने पर भी आपने भगवान् के

निर्मल यश का प्रधानरूप से वर्णन नहीं किया। इसी से आपकी आत्मा में परितोष नहीं है, यही आपमें न्यूनता रह गयी है।

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्याऽनुकीर्तिताः ।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥९॥

हे मुने! महाभारत में जिस प्रकार आपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन किया, उस प्रकार भगवान् की महिमा का वर्णन आप नहीं कर सके।

जिस मनुष्य की वाणी भगवान् के जगत् पवित्र यश का वर्णन नहीं करती, वह मनुष्य कूड़ा-घर के समान है, ज्ञानी पुरुष उससे वैसे ही सम्पर्क नहीं रखते, जैसे मानसरोवर में विहार करने वाले हंस काकतीर्थ में नहीं रहते। भगवान् के निर्मल गुणों का वर्णन करने वाली रचना यदि अशुद्ध भी हो, तो भी वह जनता की पापराशि को भस्म कर देती है, कारण उससे भगवान् के मंगलमय नामों का स्मरण होता है, जिनका भक्तजन हृदय से अभिनन्दन करते हैं। अधिक क्या कहें, मोक्ष देने वाला जो नैष्कर्म्य ज्ञान है, वह भी यदि भगवान् की भक्ति से रहित हो, तो उसका भी मूल्य कुछ नहीं, वह बन्धन-निवृत्ति नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में भगवद्भक्ति से हीन सकाम और निष्काम कर्म का तो कहना ही क्या है? इसलिए हे महाभाग! जीवों की बन्धन-निवृत्ति के लिए समाधि द्वारा आप भगवान् के चरित्रों का स्मरण कर उनका वर्णन करें। भगवान् के चरित्रों को छोड़कर मनुष्य जो कुछ वर्णन करता है, उससे उसकी बुद्धि कहीं सुस्थिर नहीं रहती। वायु के वेग से कम्पित नौका के समान डगमगाती ही रहती है। जिस प्रकार मनुष्य को दुःख प्रयत्न के बिना ही प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार विषय-सुख भी प्राप्त होता है। उसके लिए प्रयत्न करना उचित नहीं। निवृत्ति-मार्ग से कोई विरला ही ज्ञानी पुरुष भगवत्सम्बन्धी सुख प्राप्त कर सकता है। सब इसके अधिकारी नहीं हैं। इसलिए सर्व साधारण के कल्याणार्थ आप भगवान् की लीलाओं का ही विशेष रूप से वर्णन करें।

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥२२॥

उत्तम-श्लोक भगवान् के गुणों का वर्णन ही समस्त तपस्या, शास्त्राभ्यास, यज्ञ, दान और ज्ञान का मुख्य फल बताया गया है, आप तो साक्षात् भगवान् की कला हैं और जगत् के कल्याण के लिए आपका प्रादुर्भाव हुआ है। इसलिए अब आप भगवान् के उत्कर्ष का ही अधिक वर्णन करें। इससे आपके मन को पूर्ण सन्तोष होगा और जगत् का भी कल्याण होगा।

इस विषय में मैं आपको अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुनें। मैं पूर्वजन्म में एक दासी का पुत्र था। मेरी माता ने मुझे चातुर्मास्य व्रत करनेवाले महात्माओं की सेवा में लगा दिया था। मेरी ५ वर्ष की अवस्था थी। मैं और बालकों के

समान खेलता-कूदता नहीं था। थोड़ा बोलता था। यथा समय महात्माओं की सेवा करता था। दिन में एक बार महात्माओं का उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करता था। 'नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यात्', 'उच्छिष्टभोजिनः श्वानः' इसके अनुसार जो पाक भाण्डों में बचा था, वह प्रसाद, जूठी थाली का नहीं। 'उत्कृष्ट शिष्टम् उच्छिष्टम्' ऐसा निरुक्त में कहा है। जूठा देने वाले और खाने वाले दोनों कुत्ते की योनि में जाते हैं। मेरे इस व्यवहार से महात्माओं की मुझपर कृपा हुई, जिससे मेरी भगवद्धर्म में रुचि हो गयी। वे महात्मा प्रतिदिन भगवान् की कथा का गान किया करते थे। मैंने भी वह कथा सुनी। उससे मेरा चित्त शुद्ध हो गया और भगवान् में मेरी निश्चल भक्ति हो गयी। मेरे हृदय में भक्ति का प्रवाह उत्तरोत्तर उमड़ता गया। चातुर्मास्य के बाद जब महात्मा लोग जाने लगे, तब उन्होंने मुझे भगवान् के दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया, जिससे मैं भगवान् की माया का प्रभाव जान गया। हे व्यासजी! विशेष मैं क्या कहूँ—

एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ।
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥

संसार में तीनों तापों की यही एकमात्र औषधि है कि जो कुछ कर्म करें, वह सब भगवान् को अर्पण कर दें। आप तो बहुश्रुत हैं। इसलिए भगवान् का यश इस प्रकार वर्णन करें, जिससे विद्वानों को भी जानने की कोई वस्तु शेष न रह जाय। संसार में पीड़ित मनुष्यों की शान्ति के लिए भगवच्चरित्र से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है।

संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥४०॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

छठा अध्याय

अपना वृत्तान्त पूरा सुनाकर नारदजी का गमन

सूतजी बोले—हे शौनक!

एवं निशम्य भगवान् देवर्षेर्जन्म कर्म च ।
भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥

इस प्रकार नारदजी के जन्म और कर्म का वृत्तान्त सुनकर व्यासजी ने उनसे फिर पूछा—हे मुनिवर! जब आप को उपदेश देकर महात्मा लोग चले गये, तब आपने क्या किया? आपकी शेष आयु किस तरह व्यतीत हुई? अन्त काल में आपने शरीर का त्याग कैसे किया? आपको पूर्वजन्म की स्मृति कैसे रह गयी? नारदजी बोले—हे व्यासजी! मुझे उपदेश देकर जब महात्मा लोग चले गये, तब मैंने जो कुछ किया, उसे

सुनें। मेरी माता दासी थी। मैं उसका अकेला पुत्र था, वह मुझसे बड़ा स्नेह रखती थी। मैं चाहता था कि माता का स्नेह कम हो और मुझे छुट्टी मिले। एक समय रात्रि में मेरी माता गौ दुहने के लिए घर से बाहर निकली। मार्ग में सर्प ने उसे डँस लिया और वह मर गयी। **'सर्पोऽदशत् पदास्पृष्टः कृपणां कालचोदितः'**। माता के मरने को भगवान् का अनुग्रह मानकर मैं उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा। मार्ग में बहुत से देश, नगर, ग्राम, वन-उपवन पार करता एक निर्जन वन में जा पहुँचा। उस समय मैं बहुत थका और भूख-प्यास से व्याकुल था। एक नदी के तट पर जाकर विश्राम किया और स्नान कर जल पिया, उससे मेरी थकावट दूर हो गयी। तब मैं एक पीपल के नीचे बैठा और महात्माओं के उपदेशानुसार वहाँ ध्यान करने लगा। सहसा मेरे हृदय में भगवान् प्रकट हो गये—**हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः**।

भगवान् के दर्शन करते ही मैं आनन्द-समुद्र में डूब गया। मेरे नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी, शरीर में रोमाञ्च हो आया और मुझे अपने पराये का कुछ भी ज्ञान न रहा। थोड़ी देर बाद, भगवान् की मूर्ति मेरे हृदय में अन्तर्हित हो गयी और मेरी समाधि टूट गयी। मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल हो गया। जब फिर दूसरी बार मन को स्थिर कर भगवान् के दर्शन की इच्छा की, तो वह रूप दिखायी नहीं दिया। तब अतृप्त की तरह मैं व्याकुल हो उठा—

वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥२०॥

तब मुझे लक्ष्य कर आकाशवाणी हुई कि अब इस जन्म में तुमको मेरा दर्शन नहीं होगा, कारण अभी तुम्हारी वासनाएँ निवृत्त नहीं हुई हैं। इस शरीर का त्याग करने के पश्चात् तुम मेरे पार्षद बनोगे और तब प्रलय-काल में भी तुम्हारी स्मृति नष्ट नहीं होगी। यह कहकर आकाशवाणी विरत हो गयी। मैंने उसको सिरसे प्रणाम किया और भगवान् के नामों का गान करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा। मैं सदा काल की प्रतीक्षा में रहता था एक दिन अकस्मात् बिजली की तरह काल सामने आया और मेरा पाञ्चभौतिक शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। मैं तत्क्षण भगवान् का पार्षद बन गया। कल्पान्त में ब्रह्मा के साथ ही मैं जलशायी नारायण के शरीर में प्रविष्ट हो गया। फिर सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा से मैं उत्पन्न हुआ। मेरी गति कहीं रुकती नहीं। भगवान् की सेवा से चित्त जैसा शान्त होता है, वैसा योगादि साधनों से नहीं होता। हे व्यासजी! आपने जो पूछा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया और आपके अपरितोष का कारण भी बता दिया। सूतजी कहते हैं—हे शौनक! यह कहकर देवर्षि नारद वीणा बजाते, हरिगुण गाते चले गये। अहो देवर्षि नारद धन्य हैं, जो भगवान् की कीर्ति गाते हुए क्लेशाक्रान्त जीवों को अपनी वीणा के सुमधुर स्वर से आनन्दित करते हैं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का छठा अध्याय समाप्त ।।

❖

सातवाँ अध्याय

श्रीमद्भागवत की रचना, द्रौपदी के सुप्त पुत्रों का वध तथा अश्वत्थामा का निग्रह

शौनक जी बोले—हे सूत जी! जब नारद जी चले गये, तब व्यासजी ने क्या किया? सूतजी बोले—हे शौनक! सरस्वती नदी के पश्चिम तट पर शम्याप्रास[1] नाम का व्यासजी का आश्रम था। वह बदरी वृक्षों के समूह से मण्डित था। वहीं व्यासजी ने आचमन कर मनको एकाग्र किया, तब उन्हें माया और पुरुष का दर्शन हुआ। यह माया ही समस्त अनर्थों की मूल है। अनर्थों की निवृत्ति भक्ति से होती है और भक्ति भगवच्चरित्रों के श्रवण से होती हैं, ऐसा विचार कर उन्होंने भगवच्चरित्रों से परिपूर्ण भागवत संहिता की रचना की—

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥७॥

जिसके श्रवणमात्र से भगवान् में मनुष्यों की भक्ति होती है और शोक, मोह, भय आदि सब निवृत्त हो जाते हैं। व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेवजी निवृत्ति-मार्ग में निरत थे, ग्रन्थों के अध्ययन और अध्यापन से उनका कोई सम्बन्ध न था। फिर भी भगवान् के गुणों से आकृष्ट होकर उन्होंने पिताजी से इस विशाल ग्रन्थ का अध्ययन किया और परीक्षित् को भी इसे सुनाया।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! अब हम राजा परीक्षित् के जन्म, कर्म और उनकी मुक्ति तथा पाण्डवों के महाप्रस्थान का वर्णन करेंगे, जिससे आपके प्रश्नों का उत्तर हो जायेगा। आप सावधान होकर सुनें।

यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥१३॥

जब महाभारत संग्राम में कौरव और पाण्डवों की सेना के बड़े-बड़े वीर मारे गये एवं भीम के गदाप्रहार से दुर्योधन के ऊरु-दण्ड भी टूट गये, तब अश्वत्थामा ने दुर्योधन के सन्तोषार्थ द्रौपदी के सोये हुए पुत्रों का सिर काट डाला। यह देखकर विलाप करती हुई द्रौपदी को अर्जुन ने समझाया कि तू शोक न कर, मैं अश्वत्थामा का सिर काटकर लाता हूँ। ऐसा कहकर अर्जुन ने अश्वत्थामा का पीछा किया। अश्वत्थामा

---

[1] यह आश्रम सिन्धुवन के अन्तर्गत है, गन्धमादन पर्वत पर नहीं। आदि बदरिकाश्रम के नाम से यही प्रसिद्ध है। बदरीवन और सरस्वती नदी भी यही उपलब्ध है।
शम्या युगकीलाः प्रास्यन्तें प्रक्षिप्यन्ते परिध्यर्थेऽस्मिन्निति शम्याप्रासः।
शमिनः शमदमादियुक्ता ऋषयः आ समन्तात्प्रकर्षेणासते तिष्ठन्ति अत्रेति वा।

पीछा कर रहे अर्जुन को देखकर बहुत घबड़ाया और रथ पर चढ़कर बड़ी तेजी से भागा, जैसे रुद्र के भय से सूर्य भागे थे—

रुद्रभयाद् यथाऽर्कः[१]।

जब अश्वत्थामा के घोड़े थक गये, तब उसने अपने बचाव के लिए उपसंहार न जानते हुए भी अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। अर्जुन ने यह देखकर अपना भी ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। उन दोनों अस्त्रों के टकराने से महाप्रलय का-सा दृश्य उपस्थित हो गया, चारों ओर हाहाकार मच गया। तब भगवान् के आदेश से अर्जुन ने दोनों अस्त्रों को खींचकर शान्त कर दिया और अश्वत्थामा को रस्सी में बाँधकर अपने डेरे पर ले गये।

मार्ग में भगवान् ने अश्वत्थामा के अक्षम्य अपराध को देखते हुए उसका वध कर डालने को कहा, किन्तु अर्जुन ने उसे गुरुपुत्र जानकर ऐसा नहीं किया। द्रौपदी ने जब पशुतुल्य रस्सी से बँधे अश्वत्थामा को देखा, तब उसे दया आ गयी। वह उसे प्रणाम कर बोली—

उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती।
मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥४३॥

इसे छोड़ दो, छोड़ दो, गुरुपुत्र है। यह सर्वदा हमारे लिए वही पूज्य गुरु तुल्य है, जिसकी कृपा से तुमने धनुर्विद्या सीखी, सम्पूर्ण अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। पुत्ररूप में यह साक्षात् द्रोणाचार्य ही विद्यमान हैं। इसे मत मारो छोड़ दो। मैं तो पुत्र शोक से रोती ही हूँ, अब इसकी माता को मेरी तरह पुत्र-शोक से न रुलाओ।

सूतजी बोले—हे शौनक! द्रौपदी के इन वचनों का युधिष्ठिर आदि सभी ने अनुमोदन किया, किन्तु भीम को यह बात सहन न हुई। उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा इस दुष्ट का तो वध करना ही श्रेयस्कर है। 'तस्य श्रेयान् वधः स्मृतः'।

यह कहकर वह स्वयं अश्वत्थामा को मारने चले, उधर द्रौपदी उसे बचाने चली। तब चार भुजा धारण कर भगवान् ने दो भुजाओं से भीम को और दो से द्रौपदी को रोका और अर्जुन से कहा—हे अर्जुन!

---

[१] इस प्रसंग में वामनपुराण की एक छोटी-सी कथा है—विद्युन्माली नाम का एक राक्षस भगवान् रुद्र का बड़ा भक्त था। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् रुद्र ने उसे सुवर्ण का एक विमान दिया था। विद्युन्माली ने विमान में बैठकर सूर्य के पीछे-पीछे भ्रमण करते हुए विमान की प्रभा से रात्रि को विलुप्त कर दिया, यह देखकर सूर्य ने अपने तेज से विमान को गलाकर पृथ्वी पर गिरा दिया। जब यह वृत्त भगवान् रुद्र को ज्ञात हुआ, तब वे अत्यन्त कुपित हुए। कुपित रुद्र के समीप आने पर सूर्य भय के मारे भागे, रुद्र की क्रूर दृष्टि से जलते हुए सूर्य वाराणसी में आ गिरें और लोलार्क नाम से विख्यात हुए।

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ।
मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥५३॥

अधम ब्राह्मण भी वधयोग्य नहीं है, किन्तु आततायी शस्त्रधारी वध योग्य है, ये दोनों बातें मैंने ही कही हैं। इनका यथायोग्य पालन करो और भी उसे करो जिससे द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, वह असत्य न हो और जो भीमसेन को भी न अखरे। द्रौपदी को तथा मुझको भी प्रिय हो। अर्जुन ने सहसा प्रभु का अभिप्राय जानकर अश्वत्थामा के केशसहित मणि खड्ग से काटकर निकाल ली और धक्का देकर उसे अपने शिविर से बाहर कर दिया। शास्त्र में अधम ब्राह्मण का यही वध कहा गया है, प्राणदण्ड नहीं। इस तरह सभी के वचनों की रक्षा हो गयी। अश्वत्थामा के प्राण भी बच गये और वध भी हो गया।

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥५७॥

मुण्डन कर देना, धन छीन लेना तथा स्थान से निकाल देना, यही अधम ब्राह्मणों का वध कहा गया है, प्राणदण्ड नहीं। बाद में पुत्र-शोक से व्याकुल पाण्डवों ने अपने मृत पुत्रों के दाहसंस्कार आदि पारलौकिक कर्म किये।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मास्त्र से परीक्षित् की रक्षा, कुन्तीकृत श्रीकृष्ण-स्तुति और युधिष्ठिर का शोक

सूतजी बोले—हे शौनक! मृत बन्धुओं को 'जल' देने के लिए पाण्डव श्रीकृष्ण तथा गान्धारी, कुन्ती आदि स्त्रियों के साथ गंगातट पर गये। वहाँ उन्होंने सबको जल दिया और विलाप कर गंगा के पवित्र जल में स्नान किया। वहाँ बैठे शोक-सन्तप्त धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, विदुर, गान्धारी, कुन्ती आदि को श्रीकृष्ण ने प्राणियों में काल की गति को बलवती बतलाते हुए नाना दृष्टान्तों से समझाया। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को राज्य दिलाकर तीन अश्वमेध यज्ञ कराये, जिनसे युधिष्ठिर का सुयश सब दिशाओं में फैल गया। तदनन्तर सात्यकि और उद्धव को साथ लेकर श्रीकृष्ण द्वारका को जाने का विचार कर रथ पर बैठ ही रहे थे कि सामने से आती उत्तरा दिखायी दी, जो रोती हुई दौड़ी आ रही थी—

गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन् द्वारकां रथमास्थितः ।
उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥८॥

उसने कहा—हे भगवन्! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। यह देदीप्यमान तीखा बाण मेरी ओर आ रहा है। यह मुझे भले ही भस्म कर दे, इसकी मुझे चिन्ता नहीं, किन्तु मेरा गर्भ न गिरा सके। **'कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम्'**। सूतजी कहते हैं—हे शौनक! उत्तरा के ऐसे करुण वचन सुनकर एवं यह अस्त्र जगत् को पाण्डव शून्य करने के लिए अश्वत्थामा द्वारा छोड़ा गया है, यह जानकर भगवान् ने तुरन्त योग द्वारा उसके गर्भ में प्रवेश किया और सुदर्शन चक्र से उसके गर्भ की रक्षा की। इधर पाण्डवों ने भी पृथक्-पृथक् पाँच बाणों को अपनी ओर आते देखकर उसके निवारणार्थ अपने-अपने ब्रह्मास्त्र ग्रहण किये, किन्तु उनके सन्धान में प्रयोग का विलम्ब होता देखकर, प्रतिज्ञापूर्वक न्यस्तशस्त्र होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा को भंगकर, पाण्डवों की भी सुदर्शन चक्र से रक्षा की और अपना भक्तवत्सल नाम सार्थक किया। यद्यपि ये ब्रह्मास्त्र अमोघ थे, फिर भी वैष्णव तेज सुदर्शन चक्र से वे सर्वथा शान्त हो गये। **'वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद् भृगूद्वह'**।

इसके पश्चात् भगवान् जब जाने के लिए पुनः उद्यत हुए, तब कुन्ती आकर भगवान् की स्तुति करती हुई बोली—

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥२४॥

हे भगवन्! बड़ी-बड़ी आपत्तियों से आपने हम लोगों की रक्षा की। विष भरे मोदकों से, लाक्षा भवन की दाहसे, वन में देखे गये हिडिम्ब आदि भीषण दैत्यों से, द्यूत सभा से, वन में प्राप्त हुए नाना प्रकार के क्लेशों से तथा संग्राम में अनेक महारथियों के दिव्यास्त्रों से आपने ही हमारा त्राण किया। कहाँ तक कहूँ, इस समय अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से भी आपने ही हमें बचाया, आपको बार-बार नमस्कार है। मैं आपकी शरण में हूँ। मेरी एक प्रार्थना है, कृपया उसे स्वीकार करें। वह यह है—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥२५॥

भगवन्! मैं जहाँ कहीं भी रहूँ, मुझे निरन्तर विपत्तियाँ प्राप्त होती रहें। कारण उन विपत्तियों में मुझे आपका दर्शन होता रहेगा, जिससे दुःखमय संसार सदा के लिए निवृत्त हो जायेगा। हे योगेश्वर! आपकी लीला अपार है। आपके अवतार के विषय में भी विद्वान् नाना प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं कोई कहते हैं युधिष्ठिर की कीर्ति के लिए आपका अवतार हुआ है, कोई कहते हैं दैत्यों के वध के लिए आपका अवतार हुआ है, तो कोई पृथ्वी का भार उतारने के लिए आपका अवतार मानते हैं। बात कुछ भी हो, पर आपके निर्मल चरित्र जो सुनते हैं या सुनाया करते हैं, ये तो संसार से विमुक्त हो ही जाते हैं और आपके चरणों तक अवश्य पहुँच जाते हैं। आज आप हम लोगों को छोड़कर जा रहे हैं, आपके सिवा हमारा कोई दूसरा रक्षक नहीं है। आप ऐसी कृपा

करें कि मेरा मन आप में ही सदा लगा रहे। मैं आपके मंगलमय दिव्य नामों को स्मरण कर बार-बार प्रणाम करती हूँ, मुझपर आपकी दया सदा बनी रहे। इस प्रकार कुन्ती भावपूर्ण २६ श्लोकों से स्तुतिकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण को निहारती हुई चुप हो गयीं। सूतजी कहते हैं—हे शौनक! इस प्रकार कुन्ती की प्रेममयी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् मुस्कराते हुए बोले बुआ जी! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, यह कहकर श्रीकृष्ण फिर हस्तिनापुर लौट आये। इधर युधिष्ठिर की विलक्षण दशा थी। वह अपने सुहृद् और बन्धुओं के वध का चिन्तन करते हुए बड़े मोहपाश में बँध गये थे। वे कहा करते थे मैंने इस नश्वर शरीर के लिए कितनी अक्षौहिणी सेनाओं का नाश कर डाला।

पारक्यस्यैव देहस्य बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः[1]॥४८॥

मेरी क्या गति होगी, करोड़ों वर्षों तक भी मेरा नरक से उद्धार होना सम्भव नहीं है। व्यासादि महर्षियों ने तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने बहुत से इतिहासों द्वारा युधिष्ठिर को समझाया, किन्तु उनका शोक निवृत्त नहीं हुआ। कारण भगवान् श्रीकृष्ण अपने अनन्य भक्त भीष्म-पितामह की महिमा लोक में अभिव्यक्त कराने के निमित्त उनके मुख से निकले उपदेशामृत से उनका मोह निवृत्त कराना चाहते थे। इसलिए व्यासादि महर्षियों के वचनों से उनका मोह निवृत्त नहीं हुआ—**नाऽबुध्यत शुचार्पितः।**

एक दिन महाराज युधिष्ठिर नित्य की भाँति भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने उनके निवासस्थान पर गये, वहाँ उन्होंने भगवान् को नेत्र बन्दकर ध्यानमग्न देखा, कुछ देर बाद जब भगवान् ने नेत्र खोले, तब युधिष्ठिर ने प्रणाम कर पूछा—भगवन्! आप किसका ध्यान कर रहे थे? यह सुनकर भगवान् के नेत्रों में अश्रु झलक आये, उन्होंने उदास होकर कहा—राजन्! शरशय्यापर लेटे भीष्म बड़े ही आर्त भाव से मेरा ध्यान कर रहे थे। उनसे आकृष्ट होकर मैं उन्हीं के पास चला गया था। अब भरतवंशी सूर्य अस्त होने ही वाला है। आपको जो कुछ सीखना हो, उनसे सीख लीजिए।

महान् योद्धा परम ज्ञानी मेरे अनन्य भक्त भीष्म के तुल्य धर्म का तत्त्व जानने वाला दूसरा नहीं है। उनके समीप जाकर आप समस्त धर्मों का श्रवण करें। मेरा विश्वास है कि उनके उपदेश से आपके सब सन्देह निवृत्त हो जायेंगे।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त।।

❖

---

१. अक्षौहिणी सेना का प्रमाण—

अक्षौहिण्याः प्रमाणं तु खागाष्टैकद्विकैर्गजैः ।
रथैरेतैर्हयैस्त्रिघ्नैः पञ्चघ्नैश्च पदातिभिः ॥

२१८७० गज, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पदाति सबको मिलाकर २१८७००।

नवाँ अध्याय

भीष्मोपदेश से युधिष्ठिर की शोक-निवृत्ति, भीष्मकृत श्रीकृष्ण-स्तुति और भीष्म का महाप्रयाण

सूतजी कहते हैं—हे शौनक!

इति भीतः प्रजाद्रोहात् सर्वधर्मविवित्सया ।
ततो विनशनं प्रागाद् यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥१॥

इस प्रकार प्रजा का नाश करने से भयभीत युधिष्ठिर सब धर्मों को जानने की इच्छा से कुरुक्षेत्र गये। जहाँ भीष्म पितामह स्वर्ग से च्युत देवता के समान शरशय्या पर पड़े थे। युधिष्ठिर के पीछे उनके भाई भी रथ पर चढ़कर वहाँ पहुँचे। नारद, व्यास आदि बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि भी भीष्मजी के दर्शनार्थ वहाँ गये। अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने भीष्म पितामह को प्रणाम किया। भीष्म जी ने उपस्थित सभी का मन ही मन पूजन किया। लीला विग्रह भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन भी उन्होंने बड़े भक्ति भाव से अपने हृदय में ही किया। जब पाण्डवों पर उनकी दृष्टि पड़ी, तब उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली और बोले—आप लोग बड़े धर्मात्मा हैं, आप लोगों के साथ बड़ा अन्याय हुआ, बड़ा कष्ट दिया गया। जहाँ पर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, गाण्डीवधारी अर्जुन और साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण सहायक विद्यमान हों, वहाँ आपत्ति का होना बड़ा आश्चर्य है, पर काल की गति का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता और न उनका विधान कोई जान ही सकता है। बड़े-बड़े विद्वानों को भी इस विषय में मोह हो जाता है। संसार के सुख-दुःख सब दैव के अधीन हैं, ऐसा विचार कर आप प्रजा का पालन करें। यह जो सामने भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हैं, उनके प्रभाव को भगवान् शिव, कपिल, नारद कुछ ही लोग जानते हैं। यह तुम्हारे लिए सारथि, मन्त्री, दूत आदि सब कुछ बने। यद्यपि इनमें विषमता नहीं है, फिर भी हे राजन्! इनके जो अनन्य भक्त हैं, उनपर इनकी कैसी कृपा रहती है, यह प्रत्यक्ष देखो, मेरे प्राणत्याग के समय दर्शन देने को स्वयं उपस्थित हो गये हैं—

तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम् ।
यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥२२॥

भक्ति से इनमें मन लगाकर वाणी से इनके नाम का कीर्तन करता हुआ जो शरीर त्यागता है, वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। ये बड़े ही भक्तवत्सल हैं, मेरी हार्दिक इच्छा है, जब तक मेरा शरीर न छूटे, तब तक इसी चतुर्भुज स्वरूप का मुझे दर्शन होता रहे।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! उसी समय युधिष्ठिर ने शरशय्या पर लेटे भीष्म से अपने मन की शान्ति के लिए विविध धर्मों को पूछा। भीष्म जी ने बहुत-से आख्यानों एवं इतिहासों द्वारा वर्णधर्म, आश्रमधर्म, भगवद्धर्म, स्त्रीधर्म आदि का उपायों के सहित गम्भीर विवेचन किया और कहा—हे राजन्! तुम अपने को कर्ता मानकर क्यों शोकाकुल होते हो। भगवदिच्छा के बिना जब एक पत्ता तक नहीं हिल सकता, तब क्या तुम इन अक्षौहिणी सेनाओं का संहार करने वाले हो सकते हो? तुम्हारा सामर्थ्य ही क्या है? स्वयं भगवान् ने श्रीमुख से गीता में जो कहा है, उसे भी तुम भूल रहे हो। उसका स्मरण करो, भगवान् ने कहा है—

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हताँस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥

द्रोण, भीष्म आदि सेनाओं के समस्त वीरों को मैंने ही मारा है। तुम व्यर्थ शोक क्यों करते हो इत्यादि कहकर समझाया, जिससे युधिष्ठिर का शोक निवृत्त हुआ और उनके मन को पूर्ण शान्ति मिली। धर्म का उपदेश करते हुए जब उत्तरायण का समय आया, तब भीष्म ने अपनी वाणी रोककर सामने खड़े चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन करते हुए उनमें अपना मन लगा दिया।

तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपुरुषे।
कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे[1] पुरः स्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत्॥३०॥

इस विशुद्ध धारणा से उनकी सब वासनाएँ और भगवान् के कृपाकटाक्ष से शस्त्रों की पीड़ा भी दूर हो गयी। वे शरीर का त्याग करते हुए प्रसन्नचित्त से भगवान् की स्तुति करने लगे।

भीष्म जी बोले—हे भगवन्! आप लीला करने के लिए ही प्रकृति का आश्रय लेते हैं, जिससे संसार की परम्परा चलती है। इस समय आप मेरे सामने उपस्थित हैं। मेरे पास देने को कुछ नहीं है। आपके चरणों में मैं अपनी मति ही भेंट कर रहा हूँ। आप इसे अपनायें। इस समय आपका श्यामल वर्ण अत्यन्त शोभित हो रहा है। इसमें पीताम्बर की शोभा अपूर्व है। मुख कुछ केशों से ढका हुआ है, आपके इसी रूप में मेरा अनुराग बना रहे। हे भगवन्! संग्राम में उड़ रही धूल से जब आपके केश कुछ मटमैले हो गये थे, परिश्रम से आपके मुख पर स्वेदबिन्दु झलक आये थे, मेरे तीक्ष्ण बाणों से आपकी त्वचा विदीर्ण सी प्रतीत हो रही थी एवं कवच भी टूटा सा मालूम पड़ रहा था, आपके उसी दिव्य रूप में मेरा मन लगा रहे। हे भगवन्! रणभूमि में अर्जुन के कहने पर दोनों सेनाओं के बीच में रथ खड़ा कर आपने मेरे सैनिकों की आयु का हरण कर अर्जुन का सखा भाव चरितार्थ किया था। जब बन्धुओं को देखकर वह युद्ध

---

[1] यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण द्विभुज थे, तथापि भीष्म के उपास्य चतुर्भुज होने के कारण उन्हें उसी रूप में दर्शन हो रहा था।

से विमुख हुआ, तब गीता के उपदेश से उसकी कुमति का हरण कर आपने उससे क्षत्रिय-धर्म का पालन कराया, ऐसे आपके चरणों में मेरी रति हो।

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥३७॥

भीषण संग्राम में मेरे तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों की सेना का संहार होने पर आप से वह संसार देखा नहीं गया। तब आप अत्यन्त कुपित होकर अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर भी मेरी प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए हाथ में रथचक्र लेकर रथ से युद्ध भूमि में कूद पड़े और मुझे मारने दौड़े, यह देख पृथ्वी काँप उठी। इस आवेश में आपका पीत पट गिर पड़ा। चारों ओर हाहाकार मच गया। अर्जुन आपको पकड़ने दौड़े। मैं युद्ध से विरत होकर आपकी दिव्य छवि निहारने लगा। आपकी वह मूर्ति मेरे हृदय से हटती नहीं, उसी में मेरी गति हो। हे भगवन्! मैं आपकी भक्तवत्सलता तथा दयालुता का क्या वर्णन करूँ। हाथ में चाबुक लिए घोड़ों की लगाम पकड़े जब आप अर्जुन का रथ हाँक रहे थे, उस समय आपका दर्शन कर जो युद्ध में मारे गये, वे आपके दिव्य स्वरूप को प्राप्त हो गये। हे भगवन्! मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो रहा है। आप मुझे अपनायें। इस प्रकार भीष्म जी ने ग्यारह पुष्पिताग्रा छन्दों से पुष्पाञ्जलि देते हुए भगवान् की स्तुति की।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! तदनन्तर भीष्म के शरीर से एक दिव्य ज्योति निकली, जो बिजली की तरह चमकती हुई सबके देखते-देखते भगवान् में लीन हो गयी—**सोऽन्तःश्वास उपारमत्।**

भीष्म पितामह के प्रयाण के साथ आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगी। देवता पुष्पवृष्टि करने लगे। युधिष्ठिर ने दुःखित होकर उनका दाह संस्कार किया। ऋषि-मुनि भगवान् को प्रणाम कर अपने-अपने आश्रमों को चले गये। युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौट आये और सबको सान्त्वना देकर धृतराष्ट्र की आज्ञा से राज्य का पालन करने लगे।

चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥४९॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

दसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक, भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारकागमन तथा मार्ग में उनका गुणगान

शौनकजी बोले—हे सूत! राजा युधिष्ठिर ने आततायी राजाओं का वधकर राज्य प्राप्त होने पर क्या किया?

सूतजी ने कहा—हे शौनक! भगवान् श्रीकृष्ण ने परीक्षित् की रक्षा कर पाण्डववंश को अंकुरित किया एवं युधिष्ठिर का राज्याभिषेक कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा युधिष्ठिर भीष्म के उपदेश और भगवान् की संमति से पृथ्वी का शासन करने लगे। उनके राज्य में समय पर वर्षा होती थी। धनधान्यादि से पूर्ण पृथ्वी कामधेनु बन गयी थी। गौओं के स्तनों से सर्वदा दूध बहा करता था। मनुष्यों को किसी प्रकार का क्लेश न था। राज्य कार्य भली-भाँति चल रहा था। भगवान् भी अपने बन्धुओं के आग्रह से कुछ दिन हस्तिनापुर में रहे। पश्चात् अपने सब बन्धुओं से मिलकर वे द्वारका जाने के लिए रथपर सवार हुए। उनके वियोग से सारी प्रजा व्याकुल हो उठी। भगवान् ने सबको आश्वासन देकर यात्रा प्रारम्भ की। जब भगवान् जाने लगे, तब अर्जुन ने छत्र ग्रहण किया एवं उद्धव और सात्यकि ने व्यजनचामर डुलाये। मार्ग में नगर की स्त्रियाँ पुष्पों की वृष्टि करतीं, आपस में भगवान् की अतिमनोहर चर्चा चलातीं और कहतीं, जो निर्गुण पुरुष अपने स्वरूप में निवास करते हैं, वही हमारे भाग्य से सगुण होकर यहाँ पधारे हैं। इन्हीं से जगत् की सृष्टि, पालन और संहार होता है।

इन्हीं के श्रीमुख से वेद निकले हैं। योगी जन इन्हीं के स्वरूप का ध्यान करते हैं। जब दुष्ट राजा अधर्म का शासन चलाते हैं, तब यही युग-युग में नाना रूप धारण कर धर्म की रक्षा करते हैं।

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलमहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥

अहो आज यदुओं का कुल प्रशंसा का भाजन बन गया। मथुरा भी आज पुण्यतम हो गयी। भगवान् अपने जन्म से तथा अपने सुकोमल चरण कमलों के संचरण से दोनों को कृतार्थ कर रहे हैं। द्वारका ने भी आज स्वर्ग को मात कर दिया एवं भारत भूमि की पुण्य कीर्ति बढ़ा दी है, जहाँ की जनता मन्द मुस्कानयुक्त भगवान् श्रीकृष्ण के सुन्दर मुख कमल को भक्ति भाव से नित्य निहारा करती है। दया कर भगवान् हमारी भी सेवा ग्रहण करें। इस प्रकार गुणानुवाद करती स्त्रियों को सस्मित दृष्टिपात से आह्लादित करते हुए भगवान् आगे बढ़े—

निरीक्षणेनाभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरिः ॥३१॥

मार्ग में बहुत से देशों का अतिक्रमण करते, सबकी पूजा ग्रहण करते, भगवान् सायंकाल, जब सूर्य अस्ताचलगामी हो चुके थे, द्वारका के समीप पहुँचे।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश तथा सबसे यथायोग्य मिलन

सूतजी कहते हैं—हे शौनक!

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान् स्वकान्।
दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥१॥

द्वारका के समीप पहुँचकर श्रीकृष्ण भगवान् ने जनता के वियोगजन्य विषाद को शान्त करते हुए अपना शंख बजाया। शंख की ध्वनि सुनकर सब लोग भगवान् का स्वागत करने के लिए आगे बढ़े। भगवान् श्रीकृष्ण के समीप पहुँच कर लोगों ने नाना प्रकार की भेंट उनको समर्पित की और गद्‌गद वाणी से कहा—हे भगवन्! हम आपके चरण कमलों में प्रणाम करते हैं। आप ही हमारे माता, पिता, सुहृद् और बन्धु हैं। आपने ही हमें सनाथ किया है, जिस दिन से आप हमें छोड़कर हस्तिनापुर चले गये, तबसे हमारा एक-एक क्षण करोड़ों वर्षों के समान व्यतीत हुआ है। आप सर्वदा ही हमारे सामने बने रहें, ऐसी हमारी प्रार्थना है। प्रजा की स्नेहमयी वाणी सुनकर भगवान् ने उन पर कृपादृष्टिपात द्वारा अनुग्रह कर पुरी में प्रवेश किया। पुरी की शोभा अनुपम थी। सड़कें गुलाब और केवड़ें के जल से सींची थीं। उन पर फल, पुष्प और दूर्वा के अंकुर बिखरे हुए थे। प्रत्येक घर पर केलों के खम्भे, माङ्गलिक कलश और प्रज्वलित दीपकों की कतारें शोभा कर रही थीं। धूप की सुगन्ध नगर में चारों ओर फैल रही थीं। सम्पूर्ण नगर बन्दनवार, पताकाओं और झण्डियों से सुसज्जित था। पुरी की सजावट देखकर भगवान् प्रसन्न हुए। वसुदेव, अक्रूर, प्रद्युम्न, साम्ब आदि वीर गजेन्द्र को आगे कर हाथों में पुष्पमाला, आदि माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर श्रीकृष्ण को लेने के लिए आगे बढ़े। श्रीकृष्ण ने प्रणाम, आलिङ्गन, करस्पर्श, सम्मित निरीक्षण आदि के द्वारा सभी नागरिकों तथा बन्धुबान्धवों का यथायोग्य सम्मान किया। भगवान् के राजमार्ग में पहुँचने पर अटारियों पर चढ़ी हुई महिलाएँ पुष्पवृष्टि करती हुई भगवान् की अपूर्व छवि निहारती थीं, किन्तु उनके नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे।

अपने दिव्य दर्शनों से सभी को आह्लादित करते हुए भगवान् स्वागतार्थ उपस्थित सब लोगों के साथ अपने प्रासाद के निकट पहुँचे। साथ चल रही जनता को ससम्मान विदाकर भगवान् वहाँ से माता-पिता के भवन में गये। वहाँ पिता तथा माताओं को

चरणस्पर्श पूर्वक प्रणाम किया। माताओं ने बड़े स्नेह से भगवान् को गोद में बैठाकर प्यार किया। तदनन्तर भगवान् अपनी पत्नियों के भवन में गये। भगवान् का दर्शन कर पत्नियों को अपार हर्ष हुआ और वे अपने-अपने पुत्रों के साथ भगवान् से मिलीं। आनन्दातिरेक से उनके नेत्रों में आँसुओं की झड़ी लग गयी। जिन चरणों में चला लक्ष्मी भी अचल होकर निवास करती हैं, प्रतिक्षण अभिनव दिखायी देने वाले भगवान् के उन चरणों को वे छोड़ना नहीं चाहती थीं। भगवान् ने मुस्कराते हुए सबको सान्त्वना देकर उनका वियोगजनित सन्ताप दूर किया। जिन दिव्य महिलाओं के अनुपम सौन्दर्य से मोहित काम के भी हाथ से धनुष गिर पड़ा, वे दिव्य नारियाँ भगवान् के मन में तनिक भी क्षोभ उत्पन्न न कर सकी। यह भगवान् का दिव्य ऐश्वर्य है, इसे विरला ही समझ सकता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का पहला विश्राम)

◆

बारहवाँ अध्याय

महाराज परीक्षित् का जन्म और उनकी जन्मकुण्डली का फल

शौनकजी बोले—हे सूत! अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से उत्तरा का गर्भ नष्ट हो गया था, भगवान् ने फिर उसे जीवित कर दिया। उन परीक्षित् का जैसा जन्म, जैसे कर्म और जिस प्रकार मोक्ष हुआ, वह हमको बतलायें। सूतजी ने कहा—हे शौनक! राजा युधिष्ठिर पिता के समान प्रजा का पालन करते थे, किन्तु चित्त उनका सदा भगवान् में ही लगा रहता था। इसलिए उन्हें कोई पदार्थ अच्छा नहीं लगता था। जैसे भूखे को माला, फूल, चन्दन आदि नहीं भाते। माता के गर्भ में परीक्षित् जब ब्रह्मास्त्र के तेज से जल रहे थे, तब वहाँ उन्होंने भगवान् को देखा, जो अंगूठे के बराबर थे, कुण्डल और मुकुट पहने श्यामवर्ण के बड़े ही सुन्दर थे। भक्तपीड़ा देखकर क्रोधवश जिनके नेत्र लाल हो रहे थे। वे चक्र के समान गदा घुमाते परीक्षित् की रक्षा कर रहे थे। जब अस्त्र का तेज शान्त हो गया, तब परीक्षित् के देखते-देखते भगवान् अन्तर्धान हो गये। फिर शुभ लग्न एवं मुहूर्त में, जब सभी ग्रह अनुकूल थे, तभी परीक्षित् का जन्म हुआ। महाराज युधिष्ठिर ने पुरोहित धौम्य और कृपाचार्य द्वारा स्वस्तिवाचन तथा पुण्याहवाचन पूर्वक बालक का जातकर्म संस्कार कराया। महाराज युधिष्ठिर ने बड़ी उदारता से ब्राह्मणों को सुवर्ण, गौ, पृथ्वी और प्रचुर अन्न दिया। दैवज्ञों ने बालक का भविष्य बतलाया कि भगवान् विष्णु के द्वारा 'रात' रक्षित होने के कारण इस बालक का नाम विष्णुरात[१] (परीक्षित्) होगा। यह इक्ष्वाकु के समान प्रजापालक, राम के समान

---

[१] विष्णुना रातः विष्णुरातः।

सत्यप्रतिज्ञ, शिवि के समान शरणागत रक्षक, भरत के समान विविध यज्ञों का कर्ता, अग्नि के समान असह्यतेज, समुद्र के समान गम्भीर, सिंह के समान महापराक्रमी, पृथ्वी के समान क्षमावान्, रन्तिदेव के समान उदार, ययाति के समान धार्मिक, बलि के समान धैर्यवान् तथा प्रह्लाद के समान भगवद्भक्त होगा। गोरूपी पृथ्वी तथा वृषरूपी धर्म के रक्षार्थ कलि का निग्रह करेगा। शमीक-पुत्र शृङ्गी द्वारा प्रेरित तक्षक से अपनी मृत्यु सुनकर राजपाट का परित्याग कर गङ्गा तट का आश्रय लेगा और वहाँ परम भागवत श्री शुकदेव जी से ज्ञान लाभ कर परम पद को प्राप्त होगा—

तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ।
प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः ॥२७॥

यह कहकर दैवज्ञ ब्राह्मण पुष्कल दक्षिणा तथा पूजा-सत्कार पाकर अपने घर चले गये। इधर बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। राजा युधिष्ठिर ने ज्ञातियों के वध का प्रायश्चित करने के लिए अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया, किन्तु कर और प्रजादण्ड के सिवा अन्य मार्ग से धन मिलना सम्भव न देखकर उन्हें चिन्ता हुई। भगवान् की प्रेरणा से युधिष्ठिर के भाई आदि उत्तर दिशा से सुवर्ण-पात्रादि के रूप में प्रचुर शुद्ध धन ले आये, जिसे राजा मरुत्त के यज्ञ में दक्षिणा से तृप्त होने के कारण ब्राह्मण छोड़ गये थे। उसी विशुद्ध धन से राजा ने तीन अश्वमेध यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन किया—

वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिम् ॥३४॥

इससे बन्धुओं के वध का प्रायश्चित हो जाने से उनकी आत्मा को बड़ी शान्ति मिली।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

तेरहवाँ अध्याय

विदुरके उपदेश से धृतराष्ट्र का गान्धारी के साथ हिमालय-गमन

सूतजी कहते हैं—हे शौनक!

विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ।
ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरं तयावाऽप्तविवित्सितः ॥१॥

जब महाभारत संग्राम आरम्भ होने वाला था, तब विदुर जी दुर्योधन के दुर्व्यवहार से खिन्न होकर तीर्थयात्रा करने चले गये थे। वहाँ मैत्रेय से उन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त किया। युद्ध समाप्त होने पर वह लौट कर फिर हस्तिनापुर आये। उन्हें आया देखकर राजा युधिष्ठिर और उनका सारा परिवार बड़ा प्रसन्न हुआ। प्रेम से सबके नेत्रों से

अश्रुधारा बहने लगी। राजा ने भोजनादि से उनका सत्कार कर पूछा—चाचा जी! आप हमें छोड़कर चले गये थे। आपने हमें बड़ी-बड़ी आपत्तियों से बचाया था। क्या प्रवास में कभी आपको हमारा स्मरण आता था? तीर्थयात्रा में आपने शरीर का निर्वाह कैसे किया? किन-किन तीर्थों का आपने सेवन किया? आप सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थस्वरूप हैं। अच्छा, अब आप कृपया यह बतावें कि हमारे परमहितैषी यदुवंशी द्वारका में सुखपूर्वक तो हैं? आपने कहीं उन्हें देखा था? उनका कुशल वृत्त सुना है। यह सब सुनकर विदुर जी ने सारा वृत्तान्त वर्णन किया, किन्तु यदुकुल के क्षयका वर्णन नहीं किया, कारण उसे सुनकर पाण्डवों को महान् क्लेश होता।

विदुर साक्षात् यम के अवतार थे। माण्डव्य ऋषि के शाप से सौ वर्ष तक दासीपुत्र होकर भूलोक में रहे। उतने काल तक उनका कार्य अर्यमा नामक सूर्य करते रहे।

माण्डव्यशापाद् भगवान् प्रजासंयमनो यमः।
भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात्॥

तदनन्तर वे अपने भाई के कल्याणार्थ तत्त्वज्ञान का उपदेश करते हुए कुछ काल तक वहीं रह गये। इनके आ जाने से राजा युधिष्ठिर भी प्रेम से राज्य का पालन करने लगे। एक दिन एकान्त में विदुर जी ने राजा धृतराष्ट्र से कहा—हे राजन् आपको मृत्यु भय उपस्थित होने वाला है, जिसकी संसार में कोई प्रतिक्रिया नहीं हैं। जिन पाण्डवों को आपने अग्नि में जलाया, विष दिया, सभा में जिनकी पत्नी द्रौपदी को अपमानित किया, उनके दिये हुए अन्न से संरक्षित इस जीवन से क्या लाभ? आप शीघ्र घर से निकल जायँ—

यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान्।
हृदि कृत्वा हरिं गेहात् प्रव्रजेत् स नरोत्तमः॥२६॥

जो मनुष्य स्वतः अथवा दूसरे के उपदेश से वैराग्य प्राप्त कर हृदय में भगवान् का ध्यान करता हुआ घर से निकल जाय, वह उत्तम कहलाता है।

इसलिए आप किसी से कुछ कहे बिना ही उत्तर दिशा की ओर चले जायँ। आगे का समय बड़ा ही भयंकर आने वाला है। उसमें मनुष्य गुणहीन और पापी हो जायेंगे। इन शब्दों से धृतराष्ट्र के हृदय में कुछ ज्ञान हुआ और सबका स्नेह छोड़कर रात्रि में घर से निकलकर वे हिमालय चले गये। साथ में उनकी पतिव्रता पत्नी गान्धारी भी चली गयीं। प्रातःकाल युधिष्ठिर नित्य की भाँति अपने माता-पिता को प्रणाम करने उनके भवन में गये। उन्हें वहाँ न पाकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उद्विग्न होकर वहाँ बैठे संजय से पूछा—हे संजय! हमारे नेत्रहीन माता-पिता यहाँ नहीं हैं। कहाँ चले गये हैं? क्या तुम जानते हो? पिता पाण्डु के मर जाने पर उन्होंने सब प्रकार से हमारी रक्षा की थी। हमें छोड़कर वे कहा चले गये। मुझ अपराधी के कारण कहीं गङ्गा जी में डूब तो नहीं गये? यह कहते दुःखित हो वे रोने लगे। सञ्जय ने कहा—हे राजन्! मुझे कुछ भी

पता नहीं कि वे कहाँ गये। उसी समय देवर्षि नारदजी तुम्बुरु गन्धर्व के साथ वहाँ आ पहुँचे।

अथाजगाम भगवान् नारदः सहतुम्बुरुः ॥३७॥

युधिष्ठिर ने नारद का पूजन बड़े दुःखित मन से किया और रोते हुए कहा—देवर्षे! हमारे माता-पिता न मालूम कहाँ चले गये हैं। आप उनका पता बतायें। नारद जी बोले—हे राजन्! शोक मत करो। सारा जगत् ही काल के अधीन है। वह मनुष्यों का संयोग वियोग कराता रहता है। जो स्वयं ही काल से ग्रस्त है, वह भला दूसरों की क्या रक्षा कर सकता है। मेरे बिना वह कैसे जीवित रहेंगे, यह चिन्ता तुम छोड़ दो। धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी के साथ हिमालय में ऋषियों के आश्रम पर निवास कर रहे हैं। वहाँ वे कुछ भी खाते नहीं। केवल जल पीकर रहते हैं। उन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है। इस समय वे समाधि में स्थित हैं। तुम उनके मार्ग में विघ्नकारक न बनो। आज से पाँचवें दिन वे शरीर छोड़कर भगवान् के लोक को चले जायेंगे। उनकी पत्नी भी उनके साथ ही सती हो जायेंगी। विदुर भी इस समय वहीं पर हैं। वे भी तीर्थयात्रा में चले जायेंगे। तुम अब किसी प्रकार की उनकी चिन्ता न कर राज्य का पालन करो। नारद जी यह कहकर वहाँ से देवलोक को चले गये। नारद जी के वचन सुनकर युधिष्ठिर ने शोक का परित्याग किया और राज्य-पालन करने लगे।

युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाजहाच्छुचः ॥५९॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

चौदहवाँ अध्याय

विविध अपशकुनों से युधिष्ठिर को चिन्ता तथा अर्जुन का द्वारका से प्रत्यागमन

सूतजी बोले—हे शौनक! राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण और अपने बन्धुओं का समाचार जानने के लिए अर्जुन को द्वारका भेजा था, किन्तु सात मास बीत गये, वे लौटकर नहीं आये। इधर युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के अपशकुन दिखायी देने लगे। चिन्तित होकर युधिष्ठिर ने एक दिन भीम को निकट बुलाकर कहा—भाईजी! काल की गति बड़ी भयंकर मालूम पड़ती है। बार-बार मेरे वाम अङ्ग फड़क रहे हैं। हृदय में कम्पन हो रहा है। कुत्ता हमारे सामने मुख करके रोता है। उल्लू भी दिन में भयंकर शब्द करते हैं। मेघों से खून की वर्षा होती है। सूर्य की कान्ति मलिन हो गयी। ग्रह आपस में लड़ रहे हैं। चारों ओर अन्धकार करती धूल भरी भीषण आँधी चल रही है। निरभ्र वज्रपात होता है, बार-बार भूकम्प होते हैं, अग्नि घृत डालने पर भी जलती

नहीं, बछड़े दूध नहीं पीते एवं गौएँ आँसू बहाती हैं। नदियों में असमय बाढ़ आ गयी है। मनुष्यों के मन विकृत हो गये हैं। देव प्रतिमाएँ रोती-सी प्रतीत होती हैं, उनके श्रीविग्रह से पसीना टपकता है, वे स्थान से सहसा गिर भी पड़ती है एवं नगर, ग्राम तथा आश्रम उजड़ से गये हैं। कहाँ तक कहूँ चारों ओर भयंकर दृश्य दिखायी पड़ रहे हैं। मालूम नहीं, इन महोत्पातों से क्या अनिष्ट होने वाला है।

भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ॥२०॥

कहीं पृथ्वी भगवान् के श्रीचरणों से विहीन तो नहीं हो गयी? इस प्रकार युधिष्ठिर चिन्ता कर ही रहे थे कि द्वारका से अर्जुन लौटकर आ गये और रोते हुए नीचे मुखकर युधिष्ठिर के चरणों में आ गिरे। युधिष्ठिर ने यह देख भयभीत होकर कहा—हे अर्जुन! द्वारका में यदुवंशी आनन्द से तो हैं? भगवान् श्रीकृष्ण, उनकी पत्नियाँ और उनके परिवार के सभी लोग सुखपूर्वक तो हैं? तुम निस्तेज से प्रतीत क्यों हो रहे हो? क्या तुम्हारा वहाँ अपमान हुआ? अथवा तुम किसी से पराजित हुए हो। किसी ने तुमसे कटु शब्द तो नहीं कहे? याचकों को देने की प्रतिज्ञा कर कहीं तुम मुकर तो नहीं गये? ब्राह्मण, बालक, गौ तथा रोगी की रक्षा से कहीं विमुख तो नहीं हुए? कहीं तुमने शरणागत का त्याग तो नहीं किया? प्रथम भोजन योग्य वृद्ध तथा बालकों को पहले खिलाये बिना तुम खा तो नहीं बैठे? कहीं अगम्या से तुमने गमन तो नहीं किया? हो न हो कोई निन्दित कर्म अवश्य तुमसे हो पड़ा है, जो तुम्हारे योग्य न था। तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो गयी है? मुझसे तो यह देखा नहीं जाता। मालूम पड़ता है कि भगवान् तुम्हें छोड़कर पृथ्वी से चले गये, अन्यथा तुमको ऐसी मानसिक पीड़ा न होती।

मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥४४॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

पन्द्रहवाँ अध्याय

भगवान् के तिरोधान से व्याकुल युधिष्ठिर द्वारा परीक्षित् का राज्याभिषेक तथा पाण्डवों का महाप्रस्थान

सूतजी बोले—हे शौनक! अर्जुन अपने भाई के ऐसे वचन सुनकर कुछ देर तक तो कुछ बोल ही न सके, अश्रु-प्रवाह से उनका कण्ठ रुद्ध हो गया था। पश्चात् शोक के वेग को किसी प्रकार रोककर भगवान् के उपकारों का स्मरण करते हुए गद्गद वाणी से उन्होंने कहा—भाई जी! मैं क्या कहूँ? मेरा तेज खींचकर भगवान् अपने धाम को चले गये हैं। मेरा शरीर निष्प्राण हो गया है। हाय! अब मैं क्या करूँ?

यत्संश्रयाद् द्रुपदगेहमुपागतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम्।
तेजोहृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाधिगता च कृष्णा ॥७॥

जिन भगवान् के आश्रय से मैंने द्रौपदी-स्वयंवर में राजाओं को पराजित किया और मत्स्य वेधकर द्रौपदी को प्राप्त किया। जिनके प्रभाव से भाई भीमसेन ने अजेय जरासन्ध को मारकर बन्दी राजाओं को बन्धन से मुक्त किया, जिन्होंने यज्ञ में आपको नाना प्रकार की वस्तुएँ भेंट की थीं एवं भरी सभा में द्रौपदी को अपमानित करने वाले दुःशासन आदि दुष्ट राजाओं को मृत्यु के घाट उतारा। जिनके प्रभाव से हम वन में शत्रुओं के द्वारा भेजे गये महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि के शाप से त्राण पा सके एवं जिनके तेज से ही मैंने युद्ध-कौशल से भगवान् शंकर को प्रसन्न कर पाशुपतास्त्र प्राप्त किया। उन्हीं की कृपा से जब मैं स्वर्ग में गया तब इन्द्र ने मुझे अर्द्धासन देकर सत्कृत किया था। जिनकी सहायता से ही विराट्-नगर में शत्रुओं द्वारा छीने गये गोधन को मैंने छुड़ाया और युद्ध में मूर्छित विपक्षी राजाओं के बहुमूल्य मुकुट उतारे थे, जिन्होंने रणभूमि में मेरे सारथि बन कर शत्रु-सेना का बल तथा अस्त्रादि चलाने का कौशल विनष्ट किया था एवं जिन भगवान् के बाहुमध्य में स्थित मुझको द्रोण, भीष्म, कर्ण आदि महारथियों के शस्त्रास्त्र स्पर्श तक नहीं कर सके थे। जैसे असुरों के शस्त्र प्रह्लाद को नो **पस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि** जयद्रथ-वध के अवसर पर जब कि भीषण युद्ध हो रहा था, मेरे थके घोड़े प्यास से तड़प रहे थे, मैंने रथ से उतरकर बाण द्वारा पृथ्वी से जल निकालकर उन्हें पिलाया था, उस समय मैं भूमि पर था और मेरे शत्रु रथ पर थे, किन्तु जिन भगवान् की अद्भुत माया से शत्रुओं का चित्त विक्षिप्त हो गया, वे अन्य दिशा में मुझे देखकर उसी ओर बाण चलाते रहे। मुझपर प्रहार न कर सके—

मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन् यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥१७॥

हे राजन्! वही मैं आज अपने परम प्रिय मित्र भगवान् से वियुक्त होने के कारण हतप्रभ एवं निरुत्साह हो गया हूँ। मार्ग में भगवान् के विपुल परिवार की रक्षा नहीं कर सका, दस्युओं ने अबला की भाँति मुझे जीत लिया और भगवान् के अन्तःपुर की वनिताओं को छीन ले गये। हाय! आज वह मुझे छोड़कर चले गये। मैं उन्हें अब कहाँ पाऊँ कहाँ ढूढूँ। जिनकी सन्निधि से मैंने इन्द्र का खाण्डव वन अग्नि को अर्पित किया, क्रुद्ध इन्द्र के युद्धार्थ आने पर उन्हें पराजित किया। जिन भगवान् की सहायता से बड़ी विशाल कौरव सेना से हम पार हुए एवं भीष्म, कर्णादि महारथियों को पराजित किया जा सका, उन भगवान् के इन सब उपकारों का स्मरण कर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। घोड़े, रथ, धनुष, बाण सब वही हैं, किन्तु भगवान् के बिना भस्म में दी गयी आहुति के समान तथा ऊषर में बोये बीज के समान ये सब व्यर्थ हो गये हैं। हे राजन्! क्या कहूँ कहा नहीं जाता। ऋषियों के शाप से यदुवंशी आपस में लड़-भिड़कर सब मर गये। केवल चार-पाँच शेष रह गये हैं—**चतुःपञ्चावशेषिताः।**

यह सब भगवान् की लीला है, जिसे कोई जान नहीं सकता। सूतजी कहते हैं—हे शौनक! इस प्रकार भगवान् के चिन्तन से अर्जुन की बुद्धि निर्मल हो गयी और उनका कुछ शोक भी दूर हो गया। जिस दिन से भगवान् पृथ्वी छोड़कर चले गये थे, उसी दिन से मनुष्यों में कलि का प्रवेश हो गया था। भगवान् की ऐसी दशा सुनकर कुन्ती उनका चिन्तन करती हुई भगवान् के धाम चली गयी। युधिष्ठिर भी अपने राज्य में कलि का प्रवेश देखकर अपने पौत्र परीक्षित् का राज्याभिषेक कर स्वयं हिमालय की ओर चले गये। उनके भाई और द्रौपदी ने भी उनका अनुगमन किया।

यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम्।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम्॥५१॥

जो मनुष्य श्रद्धा से भगवान् के प्रिय पाण्डवों का मंगलमय यह महाप्रयाण सुनता है, वह भगवान् की भक्ति प्राप्तकर मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय समप्त ॥

❖

सोलहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित् का दिग्विजय तथा पृथ्वी और धर्म का संवाद

सूतजी बोले—हे शौनक! पाण्डवों के महाप्रयाण के अनन्तर राजा परीक्षित् ब्राह्मणों की आज्ञा से पृथ्वी का पालन करने लगे। उत्तर[१] की पुत्री इरावती के साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ। जिससे जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तर उन्होंने गङ्गा तट पर जाकर तीन अश्वमेध यज्ञ किये। उन यज्ञों के आचार्य कृपाचार्य थे, जिनमें देवताओं ने प्रत्यक्ष उपस्थित होकर अपने-अपने भागों का ग्रहण किया। एक समय परीक्षित् ने दिग्विजय करते हुए कलि को पकड़ा। वह राजवेष धारण किये अपने पैर से गौ और बैल को मार रहा था। यह प्रकरण सुनकर शौनक जी बोले—हे सूतजी! राजवेषधारी वह शूद्र कौन था, जो पैर से गौ को मारता था? यह प्रसंग यदि भगवान् की अथवा उनके भक्तों की कथा से सम्बन्ध रखता हो; तो आप हमें सुनायें। सूतजी बोले—हे शौनक!

यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलेऽशृणोत् कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते।
निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौण्डिराददे॥१०॥

जिस समय राजा परीक्षित् ने अपने राज्य में कलि का प्रवेश सुना, उसी समय वे धनुष-बाण ले रथपर सवार हो चतुरंगिणी सेना के साथ दिग्विजय के लिए निकल पड़े। मार्ग में भद्राश्व, केतुमाल आदि बहुत से देशों को जीतकर उनसे उन्होंने कर ग्रहण किया। वहाँ प्रजा के मुख से अपने पूर्वजों की कीर्ति सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

उन्हें बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान कीं। अनन्तर वे आगे जा ही रहे थे कि थोड़ी दूर पर एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटी। उसे सुनो—

नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत् तन्निबोध मे ॥१७॥

वृषभरूपधारी धर्म एक पैर से चल रहा था। उसने रोती हुई गौ से पूछा—हे मातः! आप दुःखी क्यों हैं? आपका मुख मलिन सा मालूम पड़ रहा है। क्या आपका कोई बन्धु दूर चला गया है? क्या उसी का शोक कर रही हो? अथवा मेरी दशा देखकर दुःखी हो रही हो? या दुष्ट राजाओं के अत्याचार से दुःखी हो? अथवा इधर-उधर सबके हाथ का जलपान तथा भोजन करने वाले कामिनी-काञ्चनलोलुप जीवलोक का शोक करती हो? अथवा, भगवान् तुम्हें छोड़कर चले गये उनके गुणों का स्मरण कर दुःखी हो रही हो? यह सुनकर गोरूप धारिणी पृथ्वी ने कहा—हे धर्म! आप सब जानते हुए भी अनजान की तरह क्यों पूछ रहे हैं? जैसा आपने कहा है, मैं इन सभी का शोक कर रही हूँ। आपके तीन पैर किसने काट दिये! आपको एक पैर से खड़े देखकर आपका शोक कर रही हूँ। सत्य, शौच दया, शान्ति आदि अनन्त कल्याण गुणगण जिनमें नित्य निवास करते थे, उन भगवान् से रहित तथा कलि से आक्रान्त इस लोक का शोक कर रही हूँ। शूद्र, पतित और धर्म-कर्म शून्य राजा मेरा उपभोग करेंगे, यह विचार कर अपने लिए भी शोक कर रही हूँ। देवता, पितर, ऋषि, साधु, वर्ण तथा आश्रमों का भी शोक कर रही हूँ। हमें और आपको छोड़कर श्रीकृष्ण चले गये, उनके वियोग से मेरे हृदय में शान्ति नहीं है। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ? इस प्रकार दोनों आपस में वार्तालाप कर ही रहे थे कि राजा परीक्षित् वहाँ जा पहुँचे—

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ।
परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥३६॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

सत्रहवाँ अध्याय

परीक्षित् और धर्म का संवाद तथा कलिका निग्रह

सूतजी बोले—हे शौनक! सरस्वती नदी के तट पर राजा परीक्षित् ने कलि को देखा, जो डंडे से गौ और वृषभ को मार रहा था। वृषभ भय के मारे थोड़ा-थोड़ा मूतता हुआ काँप रहा था। वह शूद्ररूपी कलि गौ को लातों से मार रहा था, जिससे वह रो रही थी। वह भूखी थी, खाने को भूसा भी चाहती थी। रथ पर बैठे राजा परीक्षित् ने यह वीभत्स दृश्य देखा, तो वे कड़ककर बोले—अरे दुष्ट! तू कौन है। इस प्रकार वृषभ

और गौ को क्यों सता रहा है? साथ ही गौ और वृषभ से भी कहा—हे माता! मेरे रहते तुम क्यों रोती हो? हे वृषभ! तुम भी मत डरो। मैं इस दुष्ट को दण्ड दूँगा। तुम यह बताओं कि तुम्हारे तीन पैर किसने काटे? तुम्हें विरूप करने वालों ने मेरे पूर्वज पाण्डवों की धवल कीर्ति को कलंकित किया है। मेरे रहते निरपराध प्राणी को सताने वाला साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, मैं उसकी भी भुजा जड़ से उखाड़ डालूँगा।

अनागस्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ।
आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥१५॥

वृषभ-रूपी धर्म यह सुनकर बोला—हे पुरुष श्रेष्ठ! आप उन पाण्डवों के वंशधर हैं, जिनके विविध गुणों से रीझकर भगवान् ने दूत, सारथि आदि तक का काम किया था। आपका इस प्रकार भयभीतों को अभय देना उचित ही है, किन्तु जिसने मुझे क्लेश दिया है, उसे आप ही स्वयं समझें। मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कह सकता, क्योंकि क्लेशदाता कौन है? यह विषय बड़ा जटिल है। इसमें विद्वानों का बड़ा मतभेद हैं—

केचिद् विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ।
दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥१९॥

अद्वैतवादी विद्वान् कहते हैं आत्मा के अज्ञान से विलसित वह सुख-दुःख रूप द्वैत मिथ्या है। अतः सुख-दुःख का कारण कोई नहीं है। तार्किक सुख-दुःख का कारण आत्मा को मानते हैं। ज्योतिषी ग्रहादि देवताओं को, मीमांसक कर्म को, नास्तिक स्वभाव को, सांख्यवादी स्वभाव-शब्द से गुण-परिणाम को सुख-दुःख का कारण मानते हैं। अतः आप ही अपनी बुद्धि से क्लेशदाता का निर्णय कर लीजिए।

राजा परीक्षित् ने विचार किया सुख-दुःख मिथ्या तो नहीं हो सकते, क्योंकि उनकी अनुभूति आत्मा में होती है। जीवात्मा भी कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह परतन्त्र है। ग्रह भी कारण नहीं हो सकते, क्योंकि वे कालचक्र के अधीन हैं। कर्म भी कारण नहीं हो सकते हैं, क्योंकि वे जड़ हैं। स्वभाव भी कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह व्यभिचारदूषित है। अतः सुख-दुःख के कारण ये कोई भी नहीं हो सकते हैं।

तदनन्तर राजा परीक्षित् ने कहा—हे धर्म! तुम ठीक कहते हो। तुम वृषभरूपी साक्षात् धर्म ही हो, इसलिए घातक को जानते हुए भी उसे बताना नहीं चाहते हो, क्योंकि अधर्म करने वाले को जिस नरक आदि की प्राप्ति होती है, वही प्राप्ति सूचना देने वाले को भी होती है—

यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! यह विचार कर राजा ने अपनी बुद्धि से दुःख का कारण मन को जान लिया। मनः परं कारणमामनन्ति 'इत्युक्ते' और पृथ्वी रूप गौ तथा वृषभरूप धर्म को आश्वासन देते हुए कलि को मारने के लिए तीक्ष्ण तलवार खींच ली।

राजा परीक्षित् को मारने के लिए आता देखकर कलि ने अपने सिर से मुकुट उतारकर फेंक दिया और भयभीत होकर उनके चरणों में जा गिरा, उसे चरणों में पड़ा देखकर परीक्षित् हँसते हुए बोले—

न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किञ्चित्।
न वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ।।३१।।

हे कलि! मैं पाण्डववंशी हूँ। मेरे समक्ष हाथ जोड़ने वाले शरणागत को फिर भय नहीं रहता, किन्तु तू मेरे राज्य से निकल जा। तू यहाँ रह नहीं सकता क्योंकि तेरे रहते राजाओं के शरीर में अधर्म के परिवार लोभ, अनृत, कलह, दम्भादि प्रवेश करेंगे। यह सुनकर हाथ जोड़ नतमस्तक हो कलि बोला—हे महाराज! मैं जहाँ कहीं भी क्यों न रहूँ वहीं मुझे आप धनुष-बाण लिए खड़े दिखायी पड़ते हैं। मैं कहाँ रहूँ? यह आप ही बतायें। सूतजी कहते हैं—हे शौनक! कलिकी ऐसी प्रार्थना करने पर राजा परीक्षित् ने उसको रहने के लिए निम्ननिर्दिष्ट चार स्थान बताये—

द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ।।३८।।

१. द्यूतस्थान, २. मदिरालय, ३. वेश्यालय और ४. वधस्थान (कसाईखाना) जिनमें वह अनृत, मद, काम रजो, मूल हिंसा और बैर के साथ रहता है। पुनः उसके प्रार्थना करने पर उसे रहने के लिए एक स्थान 'सुवर्ण' और दिया। जिसमें इन चारों का तथा बैर का भी निवास है। इसलिए अभ्युदय चाहने वाले पुरुषों को इन पाँचों का सेवन नहीं करना चाहिए। बाद में राजा परीक्षित् ने धर्म के शेष तीन पाद तप, शौच और दया को जोड़कर उसके चारों पैर पूरे कर दिये। पृथ्वी को भी आश्वासन देकर सन्तुष्ट किया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

अठारहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित् को ऋषि-पुत्र शृङ्गी का शाप

सूतजी बोले—हे शौनक! ऐसे प्रभावशाली राजा परीक्षित् माता के गर्भ में ही दग्ध हो गये होते, पर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से बच गये। उन्होंने यह विचार किया कलि में मानसिक, पुण्यों का फल मिल जाता है। पापों का नहीं। कलि के गुण के लिए उसे छोड़ दिया, मारा नहीं। एक दिन शिकार खेलने के लिए धनुष-बाण लेकर वन में गये। वहाँ मृगों के पीछे दौड़ते-दौड़ते वे बहुत थक गये और प्यास से कण्ठ सूखने पर व्याकुल हो उठे। जलाशय न मिलने पर वे शमीक मुनि के आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ मुनि समाधि में स्थित थे, उनको बाहर का कुछ भी ज्ञान न था। ऐसी अवस्था में राजा ने जल माँगा।

विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥२७॥

जब कुछ उत्तर न मिला, तब रोष में आकर एक मरा साँप ऋषि के गले में डालकर वे अपने नगर को लौट आये। मुनि का पुत्र शृङ्गी कौशिकी नदी के तट पर बालकों के साथ खेल रहा था। यह समाचार सुनकर क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये। उसने नदी के जल का आचमन कर राजा को शाप दे डाला—

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि।
दंक्ष्यतिस्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥३७॥

मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाले इस दुष्ट राजा को सातवें दिन मुझसे प्रेरित होकर तक्षक सर्प डसेगा। यह कहकर शृङ्गी अपने आश्रम में आया और पिता के गले में लटकता सर्प देखकर दुःखित हो जोर से रोने लगा। पुत्र के शब्द सुनकर मुनि की समाधि टूट गयी। उन्होंने आँखें खोलीं तो गले में सर्प पड़ा देखा उसे फेंककर पुत्र से पूछा—**वत्स कस्माद्धि रोदिषि।**

अरे बेटा! तुम क्यों रोते हो? किसने तुम्हारा अपमान किया? पुत्र ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मुनि को जब यह ज्ञात हुआ कि पुत्र ने राजा को शाप दे दिया है, तब उन्होंने पुत्र की सराहना नहीं की। उसकी नादानी की भर्त्सना करते हुए कहा—अरे अज्ञानी! थोड़े से अपराध पर तूने इतना भारी दण्ड दिया? राजा साधारण मनुष्यों के तुलना के योग्य नहीं, वह विष्णु का अंश होता है। उससे रक्षित प्रजा अपने धर्म-कर्म में लगी रहती है। उसके न रहने पर राज्य में चोरों का साम्राज्य हो जाता है, प्रजा का धन लूटा जाता है। स्त्रियों का अपहरण होता है। परस्पर एक-दूसरे को मारते हैं। सनातन-धर्म भी नष्ट हो जाता है। वर्णसंकर सन्तानें पैदा होती हैं। इन सबका पाप नृपहन्ता को लगता है। तूने बड़ा अनुचित किया। प्यास से व्याकुल राजा हमारे आश्रम में आया था। वह शाप के योग्य न था। इस प्रकार दुःखित होकर मुनि भगवान् से प्रार्थना करने लगे—

अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना।
पापं कृतं तद्भगवान् सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥४७॥

हे भगवन्! अपक्वबुद्धि मेरे पुत्र ने आपके भक्त राजा को शाप दे डाला, बालक होने के कारण आप उसके अपराध को क्षमा करें।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

◆

उन्नीसवाँ अध्याय

राजा परीक्षित् का गङ्गातट पर अनशनपूर्वक निवास शुकदेवजी का आगमन और उनके द्वारा म्रियमाण पुरुष के कर्तव्यों का वर्णन।

सूतजी बोले—हे शौनक! राजा परीक्षित् वन से लौटकर जब अपने भवन में आये, तब उनके मन में बड़ा पश्चाताप हुआ और विचार आया कि मैंने दुर्जनों की भाँति बड़ा ही नीच कर्म किया, जो निरपराध ऋषि के गले में मृत सर्प डाल दिया। हाय! मेरी क्या गति होगी? मुझे शीघ्र ही ऐसा दण्ड मिले, जिससे इस पाप का प्रायश्चित हो जाय जिससे फिर गौ, ब्राह्मण तथा देवताओं के प्रति मेरी वैसी पापमति कभी न हो। उस तेजस्वी ऋषि-बालक की क्रोधाग्नि आज ही मेरे समृद्ध राज्य तथा सेना सहित कोश को भस्म कर दे। इससे मेरे नीच कर्म का समुचित प्रायश्चित्त हो जायेगा और मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। परीक्षित् ऐसा सोच ही रहे थे कि शमीक मुनि के गौरमुख नामक शिष्य ने आकर राजा को शृङ्गी के शाप का समाचार सुनाया। उसे सुनकर उनके मन में किसी प्रकार की भी अशान्ति नहीं हुई। प्रत्युत इसे विरक्ति का कारण मानकर उन्होंने राज्य का सम्पूर्ण भार अपने पुत्र जनमेजय को सौंप दिया और स्वयं सब कुछ त्याग कर भगवती श्रीगङ्गाजी के तट पर चले गये। वहाँ अन्न, जल का परित्याग कर कुशासन पर बैठ भगवान् के श्रीचरणों का ध्यान करने लगे। उसी समय अत्रि वसिष्ठ, भृगु, अंगिरा, व्यास, नारद आदि बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि, लोक को पवित्र करते हुए अपने-अपने शिष्यों सहित राजा के कल्याण के लिए वहाँ आ पहुँचे। ठीक कहा है प्रायः महात्मा लोग तीर्थाटन के व्याज से स्वयं तीर्थों को पवित्र करने जाते हैं।

तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः।
प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥८॥

राजा ने सब ऋषियों को सिर झुकाकर प्रणाम किया और अर्घ्य, पाद्य आदि से उनका विधिवत् पूजन किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर अपना अभीष्ट निवेदन किया। राजा ने कहा—हे मुनिवृन्द! आज मैं धन्य हो गया, ज़ो आप लोगों ने मुझपर कृपा की। शमीक मुनि के पुत्र का शाप भी मेरे लिए वरदान हो गया। मैं आप लोगों की पुण्य सन्निधि में भगवती श्रीगंगा जी की गोद में बैठा हुआ हूँ। तक्षक आकर मुझे डसे, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। आप मुझे भगवान् का गुणानुवाद सुनायें, यही मेरी आप महानुभावों से विनम्र प्रार्थना है। मुझपर आप ऐसी अनुकम्पा करें कि मैं जिस योनि में जाऊँ, उनमें भगवान् और उनके भक्तों में मेरा अनुराग सदा बना रहे। राजा के ऐसा कहने पर आकाश से पुष्पों की वृष्टि होने लगी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। उपस्थित महर्षियों ने राजा की प्रशंसा करते हुए कहा—हे राजन्! तुम धन्य हो, जो सब कुछ त्यागकर भगवान्

की शरण में आ गये। जब तक तुम शरीर त्यागकर भगवान् के लोक को नहीं जाते, तब तक हम लोग भी यहीं आपके समीप रहेंगे। यह सुनकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने हाथ जोड़कर विनीत भाव से पूछा—हे मुनिवृन्द! कृपा कर आप यह बतायें कि म्रियमाण पुरुष को क्या करना चाहिए।

पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ।।३७।।

इस प्रश्न पर मुनियों में यज्ञ, योग, जप, तप, दान को पृथक्-पृथक् साधन मानकर विवाद चल पड़ा और कोई निर्णय न हो सका। उसी समय व्यास जी के पुत्र श्रीशुकदेवजी पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए दैवयोग से सहसा वहाँ आ पहुँचे। उनकी सोलह वर्ष की अवस्था थी। अंग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुन्दर थे। मधुर हास्य से और स्नेह भरी चितवन से आकृष्ट होकर बहुत सी स्त्रियाँ और बालक उनके पीछे हो लिए। राजा ने उनको बैठने के लिए एक सिंहासन दिया और सिर झुकाकर प्रणाम किया और विधिवत् उनका पूजन किया। बाद में राजा ने कहा—हे भगवन्! आज मेरा कुल पवित्र हो गया, जो मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ। मालूम पड़ता है, भगवान् श्रीकृष्ण ने ही कृपाकर आपको यहाँ भेजा है। अन्यथा म्रियमाण पुरुष के लिए आप लोगों का दर्शन दुर्लभ है।

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ।।३७।।

हे मुने, आप योगियों के भी गुरु हैं, कृपया यह बतलाइये कि म्रियमाण पुरुषों को क्या सुनना चाहिए जिससे उसकी मुक्ति हो? क्या करना चाहिए? क्या स्मरण करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। सूतजी कहते हैं—हे शौनक! राजा के इस प्रकार प्रश्न करने पर शुकदेवजी ने बड़ी मधुर वाणी में म्रियमाण पुरुष के कर्तव्यों को कहना प्रारम्भ किया—

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः ।।४०।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के प्रथम स्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

।। प्रथम स्कन्ध समाप्त।।

❖

द्वितीय स्कन्ध प्रारम्भ

पहला अध्याय

शुकदेवजी द्वारा भगवान् के विराट् रूप में मन की धारणा का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितो नृप।
आत्मवित्सम्मतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥१॥

तुम्हारा यह प्रश्न बहुत अच्छा और ज्ञानी जनों के सम्मत है। इससे संसार का कल्याण होगा। यद्यपि संसार में सुनने योग्य शास्त्र अनेक हैं, किन्तु उनसे विशेष लाभ होना सम्भव नहीं। मनुष्यों की आयु बहुत थोड़ी है। उसमें भी रात्रि निद्रा और स्त्रीसंग से बीत जाती है और दिन धन की चिन्ता एवं कुटुम्ब के भरण-पोषण से बीत जाते हैं। मिथ्याभूत, नश्वर देह, पुत्र, पत्नी आदि में आसक्त हो प्रमत्त पुरुष संसार में सबका मरण देखता हुआ भी अपने मरण पर विचार नहीं करता, इसलिए हे राजन्! निश्चल मन से केवल एकमात्र भगवान् का ही श्रवण, मनन और चिन्तन करना चाहिए। यद्यपि मेरी निर्गुण ब्रह्म में स्थिति थी, फिर भी भगवान् की लीलाओं से आकृष्ट होकर मैंने श्रीमद्भागवत का अध्ययन अपने पिता जी से किया। वही मैं तुमको सुनाता हूँ, क्योंकि तुम भगवान् के अनन्य भक्त हो। उसके श्रवण से शीघ्र ही भगवान् में तुम्हारा अनुराग हो जायेगा।

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥११॥

कामी पुरुषों के तत्तत् फलों का साधन, मुमुक्षु पुरुषों के मोक्ष का साधन और योगी तथा ज्ञानी पुरुषों के जीवन का मुख्य फल भगवन्नाम कीर्तन ही बतलाया गया है। उसमें किसी प्रकार का भय नहीं है।

जो वर्ष बीत गये, उनकी चिन्ता छोड़ दो। राजा खट्वाङ्ग ने एक मुहूर्त में ही अपना परलोक बना लिया था। तुम्हारे जीवन की अवधि तो अभी सात दिन शेष है। तुम सरलता से अपना परलोक बना सकते हो। अन्तकाल आने पर मनुष्य को घबड़ाना नहीं चाहिए। देह, स्त्री और पुत्रों की ममता त्यागकर किसी पुण्यतीर्थ में चला जाना

चाहिए। वहाँ स्नानादि से शुद्ध होकर ओंकार का जप करना चाहिए और धीरे-धीरे विषयों से मन को हटाकर भगवान् के स्वरूप में लगा देना चाहिए। इस ब्रह्माण्ड में जो चौदह लोक हैं, वे भगवान् के शरीर के अवयव कहे गये हैं। उन्हें सुनो—

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥२६॥

हे राजन्! विराट् पुरुष भगवान् का पादमूल पाताल कहा गया है, एड़ी तथा पादका अग्रभाग रसातल, दोनों गुल्फ महातल, जंघा तलातल, दो जानु सुतल, दो ऊरु वितल और अतल, जघन महीतल और नाभि नभस्तल कहा गया है। विराट् भगवान् का वक्षस्थल स्वर्गलोक, वदन (मुख) जनलोक, ललाट तपोलोक और शिरोभाग सत्यलोक कहा गया है। तेजोमय इन्द्र आदि देवता भगवान् की भुजाएँ, दिशाएँ कर्ण, शब्द श्रोत्रेन्द्रिय, अश्विनी कुमार नासिका पुट, गन्ध घ्राणेन्द्रिय तथा अग्नि भगवान् का मुख कहा गया है। भगवान् के शरीर की नाड़ियाँ नदियाँ हैं, रोम वृक्ष, श्वास वायु, गति काल तथा कर्म संसार कहा गया है।

ब्राह्मण भगवान् के मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य ऊरु तथा शूद्र पैर कहे गये हैं। इस प्रकार चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, समुद्र, द्वीप, पर्वत, पशु, पक्षी, कीट-पतंग सब भगवान् के शरीर के अवयव कहे गये हैं।

इयानसावीश्वरविग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितो मया ते।
सन्धार्यतेऽस्मिन् वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किञ्चित् ॥३८॥

हे राजन्! इस प्रकार संक्षेप में मैंने विराट् भगवान् के शरीर अवयवों का सन्निवेश रचना तुमसे कही, जिसमें सम्पूर्ण लोकों की स्थिति है। तुम इसी स्थूल रूप में अपने मन को स्थिर करो। इससे अन्य कोई वस्तु ध्येय नहीं है। इस धारणा से तुम इस मिथ्या जगत् में छिपे हुए आनन्दनिधि सत्यमूर्ति भगवान् को प्राप्त कर लोगे और फिर संसार में तुम्हारा आवागमन न होगा।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त ।।

◆

दूसरा अध्याय

सूक्ष्म रूप में मन की धारणा, सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इसी धारणा द्वारा ब्रह्मा ने प्रलयकाल में नष्ट अपनी स्मृति को प्राप्त कर विश्व की सृष्टि की थी। वेदों में नाना प्रकार के यज्ञादि कर्मों का जो वर्णन मिलता है, उनके फल स्वर्गादि भोग्य पदार्थ सब नश्वर और मिथ्या है। उनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिए। हाँ, इस लोक में शरीरनिर्वाह के लिए जितना भोग

अपेक्षित हो, उतना ही ग्रहण करना चाहिए, उससे अधिक नहीं। यदि वे भोग बिना परिश्रम के प्राप्त हो जायँ, तो उनके लिए चेष्टा भी नहीं करनी चाहिए। जैसे पृथ्वी के रहते शय्या की, बाहु के रहते तकिया की, अञ्जलि के रहते नाना प्रकार के पात्रों की तथा वल्कलों के रहते वस्त्रों की आवश्यकता नहीं है।

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥५॥

लंगोटी के लिए क्या मार्ग में चिथड़े नहीं पड़े हैं? खाने को वृक्ष क्या भिक्षा नहीं देंगे? नदियाँ क्या सूख गई? रहने को गुफायें क्या बन्द हैं? शरणागत भक्तों की रक्षा क्या भगवान् नहीं करते? दुःख है कि फिर भी विद्वान् पुरुष लक्ष्मी के मद से अन्धे इन उन्मत्त धनिकों का सेवन न जाने क्यों करते हैं? हे राजन्! संसार के सभी पदार्थ नाशवान् हैं। जीवों के प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ही अविनाशी हैं और वे तुम्हारे हृदय में ही विराजमान हैं। तुम मन से उनकी धारणा करो। वे बड़े ही सुन्दर हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये रहते हैं। मुख उनका हास्ययुक्त है, सब अङ्गों में वे दिव्य आभूषण धारण किये रहते हैं। उनकी चितवन अपूर्व स्नेह भरी है। चरण से लेकर मुखपर्यन्त भगवान् के एक-एक अङ्ग का प्रेम से ध्यान करते जाओ। जब मुख तक पहुँच जाओ, तब केवल उनके हास्ययुक्त मुख का ही ध्यान करते रहो। **सुस्मितं भावयेन्मुखम्।**

अन्य किसी का चिन्तन न करो। म्रियमाण पुरुषों को इसी प्रकार बाहर और भीतर दो प्रकार की धारणा करनी चाहिए। यदि वह स्वयं शरीर-त्याग करने की इच्छा करे तो अपनी एड़ी से गुदा के मूल भाग को दबाकर छः चक्रों का क्रम से भेदन कर प्राण को ब्रह्मरन्ध्र में ले जायँ, फिर ब्रह्मरन्ध्र का भी भेदन कर मुक्त हो जायँ। यही सद्योमुक्ति कहलाती है। अब मैं क्रममुक्ति बताता हूँ उसे भी ध्यान से सुनो। यदि विहार करने की इच्छा हो, तो इन्द्रिय तथा प्राणयुक्त सूक्ष्म शरीर के साथ स्वर्ग में चला जाय, वहाँ दिव्य भोगों का उपभोग कर मह, जन और तप लोकों का अतिक्रमण करते हुए सत्यलोक में चला जाय। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा की आयुपर्यन्त भोगों का उपभोग कर ब्रह्मा के साथ ही मुक्त हो जाय। वहाँ पहुँचने पर मनुष्यों की तीन प्रकार की गति होती है। पुण्य के तारतम्य से कल्प के आरम्भ में कुछ अधिकारी बना दिये जाते हैं। जो हिरण्यगर्भ की उपासना करते हैं, वे ब्रह्मा के साथ मुक्त हो जाते हैं। जो भगवान् के उपासक हैं वे ब्रह्माण्ड-भेदकर सीधे विष्णु लोक चले जाते हैं। यह क्रममुक्ति हुई। हे राजन्! अब तुम ब्रह्माण्ड-भेदन का प्रकार सुनो। शरीर के पृष्ठ भाग में जो मेरुदण्ड है, उसके भीतर सुषुम्ना नाड़ी है। उसके अन्दर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और

आज्ञा नाम के छः चक्र हैं। उनमें आरम्भ के पाँच चक्रों में क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश की स्थिति है। साधक पुरुष पृथ्वी का जल में, जल का तेज में, तेज का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का अहंकार में अहंकार का महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व का प्रकृति में और प्रकृति का परब्रह्म श्रीकृष्ण में लय कर स्वयं आनन्दमय भगवान् कृष्ण को प्राप्त कर लेते हैं। जो इस भागवती गति मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, वह फिर इस संसार में लौटकर नहीं आता। हे राजन्! मैंने म्रियमाण के कर्तव्यों में दो गतियों का वर्णन किया है। संसार में प्रविष्ट मनुष्य के उद्धारार्थ भक्तियोग से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। ब्रह्मा ने वेद का तीन बार विचार कर अन्त में यही निर्णय किया—**रतिरात्मन्यतो भवेत्।**

जिससे भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेम लक्षणा भक्ति हो, वही उत्तम साधन है।

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम् ॥३६॥

इसलिए मनुष्यों को सर्वदा भगवान् श्रीकृष्ण का ही श्रवण, मनन, चिन्तन और कीर्तन करना चाहिए। इससे उनका विषयों से दूषित अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, और वे भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों की सन्निधि में शीघ्र पहुँच जाते हैं—

व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥३७॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

तीसरा अध्याय

देवताओं की उपासना के विभिन्न फल और भगवद्विमुख इन्द्रियों की निरर्थकता

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

एवमेतन्निगदितं पृष्टवान् यद्भवान् मम।
नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥१॥

तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने म्रियमाण पुरुषों के लिए योगियों के मतानुसार सद्योमुक्ति तथा क्रममुक्ति रूप से दो मार्गों का वर्णन किया एवं मनुष्यों में भी आप सरीखे विचारवान् मनीषियों के लिए भगवान् का श्रवण, कीर्तन, स्मरण तथा कथामृतपानादि का वर्णन किया। अब मैं मनुष्यों में जो मन्दबुद्धि हैं, उनके कल्याणार्थ उनके उपास्य देवताओं का आठ श्लोकों से वर्णन करता हूँ। वेदाध्यापन की सामर्थ्य चाहने

वाला पुरुष ब्रह्मा का यजन करें, इन्द्रिय सामर्थ्य चाहने वाला इन्द्र का, प्रजा की वृद्धि चाहने वाला दक्ष का, लक्ष्मी चाहने वाला दुर्गा देवी का, प्रभाव चाहने वाला अग्नि का, सुवर्ण तथा गौ चाहने वाला वसुओं का, आयु चाहने वाला अश्विनी कुमारों का, सौन्दर्य चाहने वाला गन्धर्वों का तथा विद्या चाहने वाला भगवान् शिव का यजन करें। इस नाना फलों की इच्छा से मनुष्य नाना देवताओं का यजन करते हैं।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥१०॥

सकाम, निष्काम, सर्वकाम अथवा मोक्ष चाहने वाला मतिमान् पुरुष तीव्र भक्ति-योग द्वारा भगवान् विष्णु का यजन करें।

इस प्रकार इन्द्र आदि देवताओं का यजन करने वाले भी शनैः-शनैः सत्संग द्वारा भगवत्कथा-श्रवण से भगवान् की प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त कर मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं। जिस कथा से ज्ञान की प्राप्ति, राग द्वेषादि की निवृत्ति, मन में प्रसन्नता, विषयों से वैराग्य तथा मोक्षप्राप्ति का उत्तम मार्ग भक्ति योग प्राप्त होता है, उस भगवत्कथा में कौन विवेकी पुरुष, अनुराग नहीं करेगा।

को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

शौनक जी बोले—हे सुत! शुकदेवजी के वे वचन सुनकर फिर राजा परीक्षित् ने उनके क्या पूछा? कृपया वही प्रसङ्ग आप हमें सुनायें, उस सभा में बड़ी सुन्दर-सुन्दर कथायें हुई होंगी, क्योंकि वक्ता और श्रोता दोनों ही असाधारण थे। सूर्य उदय और अस्त होते हुए मनुष्यों की आयु हरण करते हैं, किन्तु जिसने भगवत्कथा के श्रवण में एक क्षण भी व्यतीत किया, उसकी आयु व्यर्थ नष्ट नहीं होती, वह सार्थक हो जाती है। वृक्ष क्या जीते नहीं, लोहार की भस्त्रा (धौंकनी) क्या श्वास नहीं लेती, पशु क्या खाते, पीते तथा सन्तति पैदा नहीं करते? करते ही हैं, किन्तु जिसके कानों में भगवान् का मङ्गलमय नाम कभी नहीं पड़ा, वह मनुष्य कुत्ते, गधे, ऊँट और सूकर के समान दो पैर वाला पशु है—

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥१९॥

जो कान भगवान् के चरित्र का श्रवण नहीं करते, वे चूहों के बिल के समान हैं, जो जिह्वा भगवच्चरित्र का गान नहीं करती, वह मेढ़क की जिह्वा के समान व्यर्थ है—

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥२०॥

भगवान् को प्रणाम न करने वाले शिर बोझा रूप हैं। भगवान् की सेवा न करने वाले 'हाथ' मृतक पुरुष के हाथों के समान हैं। भगवान् के श्रीविग्रह के दर्शन न करने वाले नेत्र मयूरपिच्छ के समान हैं। जो पैर भगवान् के क्षेत्र तथा तीर्थों की यात्रा नहीं

करते, वे वृक्ष के समान हैं। भगवान् की मधुर कथा सुनने से जिसके नेत्रों में अश्रु नहीं उमड़ पड़ते और शरीर में रोमाञ्च नहीं आता, उसका हृदय पत्थर के समान कठोर है। हे सूतजी! आप हमारे मन के अनुकूल ही सुन्दर कथाएँ कहते हैं। अब आप वही प्रसंग सुनायें, जिसका राजा परीक्षित् के प्रश्नों पर शुकदेव जी ने विवेचन किया था।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का दूसरा विश्राम)

◆

चौथा अध्याय

राजा के सृष्टिसम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में ब्रह्म-नारद-संवाद का उपक्रम तथा भगवान् का स्तवन

सूत जी बोले—हे शौनक!

वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ।
उपधार्य मतिं कृष्णे औत्तरेयः सतीं व्यधात् ।।१।।

राजा परीक्षित् ने शुकदेव जी के आत्मतत्त्व का निश्चय करने वाले वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण में अपनी मति स्थिर की और स्त्री पुत्रादि तथा सम्पूर्ण राज्य में चिरकाल से निरुढ़ ममता का भी परित्याग किया। जैसे आपने मुझसे पूछा है वैसे ही भगवत्कथा के प्रेमी परीक्षित् ने भी शुकदेवजी से भगवत्सम्बन्धी लीलाओं का प्रश्न किया था। परीक्षित् ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपके वचन सुनकर मुझे बड़ी शान्ति मिलती है और अज्ञान की निवृत्ति होती है। अब आप यह बतायें कि भगवान् सृष्टि, पालन और संहार कैसे करते हैं। इस बारे में बड़े-बड़े विद्वानों की भी मति चकरा जाती है। अतः आप हमारे इस सन्देह का निराकरण करें, क्योंकि आप शब्दब्रह्म तथा परब्रह्म के पूर्ण ज्ञाता हैं[1]।

---

[1] आपने म्रियमाण पुरुष के लिए श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि का वर्णन किया, किन्तु श्रवण आदि भगवान् की लीलाओं का होता है। सामान्यरूप से ये लीलाएँ दो प्रकार की कही गयी हैं—पहली सर्ग-लीला (कारण-सृष्टि), दूसरी विसर्ग-लीला (कार्य सृष्टि अर्थात् चराचर सृष्टि)। मायाशक्ति के साथ क्रीड़ा करते हुए भगवान् महदादि रूप से अपनी अभिव्यक्ति करते हैं, यह कारणसृष्टि है एवं ब्रह्मा, मरीचि आदि देवताओं को अपनी क्रीड़ा में अग्रसर करते हुए भगवान् जो देव, तिर्यक् नर आदि के रूप में नानारूप से अपनी अभिव्यक्ति करते हैं, यह कार्य सृष्टि है। इन्हीं योनियों में भगवान् के विविध अवतार होते हैं जैसे—देवयोनियों में वामन आदि तिर्यग् योनि में मत्स्य, वराह आदि नरयोनि में राम, कृष्ण आदि। व्यासजी ने इन्हीं अवतारों के चरित्र का विविध भाव से वर्णन किया है।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! राजा परीक्षित् का प्रश्न सुनकर शुकदेवजी ध्यानमग्न हो भगवान् का स्तवन करते हुए बोले—हे भगवन्! आप पुराण-पुरुष हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप धारण कर सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। सबके अन्तर्यामी होते हुए भी आपको यथार्थ रूप से कोई जान नहीं सकता। आप भक्तों का अज्ञान दूर करते हैं। परमहंसों को ज्ञान देते हैं। आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१५॥

जिनके नामों का कीर्तन, जिनसे स्वरूप का स्मरण, जिनकी प्रतिमाओं का दर्शन, जिनके चरणों का वन्दन, जिनकी कथा का श्रवण तथा जिनके श्रीविग्रह का पूजन सम्पूर्ण लोकों की पापराशि को भस्म कर डालता है उन परम मङ्गलमय यशोमूर्ति भगवान् को मैं बार-बार नमन करता हूँ। पापी पुरुष भी जिन आपके भक्तों के आश्रय से पवित्र हो जाते हैं, ब्रह्मा आदि देवता भी जिन आपकी मूर्ति का दर्शन कर चकित रह जाते हैं और उसका पार नहीं पाते, वे दुर्ज्ञेय भगवान् मुझपर प्रसन्न हो मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ॥२०॥

जो लक्ष्मी के स्वामी, यज्ञों के फलदाता, प्रजा के रक्षक, बुद्धि के प्रवर्तक, लोकों के अधिष्ठाता, पृथ्वी के उद्धर्ता, भक्तों के मानदाता तथा यदुवंशियों के मन्त्रदाता एवं रक्षक हैं, वे ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। मैं सिर झुकाकर नमन करता हूँ।

यदङ्घ्र्यभिध्यानसमाधिधौतया धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः।
वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम् ॥२१॥

जिन भगवान् के चरणकमलों के ध्यान से निर्मल हुई बुद्धि से योगीजन आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करते हैं एवं अपनी रुचि के अनुसार उनका महत्त्व गान करते हैं। वे सर्वविध संकटों से मुक्ति देने वाले भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। मैं उनको नमन करता हूँ।

हे भगवन्! जिन आपकी ही प्रेरणा से सरस्वती ने ब्रह्मा के मुख से आविर्भूत होकर उनकी सृष्टिविषयक स्मृति जागृत की, जो महाभूतों द्वारा शरीरों की रचनाकर

राजा ने इन्हीं अवतारों के गम्भीर रहस्य को जानने की इच्छा से सृष्टिविषयक प्रश्न का उपक्रम किया था। सृष्टि के विषय में कणाद आदि बड़े-बड़े तार्किक विद्वानों को भी व्यामोह है। वे भगवान् के अभिप्राय को न जानकर परमाणु आदि से जगत् की सृष्टि बताते हैं। इसीलिए कहा है—

दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम्।

अन्तर्यामी रूप से उनमें निवास कर इन्द्रियों को शक्ति प्रदान करते हैं वह भगवान् इस समय मेरी वाणी को अलंकारों से युक्त कर दें, जिससे मैं प्रवचन करने में समर्थ हो सकूँ। मैं आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार १२ श्लोकों से शुकदेवजी ने भगवान् की स्तुति की। अनन्तर अपने पिता श्रीवेदव्यास जी को प्रणाम कर वे परीक्षित् से बोले—हे राजन्! तुमने मुझसे जो सृष्टिविषयक प्रश्न किया था, वही देवर्षि नारद ने ब्रह्मा जी से पूछा था। वही प्रसंग मैं आपसे कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनें।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

❖

पाँचवाँ अध्याय

नारद से सृष्टिविषयक प्रश्न का उत्तर और अण्ड से विराट् पुरुष का प्रादुर्भाव

एक समय नारद जी विविध लोकों में भ्रमण करते-करते ब्रह्मा जी के पास गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्मा जी को नेत्र बन्द कर तपस्या में ध्यानमग्न देखा। नारद जी ने विचार किया कि मेरे पिता जी जगत् की सृष्टि पालन और संहार के कर्ता हैं। इनसे बड़ा कौन देवता है जिसका ये ध्यान कर रहे हैं? ब्रह्मा जी की समाधि टूटने पर नारद जी ने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—पिता जी! आज आपको ध्यानमग्न देखकर मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है। मैं अभी तक आपको ही सर्वश्रेष्ठ जगत् का देवता समझता था, किन्तु आज मुझे ज्ञात हो रहा है कि आपसे बड़ा कोई देवता और भी है, जिसका आप ध्यान करते हैं। कृपया यह भी बतलाएँ कि आत्मज्ञान का साधन क्या है? यह विश्व किससे प्रकाशित होता है? किसके अधीन है और किसमें लीन होता है? आपका विज्ञानदाता तथा आश्रय कौन है? आप किसके अधीन हैं एवं आपका स्वरूप क्या है? ब्रह्मा जी ने कहा—वत्स! तुम्हारा सन्देह ठीक है। मुझसे परे जो तत्त्व है, उसे तुम नहीं जानते, इसी से तुम्हें सन्देह हो रहा है। उन भगवान् को नमस्कार है, जिनकी माया से मोहित हो लोग मुझे ही जगद्गुरु कहते हैं—

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ।।१२।।

पर, वस्तुतः जगद्गुरु श्रीनारायण ही हैं। उन्हीं से जगत् की सृष्टि होती है। मैं तो निमित्त मात्र उनके द्वारा प्रकाशित सृष्टि को ही प्रकाशित करता हूँ। जब भगवान् एक से बहुत होने की इच्छा करते हैं, तब प्रकृति और पुरुष पृथक् हो जाते हैं। उस समय पुरुष में काल, कर्म और स्वभाव ये तीनों अद्भुत होते हैं। काल से प्रकृति के गुणों का

क्षोभ होता है, स्वभाव से उसमें परिणाम होता है और कर्म से महत्त्व का जन्म होता है। महत्तत्त्व से अहंकार होता है। यह अहंकार सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का है—

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥२४॥

तामस अहंकार से पञ्चतन्मात्रा और पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। राजस अहंकार से इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। सात्त्विक अहंकार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता और मनकी उत्पत्ति होती है। इन सब तत्त्वों ने मिलकर भगवान् की शक्ति से एक अण्ड की रचना की। वह अण्ड बहुत वर्षों तक जल में पड़ा रहा। ब्रह्मा ने उसमें प्रविष्ट होकर उसको चेतन किया। इसीसे वह ब्रह्माण्ड कहा जाता है। फिर, उसका भेदन कर वह स्वयं विराट् रूप से प्रकट हुए। उनके अवयवों में सब लोक कल्पित हैं—चरणों में भूलोक, नाभि में भुवर्लोक और मस्तक में स्वर्गलोक। उन्हीं में सात भुवन एवं चौदह लोकों की कल्पना की गयी है।

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।
स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥४२॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

छठा अध्याय

विराट् पुरुष की विभूतियों का वर्णन

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद! हमारी दस इन्द्रियाँ, मन, प्राण, बुद्धि और इनके अधिष्ठाता देवता, ये सभी इस विराट् पुरुष से उत्पन्न हुए हैं। वृक्ष, नदी, पर्वत, समुद्र, स्थावर जङ्गम जीव, सुर, असुर, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह-नक्षत्र, तारा कहाँ तक कहें संसार में जो कुछ दिखायी पड़ता है। वह सभी विराट् पुरुष भगवान् ही हैं। मैं जिस समय भगवान् की नाभि से आविर्भूत हुआ। मैंने यज्ञ की सामग्री भगवान् के अवयवों से अतिरिक्त नहीं देखी, अतः उन्हीं से उसका निर्माण किया।

पुरुषावयवैरेते सम्भाराः सम्भृता मया ॥२६॥

उसी से भगवान् का यजन किया। इसलिए सम्पूर्ण जगत् नारायण में अधिष्ठित है। वे निर्गुण होते हुए भी सृष्टि के समय सगुण हो जाते हैं। उनसे ही प्रेरित होकर मैं सृष्टि करता हूँ, विष्णु पालन करते हैं एवं शिव संहार करते हैं। हे नारद! भगवान् के अतिरिक्त संसार में सत्-असत् कोई पदार्थ नहीं, यह निश्चित जानों, क्योंकि—

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥३३॥

मैंने प्रेम से भगवान् को हृदय में धारण किया है, इसलिए मेरा मन एवं वाणी, इन्द्रियाँ कभी असत् मार्ग में नहीं जातीं और न मिथ्या निर्णय ही करती हैं। हे वत्स! अब मैं उन्हीं विराट् भगवान् के मङ्गलमय सुन्दर लीलावतारों का क्रम से वर्णन करूँगा, जो कुसंगवश मनुष्यों के कर्णकुहरों में चिरकाल से बहते हुए विषयों के प्रवाह को सुखाने वाले हैं। तुम उनका ध्यानपूर्वक श्रवण करो। इससे तुम्हें बड़ी शान्ति मिलेगी।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का छठाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

सातवाँ अध्याय

भगवान् के लीलामय २४ अवतारों का वर्णन

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय विभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ।
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ।।१।।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद! विराट् भगवान् ने (१) वराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया और हिरण्याक्ष को मारा। (२) आकूति के पुत्र सुयज्ञ होकर संसार की पीड़ा हरण कर मन्वन्तर का पालन किया। (३) कर्दम जी के पुत्र भगवान् कपिल होकर सांख्य के उपदेश द्वारा माता देवहूतिका उद्धार किया। (४) अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय होकर हैहय आदि नरेशों को उपदेश दिया। (५) सनकादि चार मूर्तियाँ धारण कर प्रलय में नष्ट आत्मतत्त्व का उपदेश दिया। (६) नर-नारायण रूप धारण कर अपने तप के प्रभाव से कामादि को दमन कर परास्त किया। उनके विस्तृत चरित्र का ११वें स्कन्ध में वर्णन करेंगे। (७) हरि अवतार लेकर ध्रुव की तपस्या पर रीझकर उसे ध्रुवलोक दिया। (८) राजा वेन के पुत्र पृथु होकर सम्पूर्ण पदार्थों का पृथ्वी से दोहन किया और पिता वेन की नरकपात से रक्षाकर पुत्र-नाम सार्थक किया। 'जगति पुत्रपदं च लेभे'। (९) नाभि के पुत्र ऋषभ होकर परमहंस का वास्तविक स्वरूप बतलाया और दिखाया। (१०) मेरे यज्ञ में भगवान् हयग्रीव रूप से प्रकट हुए, जिनके श्वास से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। (११) मत्स्यावतार लेकर, मेरे मुख से जल में गिरे वेदों को लाकर मुझे दिए और सत्यव्रत मनु को ब्रह्म का उपदेश किया। (१२) समुद्र मन्थन के समय कच्छप का रूप धारण कर अपनी पीठ पर मन्दराचल धारण किया। (१३) नरसिंह अवतार लेकर भक्तवर प्रह्लाद की रक्षा करते हुए हिरण्यकशिपु को मारा। (१४) हरि अवतार धारण कर चक्र से ग्राह का मुख फाड़ कर उससे गजेन्द्र का उद्धार किया—

चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते ।
प्रगृह्य भगवान् कृपयोज्जहार ।।१६।।

(१५) वामनावतार द्वारा दैत्यराज बलि से छल कर तीन पैर पृथ्वी माँगी और तीनों लोकों को नाप कर सारी सम्पत्ति इन्द्र को समर्पित की। (१६) हंसावतार में योग और ज्ञान का उपदेश किया। (१७) मन्वन्तरावतार में दुष्ट राजाओं का दमन किया। (१८) धन्वन्तरि अवतार में आयुर्वेद का उपदेश किया। (१९) परशुरामावतार द्वारा इक्कीस बार ब्रह्मद्रोही क्षत्रियों का संहार किया। (२०) रामावतार में रावण का वध किया। **दशवक्त्रमहन् सलङ्कम्।**

(२१-२२) बलराम और कृष्ण अवतार में बहुत से दैत्यों का संहार और नाना प्रकार की लीलायें कीं। (२३) व्यास अवतार द्वारा वेदों का विभाग किया। (२४) बुद्धावतार द्वारा वेदों का खण्डन कर राक्षसों को मोहित किया। (२५) कल्कि अवतार शूद्र राजाओं के संहारार्थ धारण किया। ध्रुव और गजेन्द्र के लिए एक ही हरि अवतार हुआ है। इसलिए इन अवतारों की मूलतः २४ संख्या ही मानी गयी है। ये सब अवतार विराट् भगवान् की विभूतियाँ हैं। शेष जी भी सहस्र मुख से भगवान् के इन गुणों का गान करते हुए आज तक उनका पार न पा सके—

गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः ।
शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥४१॥

तब अन्य का सामर्थ्य ही क्या? जिन पर भगवान् स्वयं दया करते हैं, वे ही उनका रहस्य किसी प्रकार जान सकते हैं। इसलिए तुम उन्हीं की शरण लो। उनसे बढ़ कर कोई दूसरा रक्षक नहीं है। श्रीमद्भागवत पुराण उन्हीं की विभूतियों का संग्रह है। तुम इसका विस्तार करो, इसका संकल्पपूर्वक ऐसा वर्णन करो कि जिससे मनुष्यों की भगवान् में भक्ति हो। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति से भगवान् की लीलाओं का श्रवण करता है, वर्णन करता है एवं उनका अनुमोदन करता है, उसका चित्त माया से कभी मोहित नहीं होता—

माययाऽऽत्मा न मुह्यति ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

आठवाँ अध्याय

जीवेश्वर के देहसम्बन्ध पर राजा की आशङ्का तथा पुराणसम्बन्धी अनेक प्रश्न

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे ब्रह्मन्!

ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च ।
यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥१॥

ब्रह्मा द्वारा प्रेरित नारद जी ने जिनके लिए श्रीमद्भागवत का उपदेश किया, उन्हें मैं जानना चाहता हूँ। लोगों का मङ्गल करने वाली भगवान् की कथा आप सुनायें, जिससे मैं वासनारहित हुए अपने मन को भगवान् में स्थिर कर इस शरीर का त्याग कर सकूँ। श्रद्धा से प्रेमपूर्वक नित्य भगवच्चरित्र का श्रवण और उपदेश करने वाले के हृदय में भगवान् शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं—

कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि ।।४।।

वे उनके वासनारूपी मल को नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार का वासनारहित पुरुष भगवान् के चरणकमल को छोड़ना नहीं चाहता। उसके रागद्वेषादि समस्त क्लेश सदा के लिए निवृत्त हो जाते हैं एवं उसे शनैः-शनैः भगवत्तत्त्व की अनुभूति होने लगती है। चेतन जीव का देह आदि से जो सम्बन्ध है वह निर्निमित्त है अथवा किसी कारणवश या कर्मादि से है। जो ईश्वर है, वह भी जीव के समान ही अवयव वाला देहवान् है, तो जीव से ईश्वर की विशेषता ही क्या रही? इसे आप कृपया बतायें। ईश्वर के अवयवों से लोकों को कल्पना और लोकों से ईश्वर के अवयवों की कल्पना होती है, यह कैसे? काल एक ही है, फिर उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान आदि विभाग कैसे? मनुष्य, पितर तथा देवताओं की आयु का प्रमाण क्या है? कर्मों से प्राप्त स्थान कौन-कौन और कितने हैं? भूमि, पाताल आदि की उत्पत्ति कैसे हुई? ब्रह्माण्ड के बाहर और भीतर से प्रमाण क्या है? युग कितने हैं और मान क्या है? सामान्य तथा विशेष धर्म क्या है? प्रलय और महाप्रलय का स्वरूप क्या है? बन्ध और मोक्ष क्या है? हे भगवन्! इस प्रकार के जो प्रश्न मैंने पूछे हैं और जिन्हें न पूछ सका हूँ, उन सबका तात्त्विक समाधान करने की कृपा करें—

तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ।।२४।।

ब्रह्मा, नारद तथा व्यास इस क्रम से आपकी ज्ञानपरम्परा अक्षुण्ण चली आ रही है, अतः आप इन सब विषयों के पूर्ण ज्ञाता हैं। अनशन तथा शृङ्गी के शाप से भी मुझे व्याकुलता नहीं है, क्योंकि मैं आपके श्रीमुख से भगवत्कथारूपी अमृत का पानकर रहा हूँ।

सूत जी कहते हैं—हे शौनक! राजा के इन प्रश्नों को सुनकर शुकदेव जी बड़े प्रसन्न हुए तथा श्रीमद्भागवत से इन सब प्रश्नों का उत्तर देने के लिए वे उद्यत हुए, जिस भागवत का उपदेश ब्रह्मकल्प में श्रीनारायण ने ब्रह्मा जी को किया था—

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ।।२८।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

नवाँ अध्याय

भगवान् नारायण का ब्रह्मा को चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

आत्ममायामृते राजन् परस्यानुभवात्मनः ।
न घटेतार्थसम्बन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥१॥

देह आदि से व्यतिरिक्त जीव का देह-सम्बन्ध अविद्या से होता है, वह वास्तविक नहीं है। जैसे स्वप्नद्रष्टा का स्वप्नगत देह से सम्बन्ध नहीं। इस अविद्या से ही उसकी बाल, युवा आदि अवस्थाएँ प्रतीत होती है। वह अविद्या कार्य देहादि में आसक्त होकर ही बन्धन प्राप्त करता है। जब इस अविद्या की निवृत्ति होती है, तब उसका मोक्ष हो जाता है। जीव से ईश्वर की यही विशेषता है कि जीव का मिथ्या देहसम्बन्ध अविद्या से है और ईश्वर का चिन्मय लीलाविग्रह का सम्बन्ध योगमाया से होता है। ईश्वर के भजन से ही जीव को तत्त्वज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। ब्रह्मा को भी तत्त्वज्ञान भगवान् की कृपा से ही हुआ था। इस सम्बन्ध में हम एक इतिहास कहते हैं। उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें। एक समय ब्रह्मा भगवान् के नाभिकमल में प्रकट होकर उस पर बैठे थे, चारों ओर जल ही जल था। सृष्टि कैसे करूँ यही वह सोच रहे थे। उसी समय ब्रह्मा जी को किसी के द्वारा दो बार कहे गये दो अक्षर सुनाई दिये, जो स्पर्श संज्ञक वर्णों में १६वाँ और २१वाँ अक्षर था 'तप-तप'।

स चिन्तयन् द्व्यक्षरमेकदाम्भस्युपाश्रृणोद् द्विर्गदितं वचो विभुः ।
स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किञ्चनानां नृप यद् धनं विदुः ॥६॥

तुम 'तपस्या करो, तपस्या करो' ऐसे शब्द सुनकर ब्रह्मा जी को उन शब्दों को कहने वालें के दर्शन करने की इच्छा हुई, किन्तु उसे देख न सके। तब ब्रह्मा ने उन शब्दों को ही अपना अमूल्य धन मानकर हजार वर्ष तक तपस्या की। तपस्या के प्रभाव से उन्हें वैकुण्ठलोक का दर्शन हुआ, जो शुद्ध सत्त्वमय है। काल से जिसका नाश नहीं होता। वहाँ सुन्दर वस्त्र और दिव्य आभूषण धारण किये भगवान् के पार्षद निवास करते हैं। लक्ष्मी आदि शक्तियाँ जिनकी सेवा में संलग्न रहती हैं, ऐसे पीताम्बर धारी चतुर्भुज भगवान् के भी वहीं दर्शन किये, जो एक दिव्य सिंहासन पर विराजमान थे। उनके दर्शन कर ब्रह्मा का हृदय गद्‌गद् हो उठा, शरीर में रोमाञ्च छा गये और नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। वे भगवान् के चरणों में प्रणाम कर बैठ गये। भगवान् ने मुस्कराते हुए ब्रह्मा के हाथ को स्पर्श किया और कहा—ब्रह्मन्! तुम्हारी तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे वर माँगो। ब्रह्मा ने कहा—हे भगवन्, मुझे सृष्टि का ज्ञान

नहीं है। कृपया आप उसका ज्ञान प्रदान करें। तब भगवान् ने ब्रह्मा को चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश किया और कहा—इसी के मनन से तुम्हें सृष्टि का पूर्ण ज्ञान हो जायेगा।

चतुःश्लोकी भागवत

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥३२॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥३३॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥३४॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥३५॥

सृष्टि के आदि में केवल मैं ही था, सत्, असत्, स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण प्रकृति भी नहीं थी। सृष्टि के पश्चात् भी मैं हूँ। यह विश्व जो दृष्टिगोचर हो रहा है, वह भी मैं हूँ। प्रलय में जो शेष रहता है, वह भी मैं हूँ। यह ब्रह्मा का स्वरूप कहा गया है। आत्मा में असत्, कृशत्व, दुःखित्व की जो प्रतीति होती है और सत्, आनन्द आदि की जो प्रतीति नहीं होती है, उसे मेरी माया जानो। जैसे आकाश में दो चन्द्रों के न रहने पर भी दो चन्द्रों की प्रतीति हो जाती है; ग्रहमण्डल में रहते हुए भी राहु की प्रतीति नहीं होती है, यह माया स्वरूप कहा गया है। जैसे पञ्चमहाभूत छोटे बड़े सभी जीवों में प्रविष्ट हैं और कारण रूप से पृथक् रहने से अप्रविष्ट भी हैं, वैसे ही भूत-भौतिक पदार्थों में मेरा प्रवेश है और नहीं भी है, ऐसी मेरी सत्ता है।

आत्मतत्त्व के जिज्ञासु पुरुष को यही जानना चाहिए कि जो अन्वय और व्यतिरेक से सर्वदा रहे, वही आत्मा है। अन्वय का अर्थ है कार्य में कारण का सम्बन्ध, व्यतिरेक का अर्थ है कारणावस्था में कार्य से व्यतिरेक, पृथक् स्थिति अर्थात् सम्बन्धाभाव। अथवा यों समझना चाहिए, जैसे माला के प्रत्येक मनिये में सूत्र का अन्वय सम्बन्ध है और प्रत्येक मनिये से सूत्र का व्यतिरेक पृथक अस्तित्व भी है। हमारे इस उपदेश का तुम एकाग्रचित्त से मनन करो, फिर तुम्हें सृष्टिविषयक किसी प्रकार का मोह नहीं होगा।

कृष्णावतार में ब्रह्मा को जो मोह हुआ था, वह लीलार्थ उनकी कृपाशक्ति से हुआ था।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्, यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मा ने भगवान् को प्रणाम कर भागवत के प्रभाव से पूर्ववत् विश्व की सृष्टि की। एक समय

ब्रह्मा जी प्रजा के कल्याणार्थ यम-नियम अनुष्ठान कर रहे थे। इसी बीच नारदजी ने आकर अपने पिता को सेवा तथा शील से सन्तुष्ट किया। ब्रह्मा को प्रसन्न देखकर नारद जी ने उनसे वे ही प्रश्न पूछे, जो तुमने हमसे पूछे हैं। ब्रह्मा ने नारद को श्रीमद्भागवत का उपदेश किया, जिससे नारद के सभी सन्देह निवृत्त हो गये। नारद जी ने ही सरस्वती के तट पर बैठे खिन्नचित्त व्यासजी को उसका उपदेश किया था। हे राजन्! मैं भी श्रीमद्भागवत द्वारा ही तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

दसवाँ अध्याय

महापुराण के दश लक्षण, विराट्-सृष्टि तथा विदुर-मैत्रेय संवाद का उपक्रम

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ।।१।।

इस श्रीमद्भागवत महापुराण में दस लक्षण हैं। (१) सर्ग, (२) विसर्ग, (३) स्थान, (४) पोषण, (५) ऊति, (६) मन्वन्तर, (७) ईशानुकथा, (८) निरोध, (९) मुक्ति और (१०) आश्रय। इस आश्रयतत्त्व के ज्ञान के लिए ही ऋषियों ने इन नौ लक्षणों का वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत का पहला और दूसरा स्कन्ध उपोद्घातस्वरूप माना गया है। तीसरे से बारहवें स्कन्ध तक क्रम से दस लक्षणों का वर्णन है। तुमने जो प्रथम प्रश्न किया था कि विराट् पुरुष से जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? उनका उत्तर सुनो—विराट् पुरुष जब २४ तत्त्वों के अण्ड का भेदन कर बाहर निकले, तब उन्होंने अपने रहने के लिए निर्मल जल की सृष्टि की—

अपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ।

हजार वर्ष तक उन्होंने उसी जल में शयन किया। इससे भगवान् का नाम नारायण हुआ—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।।

उन्होंने जब बहुत होने की इच्छा की, तब योग-शय्या से उठे और उस अण्ड के तीन विभाग (अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव) किये। सृष्टि के लिए चेष्टा कर रहे

भगवान् के शरीर के अन्दर स्थित आकाश से इन्द्रिय शक्ति, मन:शक्ति और देहशक्ति, ये तीन शक्तियाँ उत्पन्न हुईं। उनसे क्रमश: सूत्र, महान् और असु, तीन प्रकार के प्राण हुए। जब प्राण चलने लगा, तब विराट् पुरुष को खाने-पीने की इच्छा हुई। तब अण्ड में से पहले मुख निकला। उसमें तालु अधिभूत हुआ, जिह्वा अध्यात्म इन्द्रिय हुई, वरुण देवता अधिदैव हुए और नाना रस विषय हुए। जब बोलने की इच्छा हुई, तब मुख में वाक् इन्द्रिय हुई, उसके अग्नि देवता हुए और भाषा विषय हुआ। जब गन्ध ग्रहण करने की इच्छा हुई। तब दो नासिका छिद्र निकले। उनमें घ्राण इन्द्रिय हुई, अश्विनी कुमार देवता हुए और गन्ध विषय हुआ। जब देखने की इच्छा हुई, तब दो नेत्र गोलक निकले। उनमें चक्षु इन्द्रिय, सूर्य, देवता और रूप विषय हुआ। जब शब्द ग्रहण करने की इच्छा हुई, तब दो कर्ण निकले। उनमें श्रोत्र इन्द्रिय, दिग्देवता और शब्द विषय हुआ। जब स्पर्श करने की इच्छा हुई, तब चर्म निकला। उसमें त्वक् इन्द्रिय वायु देवता और स्पर्श विषय हुआ। जब खुजलाने की इच्छा हुई, तब चर्म में रोम इन्द्रिय, महीरुह देवता और खुजलाना विषय हुआ। जब नाना कर्म करने की इच्छा हुई, तब दो हाथ निकले। उसमें बल इन्द्रिय, इन्द्र देवता और आदान-प्रदान विषय हुआ—

हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया।
तयोस्तु बलमिन्द्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥२४॥

जब चलने की इच्छा हुई, तब दो पैर निकले। उनमें गति इन्द्रिय, विष्णु देवता और गमनागमन विषय हुआ। जब रति करने की इच्छा हुई, तब शिश्न निकला। उसमें उपस्थ इन्द्रिय, प्रजापति देवता और रति-सुख विषय हुआ। जब मल त्यागने की इच्छा हुई, तब मलद्वार निकला। उसमें पायु इन्द्रिय, मित्र देवता और मलत्याग विषय हुआ। जब एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने की इच्छा हुई, तब नाभि निकली। उसमें अपान इन्द्रिय, मृत्यु देवता और मरण विषय हुआ। जब अन्न ग्रहण करने की इच्छा हुईं, तब कुक्षि निकली। उसमें अँतड़ी इन्द्रिय, समुद्र देवता और तुष्टि विषय हुआ। जब पेय पदार्थ ग्रहण करने की इच्छा हुई तब कुक्षि में नाड़ियाँ इन्द्रिय, नदी देवता और पुष्टि विषय हुआ। जब ध्यान करने की इच्छा हुई, तब हृदय निकला। उसमें मन इन्द्रिय, चन्द्र देवता और संकल्प विषय हुआ। यह भगवान् का स्थूल रूप है, जो पृथ्वी आदि ८ आवरणों से आवृत है। उससे परे एक और सूक्ष्म रूप है, जो आदि, मध्य और अन्त से रहित एवं मन और वाणी से परे हैं। ये दोनों ही रूप मायिक हैं। इस प्रकार हमने विराट् से जगत् की उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन किया। शौनक जी ने कहा—हे सूत जी! आपने पहले कहा था कि विदुर जी अपने बन्धु-बान्धवों का त्याग कर तीर्थयात्रा करने चले गये थे, वहाँ उन्हें मैत्रेय से तत्त्वज्ञान प्राप्त हुआ था। विदुर का उनसे संवाद

कहाँ पर हुआ, कृपया भगवद्भक्त विदुर का वह चरित्र कृपाकर हमसे कहिए। सूतजी बोले—हे शौनक!

राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ।
तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥५१॥

राजा परीक्षित् के प्रश्न पर शुकदेव जी ने जैसा कहा है, वही प्रसंग मैं तुम्हें राजा के प्रश्न के अनुसार सुनाता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के द्वितीय स्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

।। द्वितीय स्कन्ध समाप्त ।।

❖

तृतीय स्कन्ध प्रारम्भ

(इस स्कन्ध में ३३ अध्याय हैं और पुराण के प्रथम लक्षण सर्ग का वर्णन है)

पहला अध्याय

विदुर द्वारा कौरवों का त्याग तथा विदुर-उद्धव-संवाद

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तुमने पुराण-सम्बन्धी जो बहुत-से प्रश्न पूछे हैं, ये ही सब प्रश्न विदुर जी ने मैत्रेय जी से पूछे थे। राजा परीक्षित् ने कहा—हे भगवन्! विदुर जी का मैत्रेय के साथ संवाद कहाँ हुआ? यह मुझे बतलाने की कृपा करें। सूत जी ने शौनक से कहा—राजा परीक्षित् के इस प्रश्न पर शुकदेव जी कहते हैं—हे राजन्!

यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ।
भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान् विबन्धुन् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥

जब राजा धृतराष्ट्र अधर्मपूर्वक अपने पुत्रों का पोषण करने लगे, पितृहीन पाण्डवों को लाक्षाभवन में जलाने का उपक्रम किया गया, भरी सभा में रोती एकवस्त्रा द्रौपदी के केश खींचे गये और साड़ी उतारने का प्रयत्न किया गया, वनवास से लौटने पर भी युधिष्ठिर को उनका भाग नहीं दिया गया, सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये भगवान् की बात ठुकरा दी गई एवं युधिष्ठिर का भाग देने तथा दुर्योधन को घर से निकालने की सलाह देने पर मन्त्री विदुर, दुर्योधन द्वारा धृतराष्ट के सामने ही बहुत अपमानित किये गये तब दुःखित होकर विदुर दरवाजे पर ही धनुष रखकर तीर्थयात्रा करने चले गये। उनके चले जाने से कौरवों का मानों पुण्य ही उनके साथ चला गया। अवधूत वेष से तीर्थक्षेत्रों में भ्रमण करते हुए विदुर भगवान् के प्रीत्यर्थं निरन्तर व्रत किया करते थे।

व्रतानि चेरे हरितोषणानि ।

इधर राजा युधिष्ठिर सारी पृथ्वी पर एकछत्र शासन कर रहे थे। उधर विदुर जी घूमते हुए प्रभास-क्षेत्र पहुँचे। वहाँ सब कौरवों के नाश की चर्चा सुनकर वे पश्चिम वाहिनी सरस्वती के किनारे-किनारे अत्रि आदि महर्षियों के नामों से प्रसिद्ध बहुत से तीर्थों का दर्शन करते हुए यमुना तट पर जा पहुँचे। वहाँ उनकी भगवान् के अनन्य भक्त उद्धव से भेंट हुई। उद्धव जी के दर्शन से उन्हें अपार हर्ष हुआ। विदुर जी ने प्रेम से उद्धव का आलिङ्गन कर बन्धुओं का कुशल समाचार पूछा—हे उद्धव! वसुदेव, देवकी, श्रीकृष्ण उनकी रुक्मिणी आदि पत्नियाँ और प्रद्युम्न आदि पुत्र तथा सारा

परिवार कुशलपूर्वक तो हैं? राजा युधिष्ठिर, जिनकी सभा की अनुपम शोभा तथा साम्राज्य लक्ष्मी को दुर्योधन सह न सका, श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ धर्म मर्यादा का यथावत् पालन तो करते हैं? जिनके चरण प्रक्षेप को रणभूमि सह न सकीं, उन महाबली क्रोधी भीम ने अपने शत्रुओं को धराशायी तो कर दिया। नकुल और सहदेव, जैसे गरुड ने इन्द्र से अमृत का हरण किया था, वैसे ही दुर्योधन से अपना भाग हरण कर, सुखपूर्वक तो हैं। पाण्डवों की माता कुन्ती, पत्नी द्रौपदी आदि सभी आनन्द से तो हैं? हे उद्धव! मुझे कर्तव्य से च्युत अपने भाई धृतराष्ट्र पर बड़ा तरस आता है, जिन्होंने अपने दिवङ्गत भाई के साथ, उनके पुत्रों को सताकर, द्रोह किया और अपने पुत्रों के वशवर्ती होकर मुझे भी राज्य से निकलवा दिया। मैं इसे भी भगवान् की ही लीला समझता हूँ और उन्हीं भगवान् की कीर्ति का गान करता हुआ तीर्थों में भ्रमण करता हूँ। अब आप कृपया मुझे भगवान् की कथा सुनायें, जिससे मेरा चित्त शान्त हो—

वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥४५॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त ।।

❖

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्ण-विरह से व्याकुल उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ।
प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥१॥

विदुर द्वारा इस प्रकार भगवच्चरित्र पूछे जाने पर उद्धव भगवान् के ध्यान में मग्न हो गये, कुछ कह न सके। कारण, पाँच वर्ष की अवस्था से ही वह निरन्तर भगवान् की क्रीड़ा में निरत रहते थे। भगवान् के प्रति उनका अनुपम अनुराग था। भगवान् का नाम सुनते ही वह आनन्द समुद्र में मग्न हो गये और उनके सारे शरीर में रोमाञ्च छा गये। नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। एक मुहूर्त तो वे चुप ही रहे। बाद में आँसू पोंछकर बड़े दुःखित हो विदुर से बोले—हे विदुर! भगवान् श्रीकृष्णरूपी सूर्य के अस्त हो जाने से उनके बन्धुओं की कुशल क्या बताऊँ। वे सबके सब श्रीविहीन हो गये हैं। अभागे-यदुवंशी भगवान् को पहचान न सके। वे उन्हें केवल यदुवंशियों में ही श्रेष्ठ समझते रहे। भगवान् का श्रीविग्रह इतना सुन्दर था कि वे उसे देख-देखकर ही आश्चर्य से चकित रह जाते थे। एक समय नन्दजी के रत्न जटित आँगन में जब भगवान् घुटनों के बल चल रहे थे, तब स्वयं भी अपने मुख का प्रतिबिम्ब बहुत देर तक देखते रहे

और उसे पकड़ने के लिए उन्होंने अपने दोनों हाथ बढ़ाये। जब उसे पकड़ न सके तब माता का मुख देखकर रोने लगे।

रत्नस्थले जानुचरः कुमारः संक्रान्तमात्मीयमुखारविन्दम्।
आदातुकामस्तदलाभखेदान्निरीक्ष्य धात्रीवदनं रुरोद॥

हा, वह सौन्दर्य! आज मैं उसे कहाँ ढूँढ़ूँ, कहाँ पाऊँ? कुछ कहा नहीं जाता, युधिष्ठिर के यज्ञ में भगवान् का सौन्दर्य जब लोगों ने देखा, तब सब एक स्वर से कह उठे थे कि इस मूर्ति के निर्माण में ब्रह्मा की सारी कारीगरी समाप्त हो गयी। गोपियाँ जब कभी किसी काम से बाहर निकलती और मार्ग में भगवान् को देख पातीं, तब वे अपना कार्य छोड़कर अपलक नेत्रों से टकटकी लगाकर केवल भगवान् का सौन्दर्य ही निहारा करती थी। जब मैं भगवान् की लीलाओं का स्मरण करता हूँ, तब मुझे खेद के साथ बड़ा आश्चर्य भी होता है। अनन्तवीर्य उन भगवान् ने कंस के कारागार में जन्म लिया। जरासन्ध के भय से मथुरा से भागे। उग्रसेन को राज्य सिंहासन पर बैठाकर स्वयं नीचे खड़े रहे और सेवक की तरह उनसे आज्ञा माँगी। हे विदुर! अधिक क्या कहूँ?

दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः।
यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग् योगेन कस्तद्विरहं सहेत॥१९॥

राजसूय यज्ञ में भगवान् से द्वेष करने वाले शिशुपाल की जैसी सद्गति हुई थी, उसे तो आपने प्रत्यक्ष ही अपनी आँखों से देखा था। योगी लोग भी उस सद्गति की स्पृहा करते हैं। उन भगवान् का विरह कौन सह सकता है? उनकी दयालुता के विषय में तो कहना ही क्या है? राक्षसी पूतना ने अपने स्तनों में विष भरकर उनको मारने की इच्छा से दूध पिलाया, फिर भी उसे माता की-सी सद्गति दी। उनसे बढ़कर ऐसा दयालु कौन देवता है जिसकी शरण में हम जायँ?

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥२३॥

भगवान् ने व्रज में जाकर बलदेव जी के साथ ११ वर्ष तक वहाँ निवास किया, वंशी बजाते हुए गौएँ चराईं, कालियनाग का दमन किया, बड़े-बड़े दैत्यों का संहार किया, गोवर्धन पर्वत को अंगुली पर उठाया और दिव्य रास द्वारा गोपियों के मनोरथ को पूर्ण किया।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

◆

तीसरा अध्याय

मथुरा और द्वारका की लीलाएँ तथा यदुकुल को ऋषियों का शाप

उद्धव जी बोले—हे विदुर! व्रज से मथुरा में आकर भगवान् ने अपने माता-पिता को कारागार से छुड़ाया। कंस की चोटी पकड़कर सिंहासन से धरती पर पटका और घसीटा। सान्दीपनि गुरु से विद्या पढ़कर गुरुदक्षिणा में उनके मृत पुत्र को यमलोक से लाकर दिया। रुक्मिणी का हरण किया। दुर्दान्त बैलों को नाथकर नाग्नजिती से विवाह कियां। सत्यभामा की प्रसन्नता के लिए स्वर्ग से कल्पवृक्ष लाकर उनके आँगन में लगा दिया। भौमासुर को मारकर सोलह हजार कन्याओं से एक ही मुहूर्त में विवाह किया। प्रत्येक पत्नी में दस-दस पुत्रों को उत्पन्न कर 'दश पुत्रानाधेहि' इस श्रुतिं को चरितार्थ किया। कालयवन, जरासन्ध आदि दुष्ट राजाओं को मुचुकन्द, भीम आदि द्वारा वध कराया एवं कितनों को स्वयं मारा। कौरवों का संहार कराकर युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर बैठाया। फिर, द्वारका में आकर नाना प्रकार की लीलाएँ की। यदुकुल का नाश कराने के लिए ऋषियों से शाप दिलवाया। कुछ दिन बाद सब यदुवंशी प्रभास क्षेत्र में गये। वहाँ उन्होंने पितरों एवं देवताओं का तर्पण, पूजन कर ब्राह्मणों को सोना चाँदी, वस्त्र, आभूषण, गौ, अन्न, पृथ्वी आदि नाना प्रकार की वस्तुओं का दान किया और उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया—**प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः।**

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

चौथा अध्याय

उद्धव से यदुकुल का नाश सुनकर विदुर का मैत्रेय के समीप गमन

उद्धवजी बोले—हे विदुर!

अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम्।
तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥१॥

फिर सब यदुवंशियों ने ब्राह्मणों की आज्ञा से भोजन किया। अनन्तर खूब मदिरा पान कर एक-दूसरे पर मर्मभेदी व्यंग्य कसने लगे। मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर वे आपस में ही लड़-झगड़ कर कट मरे। भगवान् भी अपनी माया का तमाशा देख सरस्वती नदी के तट पर जाकर आचमन कर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठ गये। भगवान् ने मुझसे कहा—'तुम बदरिकाश्रम चले जाओ।' पर मैं भगवान् का अभिप्राय जानकर

उन्हीं के पीछे-पीछे वहाँ चला गया, जहाँ भगवान् बायें पैर पर अपना दाहिना पैर रखकर पीपल के सहारे बैठे थे। उसी समय भ्रमण करते-करते मैत्रेय जी वहाँ आ पहुँचे और भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। मैत्रेय जी के समक्ष ही सम्बोधन कर भगवान् ने मुझसे कहा—हे उद्धव! तुम्हारा अभिप्राय मैं जानता हूँ। मैं तुमको वह दुर्लभ वस्तु देता हूँ जो मुझसे विमुख लोगों को कदापि प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि पूर्व जन्म में तुमने मेरी बड़ी आराधना की थी। तुम्हारा यह जन्म अन्तिम है, जिसमें तुम मुझे इस अवस्था में देख रहे हो। मैंने सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को भी वही 'दुर्लभ वस्तु' दीं थी, जिसमें हमारी महिमा को प्रकाशित करने वाली लीलाओं का विस्तार है। जिसे विद्वान् श्रीमद्भागवत कहते हैं—

ज्ञानं परं मन्महिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ।।१३।।

इस पर उद्धव ने कहा—हे भगवन्! आपके भक्तों को चारों पदार्थों में से कोई भी दुर्लभ नहीं, तथापि आपके चरण कमलों की सेवा में उत्सुक मैं उन्हें नहीं चाहता। मुझे तो आप अपने रहस्यों का प्रकाशक केवल भागवत ज्ञान ही प्रदान करने की कृपा करें, जिससे मैं दुःख समुद्र से पार हो जाऊँ। यह सुनकर भगवान् ने उद्धव को अपने रहस्यमय ज्ञान का उपदेश किया और परमस्थिति सामीप्य मुक्ति भी दी।

आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ।।१९।।

तत्पश्चात् मैं भगवान् को प्रणाम कर, उनके विरह से व्याकुल हो, यहाँ चला आया हूँ और यहाँ से उनके प्रिय स्थान बदरिकाश्रम चला जाऊँगा। जहाँ नर-नारायण लोक-क़ल्याणार्थ तीव्र तपस्या करते हैं।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तब विदुर ने उद्धव से कहा—हे योगेश्वर! उसी ज्ञान का आप मुझे भी उपदेश करें। इस पर उद्धव ने कहा—मेरे सामने ही भगवान् ने मैत्रेय से कहा था कि मेरे ज्ञान का उपदेश तुम विदुर को भी कर देना। इसलिए हे विदुर! तुम मैत्रेय के समीप जाकर वह ज्ञान प्राप्त करो। यह कहकर उद्धव जी बदरिकाश्रम को चले गये। राजा परीक्षित् ने कहा—हे मुनिवर! जब सम्पूर्ण यदुकुल का नाश हो गया, तब उद्धव जी कैसे बच गये? शुकदेव जी बोले—हे राजन्? भगवान् ने अन्तर्धान होते समय विचार किया कि मेरे जाने पर कोई ज्ञान का उपदेश करनेवाला नहीं रह जायेगा। इसलिए उद्धव अभी कुछ दिन यहाँ रहें। यदुकुल का संहार और भगवान् का अन्तर्धान सुनकर विदुर भी रोने लगे और फिर यमुना तट से चलकर धीरे-धीरे कुछ दिनों में हरिद्वार जा पहुँचे, जहाँ पर मैत्रेय जी विराजमान थे—**यत्र मित्रासुतो मुनिः।**

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का तीसरा विश्राम)

❖

पूर्वोक्त चार अध्यायों में उद्धव और विदुर के संवाद का वर्णन कर अब यहाँ से चतुर्थ स्कन्धपर्यन्त विदुर और मैत्रेय-संवाद वर्णन करते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

महदादि तत्त्वों की उत्पत्ति और उनके द्वारा भगवान् की स्तुति

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

द्वारि द्युनद्या ऋषभःकुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम्।
क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥१॥

वहाँ गङ्गा जी के तटपर परमज्ञानी मैत्रेय जी को बैठे देखकर विदुर उनके समीप गये और नम्रतापूर्वक प्रणाम कर उनसे पूछा—हे ब्रह्मन्, संसार में मनुष्य सुख के लिए कर्म करता है, पर उसका फल दुःख होता है। ऐसी स्थिति में वह क्या करे? स्वतन्त्र भगवान् स्वेच्छा से अवतार लेकर सृष्टि का पालन और संहार करते हैं। एक से अनेक होते हैं और फिर सबका लयकर अपने स्वरूप में ही विराजते हैं। नाना लोकों की रचना कर उनमें अधिकारियों की व्यवस्था करते हैं। इन सबका प्रयोजन क्या हैं? महाभारत में मैंने व्यास जी के श्रीमुख से बहुत से धर्म और व्रत कथाएँ सुनीं, जिनसे मेरी तृप्ति हो गयी; किन्तु उनमें प्रसंगतः जो भगवच्चरित्र आये हैं, उनसे मेरी तृप्ति नहीं हुई। क्योंकि—

कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात्।
यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

संसार में कौन ऐसा विवेकी पुरुष है, जो भगवान् की अमृतमयी कथा से तृप्त हुआ हो? भगवत्कथा एक बार भी यदि कानों में पड़ जाय, तो वह संसार की वासनाओं को नष्ट कर देती है। वे प्राणी बड़े ही शोचनीय हैं, जो भगवान् की कथा से विमुख रहते हैं। काल उनकी आयु व्यर्थ नष्ट करता है। इसलिए हे भगवन्! विश्व के कल्याणार्थ भगवान् की सारभूत कथाएँ आप मुझे सुनायें, जिनसे मेरे खिन्न मन को शान्ति मिले। शुकदेव जी बोले—हे राजन्! लोक कल्याण की कामना से इस प्रकार विदुर जी के पूछने पर मैत्रेय जी उनका बड़ा आदर करते हुए बोले—हे विदुर! तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किये। इससे सारे जगत् का कल्याण होगा और संसार में तुम्हारी कीर्ति भी फैलेगी। आप साक्षात् धर्मराज हैं। माण्डव्य ऋषि के शाप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं, इसलिए आपका ऐसे प्रश्न करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भगवान् ने अपने अन्तर्धान के समय मुझसे कहा था कि तुम विदुर को भी मेरे ज्ञान का उपदेश कर देना। इसलिए मैं तुमसे सृष्टि से लेकर प्रलयपर्यन्त भगवान् की सभी लीलाओं का वर्णन करता हूँ। सृष्टि के आदि में दृश्य जगत् नहीं था। द्रष्टा ने अपने को

असत् की तरह मानकर जब एक से बहुत होने की इच्छा की, तब उनकी इच्छाशक्ति माया रूप से प्रकट हुई। उसमें भगवान् ने वीर्य का आधान (चिदंश को स्थापित) किया। उससे महत्तत्व की उत्पत्ति हुई। महत्तत्व से सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार से अहंकार हुए। तामस अहंकार से पञ्च तन्मात्राएँ और पञ्च महाभूत हुए। राजस अहंकार से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ हुई। सात्त्विक अहंकार से मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता हुए। ये सब गण पृथक्-पृथक् निकलकर जब ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ न हो सके, तब भगवान् की स्तुति इस प्रकार करने लगे—

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥३८॥

हे भगवन्! आपके चरणकमल शरणागत भक्तों के त्रिविध तापों का शमन करने में छत्ररूप हैं, योगीजन जिनका आश्रय लेकर सांसारिक दुःख को दूर से ही त्याग देते हैं, हम आपके उन चरणकमलों में प्रणाम करते हैं।

हे नाथ! संसार में त्रिविध तापों से तप्त प्राणी आपके चरणकमलों की सेवा के बिना सुख-शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते, अतः हम उन्हीं श्रीचरणों की छाया का आश्रय चाहते हैं।

हे विभो! मुनिजन एकान्त में वेद मन्त्रों द्वारा आपके जिन चरणकमलों का अन्वेषण करते हैं, पापहारिणी भगवती गङ्गा के जो उद्गम स्थान हैं, वे हमें सृष्टि करने का सामर्थ्य प्रदान करें।

हे भगवन्! जिनका हृदय में ध्यान कर मनुष्य ज्ञानी होते हैं, स्मरण मात्र से जो अभय प्रदान करते हैं, देह-गेह में आसक्त प्राणियों को जो दुर्लभ हैं, अभक्त जिनकी छाया भी नहीं पा सकते और भक्तों के जो सर्वस्व हैं, उन आपके श्रीचरणों में हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

हे भगवन्! आपने लोकरचना की इच्छा से माया में वीर्य का आधान कर हम लोगों की सृष्टि की है, किन्तु आपके क्रीड़ास्थान 'ब्रह्माण्ड' के निर्माण में हम समर्थ नहीं हैं, आप ही हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, जिससे हम ब्रह्माण्ड की रचना कर सकें। हम आपको पुनः सिर से नमन करते हैं। इस प्रकार महदादि देवों ने तेरह श्लोकों से भगवान् की स्तुति की।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

छठा अध्याय

महदादि से विराट्-शरीर की रचना और उसमें अधिदैवादि भेदों की कल्पना

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! इस प्रकार २३ तत्त्वों की प्रार्थना सुनकर भगवान् ने चेष्टारूप से उनमें प्रवेश किया और सबको एकसाथ मिला दिया—

त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥२॥

तब वे अपने-अपने अंश से अण्ड (स्थूल शरीर) की रचना कर सके। वह अण्ड हजार वर्ष तक जल में पड़ा रहा। फिर उस अण्ड से मुख निकला। लोकपाल अग्नि ने वाक् इन्द्रिय के साथ उसमें प्रवेश किया, जिससे यह जीव उच्चारण करता है। फिर उसमें तालु निकला। लोकपाल वरुण ने जिह्वा इन्द्रिय के साथ उसमें प्रवेश किया, जिससे यह जीव रस का ग्रहण करता है। अनन्तर नासिका के दो छिद्र निकले, जिनमें घ्राणेन्द्रिय के साथ अश्विनी-कुमारों ने प्रवेश किया, जिससे जीव को गन्ध का ज्ञान होता है।

निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालोऽविशद् विभोः।
चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१५॥

इसी प्रकार विराट् भगवान् के दो नेत्रगोलक निकले। लोकपाल सूर्य ने चक्षु इन्द्रिय के साथ उनमें प्रवेश किया, जिनसे जीव को रूप का ज्ञान होता है। पश्चात् चर्म निकला, जिसमें लोकपाल वायु ने त्वगिन्द्रिय के साथ प्रवेश किया, जिससे जीव को स्पर्श का ज्ञान होता है। फिर दो कान निकले, जिनमें दिशाओं ने श्रोत्रेन्द्रिय के साथ प्रवेश किया, जिनसे जीव शब्द का ज्ञान करता है। तदनन्तर चर्म निकला, औषधियों ने रोमेन्द्रिय के साथ उसमें प्रवेश किया, जिससे जीव को खुजली का अनुभव होता है। पुनः शिश्न निकला, जिसमें प्रजापति ने उपस्थ इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया, जिससे जीव विषयानन्द प्राप्त करता है। तत्पश्चात मलद्वार निकला, जिसमें मित्र देवता ने वायु इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया, जिससे जीव मलत्याग करता है। फिर दो हाथ निकले जिनमें इन्द्र ने पाणि इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया जिनसे यह क्रय-विक्रय आदि करता है। विराट् के दो पैर निकले, जिनमें विष्णु ने गति इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया, जिनमें जीव चलता-फिरता है। इसी प्रकार बुद्धि जागृत हुई, जिसमें वागीश ने बोध अंश के साथ प्रवेश किया, जिससे जीव को ज्ञेय पदार्थों का ज्ञान होता है।

आगे हृदय विकसित हुआ, जिसमें चन्द्रमा ने मन इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया, जिससे जीव संकल्प-विकल्प करता है। विराट् में अहंकार जागृत हुआ, जिससे रुद्र ने अहंवृत्ति के साथ प्रवेश किया, जिससे अहंकार क्रिया प्रचलित हुई। बाद में चित्त

निकला, जिसमें वासुदेव ने चेतनाशक्ति के साथ प्रवेश किया, जिससे जीव को विज्ञान की क्षमता प्राप्त हुई। विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और पैरों से शूद्र अपनी-अपनी वृत्ति के साथ उत्पन्न हुए। हे विदुर! भगवान् की योगमाया शक्ति के विलसित इस विराट् रूप का साकल्येन कोई वर्णन नहीं कर सकता, फिर भी सांसारिक विषयों के सम्पर्क से मलिन अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए मैं भगवान् के निर्मल यश का वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार करता हूँ, क्योंकि—

एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ।
श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसम्प्रयोगम् ॥३७॥

उत्तमश्लोक भगवान् का गुणानुवाद करना वाणी का मुख्य फल है एवं विद्वानों द्वारा वर्णित कथासुधा का पान करना कानों का मुख्य फल कहा गया है।

हे वत्स! ब्रह्मा भी हजार वर्षों तक योग समाधि द्वारा जिन भगवान् की महिमा नहीं जान सके, मन और वाणी की भी जहाँ पहुँच नहीं हैं, उन दुर्विज्ञेय महापुरुष को हम सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं—**तस्मै भगवते नमः।**

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का छठाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

सातवाँ अध्याय

विदुर के विविध प्रश्न और उनका समाधान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार मैत्रेय से भगवान् की महिमा का अद्भुत विवेचन सुनकर विदुर जी बड़े प्रसन्न हुए और मधुरवाणी से बोले—हे मुने! जो निर्गुण हैं सर्वदा तृप्त एवं निष्काम हैं, उन्हें इच्छा कैसे होती है और वह लीला कैसे करते हैं? देश काल या अवस्था से जिनका ज्ञान लुप्त नहीं होता, उनका माया से सम्बन्ध कैसा? ब्रह्म का अंश जो जीव हैं, वह भी ब्रह्मस्वरूप ही है, उसे कर्मों से क्लेश और आनन्द का विघात क्यों होता है?

अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥६॥

हे भगवान्! हमारे इन सन्देहों को आप निवृत्त करने की कृपा करें। शुकदेव जी बोले—हे राजन्! विदुर के इस प्रकार प्रश्न करने पर मैत्रेय ने भगवान् का ध्यान कर मुस्कराते हुए कहा हे विदुर! जो बात तर्क या युक्ति से विरुद्ध होती है, उसी को माया कहते हैं। विमुक्त जीव को अविद्या द्वारा ही बन्धन और कार्पण्य (मृत्युभय) प्राप्त होता है, जैसे स्वप्नगत पुरुष को सिर कटना सत्य प्रतीत होता है, पर जागते ही वह मिथ्या हो जाता है। यह भ्रम ईश्वर में नहीं है। जैसे कम्पन जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा में ही

होता है, आकाश-स्थित चन्द्रमा में नहीं। इसी प्रकार सुख-दुःखादि जो देहधर्म हैं, वे देहाभिमान जीव को होते हैं, ईश्वर को नहीं। जब मनुष्य निष्काम होकर भक्तिपूर्वक भगवान् की सेवा करता है, तब उसका अज्ञान निवृत्त हो जाता है, फिर उसे क्लेश या मृत्युभय भी नहीं होता है।

अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः।
कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥१४॥

भगवान् की मधुर लीलाओं का श्रवण-कीर्तन सांसारिक समस्त क्लेशों का शमन कर देता है। यदि कहीं मन में भगवान् की चरण कमल-सेवा का अंकुर जम जाय, तो फिर कहना ही क्या है। उसे यहीं भगवान् के दिव्य माधुर्य रस की अनुभूति हो जाती हैं। विदुर जी ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपके वचनों से मेरे बहुत से सन्देह निवृत्त हो गये हैं। फिर भी ईश्वर स्वतन्त्र और जीव परतन्त्र कैसे? यह सन्देह शेष है, इसे भी आप दूर करने की कृपा करें। मेरे कुछ और भी प्रश्न हैं। कृपया उनका भी समाधान कर मुझे कृतार्थ करें। ब्रह्मा ने सृष्टि के आरम्भ में किन-किन प्रजापतियों की सृष्टि की? उनके पुत्र, पौत्र आदि से किस प्रकार सृष्टि का विस्तार हुआ? मनु कितने हैं? भूगोल, खगोल तथा ऊपर-नीचे के लोगों का प्रमाण क्या है? वर्ण और आश्रम का विभाग किस प्रकार का है? आपद्धर्म क्या है? काल का स्वरूप क्या है? ग्रह, नक्षत्र, ताराओं की स्थिति किस प्रकार की है, श्राद्ध की विधि क्या है, दान, तप तथा इष्टापूर्त का फल क्या है? मैंने जो प्रश्न पूछे हैं और जो नहीं, पूछे गये मेरे इन सब प्रश्नों का आप समाधान करने की कृपा करें। शुकदेव जी बोले—हे राजन! जब विदुर ने ये प्रश्न पूछे, तब मैत्रेय जी ने प्रसन्न होकर इनका समाधान करना आरम्भ किया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

आठवाँ अध्याय

शेष-सनकादि का संवाद, नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति तथा उन्हें शेषशायी भगवान् का दर्शन

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! राजा पुरु का वंश अत्यन्त प्रशंसनीय है, जिसमें साक्षात् धर्मराज का तुमने अवतार लिया। तुम तो अपने प्रश्नों द्वारा क्षण-क्षण में भगवान् की कथा को नवीनता प्रदान करते हो। अब मैं स्वल्प सुख के लिए महान् दुःख को प्राप्त होने वाले मनुष्यों की दुःख-निवृत्ति के लिए वह श्रीमद्भागवत पुराण आरम्भ करता हूँ, जिसका उपदेश भगवान् शेष जी ने सनकादि महर्षियों को किया था—

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य।
प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद् भगवानृषिभ्यः ॥२॥

एक समय सनत्कुमार आदि चारों भाई भगवत्तत्व जानने की इच्छा से पाताल में शेष जी के समीप गये। वहाँ उन्होंने शेष जी को नेत्र बन्द कर अपने इष्टदेव भगवान् वासुदेव का ध्यान करते देखा। हजारों मणिजटित मुकुटों से जिनके फण सुशोभित हो रहे थे और नाग-कन्याएँ जिनके पादपीठ का पूजन कर नाना प्रकार की भेंट चढ़ा रही थी। सनत्कुमार आदि ने भी गङ्गा के जल से भीगे अपने जटामण्डल से उनके पादपीठपर प्रणाम कर गद्गद् वाणी से उनकी स्तुति की। शेष जी ने उनके कल्याण के लिए अपने नेत्र धीरे-धीरे खोले और कुशल प्रश्न के अनन्तर उन्हें श्रीमद्भागवत का उपदेश किया। सनत्कुमार ने उसका उपदेश सांख्यायन ऋषि को किया। सांख्यायन ने हमारे गुरु पराशर को तथा बृहस्पति को उसका उपदेश किया। पुलस्त्य द्वारा वर प्राप्त दयालु पराशर ने मुझे उसका उपदेश किया[1]। हे वत्स! तुम श्रद्धालु हो! अब मैं तुम्हें वही भागवत पुराण सुनाता हूँ, जिससे तुम्हारे सब प्रश्नों का समाधान हो जायेगा। इसे ध्यानपूर्वक सुनो। प्रलय काल में सम्पूर्ण विश्व जब जल में निमग्न था, भगवान् शेष शय्या पर नेत्र बन्द कर शयन कर रहे थे। उस समय समस्त पञ्चभूत सूक्ष्मरूप से उनके शरीर में लीन थे।

वह सहस्र चतुर्युगी तक उसी जल में सोते रहे। जब सृष्टि का समय आया, तब उन्होंने अपने नेत्र खोले और सम्पूर्ण लोकों को अपने में लीन देखा। अनन्तर रजोगुण से प्रेरित वही सूक्ष्म अर्थ उनकी नाभि से निकल कर अंकुरित हो कमल रूप में परिणत हो गया। उसने सम्पूर्ण जल को प्रकाशित कर दिया। भगवान् विष्णु उसी कमल में ओत-प्रोत थे। नाभि कमल से उत्पन्न ब्रह्मा उसी कमल की कर्णिका पर बैठे थे। उनके चारों ओर दृष्टि घुमाने पर चारों दिशाओं में चार मुख हो गये—**चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि।**

तब वे विचार करने लगे—मैं कौन हूँ? यह कमल कहाँ से आया? इसके नीचे भी कुछ अवश्य होना चाहिए? ऐसा विचार कर वे उसकी खोज में कमलनाल के सहारे जल के अन्दर प्रविष्ट हुए। सौ वर्ष तक निरन्तर खोजने पर भी जब उन्हें नीचे कुछ न मिला, तब फिर वहाँ से लौट कमल पर आकर बैठ गये। वहाँ श्वास रोककर सौ वर्ष तक समाधि में स्थित रहे। तब उन्हें अपने हृदय में उन अपूर्व पुरुष का दर्शन हुआ, जो जल में शेषशय्या पर सोये थे और जिनकी शोभा नीलमणि-पर्वत को लजा रही थी। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग दिव्य वस्त्र और आभूषण से सुसज्जित थे। वनमाला और

---

[1] पराशर अपने पिता शक्ति को कल्माषपाद राक्षस द्वारा भक्षित सुनकर राक्षससत्र करने को प्रवृत्त हुए, किन्तु वसिष्ठ जी की आज्ञा से उस सत्र से विरत हो गये। इस पर पुलस्त्यने प्रसन्न होकर पराशर को पुराणवक्ता होने का आशीर्वाद दिया।

हार उनके वक्षःस्थल पर कौस्तुभमणि के साथ सुशोभित हो रहे थे। लोकसिसृक्षु ब्रह्मा को जब भगवान् के दर्शन हुए, तब उन्होंने जल, वायु, आकाश, कमल तथा अपने को देखा। उससे अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ा। उस दिव्य मूर्ति ने ब्रह्मा की ओर मुस्कराते हुए अपनी तिरछी चितवन से देखा। पार्षद हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे थे। यह स्वरूप देखकर ब्रह्मा गद्‌गद वाणी से उनकी स्तुति करने लगे—

अस्तौद् विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥३३॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

◆

नवाँ अध्याय

ब्रह्मा द्वारा नारायण की स्तुति और उन्हें सृष्टिसामर्थ्यवर की प्राप्ति

ब्रह्मा जी बोले—हे भगवन्!

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां
न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम्।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं
मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥१॥

चिरकाल से आज मैंने आपको जाना। जीव आपको नहीं जानते, यह उनका महान् दोष हैं। संसार में आपके अतिरिक्त कोई जानने योग्य वस्तु नहीं है, जो है, वह भी शुद्ध नहीं है। माया से नाना रूप धारण कर आपही भासित हो रहे हैं। भक्तों के कल्याणार्थ आपने जो शुद्ध चिन्मय शेषशायी सगुण रूप धारण किया है, जिनके नाभि कमल से मैं उत्पन्न हुआ हूँ, निर्गुण रूप भी इससे भिन्न नहीं है। अतः मैं सृष्टि करने के लिए इसी रूप का आश्रय ले रहा हूँ। हे भुवन-मङ्गल! योगी जन समाधि द्वारा हृदय में जिस रूप का साक्षात्कार करते हैं, वह भी यहीं हैं। नारकीय जीव, जो नास्तिकता के कारण कुतर्कवश इसका आदर नहीं करते, वे हतभाग्य हैं।

हे नाथ! जो आपके चरण कमल-मकरन्द का पान करते हैं, भक्ति से आपके चरणों को हृदय में धारण करते हैं, आप उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश कर वहाँ से कभी नहीं हटते।

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥

स्त्री-पुत्र, धन तथा कुटुम्ब-परिवार से मनुष्य को तभी तक भय होता है और तृष्णा, शोक, लोभ, पराभव भी तभी तक सताते हैं, जब तक मनुष्य आपके निर्भय चरणों का आश्रय नहीं लेता।

संसार में जीवों के नाना प्रकार के कष्ट देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। इनका संसार कैसे निवृत्त हो? संसार के लोग कुकर्म में लगे रहते हैं और आपका भजन-पूजन नहीं करते। काल उनके जीने की आशा को नष्ट करता है। मैं कालरूप आपको नमस्कार करता हूँ। जो प्राणी मृत्यु के समय विवश होकर एक बार भी मुख से आपके नाम का उच्चारण कर लेते हैं, उनके अनेक जन्मों के पाप कट जाते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे भगवान्! मुझमें सृष्टि का सामर्थ्य नहीं है कि मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सकूँ। अतः मेरी बुद्धि में आप ऐसा ज्ञान दें कि मैं पूर्ववत् सृष्टि कर सकूँ और जो भी विधान बनाऊँ उसका अतिक्रमण कोई न कर सके। मुझे सृष्टिजन्य पातक भी न लगे। मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूँ। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! इस प्रकार पच्चीस श्लोकों से स्तुति कर ब्रह्मा जी चुप हो गये—**विरराम स खिन्नवत्।**

तब भगवान् गम्भीर-वाणी से बोले—हे ब्रह्मन्! तुम विषाद और आलस्य त्याग दो, सृष्टि के लिए उद्योग करो। तुम जो कुछ चाहते हो, उसे मैंने पहले से ही सम्पन्न कर दिया है। तुम फिर तपस्या और हमारी विद्या का आश्रय करो। उससे तुम अपने हृदय में ही सब लोकों को स्पष्ट देखोगे। सृष्टि करते समय तुम्हें किसी प्रकार का न क्लेश होगा और न रजोगुण से तुम्हारा बन्धन ही होगा। मैं तुम्हारी स्तुति से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो भी चाहते हो, वह सब शीघ्र ही पूर्ण हो जायेगा। अब तुम मेरा ध्यान कर मुझमें लीन हुई प्रजा की पूर्ववत् सृष्टि करो। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! भगवान् इस प्रकार ब्रह्मा को सृष्टिविषयक ज्ञान का उपदेश देकर अन्तर्धान हो गये।

व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ।।४४।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

दसवाँ अध्याय

दस प्रकार की सृष्टि का वर्णन

विदुर जी बोले—हे मुनिवर! भगवान् के अन्तर्धान होने पर ब्रह्मा ने कितने प्रकार की सृष्टि की? मेरे इस प्रश्न का तथा पूर्वपृष्ट अन्यान्य प्रश्नों का समाधान कर देने की कृपा करें। सूत जी बोले—हे शौनक! यह सुनकर मैत्रेय जी ने कहा—हे विदुर! ब्रह्मा ने भगवान् में चित्त लगाकर सौ वर्ष तक घोर तपस्या की। उस समय प्रलयकालीन वायु के द्वारा जल और पद्म दोनों ही आन्दोलित हो उठे। ब्रह्मा ने तपस्या

और विद्या के प्रभाव से जल सहित उस वायु को पी लिया—**न्यपाद्वायुं सहाम्भसा।**

तब आकाशव्यापी उस कमल से चौदह लोकों की रचना की। ईश्वर काल के ही द्वारा इस विश्व की सृष्टि करते हैं। यह सृष्टि जैसी इस समय है, वैसी पहले भी थी और बाद में भी रहेगी। काल की सृष्टि दस प्रकार की है। इसमें (१) महत्तत्व, (२) अहंकार, (३) तन्मात्राएँ, (४) इन्द्रियाँ, (५) उनके अधिष्ठाता देवता, (६) पञ्चपर्वा अविद्या की सृष्टियाँ ये छः प्राकृतिक सर्ग कहलाते हैं (७) स्थावर, (८) तिर्यक्, (९) मनुष्य ये तीन की सृष्टियाँ वैकृतिक कहलाती है। एवं (१०) सनत्कुमारादि की सृष्टि वैकृतिक और प्राकृतिक दोनों हैं। **कौमारस्तूभयात्मकः।**

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

ग्यारहवाँ अध्याय

काल, परमाणु आद के लक्षणों से युग, मन्वन्तर, घटी तथा देवादि की आयु का परिमाण

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर!

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ।
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ।।१।।

अब मैं तुम्हें काल, युग, मन्वन्तर आदि का स्वरूप बताता हूँ। तुम सावधान होकर इसका श्रवण करो। संसार के किसी पदार्थ का खण्ड करते-करते जिसका खण्ड न हो सके, उसी अन्तिम खण्ड को परमाणु कहते हैं। इस परमाणु प्रदेश को सूर्य जितनी देर में अतिक्रमण करता है, वही काल परमाणु कहलाता है। जितने समय में सूर्य बारह राशियों का भोगकर सम्पूर्ण भुवन कोश का अतिक्रमण करता है, वह महान् काल वर्ष कहलाता है। उसी की पुनरावृत्ति होने से वही काल द्विपरार्द्ध संज्ञक हो जाता है। अब तुम उसका क्रम सुनो—दो परमाणु मिलकर एक अणु होता है। तीन अणुओं का त्रसरेणु होता है, जो झरोखे में प्रविष्ट सूर्य की किरणों में उड़ता हुआ दिखायी पड़ता है। तीन त्रसरेणुओं की एक त्रुटि होती है। सौ त्रुटियों के एक वेध होता है। तीन वेधों का एक लव होता है। तीन लवों का एक निमेष होता है। तीन निमेषों का एक क्षण होता है। पाँच क्षणों की एक काष्ठा होती है। पन्द्रह काष्ठाओं का एक लघु होता है। पन्द्रह लघुओं का एक दण्ड (घड़ी) होता है। दो घड़ियों का एक मुहूर्त होता है। ह्रास या वृद्धि के कारण छः या सात घड़ियों अथवा तीन मुहूर्तों का एक याम (प्रहर) होता है। हे विदुर! अब जल-घड़ी के द्वारा तुम दण्ड का मान सुनो।

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥९॥

छः पल ताँबे की एक कटोरी बनावें। उसमें चार मासे सोने की चार अंगुल की सलाई से छिद्र करें और उसे जल में छोड़ दें। वह प्रस्थ जल से पूरित हो जितने काल में डूबे, वही काल दण्ड कहलाता है। चार-चार प्रहर का रात-दिन होता है। पन्द्रह दिनों का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मासों की एक ऋतु होती हैं। छः मास का अयन होता है। अयन दो होते हैं—उत्तरायण और दक्षिणायन। दो अयन या बारह मासों का एक वर्ष होता है। जिस वर्ष में सौर और चन्द्र मास की एक प्रवृत्ति होती है, वह वर्ष संवत्सर कहलाता है। इसके आगे परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर ये वर्ष के पाँच भेद होते हैं, अपने-अपने मान से देव, पितर, मनुष्यादि सबकी आयु सौ वर्ष की होती है—

संवत्सरशनं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥१२॥

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, ये चार युग हैं। दिव्य मान से सत्ययुग का मान ४८०० वर्ष त्रेता का मान ३६२० वर्ष, द्वापर का मान २४०० वर्ष तथा कलियुग का मान १२०० वर्ष का है। युग के आदि में सन्ध्या होती है और अन्त में अंश होते हैं। सन्ध्या और सन्ध्यांशका काल १०० वर्ष का है। उसको युग कहते हैं। त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से ब्रह्मलोक तक सहस्र चतुर्युग का एक दिन होता है। ब्रह्मा के इसी एक दिन को कल्प कहते हैं। एक कल्प में चौदह मनु राज्य करते हैं। एक मनु का राज्य युगों की कुछ अधिक एकहत्तर चौकड़ी तक होता है। मनु का राज्यकाल मन्वन्तर कहलाता है। उसमें मनु, मनुपुत्र, ऋषि, देवता, इन्द्र और भगवान् का अंशावतार ये छः होते हैं। ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होने पर त्रिलोकी का प्रलय होता है। भगवान् उस समय जल में शयन करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा की आयु धीरे-धीरे बीतती हैं। उनकी आयु का आधा भाग परार्द्ध कहलाता है। पहला परार्द्ध समाप्त हो चुका है। दूसरा परार्द्ध चल रहा है। यह द्विपरार्द्ध भगवान् का एक निमेष होता है। यह केवल लोगों को समझाने के लिए बताया हैं। काल से कभी भगवान् का अन्त नहीं समझना चाहिए। क्योंकि वह काल के भी काल हैं। जिनके एक-एक रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड घूमा करते हैं एवं जो सब कारणों के कारण हैं, उन महापुरुष परब्रह्म भगवान् को हम सिर से प्रणाम करते हैं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

बारहवाँ अध्याय

मानस सृष्टि से प्रजा की वृद्धि न होने पर यौनसृष्टि का आरम्भ

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! इस प्रकार मैंने तुम्हें संक्षेप में काल का स्वरूप बतलाया। अब ब्रह्मा ने जिस प्रकार सृष्टि की, उसे भी सुनो। पहले ब्रह्मा ने पञ्चपर्वा अविद्या की सृष्टि की।

तमो मोहो महामोहो तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः॥

तम का अर्थ अविद्या है, मोह का अर्थ देहादि में अहंबुद्धि है, महामोह का तात्पर्य विषय-भोगेच्छा, तामिस्र का तात्पर्य क्रोध और अन्धतामिस्र का तात्पर्य देह-नाश से अपना नाश समझना है। इस तामसी सृष्टि से ब्रह्मा को सन्तोष नहीं हुआ। तब उन्होंने भगवान् का ध्यान कर पवित्र मन से सनकादि चार मुनियों की सात्त्विक सृष्टि की और उनसे कहा—पुत्रों! तुम सृष्टि करो। उन्होंने सृष्टि करना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि निवृत्ति-मार्ग में निरत होने के कारण झुकाव मोक्ष की ओर था। अपनी आज्ञा के उल्लंघन से ब्रह्मा को असह्य क्रोध हुआ। वह क्रोध उनके भ्रूमध्य से एक बालक के रूप में प्रकट हुआ। वह रोकर ब्रह्मा से बोला—पिताजी! आप हमारे नाम और स्थानों का निर्माण करें। तब ब्रह्मा ने उसका रुद्र[१] आदि नाम रखा और व्योम स्थान तथा रुद्राणी आदि स्त्रियाँ देकर कहा—हे रुद्र! इनसे तुम सृष्टि करो। रुद्र ने अपने सदृश भयंकर रुद्रों की सृष्टि की, जिनके तेज से सम्पूर्ण प्रजा सन्तप्त होने लगी। यह देखकर ब्रह्मा ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! तुम अपनी यह सृष्टि बन्द करो। यह तो मेरे सहित सब दिशाओं को ही भस्म करना चाहती है। तुम भगवान् की तपस्या करो। उससे तुम सृष्टि करने में समर्थ हो सकोगे। ब्रह्मा जी के यह कहने पर रुद्र उनको प्रणाम कर तपस्यार्थ वन में चले गये—**विवेश तपसे वनम्**[२]।

ब्रह्मा ने जब पुनः सृष्टि की चिन्ता की, तब उनके विभिन्न अङ्गों से मरीचि आदि १० ऋषि उत्पन्न हुए—

---

१. बालकानुकरणात् स्वयं रोदितीति रुद्रः। वस्तुतस्तु दुष्टान् नास्तिकान् रोदयतीति रुद्रः। अर्थात् बालक का अनुकरण करने से वे रोये थे, इसलिए उनका नाम रुद्र पड़ा। वास्तव में वे दुष्टों को रुलाते हैं, इसलिए रुद्र कहे जाते हैं।

२. प्रलयकाल में वृक्षसमूह का अभाव होने के कारण 'जीवनं भुवनं वनम्' इस कोष के अनुसार यहाँ वन-शब्द का अर्थ जल है। वराहपुराण का वचन है—

रुद्र प्रजाः सृजस्वेति ब्रह्मणा नोदितो मुहुः।
असमर्थ इति प्रोच्य जले रुद्रोऽन्यमज्जत॥

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥

मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ट दक्ष दसवें नारद। ब्रह्मा के मन से मरीचि, नेत्र से अत्रि, मुख से अङ्गिरा, कर्ण से पुलस्त्य, नाभि से पुलह, करसे क्रतु, त्वचा से भृगु, प्राण से वशिष्ठ, अंगुष्ठ से दक्ष तथा उत्सङ्ग (गोद) से नारद उत्पन्न हुए।

दक्षिण स्तन से धर्म, पृष्ठ से अधर्म, हृदय से काम, भ्रूसे क्रोध, अधरोष्ठ से लोभ, मुख से वाणी (सरस्वती) और छाया से कर्दम की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार ब्रह्मा के मन और देह से सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति हुई। फिर भी सृष्टि की समुचित वृद्धि न होने पर भगवान् की प्रेरणा से ब्रह्मा के मन में घोर कामवासना जागृत हुई और उन्होंने अपनी पुत्री सरस्वती पर ही बलात्कार करना चाहा, ऐसा हमने सुना है। मरीचि आदि पुत्रों ने प्रेमपूर्वक उन्हें समझाया और भगवान् से प्रार्थना की—

तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ।
आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

जिन भगवान् ने अपने तेज से इस विश्व की रचना की वही भगवान् इस समय धर्म की रक्षा करें। हम उन्हें सिरसे प्रणाम करते हैं। इस पर लज्जित होकर ब्रह्मा ने वह कामवासनामय शरीर ही त्याग दिया। वह राजस भाव सृष्टि में सहायक हुआ। उससे नीहार प्रकट हुआ, जिसे दिशाओं ने ग्रहण किया। वही अन्धकार का रूप धारण कर कामी पुरुषों की सहायता करता है। यदि ब्रह्मा के हृदय में वह भावना जागृत न होती, तो अन्धकार की उत्पत्ति न होती। जब पुनः ब्रह्मा ने सृष्टि का ध्यान किया, तब उनके चार मुखों से चार वेद, चार उपवेद इतिहास, पुराण आगम, छन्द, वर्णमाला, स्वर आदि उत्पन्न हुए। फिर भी जब सृष्टि की वृद्धि नहीं हुई, तब ब्रह्मा का शरीर दो भागों में विभक्त होकर मिथुन रूप से परिणत हो गया। इसमें जो पुरुष था, वह स्वायंभुव मनु हुए और दूसरा भाग उनकी पत्नी शतरूपा। तब से मैथुन-सृष्टि द्वारा प्रजा की वृद्धि होने लगी।

तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ॥५४॥

मनु द्वारा शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र एवं आकूति, देवहूति और प्रसूति, ये तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। आकूति का विवाह रुचि के साथ, कर्दम का देवहूति के साथ और दक्ष का प्रसूति के साथ हुआ, जिनकी सृष्टि से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया—

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥५६॥

ब्रह्माजी का पुत्री पर मोहित होने का कारण

एक समय ब्रह्मा आदि देवता तारकासुर से भयभीत होकर मुनियों-सहित कैलास गये। वहाँ शिव जी की स्तुति कर असुर के नाशार्थ प्रार्थना कर रहे थे कि उसी समय जितेन्द्रिय गरुड जी एक हंसिनी पर मोहित हो गये। ब्रह्मा जी को भी अपने जितेन्द्रियत्व का बड़ा गर्व था। शिव जी की माया में मोहित होकर ब्रह्मा जी गरुड़ जी की यह स्थिति देखकर भरी सभा में हँस पड़े। गरुड़ जी कुछ लजा गये। उन्होंने ब्रह्मा को शाप देते हुए कहा—मुझे अपनी सजातीय पक्षिणी के साथ क्रीड़ा करने की इच्छा हुई, यह कोई अनुचित कार्य नहीं। आपको जितेन्द्रियत्व का बड़ा गर्व है, फिर भी आप अपनी पुत्री पर ही मोहिंत होओगे, जिससे लोक में आपको बड़ी अपकीर्ति होगी और उसी से आपका देहपात भी होगा। जैसे भगवान् के पार्षद जय और विजय शाप से राक्षस बने, राजा नहुष अजगर बने, राजा नग गिरगिट बने, श्रवण के शापवश राजा दशरथ ने प्राण त्यागे, उसी प्रकार ब्रह्मा भी शापवश पुत्री पर मोहित हुए, उनका देहपात हुआ और लोक में पूजा बन्द हुई। गर्वनाशार्थ भगवान् शिव की यह एक लीला थी।

ब्रह्मा च बहुवारं हि मोहितः शिवमायया।
अभवद्भोक्तुकामश्च स्वसुतायां परासु च॥

शिवपुराण (उमासंहिता)

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

तेरहवाँ अध्याय

वराह भगवान् के द्वारा पृथ्वी का उद्धार और उनकी स्तुति

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मैत्रेयजी की इस प्रकार की पुण्यमयी वाणी सुनकर विदुर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने पूछा—

स वै स्वायम्भुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयम्भुवः।
प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने॥२॥

हे मुने! स्वायंभुव मनुने प्रिय पत्नी शतरूपा को प्राप्त कर क्या किया? भगवान् के अनन्य भक्त आदि राजर्षि मनु का चरित्र हमसे कहने की कृपा करें। भगवद्भक्तों के चरित्र का श्रवण ही मनुष्यों के शास्त्रानुशीलन का उत्तम फल कहा गया है। मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! मनु अपनी भार्यासहित ब्रह्मा को प्रणाम कर बोले—हे ब्रह्मन्! आप हमारे जन्मदाता पिता हैं। कृपया हमें बताएँ आपकी हम क्या सेवा करें? जिससे इस लोक में सर्वत्र हमारी कीर्ति हो और परलोक में सद्गति मिले। इस पर ब्रह्माजी ने

कहा—हे वत्स! तुमने निष्कपट भाव से जो कर्तव्य की आज्ञा माँगी, उससे हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं, तुम्हारा कल्याण हो। सत्पुत्र का यही लक्षण है कि पिता की आज्ञा से ही सम्पूर्ण कार्य करें। अब तुम इस पत्नी द्वारा अपने सदृश पुत्र उत्पन्न कर सृष्टि की वृद्धि करो। धर्म के द्वारा पृथ्वी का पालन करो। यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन करो, ऐसा करने से भगवान् शीघ्र तुम पर प्रसन्न होंगे। मनु ने कहा—पिताजी! मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रस्तुत हूँ। किन्तु पृथ्वी इस समय जल में निमग्न है। सृष्टि किस पर करूँ? हे देव! आप उसे निकालने का उपाय करें—

अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम्[1] ॥१५॥

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ब्रह्मा ने जल में निमग्न पृथ्वी को देखकर बहुत देर तक भगवान् का चिन्तन किया। उसी समय उनकी नासिका से एक अँगूठे के बराबर वराह का बच्चा निकला, जो क्षणमात्र में हाथी के बराबर हो गया, यह देखकर ब्रह्माजी अपने पुत्रों सहित विचार करने लगे। अरे मेरी नासिका से यह क्या उत्पन्न हुआ? मुझे मोहित करनेवाले क्या ये भगवान् ही तो नहीं हैं? यह सुनकर वराहरूप भगवान् ने बड़ी भीषण गर्जना की, जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। ब्रह्मा ने अपने पुत्रों सहित उनकी स्तुति की, जिससे यज्ञमूर्ति वराह भगवान् बड़े प्रसन्न हुए एवं—

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽविशत्कम् ॥२८॥

स्वयं घ्राणेन्द्रिय से पृथ्वी को खोजने लगे और ब्रह्मा आदि देवताओं को कृपादृष्टि से देखते हुए बड़े वेग से जल में प्रविष्ट हुए। उनके वज्रवत् कठोर शरीर के निपात के वेग से समुद्र की कुक्षि फट गयी और समुद्र दोनों हाथ उठाकर बड़े आर्तस्वर से चिल्ला उठा—'हे यज्ञेश्वर, हे भगवान् मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।'

चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥२९॥

भगवान् ने उसे आश्वासन देकर पृथ्वी को अपने दाँत पर उठा लिया। उसी समय हिरण्याक्ष दैत्य उनके सामने आ गया, जिसको भगवान् ने मार डाला। यह देखकर ब्रह्मा आदि देवता वराह भगवान् की स्तुति करने लगे—हे भगवन्! आपकी जय हो, आपकी जय हो। आपके रोम-रोम में यज्ञों के सम्पूर्ण पात्र और सामग्री विद्यमान हैं। आपने माया से सूकर-मूर्ति धारण की है। आपको नमस्कार है। आपके दाँत पर रक्खी हुई पृथ्वी अत्यन्त शोभा पा रही है। संसार की रक्षा के लिए आप उसे स्थापित करें। उसके साथ हम आपको प्रणाम करते हैं। आपके अतिरिक्त किसी का सामर्थ्य नहीं जो पृथ्वी का उद्धार कर सके। आपकी ग्रीवा के बालों से छिटके जल-

---

[1] प्रजा सृजेत्याज्ञप्तो मनुः प्रजाः ससर्ज यदा धराप्लावनेन सर्गविघ्नो जातस्तदागत्योवाचेति ज्ञेयमत्र। अन्यथा तात्कालिकतदुक्तिस्वीकारेतु मनुकन्यादेवहूतिसुतायां मरीचेर्जातात्कश्यपाज्जातस्य दैत्यस्य धरोद्धारे वराहकृतसंहारो न घटेतेति।

बिन्दुओं से हम सब पवित्र हो गये हैं। आप इसी प्रकार सर्वदा संसार का कल्याण करते रहें। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! इस प्रकार स्तुति करते हुए मुनियों को कृपादृष्टि से देखकर भगवान् ने जल के ऊपर पृथ्वी स्थापित कर दी और स्वयं अन्तर्धान हो गये। जो मनुष्य भगवान् की इस मङ्गलमयी कथा का श्रवण करता है, उसपर भगवान् शीघ्र प्रसन्न होकर उसके सारे मनोरथ पूर्ण कर देते हैं और अन्त में वह मोक्ष प्राप्त करता है। **जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति।**

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

चौदहवाँ अध्याय

दिति के हठ से सायंकाल में गर्भाधान और हिरण्याक्ष का जन्म

शुकदेव जी ने कहा—हे राजन्! मैत्रेय द्वारा वर्णित वराह भगवान् की सुमधुर कथा सुनकर विदुर तृप्त नहीं हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर पुनः पूछा—हे महर्षे! भगवान् वराह ने हिरण्याक्ष का वध किया, यह तो मैं आपके श्रीमुख से सुन चुका हूँ। अब आप यह बताने की कृपा करें कि हिरण्याक्ष के साथ वराह भगवान् का युद्ध क्यों हुआ?

दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्माद्धेतोरभून्मृधः ।।३।।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! तुमने भगवान् की बहुत सुन्दर कथा पूछी है। यह कथा मनुष्यों के मृत्युपाश को काटनेवाली है। ध्रुव ने इसी कथा के प्रभाव से मृत्यु के मस्तक पर पैर रखकर विष्णु का पद प्राप्त किया। इस विषय में पहले ब्रह्मा ने देवताओं से एक इतिहास कहा था। उसे तुम भी ध्यानपूर्वक सुनो। एक समय कश्यपजी सूर्यास्त के समय अग्निकुण्ड में हवन कर अग्निहोत्रशाला में समाधि लगाये बैठे थे। उसी समय दिति काम से पीड़ित होकर पुत्र की इच्छा से उनके समीप आयी और कामकी विविध चेष्टाएँ करती हुई उनसे बोली—हे देव! आज काम मुझे बहुत सता रहा है। सपत्नियों को पुत्रवती देखकर मेरा हृदय जल रहा है। मुझसे सहा नहीं जाता। आप मुझपर दया करें। यह सुनकर कश्यपजी बोले—हे प्रिये! घबड़ाओ नहीं, मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। हे गृहेश्वरी! पत्नी पुरुष को धर्म, अर्थ और काम प्रदान करती है। कामादि शत्रुओं से उसकी सरलता से रक्षा करती है। जिस पर गृह का सारा भार आश्रित है, ऐसी पत्नी का मनोरथ कौन पूर्ण नहीं करेगा? हे प्रिये! मैं तुम्हारे उपकारों का क्या बखान करूँ। सौ वर्षों में भी मैं उनसे उऋण नहीं हो सकता। किन्तु यह सन्ध्या (प्रदोष)

की घोर वेला[1] है, इसमें तुम्हारे देवर रुद्र अपने गणों के साथ घूमा करते हैं, वे तीन नेत्रों से देख रहे हैं—

देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते[2] ॥२४॥

उनका अनादर मत करो। वे बड़े प्रभावशाली है। दो घड़ी ठहर जाओ।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! कश्यपजी के इस प्रकार समझाने पर दिति ने अपना हठ नहीं छोड़ा एवं वेश्या के समान निर्लज्ज होकर ऋषि के वस्त्र पकड़ लिए। कश्यप ने भी पत्नी का हठ देखकर दैव को नमस्कार कर एकान्त में उसके साथ शयन किया। तदनन्तर आचमन प्रणायाम कर गायत्री का जप किया। इस प्रकार जब मुनि अपने नित्य कर्मों से निवृत्त होकर बैठे थे, दिति उनके समीप जाकर नीचे मुख कर बोली—हे भगवन्, मैं काम से व्याकुल थी। मैंने रुद्र का बड़ा अपराध किया। स्त्रियों पर सभी दया करते हैं। मैं उनको प्रणाम करती हूँ। आप और रुद्र दोनों ही मुझे क्षमा करें। मेरे गर्भ का नाश न करें। कश्यपजी बोले—हे चण्डी! तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन और रुद्र का अपमान किया, अतः चित्त की चञ्चलता से, सन्ध्यावेला के दोष से, मेरी आज्ञा न मानने से, रुद्र के अपमान से तुम्हारे गर्भ से दो बड़े दुष्ट राक्षस पुत्र उत्पन्न होंगे, जो तीनों लोकों को पीड़ा पहुँचायेंगे। निरपराध प्राणियों को सतायेंगे, स्त्रियों का अपहरण करेंगे एवं ऋषि मुनियों को कुपित करेंगे, तब भगवान् अवतार लेकर उन दोनों का वध करेंगे। यह सुनकर दिति बोली—हे नाथ! मेरे पुत्रों का वध भगवान् के ही हाथों से हो, क्रुद्ध ब्राह्मण के हाथों से नहीं—

मा क्रुद्धाद् ब्राह्मणाद् विभो।

कश्यपजी बोले—हे भद्रे! तुमने अपने अपराध पर जो शोक और पश्चात्ताप किया तथा हमारा और रुद्र का आदर किया है, इससे तुम्हारा पौत्र बड़ा धार्मिक और भगवान् का अनन्य भक्त होगा। भगवान् उसकी समदृष्टि से प्रसन्न होकर उसे दर्शन देंगे। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! भगवान् विष्णु से अपने पुत्रों का वध तथा अपने पौत्र को परम भगवद्भक्त जानकर दिति के चित्त में बड़ा उल्लास हुआ, क्योंकि कहा है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

---

[1] चत्वारीमानि कर्माणि सन्ध्यायां परिवर्जयेत्।
आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम्॥
आहारे जायते व्याधिः मैथुने गर्भदुष्टता।
निद्रायां ह्रसते लक्ष्मीः स्वाध्याये मरणं ध्रुवम्॥

आहार से उदर रोग, मैथुन से दुराचारी राक्षस सन्तान, निद्रा से ज्योति का नाश तथा स्वाध्याय से पठित ग्रन्थ की विस्मृति होती है, इसलिए संध्याकाल में ये चार कर्म वर्जित हैं।

[१] जामाताओं में परस्पर भाई का व्यवहार होता है, अतः रुद्र हमारे भाई होने के कारण तुम्हारे देवर हुए।

ये ये हताश्चक्रधरेण दैत्यास्त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन।
ते ते गता विष्णुपुरीं विमुक्ताः क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः॥
(विष्णुधर्म.)

जिसका चित्त आनन्दनिधि भगवान् में लग गया, उससे कुल पवित्र हो गया, माता कृतार्थ और पृथ्वी पुण्यवती हो गयी। भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से जिन-जिन दैत्यों का वध किया, वे सब वैकुण्ठ को चले गये। भगवान् का क्रोध भी वर के तुल्य होता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

पन्द्रहवाँ अध्याय

वैकुण्ठ-वर्णन एवं सनकादि कुमारों का जय-विजय को शाप

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः।
दधार वर्षाणि शतं शङ्कमानाऽसुरार्दनात्॥१॥

दैत्यों का दमन करने वाले विष्णु से शंकित दिति कश्यप का वीर्य सौ वर्ष तक धारण किये रही, जिससे सब दिशाओं में अन्धकार छा गया और देवताओं का भी तेज नष्ट हो गया। वे बड़े भयभीत होकर ब्रह्मा की शरण में गये और पूछा—भगवन्! कृपया आप बतायें कि यह अन्धकार कहाँ से आ रहा है? आपसे कुछ छिपा नहीं है। इस अन्धकार से हमारे सब कर्म लुप्त हो गये हैं। हम सब कर्तव्यविमूढ़ से हो गये हैं। आप हमारी रक्षा करें। कहीं दिति का बढ़ता हुआ गर्भ ही तो अन्धकार नहीं फैला रहा है? ब्रह्माजी इस पर हँस पड़े और मधुर वाणी से बोले—हे देवगण! सुनो, मैं इसका रहस्य बताता हूँ। एक समय मेरे मानसपुत्र सनकादिक लोगों में भ्रमण करते-करते वैकुण्ठ जा पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी के साथ विराजमान रहते हैं। जहाँ की शोभा अनुपम है। हंस, मयूर, शुक, कोकिल आदि दिव्य पक्षी तक जहाँ भगवान् की समुधुर दिव्य लीलाओं का गान करते हैं। मूँगे की बनी वापियों में जहाँ रंग बिरंगे पुष्प खिले रहते हैं, जिनकी मनोहर सुगन्ध से सारा वैकुण्ठ सुगन्धित रहता है। जहाँ की भूमि नाना मणियों से जटित है। स्फटिक मणि की जहाँ भित्तियाँ है। दिव्य आभूषणों से विभूषित पार्षद जहाँ निरन्तर भगवान् का गुणगान किया करते हैं। वैकुण्ठ की ऐसी अनुपम छटा देखकर सनकादि चारों कुमार बड़े प्रसन्न हुए। छः ड्योढ़ियाँ लाँघकर सातवीं ड्योढ़ी में पहुँचने पर हाथ में गदा लिए जय और विजय नामक दो पार्षद दरवाजे पर खड़े दिखायी दिये। उन्होंने अन्दर जाते हुए सनकादि को धृष्टतापूर्वक बेंत से रोक दिया—

वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ ।
तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥३०॥

यद्यपि वे रोकने योग्य न थे। इस पर भगवदिच्छा से परमशान्त सनकादि महर्षियों को कुछ क्रोध हो गया। वे पार्षदों से बोले—अरे आश्चर्य है, इस लोक में रहने पर भी तुम्हारा यह विषम स्वभाव, तुम्हारी भेददृष्टि नष्ट नहीं हुई? तुम यहाँ रहने योग्य नहीं जान पड़ते। इसलिए—

लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥३४॥

तुम भेददृष्टि के कारण नीचे के लोकों में चले जाओ, जहाँ कामादि शत्रु रहते हैं। यह सुनते ही पार्षद भयभीत होकर मुनियों के चरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगे। इसी समय भगवान् भी लक्ष्मी के साथ वहाँ आ पहुँचे। उनका दिव्य सौन्दर्य देखर मुनियों को क्रोध शान्त हो गया और वे भगवान् के चरणों पर गिरकर बार-बार प्रणाम करने लगे और बोले—हे भगवन्! आज बहुत दिनों में आपका दर्शन मिला—

कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्याच्-
चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः
पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥४९॥

यदि हमारा चित्त आपके चरण कमलों में भ्रमरों के समान रमता रहे, वाणी भी आपके चरणों का महत्त्व वर्णन करती तुलसी के समान यदि शोभा पाती रहे एवं कर्ण भी यदि आपके गुणगणों से पूर्ण होते रहें, तो आपके सेवकों को शाप देने के कारण हो पड़े अपराधों से हमारा जन्म भले ही नरकों में हो, हमें वह दुःखप्रद नहीं होगा। आपने इस समय जो रूप प्रकट किया है, इससे हमारे नेत्रों को बड़ा आनन्द मिल रहा है। हम इस रूप को बार-बार नमस्कार करते हैं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।
(मासिक-पारायण का चौथा विश्राम)

◆

सोलहवाँ अध्याय

वैकुण्ठ से जय-विजय का पतन

ब्रह्माजी बोले—हे देवगण!

इति तद् गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम्।
प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥१॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए सनकादिकों के बचनों का अभिनन्दन कर भगवान् विष्णु बोले—हे महर्षियो! हमारे पार्षद इन जय और विजय ने आप लोगों का बड़ा अपराध किया। आपने इन्हें जो दण्ड दिया, उसका मैं अनुमोदन करता हूँ और मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ, कारण ब्राह्मण मेरे इष्ट देवता हैं। उनके प्रतिकूल यदि इन्द्र भी हो, तो मैं उसे भी दण्ड दे सकता हूँ, अन्य की तो बात की क्या ब्राह्मणों की ही कृपा से चला लक्ष्मी भी अचल होकर मेरे समीप निवास करती है। यज्ञ में दी गयी घृतपूर्ण आहुति भी मैं अग्नि के मुख से उस प्रकार नहीं ग्रहण करता, जिस प्रकार ब्राह्मण के मुख से ग्रहण करता हूँ।

ब्राह्मण के मुख में दी गयी भोज्याहुति से देवताओं की पूर्णतृप्ति में दृष्टान्त

एक राजा भगवती श्रीगंगाजी का अनन्य भक्त था। उसने अपने पुरोहित के द्वारा गंगाजी में प्रतिदिन एक मन दूध चढ़ाने का संकल्प किया। तदनुसार यह व्यवस्था १२ वर्ष तक निरन्तर चलती रही। एक दिन पुरोहित के यहाँ अधिक संख्या में ब्राह्मण यात्रियों की मण्डली आ पहुँची। पुरोहित ने सोचा, आज इसी एक मन दूध की खीर बनाकर ब्राह्मणों को खिला दूँ, तो इनका अच्छी तरह अतिथि-सत्कार हो जायेगा और राजा को भी इस बात का कुछ पता न चलेगा। पुरोहितानी पति के इस विचार पर पूर्णतया सहमत न थीं, उन्हें राजा की ओर से कुछ भय की आशंका थी। पर पतिदेव के विरुद्ध वह कुछ कह भी न सकीं। पुरोहित अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। उसने एक मन दूध की खीर बनाकर ब्राह्मणों को भरपेट खिला दी। वे तृप्त होकर पुरोहित को अनेकों आशीर्वाद देते हुए चल दिये। रात्रि को गंगाजी ने राजा को स्वप्न में कहा—राजन्! आज तेरे दूध की खीर से मेरी पूर्ण तृप्ति हुई। यह सुनते ही राजा की निद्रा टूट गई, वह कुछ समझ न पाया और सोचने लगा कि क्या आज तक गंगा में मेरा संकल्पित दूध नहीं चढ़ता था? तुरन्त चपरासी द्वारा पुरोहित बुलाया गया। वह डरता-डरता राजदरबार में पहुँचा। राजा ने पूछा—क्यों जी पुरोहित! सच-सच बताओ? क्या तुमने आज तक गंगा में दूध नहीं चढ़ाया। पुरोहित ने कहा—अन्नदाता, मैं सत्य कहता हूँ कि मैं अभी तक बराबर दूध चढ़ाता रहा, केवल एक दिन ही दूध नहीं चढ़ा। कल मैंने आपके दूध की खीर बनाकर ब्राह्मण को खिला दी थी। यह सुनते ही राजा की आँखों में आँसू भर आये और पुरोहित से बोले—जाओ, जब गंगाजी की ऐसे ही तृप्ति होती है, तो तुम आज से प्रतिदिन इस एक मन दूध की खीर बनाकर ब्राह्मणों को खिलाया करो। पुरोहित राजा के आदेशानुसार जीवनपर्यन्त ब्राह्मणों को खीर खिलाता रहा, जिसके पुण्य से राजा को सपरिवार वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति हुई।

हे मुनिवरों, गौ, ब्राह्मण और अनाथ प्राणी, ये साक्षात् मेरे मूर्तियाँ हैं। इन्हें जो कड़ी नजर से देखते हैं, उनकी खाल यमराज गिद्धों से नुचवाते हैं।

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्त-
स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः
सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥

गाली देते ब्राह्मणों को भी मेरी ही मूर्ति समझकर जो उनकी पूजा करता है, प्रसन्नचित्त होकर हँसता ही रहता है और प्रेमपूर्ण सम्बोधनों से उन्हें बुलाता है, मैं उसके वश में हो जाता हूँ।

अब आप लोग मुझपर ऐसा अनुग्रह करें, जिससे ये दोनों अपने कर्म का फल भोगकर शीघ्र मेरे समीप आ जायँ। ब्रह्माजी बोले—हे देवगण! भगवान् की ऐसी प्रेममयी वाणी सुनकर सनकादि महर्षियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान् की मधुर वाणी सुनने से उनकी न तो आकांक्षा ही शान्त हुई और न वे उनकी गम्भीर वाणी का अभिप्राय ही समझ पाये। उनके सारे शरीर में रोमाञ्च छा गये और वे गद्‌गद वाणी से भगवान् से बोले—हे भगवन्! आप सबके अध्यक्ष हैं। अनुग्रह करें, आपका ऐसा कहना शोभा नहीं देता। ब्राह्मण आपके देवता हैं, पर ब्राह्मणों के परम देवता भी तो आप ही हैं। आपकी ही कृपा से योगी मृत्यु जीतकर संसार पर विजय पाते हैं। ब्राह्मणों का सब आदर करें, यह मार्ग दृढ़ करने के लिए स्वयं आपने मर्यादा स्थापित की है। इस सन्दर्भ में आप जैसा उचित समझें, वैसा करें। अपने पार्षदों को दण्ड दें अथवा दण्ड से मुक्त कर दें या हमें ही दण्ड दें। कारण, आपके निरपराध भक्तों को हमने व्यर्थ शाप दे डाला है।

भगवान् बोले—हे ऋषिवरों! यह शाप तो मेरी इच्छा से हुआ है—

शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥२६॥

इसलिए, ये दोनों तीन जन्मों तक असुरयोनि प्राप्तकर द्वेषभाव से मेरा चिन्तन करते हुए पुनः मुझे प्राप्त होंगे। ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगण! इस प्रकार नयनसुखदायक भगवान् का अनुपम दर्शन कर सनकादि महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए एवं भगवान् को प्रणाम कर वैकुण्ठ की सुषमा की प्रशंसा करते हुए चले गये। तदनन्तर भगवान् ने उन पार्षदों से कहा—हे द्वारपालों! यद्यपि मैं ब्रह्मशाप निवृत्त करने में समर्थ हूँ फिर भी उसे अन्यथा करना नहीं चाहता। तुम सानन्द जाओ, डरो मत, तुम्हारा कल्याण होगा। तुम शीघ्र मेरे समीप आ जाओगे। एक बार तुमने मेरे समीप आती हुई लक्ष्मी को रोक दिया था। उन्होंने क्रुद्ध होकर तुम्हें शाप दिया था, उसी का यह फल तुम्हें भोगना पड़ रहा है। यह कहकर भगवान् अपने दिव्य भवन में चले गये। तदन्तर वे दोनों पार्षद वैकुण्ठलोक से नीचे गिरकर दिति के गर्भ में प्रविष्ट हुए हैं। हे देवगण! उन्होंने तुम्हारे तेज को नष्ट कर दिया है।

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो
योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ।

क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीश-
स्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥३७॥

जो विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार के प्रधान कारण हैं, योगेश्वर भी जिनकी योगमाया का पार नहीं पाते, वही भगवान् हम सबका कल्याण करेंगे। इसमें मेरे विचार से क्या होना है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

सत्रहवाँ अध्याय

हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपुका जन्म एवं नानाप्रकार के उत्पात

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः ।
ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥१॥

ब्रह्माजी द्वारा बताये कारण जानकर सब देवता स्वर्ग को लौट गये। दिति ने सौ वर्ष पूरे होने पर युगल सन्तान उत्पन्न की। उस समय स्वर्ग, पृथ्वी तथा आकाश में बड़े-बड़े भीषण उत्पात हुए। पर्वतों सहित पृथ्वी काँप उठी, दिशाएँ ज़लने लगी, केतुओं का उदय हुआ, उल्कापात तथा वज्रपात हुए, वृक्षों को उखाड़ती आँधी चलने लगी, समुद्र में ज्वारभाटा आ गया, नदियों के कमल सूख गये, सियार, उल्लू आदि अशुभसूचक कर्कश शब्द करने लगे, सैकड़ों गधे अपने खुरों से पृथ्वी खोदते चिल्लाते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे कुत्ते, गर्दन उठाकर रोने लगे, गौओं के स्तनों से रुधिर टपकने लगा, देव प्रतिमाओं के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा, मेघ पीब की वृष्टि करने लगे, वायु के बिना ही वृक्ष गिरने लगे—**द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलम्।**

आकाश में ग्रह आपस में टकराने लगे, शनि, भौम आदि क्रूरग्रह गुरु, बुध आदि शुभ ग्रहों का अतिक्रमण करते और वक्रगति से लौटकर फिर उनसे युद्ध करने लगे। इन उत्पातों को देखकर सारी प्रजा घबड़ा उठी, उसे विश्व का प्रलय नजर आने लगा।

वे दोनों दैत्य उत्पन्न होते ही इतनी तेजी से बढ़े कि सूर्य उमके कटिभाग के नीचे हो गया। उन दोनों के शरीर लौह जैसे कठोर थे। जब वे चलते, तब पृथ्वी काँपने लगती। कश्यप ने ज्येष्ठ[१] पुत्र का नाम हिरण्यकशिपु और छोटे का हिरण्याक्ष रक्खा। हिरण्यकशिपु ने अपने तेज से तीनों लोक वशीभूत कर लिये। एक समय उनका छोटा

---

[१] यद्यपि दिति ने हिरण्याक्ष को पहले उत्पन्न किया था, किन्तु वीर्याधान पहले हिरण्यकशिपु का हुआ, अतः हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ माना गया।

भाई हिरण्याक्ष हाथ में गदा लेकर लड़ने के लिए स्वर्ग गया उसे देखकर कुछ देवता भयभीत होकर छिप गये और कुछ भाग खड़े हुए। वहाँ से लौटकर वह समुद्र में गया। वहाँ वरुण के दूत भी उसे देख मारे भय के थर्रा उठे। लोहे की गदा से समुद्र की तरङ्गों को पीटता वह वरुण की विभावरी-नामक पुरी में जा पहुँचा और वरुण को देखकर उपेक्षापूर्ण एक हाथ से प्रणाम कर बोला—हे अधिराज! आप हमसे युद्ध करें—

स्मयन् प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥२७॥

यह सुनकर वरुण को क्रोध तो बहुत आया, पर उसे रोककर वे बोले—हे दैत्य, मैं युद्ध से विरत हो चुका हूँ। पुराणपुरुष भगवान् को छोड़कर युद्धमार्ग में कुशल तुमसे कोई युद्ध नहीं कर सकता। अतः तुम उनको खोजकर उन्हीं से भिड़ जाओ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

अट्ठारहवाँ अध्याय

वराह भगवान् तथा हिरण्याक्ष का महायुद्ध

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद् विगणय्य दुर्मदः ।
हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद् रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥१॥

वरुण के ऐसे वचन सुनकर उन्मत्त हिरण्याक्ष वहाँ से चल पड़ा। मार्ग में नारद से भगवान् का स्थान पूछकर बड़े वेग से रसातल में जा पहुँचा। वहाँ भगवान् की दंष्ट्रा के अग्रभाग पर रखी पृथ्वी को देखकर वह बड़े जोर से हँसा और बोला—अहो! तुम जल में विचरने वाले शूकर हो? तुम इस पृथ्वी को छोड़ दो, अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं। ब्रह्माजी ने हमारे लिए इसे दिया है। तुम हमारे भाई असुरों को कपट से मारते हो। आज मैं तुम्हारा मस्तक गदा से चूर्ण कर डालूँगा। तुम्हारे न रहने पर सभी देवता स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे। उसके ऐसे दुर्वचन सुनकर वराह भगवान् बड़े वेग से जल से निकले। उसने भी उनका पीछा किया भगवान् ने पृथ्वी जल के ऊपर रखकर उसमें आधारशक्ति स्थापित की। देवतागण आकाश से पुष्पवृष्टि कर स्तुति करने लगे। देवताओं को आश्वासन देखकर पीछे खड़े दैत्य से क्रुद्ध होकर वराह भगवान् बोले—हे मूर्ख! हम जलचारी वराह तुम सरीखे कुत्तों को ही खोजते हैं—

सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान् मृगये ग्रामसिंहान् ॥१०॥

मृत्यु के पाश से बँधा तू क्या डींग हाँकता है। आ, ले अपने भाई असुरों का बदला। मैं संग्राम में खड़ा हूँ, जो प्रतिज्ञा कर उसे पूर्ण नहीं करता वह नारकी कहलाता है। मैत्रेयजी कहते हैं—हे विदुर! भगवान् की इस ललकार पर उसका शरीर क्रोध से

काँपने लगा और नेत्र लाल हो गये। उसने भगवान् पर गदा का प्रहार किया। भगवान् ने तिरछे होकर उसे निष्फल कर दिया। फिर, उसने दाहिनी भृकुटी पर गदा चलायी, उसे भगवान् ने अपनी गदा पर रोक लिया। इस प्रकार दोनों का विविध पैतरों से भीषण गदायुद्ध चलता रहा। इस संग्राम को देखने के लिए ब्रह्माजी भी ऋषियों के साथ वहाँ आ गये और बोले—हे भगवन्! यह दैत्य गौ, ब्राह्मण तथा निरपराध प्राणियों को सतानेवाला है। इसके साथ बालक की तरह खेल न करें। सायंकाल होते ही इसका बल बढ़ जायेगा और फिर इसे जीतना कठिन होगा। इस समय अभिजित् मुहूर्त आ गया है। इसी में इसका संहार कर संसार का कल्याण करें—**लोकानाथेहि शर्मणि।**

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

उन्नीसवाँ अध्याय

वराह भगवान् द्वारा हिरण्याक्ष का वध

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ।
प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ।।१।।

ब्रह्मा के ऐसे निष्कपट मधुर वचन सुनकर भगवान् ने प्रेमपूर्ण कटाक्ष से उन्हें अंगीकार किया और हँसकर बोले—हे ब्रह्मन्! तुम मुझे मुहूर्त का बल क्यों बताते हो? मैं कालरूप हूँ। मैं तो इसे रात्रि में ही मारूँगा। तुम चिन्ता मत करो। अनन्तर सामने खड़े दैत्य पर भगवान् ने गदा का प्रहार किया। तब उसने अपनी गदा से वह प्रहार यों रोका कि भगवान् के हाथ से गदा गिर पड़ी, इससे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। दैत्य ने निःशस्त्र अपने शत्रु पर प्रहार नहीं किया। तब भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया। उसने भी चक्रयुक्त भगवान् को देखकर दाँतों तले ओठ दबाया और उछल कर भगवान् पर गदा से प्रहार किया। भगवान् ने शत्रु के देखते-देखते ही वाम पैर से उसकी गदा चूर्ण कर डाली—

लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ।।९।।

फिर उससे कहा और भी जो शस्त्र हों, उन्हें भी तू ग्रहण कर। तब उसने पुनः गदा फेंककर प्रहार किया। भगवान् ने उसे हाथों में ही रोक लिया। यह देखकर उसने भगवान् पर बड़ा भयंकर चक्र फेंका, जिसे भगवान् ने अपने चक्र से काटकर गिरा दिया। जब चक्र कट गया, तब वह मुष्टिका से ही भगवान् के हृदय पर प्रहार कर अन्तर्धान हो गया और माया का प्रयोग करने लगा। भयंकर आँधी चलने लगी।

दिशाओं से पत्थर गिरने लगा। मेघों से मल, मूत्र और पीव की वर्षा होने लगी। नग्न राक्षसियाँ हाथ में त्रिशूल लिये मारो-काटो की गर्जना करती रणाङ्गण में इधर-उधर घूमने लगी। भगवान् ने अपने चक्र से इस माया का क्षणमात्र में नाशकर दिया। उस अवसर पर दिति के हृदय में सहसा कम्पन होने लगा एवं स्तनों से रुधिर बहने लगा। माया नष्ट होने पर दैत्य ने अपनी बाहुओं से भगवान् को जकड़ना चाहा किन्तु जकड़ न सका और क्रुद्ध होकर मुष्टि प्रहार करने लगा। भगवान् ने भी क्रुद्ध होकर उसके कर्णमूल में एक लात ऐसी मारी कि वह मूर्च्छित होकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा और भगवान् का श्रीमुख देखते-देखते उसने प्राण त्याग दिये। **मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह।**

ब्रह्मा आदि देवता उसकी इस मृत्यु की प्रशंसा कर भगवान् की स्तुति करने लगे—

क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम्।
अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां को नु लभेत संस्थितिम् ॥२७॥

दाँतों से ओठ को दबाकर पृथ्वी पर सो रहे कराल दाढ़वाले अतितेजस्वी उस दैत्य को देखकर ब्रह्मा आदि देवताओं ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—अहो योगियों को भी दुर्लभ ऐसी मृत्यु कौन प्राप्त कर सकता है।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! वराह भगवान् दैत्यों को मारकर अपने दिव्यलोक को चले गये। सूतजी कहते हैं—हे शौनक! इस प्रकार मैत्रेयजी से यह कथा सुनकर विदुर आनन्दमग्न हो गये। हिरण्याक्ष वध में वराह भगवान् के द्वारा किये गये अद्भुत पराक्रम को जो सुनाता है, गाता है तथा इसका अनुमोदन करता हैं, वह संसार से मुक्त हो जाता है। परम पवित्र यह आख्यान धन, कीर्ति तथा आयु को बढ़ाने वाला है और इसके श्रोतागण अन्त में भगवान् नारायण को प्राप्त करते हैं—

नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥३८॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा नाना प्रकार की सृष्टि

शौनकजी बोले—

महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायम्भुवो मनुः।
कान्यन्वतिष्ठद् द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥१॥

स्वायम्भुव मनुने आधाररूप पृथ्वी पा लेने पर प्राणियों की सृष्टि किन उपायों से की और विदुरजी ने भी मैत्रेयजी से आगे क्या पूछा? सूतजी बोले—हे शौनक! हिरण्याक्ष वध की कथा सुनकर विदुरजी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने मैत्रेयजी से पूछा—हे भगवन्! मनु एवं मरीचि आदि ऋषियों ने ब्रह्मा की आज्ञा से प्रजा की सृष्टि कैसे की? मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! पुरुष के निरीक्षण से प्रकृति के गुण क्षुभित हुए, जिनसे तत्त्वों की रचना हुई। उनसे एक अण्ड बना। वह बहुत दिनों तक जल में पड़ा रहा। उसमें नारायण प्रविष्ट हुए। उनके नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिन्होंने अविद्या की पञ्चधा सृष्टि कर अपना तमोमय शरीर त्याग दिया। अविद्याएँ निम्नलिखित हैं—

तामिस्त्रमन्धतामिस्त्रं तमो मोहो महातमः ॥१८॥

उस तमोमय शरीर से रात्रि उत्पन्न हुई, उसे यक्ष और राक्षसों ने ग्रहण किया, जब उन्हें भूख-प्यास लगी, तब ब्रह्मा को ही खाने के लिए उद्यत हो आपस में कहने लगे—"इस ब्रह्मा की रक्षा मत करो, इसे खा जाओ।" जिन्होंने कहा 'रक्षा मत करो', वे राक्षस कहलाये और जिन्होंने कहा 'खा जाओ', वे यक्ष कहलाये। तब ब्रह्मा ने प्रभा से देवताओं की सृष्टि कर वह शरीर भी त्याग दिया। उस दिवसरूपा प्रभा को देवताओं ने ग्रहण कर लिया। फिर ब्रह्मा ने जघन से असुर उत्पन्न किये। वे ब्रह्मा से ही मैथुन के लिए उद्यत हुए। तब ब्रह्मा ने अपना वह शरीर त्याग दिया, जो सन्ध्यारूप धारण कर सुन्दर स्त्री बन गयी और असुरों ने उसके साथ विवाह कर लिया। बाद में ब्रह्मा ने अपनी कान्ति से गन्धर्व उत्पन्न कर जो शरीर त्यागा, उससे ज्योत्स्नारूपी स्त्री उत्पन्न हुई। आलस्य से भूत-पिशाच उत्पन्न कर जो शरीर त्यागा, उससे निद्रारूपी स्त्री उत्पन्न हुई। इसी प्रकार अदृश्य रूप से साध्यगण, अन्तर्धान शक्ति से विद्याधरगण और प्रतिबिम्ब से किन्नरों की सृष्टि की औंर छोड़े गये शरीर उनकी स्त्रियाँ हो गयी, सृष्टि न बढ़ने की चिन्ता में ब्रह्मा ने एक दिन शयन की स्थिति में, क्रोध से अपना शरीर छोड़ दिया। इससे जो केश गिरे, वे अहि हो गये और प्रसर्पण करने (सरकने) से सर्प कहलाये। अंनन्तर कृतार्थता की भावना से ब्रह्मा ने मनुष्यों की सृष्टि की सबके अन्त में ब्रह्मा ने मनुओं की सृष्टि की—

तदामनून् ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥४९॥

तत्पश्चात् तप तथा विद्या से ऋषियों की सृष्टि कर उन्हें नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान की[१]।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीयस्कन्ध का बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

---

१. दसवें, बारहवें तथा बीसवें अध्याय में सर्गों का वर्णन कहीं क्रम से, कहीं मण्डूकप्लुति से और कहीं सिंहावलोकनन्याय से क्रम का अतिक्रमण कर किया गया है। उक्त सर्गों का क्रम इस प्रकार जानना चाहिए—पहले पंचपर्वा अविद्या का सर्ग, तदनन्तर वनस्पति

इक्कीसवाँ अध्याय

सृष्ट्यर्थ कर्दमजी की तपस्या और स्वायम्भुव मनु का आगमन

विदुर ने मैत्रेयजी से पूछा—हे भगवन्!

स्वायम्भुवस्य च मनोर्वंशः परमसम्मतः ।
कथ्यतां भगवन् यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥१॥

अत्यन्त प्रशंसित स्वायम्भुव मनु का वंश जिसमें मिथुन धर्म से प्रजा की वृद्धि हुई, कृपया आप उनका वर्णन करें। स्वायंभुव मनु के दो पुत्र और तीन कन्याएँ थीं। आपने देवहूति को कर्दम की पत्नी बताया था। उसके कितने पुत्र और पुत्रियाँ हुई? रुचि और दक्ष ने क्रमशः आकूति और प्रसूति नामक पत्नियों को प्राप्त कर कितनी सन्तानें उत्पन्न की? यह सब आप हमें बतायें। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ब्रह्मा ने जब कर्दम से सृष्टि करने को कहा, तब उन्होंने सरस्वती तट पर जाकर दस हजार वर्षों तक कठोर तपस्या की—

सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥

उससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें दर्शन दिये। भगवान् के सौन्दर्य से मुग्ध हो कर्दम उनकी यों स्तुति करने लगे—हे भगवन्! आपके दर्शनों से आज मेरे नेत्र सफल हो गये। मेरा जन्म भी सार्थक हो गया। जो मनुष्य विषय-सुख के लिए आपकी उपासना करते हैं, वे दुर्बुद्धि हैं। मनोरथ तो आप उनका भी पूर्ण करते ही हैं। उन्हीं में एक मैं भी हूँ जो दस हजार वर्षों तक तपस्या कर कल्पवृक्ष स्वरूप आपसे एक सुशीलपत्नी माँग रहा हूँ। सृष्टि के लिए गृहस्थ-आश्रम अत्यन्त अपेक्षित है। उसकी पूर्ति पत्नी के बिना सम्भव नहीं है, इसलिए ब्रह्मा की आज्ञा पूर्ण करने के लिए आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निर्गुण होते हुए भी आप योगमाया का आश्रय कर भक्तों का मनोरथ पूर्ण करने के लिए सृष्टि आदि नाना लीलाएँ करते हैं। आपके भक्तों को काल से भी भय नहीं है, तब ये विषय उनके लिए क्या बाधा उपस्थित कर सकेंगे। आपके भक्त गृहस्थाश्रम में रहकर भी आपके निर्मल चरित्रों का श्रवण कर भोग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त कर लेते हैं। मैं भी आपका भक्त हूँ आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करने की कृपा करें। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! कर्दमकी ऐसी विनय सुनकर भगवान् अपनी प्रेममयी वाणी से मुस्कराते हुए बोले—हे कर्दम! तुम्हारे चित्त की बात जानकर मैंने पहले ही

वृक्ष आदि का सर्ग तत्पश्चात् सर्प आदि का सर्ग बाद में गौ, महिषी आदि का सर्ग, पुनः यक्ष, राक्षस असुर, किन्नर, किंपुरुष आदि का सर्ग, फिर सनकादि, मरीचि आदि का सर्ग, तदनन्तर मनुओं का सर्ग, सबसे अन्त में मनुष्यों का सर्ग। इसके पश्चात् जो ऋषिसर्ग का उल्लेख किया गया है, उसका वर्णन पूर्व में हो चुका है।

उसकी व्यवस्था कर दी हैं—पुरैव समयोजि तत्।

मेरीं आराधना कभी व्यर्थ नहीं जाती। ब्रह्मा के पुत्र मनु अपनी पत्नी शतरूपा तथा कन्या के साथ तुम्हारे समीप आयेंगे। वे तुम्हें अपनी कन्या देने का आग्रह करेंगे। तुम उसे स्वीकार कर लेना। वह राजकन्या तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण करेगी। उससे नौ कन्याएँ होंगी। उन्हें नौ ऋषि ग्रहण करेंगे। अन्त में मैं अपने अंश से तुम्हारी पत्नी देवहूति में उत्पन्न होकर सांख्यशास्त्र का निर्माण करूँगा। मैत्रेयजी कहते हैं—हे विदुर! यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। इधर कर्दम बिन्दुसरोवर पर बैठे उस काल की प्रतीक्षा कर रहे थे कि मनु अपनी भार्या के साथ रथ पर आरूढ़ होकर वहाँ आ पहुँचे। आश्रम की दिव्य शोभा देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। नाना प्रकार के रंग-विरंगे पक्षियों के कलरव से वन गूँज रहा था जंगली जन्तु भी वहाँ मित्रभाव से रहते थे। किसी को एक-दूसरे से भय नहीं था। मनु ने वहाँ शान्त मुद्रा में बैठे मुनि को देखकर प्रणाम किया। मुनि ने भी बड़े आदर से उनको आसन पर बैठाया और कहा—राजन्! आपका पर्यटन सत्पुरुषों की रक्षा और दुष्ट पुरुषों के नाश के लिए होता है। भगवान् की पालन करनेवाली शक्ति आपमें निवास करती है, जिससे वर्ण, आश्रम और धर्म की रक्षा तथा अधर्म की निवृत्ति होती है। फिर भी मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप जिस कार्य के लिए यहाँ पधारे हैं, उसे मैं सहर्ष हृदय से स्वीकार करता हूँ—

तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥५६॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीयस्कन्ध का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

बाईसवाँ अध्याय

मनु-कर्दम संवाद एवं देवहूति का कर्दम से विवाह

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! जब कर्दम ने इस प्रकार राजा की प्रशंसा की तब वे सलज्ज होकर बोले—हे मुनिवर! ब्रह्मा ने वेदों की रक्षा के लिए आपकी सृष्टि की और आपकी रक्षा के लिए हमें उत्पन्न किया। ब्राह्मण में भगवान् की ज्ञानशक्ति और क्षत्रिय में क्रिया-शक्ति (पालन-शक्ति) निहित है। इन्हीं दो शक्तियों से संसार का पालन होता है। आज आपके दर्शनों से मेरे सब सन्देह निवृत्त हो गये हैं एवं आपकी शिक्षा से मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हो रहा है। अब आप कृपा कर मेरी एक प्रार्थना सुने। यह मेरी पुत्री है। जबसे इसने नारदजी से आपके गुणगान सुने हैं, तब से यह आपको ही पति बनाने का दृढ़ संकल्प कर चुकी है। गृहस्थी के सब कार्य करने में यह बड़ी दक्ष और आपके अनुरूप है। आप विवाह करना चाहते भी हैं। अतः मैं श्रद्धा से इसे आपको समर्पित करता हूँ।

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ॥१२॥

स्वतः प्राप्त वस्तु का त्याग तो विरक्त के लिए भी उचित नहीं है, फिर जो उसे

चाहता है, उसके लिए तो कहना ही क्या है। कर्दमजी बोले—हे राजन्! आपकी पुत्री अत्यन्त सुन्दरी है, जिसने अपने अङ्गों की कान्ति से आभूषणों की शोभा को भी मात कर रक्खा है।

यां हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम्।
विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद् विमानाद्विलोक्य सम्मोहविमूढचेताः ॥१७॥

एक दिन जब यह अपनी अटारी पर गेंद खेल रही थी, तब इसके अनुपम सौन्दर्य को देखकर विश्वावसु गन्धर्व मूर्च्छित होकर विमान से गिर पड़े थे।

कौन ऐसी कन्या का आदर नहीं करेगा। इसलिए इसके साथ मेरा वैदिक विधि से विवाह हो। जब तक इसकी सन्तति नहीं होती, तबतक मैं इसके साथ गार्हस्थ्य का पालन करूँगा। बाद. में परमहंसों की वृत्ति धारण कर भगवान् का भजन करूँगा। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! यह कहकर कर्दमजी चुप हो गये। इधर देवहूति और कर्दम परस्पर एक-दूसरे का मुख देखकर विमुग्ध हुए। मनु ने भी रानी और पुत्री का निश्चय जानकर उन गुणसम्पन्न मुनि को अपनी कन्या अर्पित कर दी—

तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥२२॥

दहेज में बहुत-से वस्त्र-आभूषण तथा गृहस्थोपयोगी नाना सामग्री भी दी। चलते समय पुत्री को हृदय से लगाकर उसके विरह से व्याकुल हो मनु ने अपनी अश्रुधारा से पुत्री के केशों को आर्द्रकर दिया—

आसिञ्चदम्ब[1] वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥२५॥

फिर मुनि की आज्ञा लेकर रथपर आरूढ़ हो दोनों ने अपने नगर को प्रस्थान किया। मार्ग में नदी के दोनों तटों पर ऋषियों के आश्रमों की शोभा देखते हुए वे ब्रह्मावर्त पहुँचे। फिर वहाँ से अपनी राजधानी बर्हिष्मतीपुरी में आ गये। जब मनु ने वराह द्वारा उद्धृत पृथ्वी प्राप्त कर ली, तब उस पर कुशों के आसन बिछाकर भगवान् का भजन किया था। इसी से उसका नाम बर्हिष्मती पड़ा। वहाँ वे अपने दिव्य भवन में गये। भगवान् की कथा सुनते हुए युगों की इकहत्तर चौकड़ी तक राज्य कर उन्होंने अपना मन्वन्तर व्यतीत किया। मुनियों के पूछने पर उन्होंने मनुष्यों के साधारण धर्म तथा वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन किया। हे विदुर!

एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम्।
वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥३९॥

हमने तुमसे आदिराज मनु का वह चरित्र कहा। अब तुम उनकी पुत्री देवहूति का प्रभाव सुनो।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीयस्कन्ध का बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

सप्ताह के प्रथम दिन की कथा समाप्त (अध्याय-संख्या ५१)

❖

---

[1] अम्बा मातरि पुत्र्यां च। इति निरूक्तिः हे अम्ब! हे वत्स इति द्विरूक्तिर्विरहाधिक्यात्।

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक

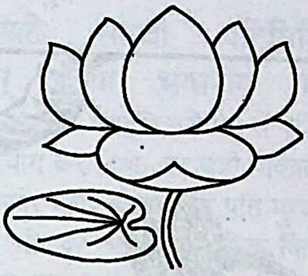

सप्ताह के द्वितीय दिन की कथा

* * *

ऋषभाख्यानपर्यन्तं द्वितीये दिवसे वदेत्

* * *

(तृतीय स्कन्ध के २३ अध्याय से पञ्चम स्कन्ध के छः अध्याय तक)

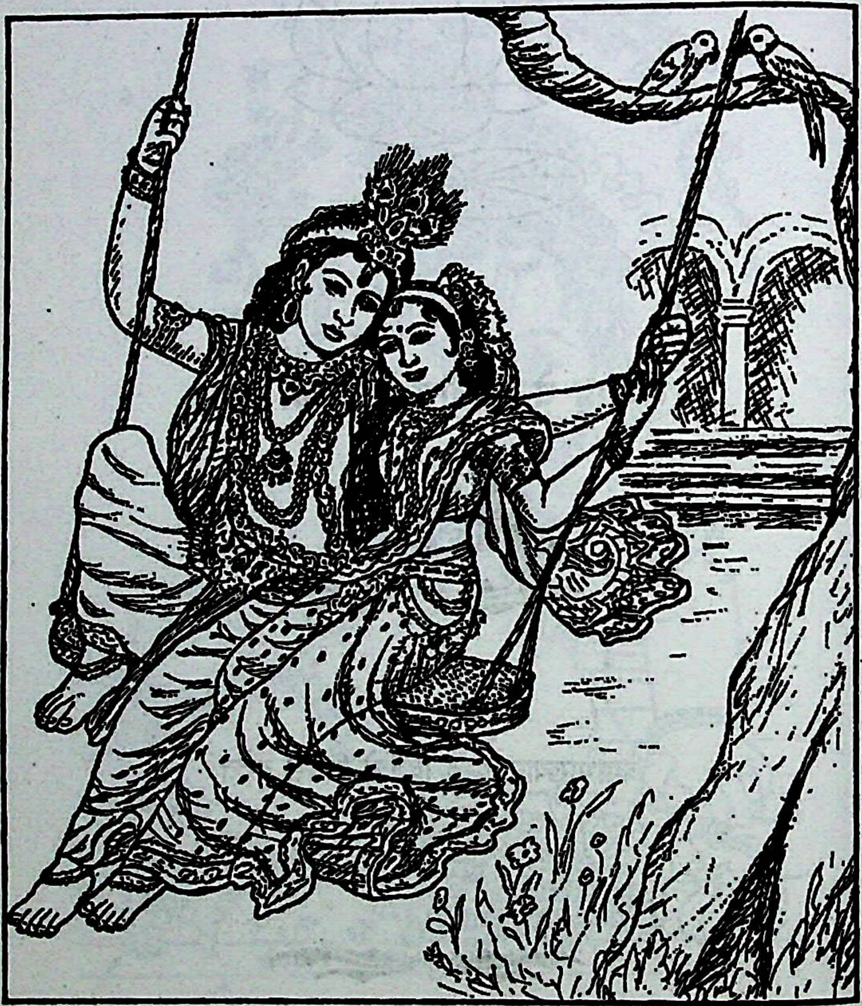

तेईसवाँ अध्याय

विमान में कर्दम का देवहूति के साथ विहार और कन्याओं की उत्पत्ति

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर!

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा।
नित्यं पर्यचरत् प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥१॥

माता-पिता के चले जाने पर देवहूति बड़े प्रेम से पति की सेवा में तत्पर हो गयी। उसने काम, क्रोधादि का त्याग कर दिया। वह बड़ी पवित्रता रखती थी। पतिपर उसका अगाध प्रेम था। वह ऐसी मधुर वाणी बोलती कि पति मुग्ध हो जाते थे। हर समय हाथ जोड़े सेवा में तत्पर रहती थी। व्रत भी प्रायः अधिक किया करती थी। इससे उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। राजकुमारी की यह दशा देखकर एक दिन कर्दम जी प्रेम से गद्‌गद वाणी में उससे बोले—देवी! मैं तुम्हारी सेवा और सदाचार से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमने मेरे सुख के लिए अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं की। मेरी तपस्या से तुम्हें वे दिव्य भोग प्राप्त हुए हैं जो मनुष्यों को सर्वथा दुर्लभ है। मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि देता हूँ, उससे तुम उन्हें देखो। मेरी सेवा से तुम्हें अलौकिक सिद्धि प्राप्त हुई है। अब तुम्हें कोई क्लेश नहीं होगा। देवहूति यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। लज्जापूर्ण निरीक्षण से उसका मुखमण्डल चमक उठा और वह मुस्कराती हुई गद्‌गद वाणी में बोली—स्वामिन्, आपने विवाह के समय जो प्रतिज्ञा की थी, उसका स्मरण करें। शास्त्रानुसार उसके साधनों का निर्माण हो। जिनसे दुर्बल मेरा यह शरीर भी गार्हस्थ्य में समर्थ हो सके। भवन भी उपयोगी समस्त सामग्रियों से परिपूर्ण हो। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमो योगमास्थितः।
विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥१२॥

प्रिया की इच्छा पूर्ण करने के लिए कर्दम जी ने अपनी योग-शक्ति से उसी क्षण एक कामग विमान की रचना की। वह मणियों के सैकड़ों स्तम्भों से सुशोभित था। उसमें नीलम की भूमि बनी थी। स्फटिक की भित्तियाँ थीं। जिनमें पद्मराग और हीरे की कनियाँ जड़ी हुई थी। मूँगों की वेदियाँ थी। विद्रुम की देहलियाँ थीं। हीरों से जड़े किवाड़ थे। इन्द्रनील मणियों के शिखर थे, जिन पर सुवर्ण के कलश रक्खे थे। उस विमान में क्रीड़ास्थान, विश्रामस्थान, भोजन-स्थान, रतिस्थान तथा अन्यान्य उपयोगी और भी स्थान अलग-अलग बने थे। सभी कमरों में दिव्य शय्याएँ लगी थीं। शीशेदार बड़े-बड़े पर्यङ्क बिछे थे। जिनमें मसहरियाँ लगीं थीं। दरवाजों पर रेशमी वस्त्रों के पर्दे टँगे थे। सोने के सुन्दर बन्दनवार लटके थे। सुगन्धित मालाओं से सभी कमरे गमक रहे थे। मालाओं पर बैठे भ्रमर सुमधुर गुँजार कर रहे थे। दीवारों पर बने हंस, कबूतर, मयूरों

को सजीव जानकर उनकी जाति के पक्षी वहाँ उनके पास आकर बैठते और मधुर-मधुर कलरव करते थे। चारों ओर इतनी विलक्षण कारीगरी थी, जिसे देखकर विश्वकर्मा भी लजा जाते थे। रंग-विरंगी झण्डियों और पताकाओं से वह भवन अलंकृत था। चारों ओर भवन में इतने रत्न लगे थे कि सारा भवन जगमगा रहा था। उसमें सुन्दर-सुन्दर वापियाँ थीं। सरोवरों में मनोहर नाना प्रकार के कमल खिले थे। विमान ऋद्धि-सिद्धि से पूर्ण था, अर्थात् जो इच्छा करो उसे वह पूर्ण करता था। रतिभवन में सम्भोग के विलक्षण आसन बने थे। नाना प्रकार के इत्रों से वह सिंचित था। जिस ऋतु का आह्वान किया जाता, वही ऋतु वहाँ आ विराजती थी। वह विमान इच्छानुकूल चलता था। कहीं पर उसमें भोजन का निर्माण नहीं होता था। जिन पदार्थों की इच्छा होती वे पदार्थ चाँदी सोने की थालियों में लगकर आ जाते थे। विमान की अद्भुत रचना देखकर देवताओं को भी बड़ा आश्चर्य होता था। कारण, वह विमान कर्दम जी की तपस्या का एक ज्वलन्त उदाहरण था। उस दिव्य विमान को देखकर भी देवहूति का मन अत्यन्त प्रसन्न नहीं हुआ। उसका अभिप्राय ताड़कर कर्दम जी बोले हे प्रिये! तुम इस विन्दु सरोवर में स्नान कर विमान पर चढ़ो। तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण हो जायेगी। यह सुनकर देवहूति ने अपने मलिन वस्त्रों सहित उस सरोवर में प्रवेश किया। पर जब उसमें गोता लगाया, तब क्या देखती हैं कि सामने एक हजार कन्याएँ खड़ी हुई है, जिनके शरीर से कमल की सुगन्ध निकल रही है। सबकी अवस्था १५-१५ वर्ष की है। वे हाथ जोड़कर बोली हम आपकी सेविकाएँ हैं, आपकी क्या सेवा करें?

वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२७॥

यह कहकर वे देवहूति को उबटन लगाकर स्नान कराने और सुन्दर वस्त्र पहनाने, नाना प्रकार के सुन्दर आभूषण धारण कराने में लग गयीं। उन्होंने दिव्य पान और विविध भोजनों से भी देवहूति को तृप्त किया। इस समय देवहूति की शोभा रति (कामदेव-स्त्री) को भी मात करती थी। इस प्रकार सुसज्जित देवहूति ने विमान के दिव्य शय्याकक्ष में पहुँच कर अपने पति का स्मरण किया और देखा कि पति के ही सामने एक आसन पर वह बैठी है। हजारों विद्याधरियाँ उसकी सेवा कर रही हैं। इससे उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। अब उनकी इच्छा से वह विमान उड़ा और सुमेरु पर्वत की कन्दरा में जा पहुँचा। वहाँ वे कुछ काल तक क्रीड़ा करते रहे। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रही थी, गंगा की तरङ्गों का कलकल शब्द हो रहा था। सिद्ध गन्धर्व उनकी स्तुति कर रहे थे। फिर, वे देवताओं के नन्दनादि वनों में जाकर कुबेर के समान चिरकाल तक विहार करते रहे—

रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥३९॥

अपनी पत्नी को सारे भूमण्डल में घुमाकर कर्दम जी पुनः अपने आश्रम में लौट आये। इस प्रकार विहार करते उन दोनों के सौ वर्ष मुहूर्त के समान व्यतीत हो गये। अत्यन्त सुन्दर पति के साथ विहार करती देवहूति को भी समय का ज्ञान नहीं रहा। कर्दम जी ने उसका संकल्प जानकर उसी दिन नौ कन्याएँ, जो बड़ी सुन्दर थीं, उत्पन्न

की। कन्याओं की उत्पत्ति के अनन्तर कर्दमजी वन जाने को उद्यत हुए। तब देवहूति ने बड़ी दीन वाणी से कहा—हे देव! आपने सब प्रकार से मेरी इच्छा पूर्ण की। अब आप कृपाकर इन कन्याओं का विवाह भी करते जायँ। शास्त्रों में कहा गया है कि—

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय काञ्चित्।
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत्॥

प्रथम, पुत्रों को उत्पन्न कर उन्हें ऋणमुक्त करे, उनकी जीविका का प्रबन्ध करें, कन्याओं का यथायोग्य सम्बन्ध करें, बाद में मुनि होकर वन में रहने की इच्छा करे। एक पुत्र भी मुझे ऐसा हो कि आपके जाने पर मुझे शोक न हो और जो ज्ञान देकर संसार से मेरा उद्धार करें।

मैंने आपके अलौकिक प्रभाव को न जानकर विषयार्थ आपका सङ्ग किया। फिर भी यह मेरे अभय के लिए हो, क्योंकि असत्पुरुषों का जो सङ्ग है, वह दुःख का हेतु होता है। किन्तु सत्पुरुषों का सङ्ग अज्ञान से भी यदि किया जाय, तो वह मोक्ष सुख का कारण होता है।

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥५६॥

जो कर्म धर्मोपार्जन के लिए न हो, जिससे विषयों से वैराग्य उत्पन्न न हो तथा जिससे भगवान् की सेवा न हो सके, ऐसा कर्म करने वाला जीवन्मृतक कहा गया है।

मैं आज भगवान् की माया से वंचित हो गयी, जो ऐसे महाज्ञानी पति को प्राप्त करके भी बन्धन से मुक्त न हो सकी।

यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात्॥५७॥

यह कहकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से पति का मुख निहारती हुई देवहूति मौन हो गयी।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीयस्कन्ध का तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥

❖

चौबीसवाँ अध्याय

श्रीकपिलदेवजी का जन्म, कन्याओं का विवाह और कर्दमको संन्यासपूर्वक भगवत्प्राप्ति

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! देवहूति के ऐसे वैराग्यपूर्ण वचन सुनकर कर्दम जी बोले—हे राजपुत्री!

मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते।
भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते॥२॥

तुम अपने को भाग्यहीन समझकर खेद मत करो। अविनाशी भगवान् शीघ्र ही तुम्हारे गर्भ में आयेंगे। तुम व्रत धारण कर यम और नियम का पालन करो एवं श्रद्धाभक्ति से भगवान् का भजन करो। भगवान् तुम्हारे पुत्ररूप में अवतीर्ण होकर मेरे यश का विस्तार करेंगे और सांख्यशास्त्र का उपदेश देकर तुम्हें बन्धन से मुक्त करेंगे। इस प्रकार देवहूति पति की आज्ञा मानकर बड़े प्रेम से भगवान् का भजन करने लगी। दसवें महीने में कर्दम जी के प्रभाव से काष्ठ में अग्नि की तरह भगवान् उसमें प्रकट हुए—

तस्यां बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः ।
कार्दमं वीर्यमापन्नो[1] जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ।।६।।

उस समय आकाश में बाजे बजने लगे। गन्धर्वगण गान करने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देवता पुष्पवृष्टि करने लगे। सब दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। जल निर्मल तथा मनुष्यों के मन प्रसन्न हो गये। यह देखकर मरीचि आदि ऋषियों के साथ ब्रह्मा जी कर्दम के आश्रम में आये और बोले—हे पुत्र! तुमने मेरी आज्ञा का पालन कर मेरी बड़ी सेवा की। पुत्रों को पिता की इसी प्रकार सेवा करनी चाहिए। वत्स! अब तुम अपनी पुत्रियों का विवाह ऋषियों के साथ कर दो। इनसे सृष्टि की वृद्धि होगी और संसार में तुम्हारा यश बढ़ेगा। फिर ब्रह्मा देवहूति से बोले—हे मनुपुत्रि! साक्षात् भगवान् ही तुम्हारे पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए हैं।

ये जीवों का अज्ञान निवृत्त कर उन्हें बन्धन से मुक्त करेंगे। ज्ञान देने के कारण ही इनका नाम कपिल होगा। इस प्रकार दोनों को आश्वासन देकर ब्रह्मा अपने धाम सत्यलोक चले गये। तदनन्तर कर्दम ने ब्रह्मा की आज्ञा से अपनी कन्याओं का विवाह ऋषियों के साथ कर दिया—मरीचि को कला दी, अत्रि को अनुसूया दी, अङ्गिरा को श्रद्धा, पुलस्त्य को हविर्भू, पुलह को गति, क्रतु को क्रिया, भृगु को ख्याति, वसिष्ठ को अरुन्धती और अथर्वा को शान्ति नामक कन्या दी। अनन्तर कर्दम ने बहुत सा दहेज भी देकर सब मुनियों को सन्तुष्ट किया।

विप्रर्षभान् कृतोद्वाहान् सदारान् समलालयत् ।।२४।।

हे विदुर! अनन्तर सब ऋषि कर्दम जी की आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रमों को चले गये। एक दिन कर्दम जी ने एकान्त में कपिल भगवान् के समीप जाकर प्रणाम किया और बोले—भगवन्! संसार में अपने पापों से क्लेश भोगते हुए मनुष्यों पर भी

---

[1] आपदं नाशं नयति प्रापयतीति। आपन्नः नयतेः कर्मणि डः। वीर्यमापन्नः अपाकुर्वन् प्रादुर्भूतः। यथाऽग्निः काष्ठे स्थित एवं मथनेन प्रादूर्भूतः सन् काष्ठमपनयति तद्वत्। नहि वीर्येण तद्देहो जातस्यस्य चिद्घनत्वात्। तदुक्तं वैष्णवसिद्धान्ते—

नावतारेष्वपि हरेर्देहः शुक्रादिसम्भवः ।
तथापि शुक्रसंस्थः सन् मातृदेहं प्रविश्य च ।।
विलाप्य शुक्रं तत्रैव केवलज्ञानरूपतः ।
उदेति भगवान् विष्णुः काले लोकं विडम्बयन् ।।

कभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। आपने हमारे घर में जन्म लेकर हमें पवित्र कर दिया। आप भक्तों का मान बढ़ाने वाले हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके द्वारा मैं सब ऋणों से मुक्त हो चुका हूँ। अब आप आज्ञा दें, तो मैं गार्हस्थ्य को त्यागकर संन्यास लेकर वन में निवास करूँ। इस पर कपिल जी बोले—पिताजी! संसार में ज्ञानमार्ग नष्ट हो गया था। उसका प्रचार करने के लिए ही मैंने यह शरीर धारण किया है। आपकी इच्छा है तो वन में जायँ या घर में ही रहें। मुझमें कर्म समर्पण करते हुए मृत्यु पर विजय पाने के लिए, मेरा भजन करें, इससे आपको हृदय में ही आत्म साक्षात्कार होगा, जिससे आपका बन्धन सर्वदा के लिए निवृत्त हो जाएगा। अब मैं माता को ज्ञान का उपदेश करूँगा, जिससे वह भी संसार से मुक्त हो जाय। यह सुनकर कर्दम जी पुत्र की प्रदक्षिणा कर वन में चले गये। वहाँ भगवान् की आराधना करते हुए भगवान् के दिव्य धाम को प्राप्त हुए—

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीयस्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

पच्चीसवाँ अध्याय

कपिलदेव जी का माता के प्रति भक्तियोग का वर्णन

शौनक जी बोले—हे सूत! सांख्य-शास्त्र के प्रचार के लिए भगवान् ही कपिल रूप में अवतीर्ण हुए थे। उनका चरित्र आप विस्तार से कहें। भगवान् के सुमधुर चरित्रों के श्रवण से मुझे तृप्ति नहीं होती। सूतजी बोले—हे शौनक! विदुर ने मैत्रेय से आत्मज्ञान सम्बन्धी जो प्रश्न किये थे, उनका उत्तर उन्होंने कपिल, देवहूति के संवाद रूप में दिया था। मैं उसी को तुमसे कहता हूँ। मैत्रेय जी ने कहा—हे विदुर!

तस्मिन् बिन्दुसरेऽवात्सीद् भगवान् कपिलः किल ।।५।।

कर्दम जी के वन चले जाने पर माता के कल्याणार्थ कपिल जी विन्दु सरोवर पर निवास करते रहे। एक दिन देवहूति ने अपने पुत्र के समीप जाकर पूछा—

निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् ।
येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नान्धं तमः प्रभो ।।७।।

हे पुत्र! दुष्ट इन्द्रियों को तृप्त करते-करते मैं अत्यन्त खिन्न हो गयी हूँ। इनकी वासना निवृत्त नहीं होती। इससे मैं घोर अन्धकार की ओर जा रही हूँ। बहुत दिनों के बाद सूर्य के समान तुम मुझे प्राप्त हुए हो। अपने ज्ञान-प्रकाश के द्वारा तुम मेरे अन्धकार को दूर कर अहन्ता और ममता के बन्धन से मुझे छुड़ा दो। यह संसार प्रकृति पुरुष का जाल है, ऐसा विद्वान् कहते हैं। तुम इन दोनों का स्वरूप बतलाओ। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! माता के ऐसे आत्मज्ञानसम्बन्धी प्रश्न सुनकर माता की प्रशंसा कर

मुस्कराते हुए कपिल जी बोले—माता! मनुष्यों का क़ल्याण आत्मा और अनात्मा के विचार से ही होता है। इससे सुख-दुःख दोनों की निवृत्ति हो जाने पर जीव को परम शान्ति प्राप्त हो जाती है। मैं वहीं आत्मयोग तुमसे कहता हूँ। तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो। जब चित्त विषयों में आसक्त रहता है, तब जीव का बन्धन होता है और जब ईश्वर में लग जाता है, तब उसका मोक्ष हो जाता है। जब मनुष्यों का मन कामादि दोषों से रहित हो शुद्ध हो जाता है, तब उसे न सुख होता है और न दुःख ही। ऐसी अवस्था में वह आत्मा को प्रकृति से परे देखता है और उसका देहाभिमान नष्ट हो जाता है। इसलिए भगवत्प्राप्ति के लिए भक्ति से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है—

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥१९॥

यद्यपि संग बन्धन का हेतु है, फिर भी भक्तों का संग खुला हुआ मोक्ष का दरवाजा कहा गया है—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥२५॥

इसलिए प्रथम तो भक्तों का संग करे। उनके समाज में हमारी मङ्गलमयी कर्णरसायनभूत कथाएँ हुआ करती हैं। उनके श्रवण से शीघ्र ही भगवान् में श्रद्धा, रति और भक्ति उत्पन्न हो जाती है। भक्ति द्वारा ऐहिक तथा पारलौकिक विषयों से वैराग्य हो जाता है और चित्त केन्द्रित हो केवल एक मात्र मुझे ही चाहता है। तब मैं इसी जन्म में उसे प्राप्त हो जाता हूँ और जीव को परम शान्ति मिल जाती है। देवहूति बोली—हे पुत्र! मेरे करने योग्य जो भक्ति हो, उसे तुम बताओ, जिससे मुझे तुम्हारे स्वरूप का ज्ञान हो सके। योग का स्वरूप और उसके अङ्ग भी मुझे बताओ। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! माता के ऐसे वचन सुनकर कपिल जी ने सांख्य, भक्ति और योग का वर्णन किया। उन्होंने कहा—माता! इन्द्रियों सहित मन की भगवान् में जो निश्चल वृत्ति है, वह भक्ति मुक्ति से भी बढ़कर है। वह सूक्ष्म शरीर को भी जलाकर भस्म कर देती है। ऐसे मेरे भक्त भी सायुज्य मुक्ति नहीं चाहते, उनको हमारे दिव्य रूपों का दर्शन निरन्तर होता रहता है। उन्हें दिव्य-भोग और अणिमादि सिद्धियाँ स्वयं प्राप्त हो जाती हैं। काल द्वारा भी उनका कभी नाश नहीं होता। जो विषयों में आसक्ति का त्यागकर अनन्य भक्ति से श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करते हैं, मैं उन्हें संसार सागर से पार कर देता हूँ, इसमें सन्देह नहीं। तान् मृत्योरतिपारये।

मेरी शरण में आये बिना प्राणियों का मृत्युभय कभी निवृत्त नहीं हो सकता।

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥४२॥

मेरे भय से वायु चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलती है और मृत्यु भी मेरे ही भय से प्राणियों का संहार करती सर्वत्र विचरती है, इसलिए मेरा भक्त नाम-संकीर्तन द्वारा बड़ी सरलता से मेरे चरणों में आ जाता है, फिर उसे देखकर मृत्यु भी भागती है—

मृत्युरस्मादपैति ।

संसार में मनुष्य का परम पुरुषार्थ यही बताया गया है कि वह निष्काम भक्ति द्वारा अपना मन मुझमें लगाकर स्थिर कर दे—

तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥४४॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

छब्बीसवाँ अध्याय

सांख्ययोग का वर्णन

कपिल जी बोले—हे माता!

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ।
यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥१॥

मैंने संक्षेप में भक्ति के स्वरूप का तुमसे वर्णन किया। सांख्यशास्त्र का सिद्धान्त सुनो। इसमें २४ तत्त्वों का वर्णन है, जिन्हें जानकर मनुष्य गुणों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। गुणों की साम्यावस्था को ही प्रकृति कहते हैं। सृष्टि के आरम्भ में काल के प्रभाव से प्रकृति के गुणों में क्षोभ होता है और तभी तीनों गुण पृथक् हो जाते हैं। इसी को वैषम्यावस्था कहते हैं। क्षुभित प्रकृति में जब भगवान् वीर्य (चित् शक्ति) का आधान करते हैं, तब महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। उसको चित् कहते हैं, उसके अधिष्ठाता देवता वासुदेव हैं। महत्तत्त्व से ही अहंकार होता है, जिसके अधिष्ठाता देवता संकर्षण है। यह अहंकार सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का है। सात्त्विक अहंकार से मन की उत्पत्ति हुई, जिसके अधिष्ठाता देवता अनिरुद्ध हैं। राजस अहंकार से बुद्धि उत्पन्न हुई, जिसके अधिष्ठाता देवता प्रद्युम्न हैं। ये ही अन्तःकरणचतुष्टय के भेद हैं।

मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम् ।
चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥१४॥

चित्त दर्पणस्वरूप कहा जाता है। वही प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है, मन संकल्प विकल्प करता है; बुद्धि निश्चय करती है एवं अहंकार अभिमान करता है। अन्तःकरणचतुष्टय के ये ही धर्म हैं। तामस अहंकार से पञ्चतन्मात्राओं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की उत्पत्ति हुई जिनसे पञ्चमहाभूत-आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी उत्पन्न हुए। राजस अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ-श्रोत्रेन्द्रिय शब्द के लिए

त्वक्, स्पर्श के लिए घ्राण, गन्ध के लिए चक्षु, रूप के लिए और जिह्वा रस के लिए तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ-वाक्-इन्द्रिय भाषण के लिए, हाथ आदान-प्रदान के लिए, पैर गमनागमन के लिए, पायु मलत्याग करने के लिए और उपस्थ विषयानन्द के लिए उत्पन्न हुई। इसमें प्रथम पाँच के अधिष्ठाता देवता दिक्, वायु, अश्विनीकुमार, सूर्य तथा वरुण और द्वितीय के वह्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र एवं प्रजापति हैं। पञ्च तन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत, अन्तःकरणचतुष्टय और दस इन्द्रियाँ ही २४ तत्त्व हैं।

पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा।
एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥११॥

इन्हीं सब तत्त्वों से अण्ड की रचना हुई, जो सात आवरणों से युक्त हैं। पहला आवरण पृथ्वी का है, जिसका मान ५० करोड़ योजन है। इससे दस गुना अधिक जल का, जल से दस गुना तेज का, तेज से दस गुना वायु का, वायु से दस गुना आकाश का, आकाश से दस गुना अहंकार का और अहंकार से दस गुना महत्तत्त्व का आवरण है। आठवाँ आवरण प्रकृति का है। यह आवरण अनन्त है। वह अचेतन अण्ड बहुत दिनों तक जल में पड़ा रहा, जिसमें विराट् पुरुष ने प्रविष्ट होकर इन्द्रियों के छिद्रों की रचना की और अधिष्ठाता देवताओं ने अपने-अपने स्थानों में प्रविष्ट होकर उसे उठाने की चेष्टा की, किन्तु वह उठा नहीं।

वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट्।
घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६३॥
अक्षिणी चक्षुषाऽऽदित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६४॥

अग्नि ने वाक् इन्द्रिय के साथ मुख में प्रवेश किया, किन्तु विराट् उठा नहीं। वायु ने घ्राणेन्द्रिय के साथ नासिका में प्रवेश किया, किन्तु विराट् उठा नहीं। सूर्य ने चक्षु इन्द्रिय के साथ नेत्रों में प्रवेश किया, किन्तु विराट् उठा नहीं। इसी प्रकार तत्-तत् देवताओं ने तत्-तत् इन्द्रियों के साथ तत्-तत् स्थानों में प्रवेश किया, किन्तु विराट् उठा नहीं। चित्त के अधिष्ठाता वासुदेव ने चित्-शक्ति के साथ जब हृदय में प्रवेश किया, तब विराट् पुरुष जल से उठ खड़ा हुआ—

विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥७०॥

तभी से उसकी संज्ञा ब्रह्माण्ड हुई। पहले यह जडाण्ड था। इसी में वे चौदह लोक कल्पित हैं। यही भगवान् का स्थूल रूप कहा गया है। इसे जाने बिना शुद्ध आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए इन तत्त्वों का विवेचन यहाँ किया गया है। इनका क्रम से लय कर जड़अंश का त्याग होने पर ही चेतन आत्मा की प्राप्ति होती है और जीव के बन्धन सर्वदा के लिए निवृत्त हो जाते हैं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीतस्कन्ध का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का पाँचवाँ विश्राम)

❖

सत्ताईसवाँ अध्याय

प्रकृति-पुरुष के विवेक से मोक्ष का वर्णन

कपिलजी बोले—हे माता!

प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ।
अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥१॥

शरीर में रहता हुआ भी जीव प्रकृति के सुख-दुःखादि गुणों से लिप्त नहीं होता, क्योंकि वह निर्गुण होने से अकर्ता और अविकारी है। उदाहरणार्थ जैसे जल में प्रतिबिम्बित सूर्य जल के धर्म आर्द्रता या कम्पन आदि से लिप्त नहीं होता। जब जीव प्रकृति द्वारा किये गये कार्यों में अहंकार से अपने को कर्ता मानता है, तब वह विवश होकर पुण्य-पाप द्वारा नाना-योनियों में जन्म लेकर क्लेश का अनुभव करता है। यद्यपि सुख-दुःख कुछ हैं नहीं फिर भी संसारी जीव उनसे वैसे ही निवृत्त नहीं होता जैसे स्वप्नावस्था में स्वप्नद्रष्टा का अपने सिर कटने का दुःख निवृत्त नहीं होता। **स्वप्नेऽनर्थागमो यथा।**

इसलिए साधक विषयों में आसक्त चित्त को धीरे-धीरे उनसे हटाने की चेष्टा करे। यम, नियम आदि का साधन करे। किसी से बैर न करे। थोड़ा बोले और थोड़ा भोजन करे। प्राणियों में समदृष्टि रक्खे। एकान्त में निवास करें। दैवेच्छा से जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करे। देह और स्त्री-पुत्रादि में अहन्ता-ममता का त्याग करे। प्रकृति और पुरुष का परस्पर त्याग हुए बिना मुक्ति नहीं हो सकती, इसलिए प्रकृति और पुरुष का विचार करे। प्रकृति शरीर है, जो २४ तत्वों से बना है। इसमें रस, रक्त, मांस मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र ये सात धातुएँ हैं, मैं इनमें कोई भी धातु नहीं हूँ। अविद्या ने मुझको कैद कर इसमें रख छोड़ा है, ऐसा विचार कर भगवान् से प्रार्थना करे कि हे भगवन्! मैं आपका ही अंश हूँ। संकल्प से मैं इस जन्म-मरण के चक्र में फँस गया हूँ। बहुत दिनों से आपका साथ छूट गया है। अब आपका वियोग सहा नहीं जाता। मेरे अपराध क्षमा कर आप मेरा उद्धार करें। ऐसी निरन्तर प्रार्थना करने से उस प्राणी पर शीघ्र भगवत्कृपा होती है और भगवान् उसे अपना लेते हैं। देवहूति ने कहा—हे पुत्र! तुम्हारे उपदेश से मुझे बहुत शान्ति मिलती है, किन्तु मुझे एक सन्देह है।

पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन् न विमुञ्चति कर्हिचित् ।
अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥१७॥

आपने कहा कि मुक्ति के लिए प्रकृति-पुरुष का परस्पर त्याग अपेक्षित है। किन्तु ऐसा होना कठिन है, क्योंकि पुरुष के बिना प्रकृति की सत्ता नहीं और प्रकृति के बिना पुरुष की सत्ता नहीं रह सकती, जैसे पृथ्वी से गन्ध पृथक् नहीं रह सकती, जल से रस

पृथक् नहीं रह सकता और अग्नि से दाहकता पृथक् नहीं रह सकती। ठीक वैसे ही पुरुष से प्रकृति और प्रकृति से पुरुष पृथक् नहीं रह सकता। तब बतलाइये, गुणों के रहते मुक्ति कैसे होगी? इसका उपाय क्या है? कपिल जी ने कहा—माता! मैंने जो यम, नियम आदि साधन पहले बताये हैं, उनसे ज्ञान-वैराग्य से, तप से, योग से, आत्म-समाधि से और निष्काम कर्म के आचरण से मनुष्य का मन निर्मल हो जाता है। निरन्तर कथा सुनते-सुनते तीव्र भक्ति से भगवान् में मन इतना रम जाता है कि वह सांसारिक किसी पदार्थ को नहीं चाहता। सर्वत्र उसको वैराग्य हो जाता है। ऐसे आत्माराम को प्रकृति फिर अपनी ओर खींच नहीं पाती। ऐसा मेरा भक्त अणिमा आदि सिद्धियों को भी ठुकरा देता है और मृत्यु को जीतकर सीधे मेरे पास पहुँच जाता है। क्योंकि पूर्वोक्त साधनों से प्रकृति अहर्निश जलती-जलती स्वतः तिरोहित हो जाती है, जैसे काष्ठ के अभाव में अग्नि शान्त हो जाती है—

प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम्।
तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥२३॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

अट्ठाईसवाँ अध्याय

स्वरूप-ज्ञान के लिये अष्टांगयोग का वर्णन

कपिल जी बोले—हे माता! अब मैं तुमसे योग का वर्णन करता हूँ जिसके द्वारा मन निश्छल होकर मुक्ति मार्ग में अग्रसर होता है। पातञ्जल योगसूत्र का वचन है—

यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि।

१. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि ये योग के आठ अंग है।

अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (दान न लेना), ये पाँच यम हैं।

शौच-सन्तोष-तपःस्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः।

शौच (पवित्रता), सन्तोष तप, स्वाध्याय और ईश्वरचिन्तन ये पाँच नियम हैं।

स्थिरसुखमासनम्

जिससे स्थिरता एवं सुख हो उसे आसन कहते हैं।

पूरक, कुम्भक तथा रेचक द्वारा प्राणवायु को रोकना प्राणायाम है। मन द्वारा

इन्द्रियों को विषयों से हटाना प्रत्याहार कहलाता है। भगवान् के स्थूल रूप में मन को स्थिर करना धारणा है। भगवान् में चित्त की निरन्तर एकाकार वृत्ति को ध्यान कहते हैं। ध्याता, ध्यान और ध्येय यह त्रिपुटी जिंनमें न रह जाय वहीं समाधि है। ध्यान में त्रिपुटी रहती है, परन्तु समाधि में नहीं रहती। यही दोनों का अन्तर है। इस प्रकार प्रत्याहार से इन्द्रियों का आकर्षण कर मन में भगवान् के स्थूल रूप की धारणा करें। जब उसमें मन स्थिर हो जाय तब हृदय में भगवान् की सूक्ष्म मूर्ति का चिन्तन करें। सबसे पहले भगवान् के दोनों चरणों का ध्यान करें—

सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥२१॥

फिर क्रमशः जानुओं का, ऊरुओं का, नितम्बबिम्ब का, नाभि का दोनों स्तनों का, वक्षःस्थल का, कण्ठ का तथा विशाल बाहुओं का (जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म हैं) ध्यान करे। इससे आगे कण्ठ की कौस्तुभमणि का, फिर भगवान् के मुख कमल का, उनकी प्रसन्न चितवन का और उनके हास्ययुक्त मुख का ध्यान करें।

सुस्मितं भावयेन्मुखम् ।

इस प्रकार सब अङ्गों का ध्यान कर उसी छटा को निहारता रहे। अन्य किसी का चिन्तन न करें। ऐसी अवस्था में जीव को परमानन्द मिलता है और वह भगवान् की दिव्य विभूतियों का अनुभव करता है। संसार के सुख-दुःखों से उसका सम्बन्ध ही नहीं रहता और वह संसार में जीवन्मुक्त होकर विचरता है। इस अवस्था में संसार उसका कुछ भी अहित नहीं कर सकता। वह संसार को स्वप्न के समान देखता है और भगवान् की कृपा से इस दुरतिक्रम प्रकृति को जीतकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है—

दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥४४॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीयस्कन्ध का अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

उन्तीसवाँ अध्याय

भक्ति और भक्त के भेद तथा काल का महत्त्व वर्णन

देवहूति ने कपिल जी से कहा—हे पुत्र! सांख्य-सिद्धान्त के अनुसार आपने प्रकृति, पुरुष तथा महदादि तत्त्वों के लक्षणों का वर्णन किया, जिनसे इनका परस्पर भेदज्ञान बड़ी सरलता से हो जाता है। इन सबका प्रयोजन (फल) आपने भक्तियोग

बताया है। अब यह बतायें कि इस भक्तियोग के भेद कितने हैं? जीवों की दुःखद योनियाँ कितनी हैं, जिन्हें देखकर मनुष्यों को वैराग्य होता है। जगत् का संहार करने वाले काल का स्वरूप क्या है? जिसके भय से मनुष्य पुण्य कार्य में प्रवृत्त होते हैं। हे वत्स!

लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुष-
शिचरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये।
श्रान्तस्य कर्मस्वनुविद्धया धिया
त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥५॥

मिथ्याभूत शरीर में अहंकार से अन्धे होकर ये जीव अज्ञानशय्या पर घोर निद्रा में सोये हैं। आसक्तिपूर्वक कर्म करते-करते इतने श्रान्त हो गये हैं कि ये उठ नहीं सकते। इन जीवों के उद्धारार्थ भक्ति और ज्ञान के सूर्य रूप आपका उदय हुआ है। आप इनका अज्ञान निवृत्त कर इन्हें संसार बन्धन से मुक्त करें।

मैत्रेय जी ने कहा—हे विदुर! माता के ऐसे लोक कल्याणकारी स्नेहपूर्ण वचन सुनकर कपिल जी बड़े प्रसन्न हुए और उनका आदर कर मधुर वाणी में बोले हे माता!

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥७॥

मनुष्यों के स्वभाव और गुण के अनुसार भक्ति के भेद अनेक हो जाते हैं। मैं उन्हें संक्षेप में कहता हूँ। जो मनुष्य हिंसा, मत्सर, कपट को लेकर मेरा भजन करता है वह तामस भक्त है और उसकी भक्ति तामसी हैं। जो यश, ऐश्वर्य और विषयों का संकल्प कर मेरा भजन करता है, वह राजस भक्त है और उसकी भक्ति राजसी है। मेरी प्रसन्नता और पाप-निवृत्ति के लिए जो सब कर्मों को मुझे अर्पण करता है, वह सात्त्विक भक्त है और उसकी भक्ति सात्त्विकी है। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है। यह भक्ति ९ प्रकार की कही गयी है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इनमें प्रत्येक के तामस, राजस और सात्त्विक भेद से ९-९ प्रकार हैं। इस प्रकार सगुण भक्ति के ८९ भेद हो जाते हैं। मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मुझमें धाराप्रवाह-रूप से जो मन की गति है, वह भक्ति निर्गुण कहलाती है। भक्तिरस का आस्वादन करने वाले मेरे भक्त मुक्ति को भी नहीं चाहते। ऐसी भक्ति सत्संग, कथा-श्रवण, यम-नियम और सद्धर्म के अनुष्ठान से प्राप्त होती है। मैं सब प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से निवास करता हूँ। उस घट-घटवासी मेरा अनादर कर जो मेरी प्रतिमा का पूजन करते हैं, उनसे मैं प्रसन्न नहीं होता और न उन्हें पूजन का फल ही प्राप्त होता है। वे जन्म मरण के चक्र में घूमते ही रहते हैं। इसलिए किसी प्राणी से द्वेष न कर सबका दान-मान से पूजन

करना चाहिए। क्योंकि भगवान् सब प्राणियों में जीव रूप से स्थित हैं—

ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥३४॥

जीवों में भी स्थावर जीवों से जंगम श्रेष्ठ हैं, उनमें भी चारों वर्ण, चारों वर्णों में ब्राह्मण और उनमें भी मेरे भक्त श्रेष्ठ हैं। उनके सङ्ग से सब जीवों में समदृष्टि प्राप्त करे। अन्यथा काल रूप से मैं द्वेष करने वालों को नरक में डालकर तीव्र यातना देता हूँ। हे माता! काल मेरा ही स्वरूप है। उसके भय से सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नर आदि सब अपना-अपना कार्य करते हैं। मृत्यु भी उसी के भय से मेरी आज्ञा का पालन करती है। यह काल सबका अन्त करने वाला, अनादि और अनन्त है। उससे बचने के लिए मेरी भक्ति करनी चाहिए। किन्तु जीव उसमें आगे नहीं बढ़ पाते।

भक्ति-मार्ग में आगे न बढ़ने में दृष्टान्त

शास्त्रों का कथन है कि जीव प्रभु का अंश है, किसी कारणवश उससे बिछुड़ गया है, उससे मिले बिना यह पूर्ण सुखी नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर जीव स्वभावत: ईश्वर की ओर आकृष्ट रहता है, पर देखा जाता है कि प्रभु के मार्ग में कोई बिरला ही आगे बढ़ पाता है, शेष जहाँ के तहाँ पड़े-पड़े तड़पते रहते हैं। यह देखकर एक जिज्ञासु ने किसी महात्मा से पूछा—महाराज! प्रत्येक जीव आगे बढ़ना चाहता है, उत्तम काम करने की इच्छा रखता है, उच्च होने को लालायित रहता है, इस कैदखाने से छूटना चाहता है, ज्ञान प्राप्ति की इच्छा करता है, स्वर्ग का आनन्द भोगना चाहता हैं, ज्ञान एवं प्रभु से मिलने की लालसा रखता है फिर भी प्रभु के मार्ग में आगे नहीं बढ़ पाता इसका कारण क्या है?

महात्मा ने कहा—एक बार अग्निबोट में बैठकर मैं बम्बई से बहराम घाट जा रहा था। वहाँ मुझे एक अनुभव हुआ। उसे सुनो, उससे तुम्हारे प्रश्न का उत्तर हो जाएगा। अग्निवोट खुलने की तैयारी हो गयी थी, इंजन में स्टीम भर गया था, लँगर उठ गया था, सीटी बज चुकी थी, कल खड़-खंड़ भड़-भड़ कर रही थी और कैप्टन सबसे कह रहा था कि जल्दी करो जल्दी करो अग्निबोट छोड़ दो, किन्तु अग्निबोट चलता नहीं था। यह देख कैप्टन क्रुद्ध होकर संचालकों से बोला यह क्या? तुम सब बड़े लापरवाह हो? यह सुनकर सभी अपने-अपने काम के लिए दौड़ पड़े और कैप्टन भी पैर पटकने लगा किन्तु अग्निवोट हिला तक नहीं, सब आश्चर्य से एक दूसरे का मुख देखने लगे। तब एक माँझी ने आकर कहा अरे किनारे पर बँधी अग्निवोट की रस्सी तो खोलो तब न यह चलेगा। यह सुनकर कैप्टन बोला अहो! बड़ी भारी भूल हुई, अभी तक रस्सी बँधी है। तब यह कैसे चलेगा। तत्पश्चात् रस्सी काटी गयी और अग्निवोट तेजी से चल पड़ा।

भाइयों! इतनी तैयारी और इतने बड़े अग्निवोट को एक पतली रस्सी ने बाँध रखा था। इसी प्रकार यदि तुम्हारा मन किसी भी सांसारिक पदार्थ में आसक्त हो गया

तो कितनी ही उछल-कूद क्यों न करो प्रभु के मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकोगे। हमें आगे बढ़ने से रोकने वाले रस्सी काम, क्रोधादि, मान, प्रतिष्ठा एवं सांसारिक पदार्थों में आसक्ति हैं। ये अन्तःकरण की पुकार को ईश्वर तक पहुँचने नहीं देते इसी कारण हम आगे नहीं बढ़ पाते। यदि आगे बढ़ना हो तो इन्हें छोड़ने का उपाय करो, तभी आगे बढ़ सकोगे। यह उपाय मन का निग्रह है। जो भगवत्स्वरूप के चिन्तन से होता है। उसी का अभ्यास करना चाहिए। मन बड़ा हीं चञ्चल हैं, इसके विषय में महात्माओं का कथन है—

कबीर यह मन लालची समझें नाहिं गँवार।
भजन करन को आलसीं खाने को हुशियार॥
मनके मारे बन गये बन तजि बसती माँहि।
कहे कबीर क्या कीजिए यह मन ठहरे नाँहि॥
मनके हारे हार है मनको जीते जीत।
मनहिं मिलावे राम को मन ही करे फजीत॥
मनके बहुते रंग है छिन-छिन बदले सोय।
एक रंग में जो रहे ऐसा बिरला कोय॥
यह तो गति है अटपटी झटपट लखे न कोय।
जो मन की खटपट मिटे चटपट दरसन होय॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

तीसवाँ अध्याय

कामी पुरुषों की अधोगति का वर्णन

कपिल जी बोले—हे मात! काल का प्रबल प्रभाव मनुष्य नहीं जानता। उन्मत्त होकर सुख की कामना से बड़े-बड़े दुःख सहकर वह धन का उपार्जन करता है। जब काल भगवान् उसको नष्ट कर देते हैं, तब वह शोक से रोता है। वह दुर्बुद्धि स्त्री, पुत्र, धनादि को नित्य मानकर उनमें आसक्त होता है। संसार में जिस-जिस योनि में वह जाता है, वहाँ उसे छोड़ने की इच्छा नहीं करता, क्योंकि उसी में उसे सुख की प्रतीति होती है। अपने परिवार के पोषण की चिन्ता में उसका शरीर जलता रहता है और वह नाना प्रकार के पाप कर्म किया करता है। स्त्री के साथ एकान्त में बैठकर अपने बच्चों की मधुर तोतली वाणी सुनकर अपने को कृतार्थ मानता है। जब जीविका नष्ट हो जाती है, तब दूसरे का धन हड़पने की इच्छा करता है। न मिलने पर किंकर्तव्यविमूढ़ हो

एकान्त में बैठकर लम्बी-लम्बी साँसे लेता है। जब वह परिवार के पोषण में असमर्थ हो जाता है तब जैसे बूढ़े बैल को किसान नहीं चाहता वैसे ही स्त्री-पुत्रादि उसका अनादर करते हैं—

नाद्रियन्ते यथापूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥१३॥

वृद्धावस्था से उसका शरीर भी दुर्बल और कुरूप हो जाता है। भोजन की शक्ति क्षीण हो जाती है। परिवार के लोग कुत्ते की तरह अनादर से उसे भोजन देते हैं। अन्ततः नाना प्रकार के रोगों से आक्रान्त होकर वह खाट पर पड़ा रहता है। मरणासन्न होकर कास और श्वास के कारण कण्ठ रुक जाने पर घुर-घुर शब्द करता है—

कंठे घुरघुरायते।

फिर भी उसे वैराग्य नहीं होता। पड़े-पड़े भी वह अपने परिवार की ही चिन्ता करता है। कफ से उसकी नाड़ियाँ रुद्ध हो जाती हैं। लोगों के बुलाये जाने पर भी बोल नहीं पाता। खाट के चारों तरफ बैठकर उसके सगे-सम्बन्धी उसके शोक में रोते हैं। उसके मरणकाल में कुत्ते भी भयंकर शब्द करते हुए रोते हैं, जिससे उसका हृदय दहल जाता है और उसे महान् क्लेश होता है। उस समय क्रोध में भरे दो यम-दूत आकर उसके प्राण खींचते हैं और जिन्हें देखकर भय से वह मल-मूत्र त्याग करने लगता है। वे दूत गले में पाश डालकर उसे यमलोक ले जाते हैं।

क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः सन्तप्यमानः पथि तप्तबालुके।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥२२॥

सूर्यताप से तपे बालू के मार्ग पर भूख-प्यास से व्याकुल वह बड़े क्लेश से चलता है। जब उससे चला नहीं जाता तब पीठ पर कोड़ों की मार पड़ती है। कुत्ते आकर काटने लगते हैं। उस मार्ग में ठहरने का न कोई आश्रम है और न कोई जलाशय ही है। क्षण-क्षण में कष्ट से मूर्च्छित होकर वह पृथ्वी पर गिरा करता है और फिर उठकर चलना पड़ता है। इस प्रकार निन्यानबे हजार योजन मार्ग लाँघकर २ या ३ मुहूर्त में वह यमलोक में पहुँचाया जाता है। यमराज उस पापी को देखकर नरक में डलवा देते हैं। यमदूत उसका शरीर अग्नि से जलाते हैं। भूख लगने पर उसी का मांस उसे खिलाते हैं। कुत्ते और गिद्ध उसकी अँतड़ियाँ निकालते हैं। सर्प, वृश्चिक आदि जहरीले जन्तु उसे काटते हैं। जिसने उन्मत होकर पशुओं का वध किया है, उसके शरीर के छुरे से टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं और पर्वत के शिखरों से नीचे गिराया जाता है, जल में डुबाया जाता है। धर्महीन किसी भी प्राणी को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष भयंकर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। मनुष्य योनि प्राप्त करने के पूर्व कूकर, सूकर आदि चौरासी लाख योनियों को क्रम से भोगकर फिर जीव मनुष्य-योनि में आता है।

क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥३४॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

इकतीसवाँ अध्याय

जीव का गर्भ में प्रवेश और उसकी भगवान् से प्रार्थना

कलिपजी बोले—हे माता!

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये ।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥१॥

नरक से निकलकर वह जीव पिता के वीर्य द्वारा माता के उदर में प्रवेश करता है। एक रात्रि में शुक्र और शोणित (वीर्य और रज) मिलकर एक हो जाते हैं। उसे कलल कहते हैं। पाँचवें दिन वह गोलाकार हो जाता है। दसवें दिन बेर के समान कड़ा हो जाता है और पन्द्रहवें दिन मांसपिण्ड के आकार का हो जाता है। एक महीने में उसमें सिर निकलता है। दो महीने में हाथ-पैर आदि शरीर के अवयव बन जाते हैं। तीन महीने में नख, रोम, हड्डी, चर्म और लिङ्ग या योनि के चिह्न निकल आते हैं। चार महीने में सात धातुएँ—रस, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र उत्पन्न हो जाती हैं। पाँचवें महीने में उसे भूख प्यास लगने लगती हैं। छठे महीने में झिल्ली से वेष्टित होकर वह माता की दक्षिण कुक्षि में घूमता है। उस समय माता जो कुछ खाती-पीती है उसी से उसका भी पोषण होता है और वह वहाँ जन्तुओं के साथ विष्ठा-मूत्र भरे कुक्षि गह्वर में पड़ा रहता है—**शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसंभवे।**

कुक्षि के कीड़े उसके कोमल शरीर को काटते हैं जिससे वह मूर्च्छित हो जाता है और महान् क्लेश पाता है। ऐसे समय उसकी माता भी खट्टे, तीते तीखे, चर्परे, रुखे आदि जो पदार्थ खाती है उनसे उसके सारे शरीर में तीव्र वेदना होती है। झिल्ली में बँधा वह जीव गर्भाशय में उलटा लटका रहता है। उस समय उसे सैकड़ों जन्मों का स्मरण होता है, किन्तु शान्ति नहीं मिलती। लम्बी-लम्बी साँसें वह लिया करता है। सात महीनों में उसे ज्ञान भी हो जाता है। तब वह हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति करता है—भगवन्!

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्त
नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम् ।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे
येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥१२॥

जगत् की रक्षा करने के लिए नाना रूप धारण करने वाले आपके निर्भय चरणों की मैं शरण लेता हूँ; जिन आपने मेरे कर्मों के अनुरूप गर्भावासरूप विलक्षण गति मुझे दिखायी है इससे मेरा उद्धार कीजिए। आपकी माया से यह शरीर धारणकर मैं बन्धन को प्राप्त हो गया हूँ। मेरे साथ रहते हुए भी आप सर्वथा मुक्त हैं। अपने अंश को भी मुक्त करें। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। इस शरीर में मेरा ज्ञान भी कुण्ठित हो गया है।

आपकी महिमा एवं ज्ञान कभी कुण्ठित नहीं होते। आप प्रकृति-पुरुष से परे हैं। मैं उन बन्धनों में हूँ। मुझे आप छुड़ायें। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। इस समय मेरी सारी स्मृति नष्ट हो गयी है। आपकी कृपा के बिना मुझे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता। मैं मल-मूत्र के इस कूप में पड़ा हूँ और जठराग्नि से मेरा शरीर जल रहा है। चारों ओर से मैं बन्द हूँ। महीने गिन रहा हूँ। हे दयालो! मुझे आप यहाँ से कब निकालेंगे? इस समय मुझे जो ज्ञान हुआ है वह आपकी कृपा से ही। इसका प्रत्युपकार भला क्या हो सकता हैं? मैं तो केवल हाथ जोड़कर आपको प्रणाम ही कर सकता हूँ।

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं
गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे।
यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया
मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥२०॥

यद्यपि इस गर्भ में मुझे नाना प्रकार के दुःख हैं तथापि आपके सान्निध्य से मुझे उनकी प्रतीति नहीं हो रही है। इसलिए मैं इसके बाहर निकलना नहीं चाहता। बाहर निकलने पर आपकी माया आक्रमण करेगी और बन्धन दृढ़ हो जाएगा।

मैं यही रहकर अपनी आत्मा का उद्धार करूँगा। मैंने आपके चरणों को प्राप्त कर लिया है, आप मुझपर कृपा करें। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। कपिलजी बोले—हे माता! दस महीने का वह जीव जब इस प्रकार स्तुति करता है तब प्रसूति-वायु के वेग से क्लेशपूर्वक वह गर्भ के बाहर निकल आता है।

पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते।
रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२४॥

मल-मूत्र और रक्त से भरी पृथ्वी में गिर पड़ता है, कीड़े के समान रेंगता है, ज्ञान नष्ट होने पर रोता है और विपरीत गति को प्राप्त हो जाता है।

गर्भावस्था में प्राण के सुषुम्नाचारी होने से जीव को ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त रहता है, जिससे उसे सैकड़ों जन्मों की स्मृति रहती है। भूमिष्ठावस्था में सुषुम्ना मार्ग बन्द होने के कारण जीव की इडा और पिङ्गला नाड़ी में अर्थात् तमोगुण और रजोगुण रूप विपरीत मार्ग में गति हो जाती है जिससे पूर्ण विस्मृति होने के कारण उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता। यही उसी की विपरीत गति का तात्पर्य है। उस समय उसकी स्मृति एवं ज्ञान नष्ट हो जाते हैं और वह रोने लगता है। बाल्यावस्था के नाना प्रकार के कष्ट भोगकर जब जीव युवावस्था में आता है तब वह कामी पुरुषों का सङ्गकर स्त्रियों के साथ क्रीडा करता है और उनके मोह में फँसकर वही कर्म करता है, जिससे उसका पुनः बन्धन होता है। मोक्ष का कोई उपाय नहीं कर पाता। उचित तो यही है कि वह कामी पुरुषों का सङ्ग छोड़कर भगवद्भक्तों का सङ्ग करे और शरीर तथा स्त्री पुत्रादि की अहन्ता ममता का त्याग कर भगवान् के भजन में लग जाए।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

बत्तीसवाँ अध्याय

सकाम एवं निष्काम पुरुषों की गतियों का विवरण

कपिलजी बोले—हे माता! जो गृहस्थ फल की कामना से यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान अथवा देवता और पितरों का यजन करते हैं, उनकी बुद्धि रजोगुण से मलिन रहती है। वे कर्मकाण्ड को ही महत्त्व देते हैं। उन्हें ज्ञान की चर्चा सुहाती नहीं। भगवान् की अमृतमयी कथा का त्याग कर वे विषयों की गाथा श्रवण करते हैं। सूकर जैसे विष्ठा की ओर जाता है, उसी प्रकार वे नश्वर फल ही चाहते हैं। गर्भाधान से लेकर मरणपर्यन्त वे नाना प्रकार की क्रियाएँ करते हैं, पर उन्हें न कभी अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और न कभी उनकी आत्मा को शान्ति ही मिलती है। वे देह का त्यागकर धूममार्ग से चन्द्रलोक जाते हैं। वहाँ कुछ दिनों तक भोगों का उपभोग कर और सोम का पानकर पुण्य क्षीण होने पर वे फिर यहीं नीचे ढकेल दिये जाते हैं।

गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥३॥

जन्म-मरण के बन्धन से वे कभी मुक्त नहीं होते। जो गृहस्थ निष्काम धर्म का आचरण करते हैं, फल की इच्छा नहीं रखते, अहंकार और ममता से रहित होकर शान्त चित्त से भगवान् हिरण्यगर्भ की उपासना करते हैं, किसी प्राणी को मन, वाणी और कर्म द्वारा कष्ट नहीं देते, वे सूर्यमार्ग से ब्रह्मलोक जाते हैं। वहाँ ब्रह्मा की द्विपरार्द्ध आयुपर्यन्त निवास कर दिव्य भोगों का आनन्द लेते हैं और ब्रह्माण्ड का लय हो जाने पर ब्रह्मा के साथ ही भगवान् के शरीर में लीन हो जाते हैं। जो गृहस्थ साक्षात् भगवान् की ही तन मन और धन से उपासना करते हैं वे सीधे वैकुण्ठलोक चले जाते हैं। उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं होती। इसलिए हे माता!

तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ॥२२॥

तुम सब प्रकार उन्हीं भगवान् का भजन करो। उन्हीं की शरण में जाओ और सर्वत्र उन्हीं को देखो। बस इतने से ही तुम उन्हें प्राप्त कर लोगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। संसार में जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, वह सब ब्रह्म ही है। ब्रह्म से अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है। इसका अनुभव तुम श्रद्धाभक्ति से और नित्य योगाभ्यास से कर सकती हो। हे माता! मैंने यह दुर्गम ज्ञान बड़ी सरलता से तुम्हें बताया है। इससे तुम्हें प्रकृतिपुरुष-बोध हो जाएगा। ज्ञानयोग अथवा भक्तियोग दोनों का अर्थ ही भगवत्प्राप्ति हैं।

जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ।
यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥३८॥

जीव के निवासार्थं अज्ञाननिर्मित हजारों योनियाँ हैं, जिनमें प्रविष्ट होकर यह अपने स्वरूप को भूल जाता है।

इसलिए अब तुम एकान्त में मेरे बताये उपदेश का मनन करो। इससे तुम्हारे सब सन्देह निवृत्त हो जायेंगे, तुम्हें अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाएगा और साथ ही साथ भगवान् की प्राप्ति हो जायेगी। मेरे इस ज्ञान का उपदेश अविनीत शिष्य, अहंकारी, दुराचारी, धर्मध्वजी, अर्थलोलुप, अत्यन्त-गृहासक्त, अभक्त एवं भक्तद्रोही पुरुष को नहीं करना चाहिए। शान्तचित्त, निर्मत्सर, विरक्त, विनीत, श्रद्धालु भक्तों को ही करना चाहिए। हे माता!

य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत्।
यो वाभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥४३॥

जो मनुष्य मेरा यह उपदेश श्रद्धा से एक बार भी सुनता या इसका प्रवचन करता है। वह निश्चय ही मेरे परम धाम को प्राप्त करता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीयस्कन्ध का बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

तैंतीसवाँ अध्याय

कपिलजी का प्रस्थान और माता की मुक्ति

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री
सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ।
विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य
तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥१॥

इस प्रकार देवहूति अपने पुत्र कपिलजी का उपदेश सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसका मोहरूपी आवरण हट गया और वह प्रणाम कर स्तुति करती हुई बोली—हे भगवन्! ब्रह्मा जो आपके नाभिकमल से उत्पन्न हुए हैं वह भी आपका दर्शन न पा सके। केवल ध्यान ही करते रहे। मुझे तो आज साक्षात् ब्रह्म ही पुत्ररूप से दर्शन दे रहा है, मेरा अहोभाग्य है। सम्पूर्ण विश्व का जो सृजन, पालन एवं संहार करते हैं, प्रलय में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी जिनके उदर में लीन रहता है, वही आप मेरे उदर में पुत्ररूप से आये—यह आश्चर्य है। यह भी आपकी वैसी ही एक लीला है, जैसी कि आप प्रलयकाल में वटपत्र पर शयन कर मायाशिशु बनकर अंगुष्ठपान करते हुए रहते हैं—

विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥४॥

दुष्टों के संहार और भक्तों के कल्याण के लिए ही आप शरीर धारण करते हैं। आपके वराह आदि अनेक अवतार लोक-कल्याणार्थ ही होते रहते हैं। उसी प्रकार

आपका यह अवतार भी लुप्त ज्ञानमार्ग के प्रदर्शन के लिए हुआ है। हे भगवन्! आपके श्रवण, स्मरण और संकीर्तन से चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है। फिर जिन्हें आपका साक्षात् दर्शन हो गया उनका महत्त्व मैं क्या कहूँ? जिसकी जिह्वा पर आपका पवित्र नाम रहता है वह चाण्डाल भी अपनी जाति में श्रेष्ठ गिना जाता है। पूर्वजन्म में उच्च वर्ण में जन्म प्राप्त कर उसने तपस्या की, हवन किया, तीर्थों में स्नान किया, वेद का अध्ययन किया, किन्तु संगदोष से जातिभ्रष्ट होकर इस जन्म में चाण्डाल योनि प्राप्त की। अतएव पूर्व संस्कारवश भगवन्नाम कीर्तन में उसकी अभिरुचि हुई। नामकीर्तन में तप आदि सब साधन अन्तर्हित रहते हैं। इसलिए नामकीर्तन करने वाला प्राणी सब साधनकर्त्ताओं से श्रेष्ठ बताया गया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्राह्मण की समानता करें। ऐसा करनेवाला निम्नजाति का पुरुष घोर नरक यातनाएँ भोगकर अन्त में निकृष्टतम तिर्यगादि योनियाँ प्राप्त करता है—

इसलिए अपने-अपने धर्म में रहना ही शास्त्रीय सिद्धान्त हैं—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।

हे भगवन्! योगी लोग आपका हृदय में ध्यान करते हैं। आपने अपने तेज से मेरा अज्ञान दूर कर दिया, मुझे बड़ी शान्ति मिली है। मैं आपको प्रणाम करती हूँ। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! भगवान् कपिल माता के इस प्रकार दीन वचन सुनकर गद्गद वाणी में बोले—माता! मैंने तुम्हें जो उपदेश दिया है उससे तुम शीघ्र जीवन्मुक्ति प्राप्त करोगी। श्रद्धा से तुम उसी का चिन्तन तथा अनुष्ठान करो। उससे तुम शीघ्र ही भगवान् को प्राप्त कर लोगी। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर इस प्रकार कपिलजी अपनी माता को उपदेश देकर उनकी आज्ञा से उत्तर दिशा को चले गये। देवहूति भी अपने आश्रम में पुत्र के उपदेशानुसार साधना करने लगी। देवताओं के लिए भी अतिस्पृहणीय अपने विमान और उनके दिव्य भोग-साधन आदि सबका त्याग कर वह अपने पुत्र का ही ध्यान करने लगी। कुछ काल में उसे सांसारिक सभी वस्तुओं से पूर्ण विरक्ति हो गयी। भगवान् के श्रीविग्रह के ध्यान में वह इतनी मग्न हो गयी कि उसे अपने शरीर का भी भान न रहा। थोड़े ही दिनों में ऐसी निरन्तर समाधि से उसने भगवान् का साक्षात्कार कर लिया और तत्क्षण उसका भौतिक शरीर पृथ्वी पर गिर कर नदी के रूप में परिणत हो गया। जहाँ उसने सिद्धि प्राप्त की थी, वह सिद्धपुर नामक पुण्यक्षेत्र अभी विद्यमान है। कपिलजी भी अपने पिता के आश्रम से उत्तर दिशा में समुद्रतट पर चले गये। वहाँ सिद्धगन्धर्व उनकी स्तुति करने लगे। समुद्र में अर्घ्य-पाद्य से उनका पूजन किया। योग का आश्रय कर वे वहीं निवास करने लगे। हे विदुर!

एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ ।
कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥३६॥

तुमने जो प्रश्न किया उसके अनुसार देवहूति और कपिल का यह परमपावन संवाद मैंने वर्णन किया।

य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम्।
भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविन्दम्॥३७॥

जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति से कपिल जी द्वारा वर्णित भगवत्प्राप्ति का यह गुप्त रहस्य सुनता है या उपदेश करता है उसका चित्त भगवान् की ओर हठात् आकृष्ट हो जाता है और वह शीघ्र उनके चरणकमलों का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है।

सुगमतोऽखिलबन्धनिवृत्तये यदिह साधनमुत्तममादिशत्।
हरतु तेन ममापि स मानसं चितमलं[1] तमलं कपिलो हरिः॥

(पौराणिक)

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के तृतीय स्कन्ध का तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

(तृतीय स्कन्ध समाप्त)

❖

---

[1] मम मानसं चितमलं संचितमलम् अलमतिशयेन हरतु।

चतुर्थ-स्कन्ध प्रारम्भ

(इस स्कन्ध में ३१ अध्याय हैं और पुराण के द्वितीय लक्षण 'विसर्ग' का वर्णन है।)

इस स्कन्ध का प्रकरण-क्रम इस प्रकार है—१ अध्याय में मनु की कन्याओं का वंश, ६ अध्यायों में दक्ष यज्ञ-विध्वंस, ५ ध्रुवचरित, ८ से पृथुचरित तथा ११ से प्रचेताओं का चरित्र वर्णित है।

पहला अध्याय

मनु की कन्याओं के वंश और यज्ञ आदि भगवान् के अवतार

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥१॥

मनु की तीन कन्याएँ थीं—आकूति, देवहूति और प्रसूति। देवहूति का चरित्र तीसरे स्कन्ध में प्रायः कहा जा चुका है। मनु ने आकूति का विवाह प्रजापति रुचि के साथ पुत्रिकाधर्म[1] के अनुसार इस शर्त पर किया कि इसके जो पुत्र होगा उसे हम ले लेंगे। रुचि से आकूति को यज्ञ और दक्षिणा नामक युगल-सन्तान उत्पन्न हुई। ये दोनों क्रमशः विष्णु और लक्ष्मी के अंश थे[2]। पुत्र यज्ञ को मनु ने ले लिया और कन्या दक्षिणा को प्रजापति रुचि ने ग्रहण किया। फिर इन दोनों का परस्पर विवाह हो गया। यज्ञ के दक्षिणा पत्नी में बारह पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़ा तोष था और सबसे छोटा था रोचन। ये सब उस मन्वन्तर के तुषित नामक देवता हुए। मनुने अपनी तीसरी कन्या प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति के साथ किया, जिसका वंश संसार में बहुत फैला। देवहूति की नौ कन्याओं का विवाह मरीचि आदि नौ ऋषियों के साथ हुआ था। उसके भी वंश का विवरण सुनो। ब्रह्माजी के प्रथम पुत्र मरीचि की पत्नी कला ने कश्यप और पूर्णिमा नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। कश्यप के वंश का वर्णन छठे स्कन्ध में किया

---

[1] अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम्।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥
इति भाषाबन्धेन कन्यादानं पुत्रिकाधर्मः।

[2] अतः इनके परस्पर विवाह असंगत नहीं क्योंकि
राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषा सहायिनी॥ इत्यादि वचन से।

जायेगा। पूर्णिमा के विरज और विश्वग नामक दो पुत्र और देवकुल्या नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। देवकुल्या ही भगवान् के चरण धोने के कारण दूसरे जन्म में गङ्गा हुई। द्वितीय पुत्र अत्रि की पत्नी अनसूया ने तीन पुत्र उत्पन्न किए। सोम, दत्तात्रेय और दुर्वासा। ये तीनों ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अंश थे। विदुर ने पूछा—हे मुने! अत्रि के घर में ये तीनों देवता किस कारण उत्पन्न हुए? मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ब्रह्मा ने अत्रि से जब सृष्टि करने को कहा तब अत्रि ऋक्षपर्वत पर तप करने चले गये और वहाँ उन्होंने एक पैर से खड़े रहकर केवल वायु पीकर सौ वर्षों तक कठोर तपस्या की। उनका संकल्प था कि संसार का जो अधीश्वर है, मैं उसी की शरण में हूँ। वह मुझे अपने सदृश पुत्र दें।

शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः।
प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥२०॥

मुनि के तेज से जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलने लगा तब तीनों देव मुनि के आश्रम में गये। उनके प्रखर तेज से मुनि के नेत्र बन्द हो गये। अत्रि ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और मधुर वाणी से कहा—भगवन्! आप रुष्ट न हों तो एक बात पूँछू, मुझे क्षमा करें। मैंने अपने कार्य के लिए एक को ही बुलाया था। आप तीनों कैसे पधारे? देवताओं ने मुस्कराकर कहा—मुने!

यद्वै ध्यायति ते वयम्।

जिस एक तत्त्व का तुम ध्यान करते थे, वह एक तत्त्व हम तीनों हैं। इसमें भेद नहीं है, इसलिए हम तीनों ही पुत्र होकर तुम्हारे यश का विस्तार करेंगे। यह कहकर वे तीनों देव अन्तर्धान हो गये। हे विदुर! अत्रि के घर त्रिदेवों के आने का यही कारण है।

अनसूया के पातिव्रत्य का प्रभाव

लक्ष्मीजी, सती जी और ब्रह्माणी जी को अपने पातिव्रत्य का बड़ा अभिमान था। भगवान् अपने भक्तों का गर्वांकुर नहीं रहने देते, यह उनका नियम है। तुरन्त लीलापति भगवान् ने एक लीला रची। नारद जी भगवान् की हृद्गत प्रेरणा से वीणा बजाते लक्ष्मी जी के यहाँ पहुँचे। उन्हें देखकर लक्ष्मीजी ने प्रसन्नमुद्रा में पूछा—कहाँ से पधारे महाराज! नारदजी ने कहा—हमारा क्या ठिकाना? रमतायोगी हैं। वैष्णव और ऊँट का जिधर मुख उठा, चल दिये। यह सुनकर लक्ष्मीजी बड़े जोरों से हँस पडी और बोली—नारदजी! आपने वैष्णवों की ऊँट के साथ तुलना खूब की। ऊँट नीम को और वैष्णव तुलसी को पत्रविहीन करने में बड़े कुशल हैं। अच्छा बताओ तो सही कहाँ से आ रहे हो? नारदजी ने कहा—माताजी! आज घूमते-घामते अत्रि के आश्रम में चला गया था। वहाँ अनसूया का पातिव्रत्य देखकर दंग रह गया। संसार में उनसे बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं दिखायी देती। लक्ष्मी ने कुछ आवेश में आकर कहा—क्या मुझसे भी बढ़कर? नारदजी ने कहा—आप तो उनके पसंगे के बराबर भी नहीं हैं। यह सुनते ही लक्ष्मी का

मुख फीका पड़ गया। नारदजी इस प्रकार कलह का बीज बोकर कैलास की ओर चल दिये। इधर लक्ष्मी जी मुँह फुलाकर बैठ गयीं।

भगवान् ने पूछा प्रिये! आज क्या बात है? लक्ष्मीजी ने कहा—देखो जी, बहुत दिन आपके तलुये सुहराये हैं। मेरी एक बात माननी पड़ेगी। भगवान् ने कहा—बात भी तो सुने क्या है? लक्ष्मी जी ने कहा—मैं शश का सींग मागूँ या बन्ध्या का पुत्र माँगू तो भी आपको लाना पड़ेगा। भगवान् ने कहा—अच्छी बात है, कहो तो सही। लक्ष्मीजी बोलीं—हाँ कहिये। भगवान् ने हँसकर कहा—हाँ, हाँ, हाँ और कहो कै बार कहूँ। पट्टा लिख दूँ या गङ्गा जी में खड़ा होकर कहूँ। लक्ष्मीजी प्रसन्नता प्रकट करती बोली—नाथ! बस हो गया विश्वास। आपको जैसे भी हो अनसूया का सतींत्व भङ्ग करना होगा। भगवान् यह सुनकर हँसे और मन में कहने लगे—अरी देवि! मुझमें इतना सामर्थ्य कहाँ? जो उनका सतीत्व भंग कर सकूँ। भगवान् तुरन्त जान गये, यह सब तुमड़ीधारी नारद के बीज बोये हैं। प्रकट में कहा अच्छा—हम अभी जाते हैं। बिना काम किये न लौटेंगे, यदि तुमने बीच में कोई बाधा न डाली तो। यह कहकर भगवान् गरुड़ पर सवार हो अत्रि के आश्रम की ओर चल पड़े।

इधर नारदजी कैलास पहुँचे। सतीजी अकेली बैठी पूजा कर रही थीं। नारदजी को आते देखकर सती ने उठकर उनका स्वागत किया और खाने को एक अमृतमय मोदक दिया। नारदजी ने गप्प से मुँह में डाल लिया और कहा—लड्डू तो बड़ा ही स्वादिष्ट है किन्तु अनसूया के लड्डू जैसा स्वाद नहीं। सती ने कुछ आवेश में आकर कहा—कौन अनसूया? नारदजी ने कहा—वे अत्रि की पत्नी हैं। संसार में उनके सदृश दूसरी कोई पतिव्रता नहीं है। सतीजी ने कहा—मुझसे भी अधिक? नारदजी ने कहा माताजी! अधिक कम तो जानता नहीं, हाँ इतना अवश्य है उनके सामने आपका पातिव्रत्य फीका है। यह सुनते ही सतीजी दौड़ती शिवजी के पास गयी और बोली—नाथ! आप तो पतिव्रताओं में मुझे श्रेष्ठ बताते थे। नारद अनसूया को बता रहा है। यह क्या बात है? शिवजी ने कहा—नारद को बुलाओ, देखा तो नारद कब के नौ-दो ग्यारह हो चुके थे। शिवजी ने कहा देवि! नारद कहते तो ठीक हैं तुम अनसूया की समता नहीं कर सकती। सतीजी ने शिवजी के चरण पकड़कर कहा—नाथ! जैसे भी हो आपको अनसूया का सतीत्व भङ्ग करना होगा। शिवजी ने कहा अच्छा, मैं जाता हूँ। तुम बीच में गड़बड़-घुटाला मत करना; यह कहकर वे अत्रि के आश्रम की ओर चल पड़े।

इधर नारदजी ब्रह्मलोक पहुँचे; वहाँ ब्रह्माणी के समक्ष भी अनसूया का बखान किया। ब्रह्माणी ने अपने पतिदेव को सारा समाचार सुनाकर कहा—आप अनसूया का पातिव्रत्य भंग करें। ब्रह्माजी भी अत्रि के आश्रम की ओर चल दिये। तीनों देवता मन्दाकिनी के तट पर अत्रि के आश्रम में पहुँचे। परस्पर एक दूसरे को प्रणाम कर उन्होंने आने का कारण बताया। तीनों ही वेष बदल कर अतिथि के रूप में अनसूया के निकट पहुँचे। उस समय अत्रि आश्रम में नहीं थे। अनसूया ने अर्घ्यपाद्य से उनका

पूजन कर कन्द, मूल, फल भेंट किये। किन्तु मुनियों ने आतिथ्य ग्रहण नहीं किया। तब देवी ने विनीत भाव से पूछा—मुनियों! मुझसे कौन-सा अपराध हो गया, जो आप पूजा ग्रहण नहीं कर रहे हैं? मुनियों ने कहा—देवी! आप विवस्त्र होकर हमारा आतिथ्य करें। तभी हम उसे स्वीकार करेंगे, अन्यथा नहीं। यह सुनते ही अनसूया हक्की-बक्की सी रह गयीं। वह सोचने लगीं ये मुनि हैं या कोई कपटी—जो ऐसा अनुचित प्रस्ताव कर रहे हैं। उसने ध्यान लगाकर देखा तो सब समझ गयी और बोली—अच्छा, मैं विवस्त्र होकर ही सत्कार करूँगी।

यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ, मैंने स्वप्न में भी कभी परपुरुष का चिन्तन न किया हो तो आप तीनों छः-छः महीने के बच्चे बन जायँ, यह कहकर उसने पतिदेव का ध्यान कर हाथ में कमण्डलु का जल ले उन पर फेंका; वे तुरन्त छः-छः महीने के दूध पीनेवाले बच्चे बन गये। माता ने विवस्त्र हो गोदी में लेकर उन्हें अपना स्तनपान कराकर झूले पर सुला दिया। इतने में अत्रि भी आ गये। सुकुमार बच्चों को देखकर वे बोल उठे—ये बच्चे किस भाग्यशाली के हैं। पत्नी ने कहा—ये आपके ही तो हैं। भगवान् ने स्वतः कृपा की है। मुनि तत्क्षण सब रहस्य समझ गये। तीनों देवता बच्चे बने माँ के साथ क्रीड़ा करने लगे। माता उन्हें खूब खिलाती, पिलाती और प्यार करती थी। इधर तीनों देवियों को बड़ी चिन्ता हुई, वे घर से निकल पतियों को खोजने लगीं। एक स्थान पर तीनों देवियाँ आपस मे मिलीं। सबने अपना-अपना दुःख बताया। नारद की करतूत जानकर सभी क्रोध में भर गयीं। कहीं वह मिल जाता तो उसकी तुमड़ी फोड़ डालतीं। बस, क्या था नारदजी वीणा बजाते वहाँ पहुँच ही तो गये। दूर से बोले माताजी! दण्डवत्, सब माताओं को दण्डवत्। देवियों ने कहा—जरा पास तो आओ, अपनी वीणा तो दिखा दो। नारदजी तो समझते ही थे। वे बोले—मैं आजकल एक अनुष्ठान में हूँ। किसी के पास आकर बातें नहीं कर सकता। विशेषकर स्त्रियों से तो दूर ही रहता हूँ। आप सब अपनी-अपनी वीणा बजावें। हम तो चलते हैं। जय-जय सीताराम। यह कहकर नारदजी चल पड़े। अब तीनों बड़ी घबरायीं। कोमलवाणी से तीनों ने कहा—तुझे हमारी शपथ, अपने पिता की शपथ—जो न लौटे। सच-सच बता दे; वे तीनों कहाँ है? नारदजी ने कहा—मैं क्या जानूँ? तीनों ने कहा—तेरे पेट में दाढ़ी है; तू सब जानता है। बता दे अब हँसी मत कर। नारदजी ने अंगुली से संकेत करते कहा—देखो वह अनसूया का आश्रम है। पतिव्रता के चक्कर में फँस गये हैं। वहीं पालने में पड़ें बिल्ली के बच्चों की तरह म्याऊँ-म्याऊँ कर रहे हैं। १५-२० वर्ष बाद जब बड़े होंगे तब माता उनका दूसरा विवाह करेंगी। अब तुम सब भस्म रमाकर, माला लेकर राम-राम रटो। उनकी आशा छोड़ दो। तीनों ने कहा—यह सब विष की बेल तेरी ही बोयी है। अच्छा भैया! तू जीता, हम हारी। अब मिलने का उपाय बता। नारदजी ने कहा—उपाय यही है। तुम सती की शरण में जाओ। तीनों डरती-डरती आश्रम पर पहुँची। किवाड़ बन्द थे। तीनों बाहर से पुकारने लगीं—माताजी! हम भीतर आ जायँ।

सती ने भीतर से कहा—तुम कौन हो? तीनों ने कहा—हम आपकी पुत्रवधू हैं। सती ने कहा—तब तो तुम्हारा घर है, पूछना क्या? आ जाओ। तीनों भीतर गईं और अनसूया के पैर छूकर बैठ गयीं। माता ने आशीर्वाद देकर कहा—मेरे बच्चे तो अभी छोटे-छोटे हैं। बहुयें बड़ी लम्बी तगड़ी हैं। इतने में अत्रि जी भी आ पहुँचे। तीनों घूँघट मार कर एक कोने में जा बैठी। मुनि ने पूछा, ये कौन है? अनसूया ने कहा, ये आपकी पुत्र-वधुएँ हैं। मुनि ने कहा—देवि! तुम बड़ा कौतुक करती हो। अभी तो पुत्र बना लिए। वे पूरे छः महीने के भी नहीं हुए कि पुत्र-वधुएँ भी आ गयी। हाथ-हाथ भर के बच्चें, पाँच-पाँच हाथ की बहुएँ, कैसी विचित्र बात है? सती ने कहा—इसमें हानि क्या? बड़ी बहू, बड़े भाग्य—यह कहावत है। बच्चे भी एक दिन बड़े हो जायँगे। यह सुनकर मुनि हँस पड़े और सब रहस्य समझ गये। तीनों देवियाँ आश्रम में रहने लगी। एक दिन तीनों रात्रि में अनसूया के पैर दबा रही थीं कि उनके अश्रु निकलकर माता के चरणों पर गिरे। माता ने कहा देवियों! क्या तुम्हें दु:ख हैं? वे बोलीं—माताजी! हमारा अपराध क्षमा हो। अब हमारे पतियों को दे दीजिए। इनका वियोग हमसे सहा नहीं जाता। यह सुनकर सती का हृदय पसीज गया। उन्होंने पति का ध्यान कर हाथ में जल लेकर उनपर छिड़का; तीनों देव अपने-अपने स्वरूप में प्रकट हो गये। सती ने उठकर तीनों का पूजन और प्रदक्षिणा की। तीनों देवताओं ने प्रसन्न होकर सती से कहा—देवि! तुम्हारे पातिव्रत्य से हम बहुत प्रसन्न है। जो इच्छा हो वर माँग लो। अनसूया ने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं तो आप तीनों मेरे पुत्र हो जाएँ। देवताओं ने तथास्तु कह दिया। ये ही तीनों अनसूया के पुत्र हुए थे।

सोमोऽभूद् ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोऽस्तु योगवित् ।
दुर्वासाः शङ्करस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥

ब्रह्मा के अंश से सोम, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और शंकर के अंश से दुर्वासा हुए। बाद में तीनों देवों ने देवियों से पूछा—बताओं संसार में सबसे श्रेष्ठ सती कौन है? तीनों ने एक स्वर में कहा—अनसूया ३ बार, इसके अनन्तर तीनों देव अपनी-अपनी देवियों के साथ अपने-अपने लोक चले गये। इस प्रकार हमने आप लोगों के समक्ष पतिव्रता के अद्भुत प्रभाव का वर्णन किया।

सती-पद-वन्दन

सती देवी! तेरे चरणों का सादर वन्दन करते हैं।
भाव-भक्ति से हृदय खोलकर ।
प्रेमसहित जय-जयति बोलकर ॥
भक्त-वृन्द परमेश्वर का जैसे अभिनन्दन करते हैं। सती देवी-
परमोज्ज्वल, शुचि, परमतपस्विनि ।
वीर-धीर हे परम मनस्विनि ॥

सुरसरि सम तेरे चरणों से रज ले चन्दन करते हैं। सती देवी–
परम तेज की परम त्याग की।
पतिपद में परमानुराग की॥
गा-गाकर गुण-गरिमा सज्जन, ज़न-मन-रंजन करते हैं।
सती देवी! तेरे चरणों का सादर वन्दन करते हैं॥

ब्रह्मा के तीसरे पुत्र अङ्गिरा की पत्नी श्रद्धा से चार कन्याएँ उत्पन्न हुयीं। जिनमें दो सिनीवाली और कुहू अमावस्या की और दो अनुमति और राका पूर्णिमा की अधिष्ठात्री देवियाँ हुईं तथा उतथ्य और वृहस्पति दो पुत्र हुए। चौथे पुत्र पुलस्य ने हविर्भू नाम की पत्नी द्वारा अगस्त्य को उत्पन्न किया। इनके एक पुत्र विश्रवा भी थे। विश्रवा की पत्नी इडविडा से कुबेर और केशिनी से रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण उत्पन्न हुए। पाँचवें पुत्र पुलहकी भार्या गति ने तीन पुत्र उत्पन्न किये। छठे पुत्र क्रतु की भार्या क्रिया ने साठ हजार बालखिल्य ऋषियों को उत्पन्न किया। सातवें पुत्र वसिष्ठ ने ऊर्जा (अरुन्धती) में चित्रकेतु आदि २७ पुत्र उत्पन्न किये। ब्रह्मा के आठवें एक पुत्र अथर्वा भी थे। उनके चित्ति (शान्ता) से दधीचि हुए। ब्रह्मा के नवे पुत्र भृगु की ख्याति नामक पत्नी से दो पुत्र एवं एक कन्या हुई। इस प्रकार देवहूति की नौ कन्याओं का यह वंशवर्णन किया गया। दक्ष ने प्रसूति से सोलह कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमें से १३ कन्याएँ धर्म को दीं। उनके मंगलमय नाम ये हैं—

श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः।
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः॥४९॥

एक अग्नि को, एक पितरों को और एक भगवान् शिव को दी। धर्म की मूर्ति नाम की पत्नी में नरनारायण हुए। अग्नि की पत्नी स्वाहा से तीन पुत्र हुए पावक, पवमान और शुचि। उनसे ४५ अग्नियों की उत्पत्ति हुई। तीन पिता और एक पितामह को मिलाकर उनचास अग्नियाँ कही जाती हैं। यज्ञ में उनके नामों में अग्निदेव की इष्टियों का निरूपण किया जाता है। ये लौकिक अग्नियाँ नहीं है। पितरों की पत्नी स्वधा थी। उसके वयुना और धारिणी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं, भव की पत्नी सती को कोई पुत्र नहीं हुआ, कारण पति पर पिता दक्ष के अकारण प्रतिकूल होने पर अप्रौढ़ अवस्था में ही योग द्वारा उन्होंने स्वयं अपना शरीर त्याग दिया था।

अप्रौढैवात्मनात्मानमजहाद्योगसंयुता ॥६६॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थ स्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त ।।

❖

दूसरा अध्याय

भगवान् शिव के प्रति दक्ष के विद्वेष का कारण एवं परस्पर शाप

विदुर जी बोले—हे ब्रह्मन्!

भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ।
विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥१॥

दक्ष ने सती का अनादर कर भगवान् शिव से द्वेष क्यों किया जिससे सती ने अपने प्राण ही त्याग दिये? मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! पहले प्रजापतियों का एक बड़ा विशाल यज्ञ हुआ था। उसमें सभी देवता, ऋषि, महर्षि आदि उपस्थित हुए थे। उस यज्ञ में दक्ष के आने पर ब्रह्मा और शिव को छोड़कर अन्य सबने उठकर उनका अभ्युत्थान किया। सभापति ब्रह्मा ने भी दक्ष का आदर किया। ब्रह्मा जी को प्रणाम कर दक्ष आसन पर बैठ तो गये, पर सामने आसीन भगवान् शिव को टेढ़ी नजर से देखकर बोले—इस शिव ने मेरी पुत्री ग्रहण की, यह मेरा जामाता है। किन्तु इसने वाणी से भी मेरा सत्कार या प्रणाम नहीं किया। इसने धर्म की मर्यादा का उल्लंघन किया है। यह श्मशान में भूत-प्रेतों के साथ रहता है और बड़ा उन्मत्त है। ब्रह्माजी के ही कहने से मैंने इसे अपनी पुत्री दी थी, पर यह उसके योग्य न था। इस प्रकार शिव की निन्दा कर दक्ष ने शाप दिया कि यज्ञ में देवताओं के साथ इसे भाग न मिले, कारण यह देवताओं में अधम है। यह कहकर दक्ष मारे क्रोध के सभा का त्याग कर अपने स्थान को चले गये। भगवान् शिव के गण नन्दीश्वर ने यह शाप सुनकर दक्ष और उनके अनुयायियों को शाप देते हुए कहा—

य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ।
द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥२१॥

यह मूर्ख दक्ष निर्वैर भगवान् शिव से द्रोह करता है। इसे तत्त्वज्ञान कभी न होगा और सर्वदा कामी ही रहकर यह कर्मकाण्ड के चक्र में पड़ा रहे। जिस मुख से इसने भगवान् शिव की निन्दा की है वह तुरन्त बकरे का हो जाय तथा जिन्होंने शिव की निन्दा का अनुमोदन किया है, वे ब्राह्मण सर्वभक्षी हों और याचक बनकर दर-दर भटकते फिरें। ब्राह्मणकुल को इस प्रकार शाप देने पर महर्षि भृगु से न रहा गया—उन्होंने भी शिव-भक्तों को शाप देते हुए कहा—शिवव्रत धारण करने वाले पाखण्डी हो जायँ। जटा, भस्म, कपाल धारण कर वे वाममार्ग में प्रवेश करें और मदिरा, आसव आदि का पान करते हुए शौचाचार से हीन हो जायँ। साथ ही तुम भी पाखण्डी हो जाओ जैसे कि तुम्हारे तामसी देवता भूतराट् हैं। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! भृगु का ऐसा शाप सुनकर शिव जी कुछ खिन्न होकर गणों के साथ वहाँ से चल दिये।

विमनाः इव सानुगः[१]।

प्रजापतियों ने यज्ञ में भगवान् विष्णु का पूजन कर यज्ञ समाप्त किया और गङ्गा-यमुना-सङ्गम में यज्ञान्त स्नान कर शुद्ध चित्त से अपने-अपने स्थानों को चले गये—

विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥३५॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थ स्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

तीसरा अध्याय

दक्ष-यज्ञ में जाने के लिए सती का आग्रह और शिव द्वारा निषेध

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! भगवान शिव से दक्ष को इस प्रकार द्वेष करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। एक समय ब्रह्मा जी ने दक्ष को सब प्रजापतियों का अधिपति बनाया। इससे उसे बड़ा अहंकार हो गया। उसने शिव और उनके भक्तों का अनादर कर वृहस्पतिसव नामक यज्ञ आरम्भ किया।

बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥

इस यज्ञ में ऋषि, महर्षि, देवता, पितर आदि अपनी पत्नियों के साथ सम्मिलित हुए। आकाश-मार्ग से जाते हुए देवताओं के मुख से अपने पिता के घर यज्ञोत्सव की चर्चा सुनकर सती ने उत्कण्ठावश भगवान् शिव से कहा—नाथ! आपके श्वसुर के यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ-समारोह हो रहा है। सभी देवता वहाँ जा रहे हैं। आपकी इच्छा हो तो हम लोग भी चलें। हमारी और भी बहनें अपने-अपने पतियों के साथ सगे-सम्बन्धियों को देखने वहाँ अवश्य आयेंगी और वहाँ उनका सत्कार होगा। हमें भी वहाँ जाने पर नाना प्रकार के उत्तम पदार्थ उपहार में मिलेंगे। बहुत दिनों से मैंने अपनी माता को देखा नहीं। वहाँ उन्हें भी मैं देख लूँगी और यज्ञ का भी दर्शन हो जाएगा। आपको समारोह देखने की इच्छा न हो तो कोई आश्चर्य नहीं पर स्त्रीस्वभाव-वश मुझे अपनी जन्मभूमि देखने की बड़ी उत्कण्ठा है।

दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥११॥

जिनका कोई सम्बन्ध नहीं ऐसी भी स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के साथ वहाँ जा रही हैं। आकाश-मण्डल विमानों से भरा दिखायी दे रहा है। आपकी इच्छा वहाँ जाने

---

[१] भगवान् शिव आत्माराम हैं, उनके खिन्न होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यहाँ इन दोनों के परस्पर शाप से यही सिद्ध होता है कि अवैध कर्म तथा वाममार्ग का परित्याग कर शुद्ध सात्त्विक शैव तथा वैष्णव-मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए। इस प्रकरण का यही तात्पर्य हैं।

की क्यों नहीं होती? संसार में ऐसी कौन कन्या होती जो पिता के घर उत्सव सुनकर भी जाने के लिए लालायित न हो? स्वामी, गुरु और पिता के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिए।

अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥१३॥

इसलिए कृपा कर मुझे वहाँ जाने की आज्ञा दें। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! यह सुनकर भगवान् शिव ने सती से कहा—देवि! तुमने जो कुछ कहा वह ठीक है। फिर भी, जो सम्बन्धी अकारण दोष करते हैं उनके यहाँ जाना उचित नहीं। सम्बन्धियों के दुर्वचनों से जैसी मर्म-पीड़ा होती है, वैसी बाणों से भी नहीं होती। दक्ष की सब पुत्रियों में तुम अत्यन्त प्रिय हो, यह मैं मानता हूँ, फिर भी तुम्हारा वहाँ आदर नहीं होगा, कारण दक्ष मुझसे द्वेष रखता है। हमारी दिव्य विभूतियाँ देखकर उसका हृदय सर्वदा जला करता है। वह उन्हें प्राप्त करने में असमर्थ होकर हमारी निन्दा करता है। मैंने तुम्हारे पिता दक्ष को अन्तरात्मा से प्रणाम किया था, जो ज्ञानियों के लिए उचित है। मूर्ख दक्ष इसे न समझ सका और यज्ञ में मेरा अनादर कर बैठा। ऐसे पिता को तुम्हें भी नहीं देखना चाहिए।

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति।
सम्भावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥२५॥

प्रिये! मेरे वचन न मानकर यदि तुम वहाँ जाओगी तो तुम्हारा अपमान होगा जो तुम्हारी मृत्यु का कारण बन जाएगा।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

❖

चौथा अध्याय

सती का दक्ष-यज्ञ में गमन और योग द्वारा शरीर-त्याग

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! भगवान् शिव यह कहकर चुप हो गये पर भय से विह्वल सती रोती हुई कभी घर से बाहर जाती और कभी अन्दर आतीं। शिव जी के रोकने से उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे लम्बी-लम्बी साँसे लेने लगीं भय और रोष से उनकी दशा विचित्र हो गयी। जान पड़ता था कि वे अपना शरीर ही भस्म कर डालेंगी। अपने पतिदेव भगवान् शिव को छोड़कर वे अकेले ही यज्ञ के लिए चल पड़ी। यह देख शिव के गण हजारों की संख्या में उनके पीछे हो लिये। सती को सुन्दर वृष पर बैठाकर छत्र, चँवर, बाजे-गाजे आदि नाना सामग्री के साथ वे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँची। सती ने यज्ञशाला में प्रवेश किया—

आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः।
मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ॥६॥

यज्ञ की शोभा अपूर्व थी, चारों ओर वेदध्वनि से आकाशमण्डल गूँज रहा था। मिट्टी, लकड़ी, लोहा, सोना, चाँदी, कुश आदि के सुन्दर यज्ञीयपात्र यज्ञमण्डप की शोभा बढ़ा रहे थे। ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि और देवताओं से यज्ञशाला भरी थी। बड़े-बड़े विद्वान् शास्त्रीय चर्चा द्वारा परस्पर बड़ी मनोरम स्पर्धा कर रहे थे। सती के यज्ञमण्डप में पहुँचने पर दक्ष के भय से किसी ने उनका आदर नहीं किया। केवल माता और बहनें गले लगाक़र मिलीं। कुशल-वार्ता के बाद माता और मौसियों ने सती को बैठने के लिए सुन्दर आसन एवं नाना वस्तुएँ भेंट कीं, किन्तु सती ने उन्हें ग्रहण नही किया, क्योंकि पिता ने उनका समुचित आदर नहीं किया था। यज्ञ में अपने पतिदेव भगवान् शिव का भाग न देखकर क्रोध से उनका शरीर जलने लगा। आँखे लाल हो गयीं। दक्ष को मारने के लिए उद्यत अपने गणों को रोककर वे शिवद्रोही दक्ष से बोलीं—जिनके सदृश कोई दूसरा देवता नहीं है, जो प्राणी-मात्र के प्रिय हैं, बैर का जिनमें लेश भी नहीं, ऐसे सर्वेश्वर से आप प्रतिकूल हैं—आपको धिक्कार है।

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ।
पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥१४॥

अहो! जिनके दो अक्षर के मङ्गलमय शिव इस पवित्र नाम का एक बार भी वाणी से उच्चारण मनुष्यों की सम्पूर्ण पापराशि को भस्म कर देता हैं, काल भी जिनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता, आश्चर्य है, आप उन शिव से द्रोह करते हैं। आप स्वयं अमङ्गलरूप और गुणहीन हैं। इसी से आपको उनमें अवगुण दिखायी देते हैं। आपकी तो गिनती ही क्या, आपके पिता ब्रह्मा जी भी उनके पैरों से उतारी माला अपने शिर पर धारण कर अपने को कृतार्थ मानते हुए उनका गुणानुवाद किया करते हैं। महापुरुषों की निन्दा करना आपके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है, कारण मरण-धर्मा शरीर को ही आप आत्मा समझ बैठे हैं। याद रखिए, उनकी चरणधूलि ही मूर्तिमती होकर आपका सर्वस्वनाश करेगी और इसे आप अपनी आँखों से देखेंगे। गुस्सा तो ऐसा आता है कि आपकी जिह्वा क़ो काटकर फेंक दूँ अथवा अपने ही प्राण त्याग दूँ। आप कहते हैं मैं उनका श्वसुर हूँ, उन्होंने मुझे प्रणाम नहीं किया। अरे मूर्ख! संसार में प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकार के कर्म हैं और इनके अधिकारी सकाम और निष्काम प्राणी ही हैं। परब्रह्म सदाशिव में कायिक-वाचिक व्यापार के अभाववश कोई कर्म प्राप्त ही नहीं है।

द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥२०॥

जब कभी आपके गोत्र का उच्चारण कर वे मुझे दाक्षायणी कहकर बुलाते हैं तब मेरा मन दु:खित हो जाता है। इससे मैं आपसे उत्पन्न यह शरीर त्याग दूँगी, कारण विषयुक्त भक्षण किये अन्न की निवृत्ति वमन द्वारा ही हो सकती है। यह कहकर सती उत्तर दिशा की ओर मुख कर बैठ गयीं और अपने पति के ध्यान में मग्न हो, प्राण और अपान को समकर, नाभिचक्र से प्राण को उठाकर अनाहत और विशुद्धाख्य चक्र से

आज्ञाचक्र में ले गयीं। दक्ष के कारण[1] शरीर त्यागने की इच्छा से उन्होंने वायु और अग्नि की धारणा की। उस समय उनके शरीर से समाधिजन्य अग्निज्वाला के साथ एक दिव्य ज्योति निकली। जो बिजली की तरह सबकी आँखों को चकाचौंध करती हुई अन्तर्हित हो गयी और उनका शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सद्यः प्रजज्वाल[2] समाधिजाग्निना ॥२७॥

सती का इस प्रकार अद्भुत प्राणत्याग देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी दक्ष की घोर निन्दा कर कहने लगे—अरे यह बड़ा कठोर-हृदय का है। इस दुष्ट ने अपनी कन्या को मरने से रोका भी नहीं। इसकी लोक में बड़ी अपकीर्ति होगी। ऐसा लोगों के कहने पर रुद्र के गण दक्ष के वध के लिए उद्यत हो गये। तब भृगु ने 'अपहतं रक्षः इत्यादि ऋचा पढ़कर अग्नि में आहुति दी। उससे तत्काल जलती हुई लकड़ी लिये ऋभुसंज्ञक हजारों देवता कुण्ड से निकल पड़े जिन्होंने सब गणों को मार भगाया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

(मासिक-पारायण का छठा विश्राम)

◆

पाँचवाँ अध्याय

दक्षयज्ञ-विध्वंस और दक्ष-वध

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! देवर्षि नारदजी से सती का निधन और अपने गणों की पराजय सुनकर भगवान् शिव को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने दाँतों तले अपना ओष्ठ दबाकर जटा पृथ्वी पर पटकी जिससे अत्यन्त विशालकाय वीरभद्र उत्पन्न हुआ। उसकी हजार भुजाएँ थी। जलती अग्नि के समान उसके केश थे। मुण्डमाला पहने और हाथों में विविध शस्त्रास्त्र लिए हुए वह भगवान् शिव को प्रणाम कर बोला—भगवन्! क्या आज्ञा है? शिव जी ने कहा—हे वीरभद्र! तुम मेरे अंश हो, शीघ्र जाकर यज्ञ विध्वंस कर दक्ष का वध कर डालो। यह सुनकर वीरभद्र भगवान् शिव की परिक्रमा कर हाथ में त्रिशूल लिये यज्ञ-मण्डप की ओर बड़े वेग से चल पड़े। उनके पीछे रुद्र के हजारों

---

१. यमुद्दिश्य त्यजेद् देहं पापभागी स जायते ।
अतो न कोपयेत् कंचित् परलोकसुखाय च ॥

२. सती का शरीर भस्म हो गया ऐसी व्याख्या करना उचित नहीं, क्योंकि स्कन्दपुराण के केदारखण्ड के अनुसार शिव जी द्वारा कन्धे पर रक्खे सती के शरीर के भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से खण्ड-खण्ड किये हैं। अंग जहाँ-जहाँ गिरे वह देवी के पीठ तथा पुण्यक्षेत्र हो गये, यह वर्णन असंगत हो जाएगा।

गण गर्जना करते हुए चले। उनके चलने से उड़ी धूलि से आकाशमण्डल आच्छन्न हो गया। यज्ञ में बैठे यजमान और सदस्य उत्तर की ओर उस धूलिराशि को देखकर कहने लगे यह क्या अन्धकार है या धूलि है? यदि धूलि है तो कहाँ से आयी। इस समय वायु भी चल नहीं रही है। गौएँ भी कोई नहीं ले जा रहा है। क्या संसार का प्रलय तो नहीं होने वाला है? दक्षपत्नी प्रसूति आदि स्त्रियों ने उद्विग्न होकर कहा—यह और कुछ नहीं है वह सती के अनादर से उत्पन्न इनके पाप का फल है। उन्होंने सती का अनादर किया और उसे मरने से रोका नहीं। जो शिव काल के भी काल हैं, उनका तिरस्कार कर उन्हें कुपित किया। अब इनका कल्याण कहाँ?

स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥११॥

सब लोग इस प्रकार कह ही रहे थे कि रुद्र के गणों ने आकर यज्ञमण्डप को चारों ओर से घेर लिया। किसी ने आगे बढ़कर लम्बा बाँस तोड़ डाला, कोई यज्ञमण्डप नष्ट करने लगा।

रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन्।
कुण्डेष्वमूत्रयन् केचिद् बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥१५॥

कोई यज्ञपात्र तोड़ने चले तो कोई अग्नि को ही बुताने लगे, कुछ खड़े होकर अग्निकुण्ड में ही मूतने लगे, कुछ मुनियों को डाँटने लगे, कुछ पत्नियों को घुड़कने लगे—खड़ी रहो, खड़ी रहो। तुम सबको अभी विधवा करते हैं।

तिष्ठतः भवतीः सम्प्रति विधवाः कुर्मः।

और कुछ भागते देवताओं को पत्थर फेंक-फेंक कर मारने लगे। वीरभद्र ने भृगु को पकड़ कर उनकी दाढ़ी नोच डाली। पूषा के दाँत तोड़ डाले। भग नामक सूर्य के नेत्र ही निकाल लिये और भी कितने ही देवताओं के अङ्ग छिन्न-भिन्न कर डाले। दक्ष की छाती पर चढ़कर वीरभद्र ने तीक्ष्ण धारवाले शस्त्र से उसका सिर काटना चाहा, किन्तु उसकी त्वचा तक न कट सकी। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। शिव जी का ध्यान करने से उन्हें उसके मारने का उपाय ज्ञात हुआ। उन्होंने हाथों से मरोड़ कर दक्ष का सिर धड़ से अलग कर दिया और 'अग्नये स्वाहा कहकर दक्षिणाग्नि में उसकी आहुति दे दी। वीरभद्र के इस कर्म की सभी ने सराहना की। अन्त में वीरभद्र यज्ञमण्डल में अग्नि लगाकर कैलाश चले गये।

तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद् गुह्यकालयम् ॥२६॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थ स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी के साथ देवताओं का कैलास-गमन और श्रीशिव जी से दक्ष को जीवित करने की प्रार्थना

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! भगवान् शिव के गणों द्वारा नाना अस्त्रंशस्त्रों के प्रहार से देवताओं के अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये। वे भय से व्याकुल होकर ब्रह्मा जी के समीप पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर दक्षयज्ञ का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

उपलभ्य पुरैवैतद् भगवानब्जसम्भवः ।
नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा और विष्णु पहले से ही यज्ञध्वंस होगा, यह जानकर यज्ञ में गये ही नहीं थे। ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—तुम लोगों ने बड़ा अन्याय किया जो शिव को भाग नहीं दिया, जिनके कुपित हो जाने पर यज्ञ ही क्या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नाश हो सकता है, अतः अब तुम लोग वहाँ जाकर उन्हीं को प्रसन्न करो। वे इस समय प्रिया-विहीन हैं और दक्ष के दुर्वचनों से उनका हृदय पीड़ित है। उनके बल-वीर्य की तुलना मैं विष्णु या अन्य कोई भी देवता नहीं कर सकता। इसलिए तुम सब वहीं जाओ। यह कहकर ब्रह्मा स्वयं सबको साथ लेकर कैलास की ओर चले। कैलास की शोभा अपूर्व थी। शिखरों पर मणियाँ झलक रही थीं और नाना प्रकार वृक्ष, लता, झाड़ियों की शोभा बिखर रही थी। मन्दार, पारिजात, चन्दनादि वृक्षों की सुगन्ध चारों ओर गमक रही थी। अप्सराएँ नृत्य एवं गान कर रही थीं। नन्दा और अलकनन्दा आस-पास कल-कल करती तरंगिता हो बह रही थीं। कैलास की अनुपम सुषमा देखकर देवताओं का मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वहीं कुबेर की पुरी और सौगन्धिक नाम का वन देखा। सुन्दर जल भरी वापियाँ, जिनमें कमल खिल रहे थे तथा वैदूर्यमणियों की सीढ़ियाँ बनी थीं, देखी। उन सबका अतिक्रमण कर जब देवता आगे बढ़े तब एक बड़ा विशाल वटवृक्ष दिखाई पड़ा, जिसके नीचे भगवान् शिव बैठे थे और सनकादि मुनीश्वर उनकी उपासना कर रहे थे।

बड़ी शान्त मुद्रा में बैठे भगवान् शिव नारद को ब्रह्मतत्त्व का उपदेश कर रहे थे। लोकपालों-सहित समस्त देवताओं ने आदिमनु भगवान् शिव को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥३९॥

शिव ने भी ब्रह्मा को प्रणाम कर आसन पर बैठाया। तब ब्रह्मा ने भगवान् शिव से कहा—भगवन्! आप साक्षात् ब्रह्म हैं। शक्ति के साथ आप इस विश्व का सृजन, पालन और संहार करते हैं। आपने ही वेदों की रक्षा के लिए यज्ञ का आरम्भ किया था। दक्ष तो इसमें केवल निमित्त-मात्र था। शुभ कर्म करने वालों को आप ही स्वर्ग एवं मोक्ष

देते हैं। दक्ष जैसे अज्ञानी पर आपको दया करनी चाहिए। वह आपका प्रभाव क्या जाने? अब आप उसको क्षमा कर इस यज्ञ का उद्धार करें। जिन्होंने आपको भाग नहीं दिया, वे सब अज्ञानी हैं। यज्ञ के फलदाता आप ही हैं। आप उन सबको क्षमा करें। यज़मान जीवित हो जाय, सूर्य के नेत्र हो जायँ, भृगु की दाढ़ी-मूँछ पुनः जम जायँ एवं पूषा के दाँत पूर्ववत् हो जायँ। अन्य भी जिन देवताओं के अङ्ग छिन्न-भिन्न हुए हैं वे सब पूर्ण हो जायँ। यह आपका यज्ञीय सर्वोत्कृष्ट भाग है। इसे आप ग्रहण कर यज्ञ को पूर्ण करें।

एष ते रुद्रभागोऽस्तु यदुच्छिष्टो[1] ऽध्वरस्य वै।
यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥५३॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का छठाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

सातवाँ अध्याय

शिवजी की प्रसन्नता से यज्ञ में श्रीविष्णु का प्रादुर्भाव, उनकी स्तुति और यज्ञ का पुनः आरम्भ

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! देवताओं द्वारा भगवान् शिव जी की स्तुति करने पर उन्होंने मुस्कराते हुए प्रसन्न मुद्रा में कहा—

नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये।
देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥२॥

ब्रह्मन्! मैं अज्ञानी पुरुषों के दोष न तो किसी से कहता हूँ और न उनपर ध्यान ही देता हूँ। केवल उनके कल्याणार्थ दण्ड का विधान कर देता हूँ। अब आप जैसा चाहें वैसा ही हो जायगा। दक्ष का मुख बकरे का हो। भग नाम के सूर्य अपना भाग मित्र-देवता के चक्षु से देखें। पूषा यजमान के दाँतों से भोजन करें अथवा पीस कर खायँ और जिन देवताओं ने मुझे यज्ञ का उत्तम भाग दिया है, वे सर्वाङ्गपूर्ण हो जायँ। भृगु की

---

[1] उच्छिष्टः स्विष्टकृद्भागः 'यदग्नये स्विष्टकृते समवद्यति भागधेयेनैव तद् रुद्रं समर्धयति इत्यादिश्रुतेः उत्कृष्टः शिष्ट उच्छिष्टः नतु भुक्तावशिष्ट इत्यर्थः।
अतएव श्री महाभारतेऽनुशासनपर्वणि उक्तम्—

रुद्रस्य विक्रमं दृष्ट्वा भीता देवाः सहर्षिभिः।
रुद्रस्य भागं यज्ञे च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ॥

उच्छिष्टस्य सर्वोत्कृष्टत्वादेव देवैः स महादेवस्य भागः कल्पितोऽन्यथा सर्वदेवगुरोस्तद्दानं न संगच्छते। स्विष्टकृत्संज्ञाहुतिरेव उच्छिष्टपदवाच्या तां विना न यागपूर्तिरस्तीति। अपूर्णो हि यागो न फलं दातुं शक्नोति। यच्चोपयुक्तावशिष्टं वस्तु तन्न रुद्रभागोऽस्ति, किन्तु यज्ञशालागतमनुपहतं यत्स्थितं तदपि रुद्रभाग एव।

दाढ़ी बकरे की हो जायँ। यह सुनकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और वे भगवान् शिव को साथ लेकर यज्ञ में आये। वहाँ भगवान् शिव के कथनानुसार बकरे का सिर दक्ष के धड़ से जोड़ा गया। और उनके निरीक्षण करते ही वह तुरन्त उठकर बैठ गया। अपने सामने शिव को विराजमान देखकर उसे बड़ा अनुताप हुआ और उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। अपनी मृतपुत्री का स्मरण कर पश्चात्ताप से उसका कण्ठ भर गया। हाथ जोड़कर गद्‌गद वाणी से स्तुति करते हुए उसने कहा—हे भगवन्! आपने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया जो दण्ड देकर भी अपना लिया, उपेक्षा नहीं की। वेदों की रक्षा के लिए ही आपने ब्राह्मणों की सृष्टि की है, इसीलिए आप सर्वदा उनका पालन किया करते हैं। मैंने सभा में आपको जो दुर्वचन कहे, उनसे मेरा नरक में पतन होता, किन्तु आपने मुझे उससे बचा लिया। आप मुझे क्षमा करें। मैं आपके चरणों में बार-बार प्रणाम करता हूँ। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! इस प्रकार शिव से क्षमा माँगकर दक्ष ने फिर यज्ञकर्म आरम्भ किया। वीरभद्र के द्वारा दूषित यज्ञ की शुद्धि के लिए विष्णुदेवता के निमित्त पुरोडाश तीन कपालों में रखकर मन्त्रपूर्वक भगवान् को अर्पण किया और हाथ जोड़कर शुद्धबुद्धि से उनका ध्यान किया, जिससे तत्क्षण गरुड़ारूढ़ भगवान् विष्णु प्रकट हो गये—

धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥१८॥

और उनसे सब दिशाएँ प्रकाशमय हो उठीं। भगवान् विष्णु का दिव्य श्रीविग्रह देखकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हाथ जोड़कर गद्‌गद वाणी से उनकी स्तुति करने लगे। दक्षसहित उन्नीस स्तुतिकर्ताओं ने सुन्दर पद्यों से पृथक्-पृथक् निम्नलिखित स्तुतियाँ कीं, दक्ष ने हाथों में पूजनपात्र लेकर पूजन किया और कहा—भगवन्! आप शुद्ध ब्रह्मस्वरूप चैतन्यघन हैं। आपका निवास माया से परे है। आज आपने इस श्रीविग्रह का दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। ऋत्विजों ने कहा—भगवन्! नन्दीश्वर के शाप से हम तत्त्वज्ञान से विहीन होकर कर्मकाण्ड के चक्र में फँसे हैं। यज्ञ को ही हम अपना प्रधान देवता समझते हैं। हमें ज्ञान प्रदान कर आप हमारा उद्धार करें। हम आपको प्रणाम करते हैं। सदस्यों ने मन्दाक्रान्ता छन्द से स्तुति करते हुएं कहा—हे शरणद! यह अज्ञानी जीवसमूह विषयों में आसक्त होकर संसार-सागर में गोते खा रहा है। इसका उद्धार कर आप इसे अपनी शरण में लीजिए। रुद्र ने मालिनी छन्द से कहा—हे वरद! निष्काम भक्तों द्वारा आदरणीय आपके चरण-कमलों में ही मेरा मन निरन्तर रमा रहता है। अज्ञानी जीव मेरे वास्तविक स्वरूप को समझ नहीं पाता। आपसे मुझे भिन्न समझता है। उसकी भेद-बुद्धि को नष्ट कर आप उसे अपना लें। यही आप का मेरे ऊपर परम अनुग्रह होगा। भृगु ने भगवत्तत्व की दुर्ज्ञेयता, ब्रह्मा ने माया-निर्लिप्तता, इन्द्र ने भगवान् के श्रीविग्रह की सत्यता तथा उपयोगिता का वर्णन करते हुए भावपूर्ण स्तुति की। ऋत्विजों की पत्नियों ने यज्ञ को पवित्र करने की प्रार्थना की एवं ऋषियों ने भक्तों की अपेक्षा लक्ष्मी जी के प्रति भगवान् की उदासीनता

बतायी। सिद्धों ने भगवत्कथा-सम्बन्धी सुख का अभिनन्दन करते हुए भुजंगप्रयात छन्द से स्तुति की—

अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः।
तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः ॥३५॥

हे प्रभो! हमारा मनरूपी गज तृषा से व्याकुल होकर आपकी कथारूपी अमृत-नदी में प्रविष्ट हो गया है। अब उसे दावाग्नितुल्य सांसारिक क्लेशों का न तो अनुभव होता है और न वह वहाँ से निकलना ही चाहता है। आपकी कथा धन्य हैं।

यजमानी दक्षपत्नी ने स्रग्विणी छन्द से स्तुति की—

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥३६॥

हे श्रीनिवास! आपका स्वागत हो। लक्ष्मी के सहित आप सदा हमारी रक्षा करें। आपको नमस्कार है। आपके बिना अङ्गों से परिपूर्ण भी यज्ञ वैसे ही शोभित नहीं होता जैसे सिरकटा पुरुष।

देवताओं ने शिखरिणी छन्द से स्तुति की। हे भगवन्! प्रलय में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने में लीन कर आप जल में शेषशय्या पर शयन करते हैं। उस समय सिद्ध लोग आपके स्वरूप का केवल चिन्तन करते हैं, दर्शन नहीं पाते। वही आप आज हमारे नेत्र-गोचर होकर हमारी रक्षा कर रहे हैं—यह हमारा अहोभाग्य है।

इस प्रकार सभी ने भावपूर्ण पद्यों से भगवान् की स्तुति की। अन्त में ब्राह्मणों ने तीन श्लोकों से स्तुति की—

त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं
त्वं हि मन्त्रः समिद् दर्भपात्राणि च।
त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता
अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥४५॥

त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा।
स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥

पहले श्लोक से यज्ञीय सम्पूर्ण सामग्री को भगवत्स्वरूप बताया। दूसरे से जीवों के कल्याणार्थ रसातल से पृथ्वी का उद्धार करने के कारण उनकी दयालुता बतायी। तीसरे श्लोक से यज्ञविघ्नों की शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं—

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम्।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥४७॥

हे यज्ञेश, आज हम सत्कर्म से भ्रष्ट हो गये हैं। आपके दर्शनों के अभिलाषी हम पर आप सर्वदा इस प्रकार प्रसन्न होकर हमें दर्शन देते रहें। जिनके मङ्गलमय नामों का

कीर्तन करने पर यज्ञविघ्नों का नाश हो जाता है, आपको हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! इस प्रकार सबने विविध पद्यों से भगवान् विष्णु की स्तुति की। अनन्तर दक्ष ने वीरभद्र द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये यज्ञ का पुनः सन्धान किया। भगवान् विष्णु ने अपना यज्ञभाग ग्रहण कर दक्ष से कहा—हे प्रजापते! हम तीनों ही देवता एक है। हममें लेशमात्र भी भेद नहीं है।

यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित्।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥५३॥

जैसे मनुष्य अपने कर, चरणादि अङ्गों में परकीय बुद्धि नहीं करता, ठीक उसी प्रकार हम त्रिदेवों में भी भेददृष्टि नहीं करनी चाहिए। जो हम त्रिदेवों में अभेदबुद्धि रखता है, उसकी आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है। यह कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तब दक्ष ने अन्य सब देवताओं का पूजन किया और वे भी सब आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थानों को चले गये। सती ने अपने शरीर-त्याग के बाद मेनका में उत्पन्न हो दूसरे जन्म में अपने पति भगवान् शिव को पुनः प्राप्त किया। जो प्रतिदिन भगवान् शिव का मंगलमय यह चरित्र श्रवण करता है, उसकी पापराशि भस्म हो जाती है और उसकी त्रिदेवों में समबुद्धि होती है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

आठवाँ अध्याय

दक्ष-कन्याओं के वंश में प्राप्त दक्ष-यज्ञ की कथा कही जा चुकी है। अब मनुवंश में प्राप्त ध्रुव-चरित्र को पाँच अध्यायों से कहते हैं।

ध्रुव-चरित्र अध्याय ८ से १२ तक

विमाता के दुर्वचनों से विद्ध ध्रुव का वृन्दावन में कठोर तप

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह।
स्वायम्भुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥६॥

अब हम स्वायंभुव मनु के वंश का वर्णन करते हैं। ध्यानपूर्वक उसे सुनो। मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद की सुनीति और सुरुचि दो पत्नियाँ थीं। उत्तानपाद को सुरुचि अत्यन्त प्रिय थी और सुनीति, जिसका पुत्र ध्रुव था, उतनी प्रिय न थी। एक समय राजा उत्तानपाद सुरुचि के पुत्र उत्तम को अपनी गोद में बैठाकर खिला रहे थे, उसी समय ध्रुव आ गया। राजा ने सुरुचि के भय से उसका आदर नहीं

किया। ध्रुव को राजा की गोद में चढ़ते देखकर सुरुचि ने ईर्ष्या और गर्व से कहा–ध्रुव! तू इनकी गोद में बैठने का अधिकारी नहीं है, कारण कि तूने दूसरी स्त्री से जन्म लिया है। तपस्या द्वारा भगवान् की आराधना कर, उनके अनुग्रह से, यदि तू मेरे गर्भ से जन्म ले तो तू इस आसन का अधिकारी हो सकेगा। विमाता के इन दुर्वचनों से ध्रुव के हृदय में बड़ी वेदना हुई। वह रोता हुआ अपनी माता के पास गया। माता ने क्रोध से भरे हुए अपने पुत्र को गोद में उठा लिया और अन्तःपुर की स्त्रियों से भी वहाँ का वृत्तान्त जान लेने पर उसके नेत्रों में आँसू झलक आये, वह अधीर होकर विलाप करने लगी।

दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला।
माऽमङ्गलं तात परेषु मंस्था भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥१७॥

और लम्बी-लम्बी साँसे लेने लगी, दुःख से पारावार का अन्त न देखकर अधीर होकर पुत्र से बोली—वत्स! तू दूसरे का अमंगल अर्थात् अपराध मत समझ क्योंकि जो दूसरे को दुःख देता है, वह स्वयं ही उसे भोगता है। तेरी विमाता ने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार तू भगवान् की आराधना कर। उसी से तुझे उत्तम पद प्राप्त होगा। तेरे पितामह मनु ने उन्हीं की आराधना से भौमसुख तथा अपवर्ग प्राप्त किया। तेरे दुःख की निवृत्ति उन्हीं से होगी। वे बड़े ही भक्तवत्सल हैं, इसलिए तू हृदय में उन्हीं का ध्यान कर और उन्हीं का भजन कर।

मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम्।

मैत्रेयजी कहते हैं—हे विदुर! माता के वचनों को सुनकर ध्रुव पिता के नगर से तुरन्त निकल गया। मार्ग में भगवत्कृपा से ध्रुव की नारदजी से भेंट हुई। ध्रुव का अध्यवसाय तथा साहस देखकर नारदजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मन ही मन सोचा—अहो क्षत्रियों का तेज तो देखो। यह छोटा-सा बच्चा भी विमाता के दुर्वचनों को सह न सका। उन्होंने कहा—बेटा! अभी तो तुम्हारी बाल्यावस्था है। तुम्हें मान-अपमान का विचार नहीं करना चाहिए। तुम्हारी यह अवस्था खेलने-कूदने की है। तुम अपना यह हठ छोड़ दो। भगवान् की आराधना बड़ी कठिन हैं। समय आने पर तुम उनकी आराधना करना। भाग्य से जो सुख या दुःख प्राप्त हो जाय—उसे सहना चाहिए। उससे विचलित होना ठीक नहीं है।

गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात्।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥३४॥

गुणवान् को देखकर उससे प्रीति करें, ईर्ष्या न करें। गुणहीन को देखकर उस पर दया करें, उसका तिरस्कार न करें एवं समान से मैत्री करें, स्पर्धा न करें। ऐसा करने पर मनुष्य तापों से पीड़ित नहीं होता।

ध्रुव ने नारदजी के चरणों पर गिरकर कहा—भगवन्! आपने ठीक कहा, किन्तु सुरुचि के दुर्वचनरूपी बाणों से मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है। उसमें आपका यह

शान्तिमय उपदेश जमता ही नहीं। मैं क्षत्रिय हूँ, अपमान सह नहीं सकता। आपका भ्रमण संसार के कल्याणार्थ हुआ करता है। आप मुझे वही उपदेश देने की कृपा करें जिससे मैं भगवान् को प्राप्त कर सकूँ। नारदजी ने कहा—हे वत्स! तुम्हारी माता ने जैसा तुम्हें उपदेश दिया है, उसी के अनुसार तुम भगवान् की आराधना करो। उससे तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे। वृन्दावन में यमुना के तट पर तुम चले जाओ। वहाँ यम-नियमादि साधनों से मन को निश्चल करो एवं भगवान् की मूर्ति को हृदय में धारण कर द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करो। यह कहकर देवर्षि नारद ने ध्रुव को मन्त्र का उपदेश किया और भगवान् की सारी पूजनविधि भी बता दी। तदनन्तर नारदजी वहाँ से राजा उत्तानपाद के भवन में गये और ध्रुव वृन्दावन चला गया। देवर्षि नारद को आता देखकर राजा ने आसन से उठकर उनका आदर सत्कार किया। नारदजी ने कुशल-क्षेम पूछने के अनन्तर राजा से उनकी उदासीनता का कारण पूछा। इस पर दुःखित हो राजा ने कहा—भगवन्! मैं बड़ा स्त्री-लम्पट तथा निर्दय हूँ। मैंने अपने प्यारे पुत्र बालक ध्रुव को घर से निकाल दिया। वह इस समय कहाँ होगा? उसे भूख-प्यास सता रही होगी। वन में सिंह व्याघ्र उसे खा तो नहीं जायँगे? मैं कितना दुष्ट हूँ—जो मैंने उसे गोद में चढ़ने नहीं दिया। हा! अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, उसे कैसे पाऊँ?

नारजदी ने कहा—राजन्! तुम उसकी चिन्ता न करो। उसकी भगवान् रक्षा कर रहे हैं। वह थोड़े ही दिनों में भगवान् को प्रसन्न कर लौटेगा और तुम्हारी कीर्ति बढ़ायेगा। यह कहकर नारदजी तो चले गये इधर राजा राजलक्ष्मी का त्यागकर दिन-रात अपने पुत्र की ही चिन्ता करने लगा।

राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७०॥

उधर ध्रुव ने वृन्दावन में पहुँचकर ऋषि के आदेशानुसार उपवास कर बड़ी लगन से भगवान् की आराधना प्रारम्भ कर दी। उसने पहले तीन-तीन दिनों बाद कैथ और बेर खाकर एक महीना बिताया। बाद में छः-छः दिनों पर केवल पत्ते ग्रहण किये। तीसरे महीने में नौ-नौ दिनों पर केवल जल पीकर रहा। अनन्तर चौथा महीना बारह-बारह दिनों पर केवल वायु पीकर बिताया। पाँचवें महीने में प्राण को रोककर हृदय में भगवान् की धारणा की और एक पैर से खड़ा रहा। इस प्रकार ध्रुव के प्राण-रोध करने पर विश्वभर का प्राण रुक गया और देवताओं में हाहाकार मच गया। उन्होंने भगवान् के समीप जाकर ध्रुव का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। भगवन्! **नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः।** आज सम्पूर्ण जगत् के प्राण रुद्ध हो गये हैं। आप इस संकट से जगत् की रक्षा करें। भगवान् ने कहा—तुम डरो मत। ध्रुव प्राण रोककर मुझमें तन्मय हो गया है। इसीसे तुम्हारा प्राण-रोध हुआ है। मैं अभी जाकर उसे तपस्या से विरत करता हूँ। तुम सब अपने-अपने स्थान पर जाओ। समस्त ब्रह्माण्ड के आधारभूत ब्रह्म को हृदय में ध्रुव के धारण करने पर तीनों लोक कम्पित हो उठे। 'त्रयो लोकाश्चकम्पिरे।' देवताओं ने माया का प्रयोग कर सिंह, व्याघ्र आदि से भय उत्पन्न कर

ध्रुव की तपस्या में विघ्न डालना चाहा, किन्तु भगवान् के ध्यान में लीन ध्रुव ने उन्हें देखा तक नहीं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थ स्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

नवाँ अध्याय

ध्रुव को भगवान् का सक्षात्कार, वर-प्राप्ति और राज्याभिषेक

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! भगवान् के आश्वासन पर सब देवता निर्भय होकर अपने-अपने स्थान को चले गये। भगवान् अपने भक्त ध्रुव को देखने की इच्छा से गरुड़ारूढ़ होकर वृन्दावन गये।

मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ।।१।।

वहाँ ध्रुव हृदयस्थ भगवान् की मूर्ति के ध्यान में तल्लीन था। भगवान् के आने पर भी जब उसने आँखें नहीं खोली तब भगवान् ने उनके हृदय से अपनी मूर्ति खींच ली। इसपर छटपटाकर उसने नेत्र खोल दिये और सामने ही खड़े भगवान् को देखा। उनका अनुपम सौन्दर्य देखकर वह मुग्ध हो गया और बार-बार प्रणाम कर चरणों में लेट गया। वह भगवान् की स्तुति करना चाहता था किन्तु ज्ञान न होने के कारण कर न सका। इस पर भगवान् ने अपने वेदमय शंख के द्वारा ध्रुव के कपोल का स्पर्श किया अर्थात् 'कपोले वसते वाणी इस सूक्ति के अनुसार मुख में प्रसुप्त वाणी को शंख के स्पर्श से संचालित कर जागृत किया। हमारे आने पर तुझे सुप्त नहीं रहना चाहिए, शंख-स्पर्श का यही तात्पर्य है। शंख-स्पर्श से उसकी वाणी खुल गयी। तदनन्तर उसने आदित्य के समान ज्ञान को प्रकाशित करनेवाले बारह श्लोकों से हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति की—

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ।।६।।

समस्त शक्तियों को धारण करनेवाले जिन भगवान् ने मेरे अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर मेरी सुप्त सरस्वती को जागृत किया एवं कर, चरण आदि अन्यान्य जड़ इन्द्रियों को चेतन किया, उन पुराण-पुरुष आपको मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। आप अकेले ही माया से नानारूप धारण कर लीला करते हैं, ब्रह्मा को भी ज्ञान आपकी ही कृपा से प्राप्त हुआ। जो मनुष्य विषयों के लिए आपकी आराधना करते हैं, वे बुद्धिहीन

है। उनको सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता। हे नाथ! आपके चरणकमल के ध्यान से अथवा आपके भक्तों की सुमधुर कथा के श्रवण से जो अनुपम सुख होता है, वह ब्रह्मानन्द में कहाँ?

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म-
ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात्।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्
किं त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात्॥१०॥

अतएव मुझे सर्वदा आपके भक्तों का संग प्राप्त हो—जिससे नित्य आपकी कथा का श्रवण करता रहूँ। आप नित्य-शुद्ध-बुद्ध मुक्तरूप हैं। सम्पूर्ण शक्तियाँ आपमें निवास करती हैं। आप निर्विकार हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप मुझे संसार से मुक्तकर मेरी रक्षा करें। मैं आपकी शरण में हूँ। इस प्रकार ध्रुव की स्तुति सुनकर भगवान् ने कहा—हे वत्स! मैं तेरा अभिप्राय जानता हूँ। मैं तुझे वह दुर्लभ पद दे रहा हूँ। जिसकी प्रदक्षिणा ग्रह, नक्षत्र, तारा और सप्तर्षि करते हैं एवं जो किसी से अधिष्ठित नहीं है। अभी तो तुम अपने घर जाओ, तुम्हें राज्य प्रदान कर पिता के वन चले जाने पर ३६ हजार वर्षों तक राज्य का पालन और यज्ञों द्वारा हमारा पूजन करोगे। अन्त में तुम्हें हमारा धाम प्राप्त होगा। यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! भगवान् के चले जाने पर ध्रुव को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह विचारने लगा कि मैंने भगवान् को प्राप्त कर नश्वर विषय-सुख क्यों स्वीकार कर लिया। देवताओं ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी, जिससे मैं मोक्ष न माँग सका। मुझे धिक्कार है। इस तरह विचार करते हुए ध्रुव अपने नगर को लौटे। इधर अपने पुत्र के आने का समाचार सुन कर राजा को विश्वास नहीं हुआ किन्तु नारदजी के कथन पर विश्वास कर हथिनी को आगे कर कुलवृद्ध ब्राह्मणों के साथ वह बड़े हर्ष से ध्रुव को लेने के लिए चले। साथ में उनकी दोनों पत्नियाँ भी पालकी पर बैठकर चलीं। जब ध्रुव अपने बगीचे के निकट आये तब राजा ने अपने रथ से उतर कर पुत्र का आलिङ्गन किया और उसका मस्तक सूँघा, जिससे पुत्र चिरायु हो। प्रेमोद्रेक से सबकी आँखे भर आयीं। ध्रुव ने चरणों में गिरकर अपने माता-पिता को प्रणाम किया। तदनन्तर राजा उत्तानपाद पुत्र को हस्तिनी पर बैठाकर अपनी राजधानी में ले आये और वहाँ से अपने दिव्यभवन में ले गये। राजा को अपने पुत्र का असाधारण प्रभाव देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। एक दिन राजा ने अपनी वृद्धावस्था का विचार कर ध्रुव का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं विरक्त होकर भगवान् की खोज में वन चले गये।

वनं विरक्तः प्रातिष्ठद् विमृशन्नात्मनो गतिम्॥६७॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त॥

❖

दसवाँ अध्याय

ध्रुव के भाई उत्तम का यक्षों द्वारा वध और ध्रुव-यक्षयुद्ध

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ।
उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥१॥

ध्रुव ने प्रजापति शिशुमार की कन्या भ्रमि के साथ विवाह किया। उसके कल्प और वत्सर दो पुत्र उत्पन्न हुए। इला नाम की दूसरी भार्या जो प्रजापति वायु की पुत्री थी, उससे उत्कल नाम का एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। ध्रुव के भाई उत्तम का विवाह नहीं हुआ। वह एक दिन शिकार खेलने हिमालय पर गया, वहाँ एक बलवान् यक्ष ने उसे मार डाला। उस दु:ख में उसकी माता भी मर गयी।

तन्माताऽस्य गतिं गता ।

ध्रुव ने अपने भाई का वध सुनकर यक्षों की अलकापुरी पर चढ़ाई कर दी। वहाँ जाकर उन्होंने शंख बजाया जिससे यक्षों की स्त्रियाँ घबड़ा उठीं। यक्षों को भी वह शंख-ध्वनि सहन नहीं हुई। वे अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए निकल पड़े। ध्रुव ने एक लाख तीस हजार यक्षों में से प्रत्येक को तीन-तीन बाण मारे। उससे अपने को पराजित मानकर ध्रुव के इस कर्म की सभी यक्षों ने प्रशंसा की। अनन्तर यक्षों ने भी मिलकर एक साथ ध्रुव पर दुगुने बाणों की वर्षा की जिससे ध्रुव का रथ ढक गया। तब आकाश में सिद्ध लोग हाहाकार करने लगे और बोले—मालूम पड़ता है आज मनुवंशी सूर्य अस्त हो जायेगा। वे ऐसा कह ही रहे थे कि जैसे नीहारको भेदकर सूर्य निकलता है वैसे ही शत्रु सेना को चीरकर ध्रुव का रथ दिखाई पड़ने लगा। ध्रुव ने धनुष चढ़ाकर तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं के सभी बाण काट डाले और उनके बहुत से बाण शत्रुओं के शरीर में घुस गये, जिनसे उनके हाथ, पैर, बाहु आदि अंग कट-कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े। चारों ओर रक्त की नदियाँ बह चली। बहुत से यक्ष तो रण छोड़ भाग खड़े हुए और संग्राम-भूमि में युद्ध करने वाला कोई नहीं दिखायी दिया। तब ध्रुव ने यक्षपुरी देखने का विचार किया, किन्तु उस समय वहाँ गये नहीं, क्योंकि मायावी यक्षों का चरित्र जानना मनुष्यों के लिए कठिन है।

न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥२१॥

थोड़ी ही देर में दिशाओं में उड़ती हुई धूलि दिखायी पड़ी। आकाश मेघों से आच्छन्न हो गया और बिजली चमकने के साथ ही भयंकर वज्रपात होने लगे। आकाश से मल-मूत्र, रक्त आदि की वर्षा होने लगी। मनुष्यों के धड़-कट-कटकर आकाश से गिरने लगे। एक पर्वत भी आकाश में दिखायी दिया जिससे अस्त्र-शस्त्र और पत्थरों की

वर्षा होने लगी, सिंह, व्याघ्र, गज आदि हिंसक जन्तु रणभूमि में इधर-उधर दौड़ने लगें, समुद्र भी चारों ओर से उमड़कर पृथ्वी को डुबाने चला। इस प्रकार यक्षों ने ध्रुव पर बड़ी भयंकर माया का प्रयोग किया। ऋषि, महर्षि यह सब देखकर भगवान् से ध्रुव के कल्याण की प्रार्थना करने लगे।

निशम्य तस्य मुनयः शमाशंसन् समागताः ॥२९॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

ग्यारहवाँ अध्याय

मनु के उपदेश से ध्रुव की युद्ध से निवृत्ति

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ऋषियों के ऐसे कल्याणकारी वचन सुनकर ध्रुव ने अपने धनुष पर नारायणास्त्र चढ़ाया। उसके चढ़ाते ही यक्षों की सारी माया नष्ट हो गयी। नारायणास्त्र से भयंकर बाण निकलने लगे, जिससे शत्रुओं की सारी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी जैसे कि ज्ञान का उदय होने पर क्लेशों का नाश हो जाता है। 'क्लेशा ज्ञानोदये यथा' तब सब यक्ष कुपित होकर ध्रुव की ओर ऐसे ही दौड़े मानों सर्प गरुड़ की ओर दौड़ते हों। ध्रुव ने उन सबके बाहु ग्रीवा आदि अङ्गों को बाणों से काट-काट कर रणभूमि को पाट दिया। किन्तु इस प्रकार निरपराध यक्षों का वध होता देख मनु युद्ध-भूमि में आकर ध्रुव को समझाते हुए बोले—हे वत्स! तुम्हें इस प्रकार का क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध पाप का मूल है। यह हमारे कुल में उचित नहीं है। सत्पुरुष इसकी निन्दा करते हैं। एक यक्ष के अपराध पर तुमने बहुत से निरपराध यक्षों को मार डाला। देहाभिमान से तुम्हें ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिए, पशु के समान इस प्रकार प्राणियों की हिंसा करना उचित नहीं है। तुम भगवान् के कृपापात्र और भक्तों के आदरणीय हो।

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥१३॥

भगवान् तितिक्षा, दया मैत्री तथा प्राणियों में समदृष्टि से ही प्रसन्न होते हैं, प्राणियों के संहार से नहीं। बड़ों के प्रति सहनशीलता, नीचों पर दया, समानों के साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने पर मनुष्य संसार-बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है। यक्ष तुम्हारे भाई को मारने वाले नहीं है। बेटा! मनुष्य की मृत्यु और जन्म का कारण तो दैव है।

विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥२४॥

वह विश्व का सृजन, पालन और संहार करता है। तुम जब पाँच वर्ष के थे, अपनी माता को छोड़कर वन गये और वहाँ भगवान् की आराधना करने से तुम्हें उत्तम

पद प्राप्त हुआ। तुम्हारे लिए इस प्रकार युद्ध करना उचित नहीं। तुम भगवान् की शरण में जाओ और क्रोध का त्याग करो। निरपराध यक्षों को बुरी तरह से मारकर तुमने कुबेर का बड़ा अपराध किया है। अब तुम अपने विनय और शील द्वारा उन्हें प्रसन्न करो, जिससे उनका तेज हमारे कुल को हानि न पहुँचा सके। मनु इस प्रकार पौत्र को समझाकर जब ऋषियों के साथ अपने लोक जाने लगे तब ध्रुव ने सिर झुकाकर अपने पितामह को प्रणाम कर क्षमा-याचना की और युद्ध बन्द कर दिया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

बारहवाँ अध्याय

ध्रुव को कुबेर से वर-प्राप्ति और विमान द्वारा ध्रुव-लोक-गमन

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ध्रुव को युद्ध से निवृत्त जानकर भगवान् कुबेर उनके पास आये। ध्रुव उन्हें देखते ही हाथ जोड़कर खड़े हो गये। कुबेर ने कहा—वत्स! तुमने अपने पितामह की आज्ञा से वैर त्याग कर जो युद्ध बन्द कर दिया, यह बहुत अच्छा किया, इससे मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। न तो तुमने ही यक्षों को मारा है और न यक्षों ने ही तुम्हारे भाई को मारा है। सबकी मृत्यु और जन्म का प्रधान कारण काल है। मनुष्य अज्ञानवश अपने को कारण मानकर बन्धन में पड़ता है। इसलिए हे पुत्र! तुम भगवान् की शरण में जाओ और उन्हीं का भजन करो। तुम भगवान् के अनन्य भक्त हो, मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ जो इच्छा हो वर माँगो। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! कुबेर के आग्रह पर ध्रुव ने भगवान् की निश्चल-स्मृतिरूपा भक्ति माँगी, जिससे मनुष्य बिना प्रयास के संसार-सागर पार कर लेता है—

हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥८॥

कुबेर तथास्तु कहकर अन्तर्धान हो गये। ध्रुव अपनी राजधानी को लौट आये। तदनन्तर ध्रुव ने नाना यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन किया एवं भोगों द्वारा पुण्य का और यज्ञादि अनुष्ठानों द्वारा पापों का क्षय करते हुए ३६ हजार वर्ष तक पृथ्वी का पालन किया।

षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ।
भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥१३॥

अनन्तर ध्रुव अपने पुत्र वत्सर का राज्याभिषेककर, सम्पूर्ण, राज्य तथा स्त्री, पुत्रादि का त्यागकर बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ अष्टांगयोग से मन को निश्चल कर भगवान् के ध्यान में तल्लीन हुए। ध्यानोद्रेक से उनका शरीर रोमांचित हो उठा, आनन्दाश्रुधारा बहने लगी और उन्हें शरीर तक का भान नहीं रहा। उसी समय सब

दिशाओं को प्रकाशित करता हुए एक दिव्य विमान आकाश से उतरा जिसमें भगवान् के सुन्दर सुनन्द और नन्द नामक दो पार्षद थे। ध्रुव ने पार्षदों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पार्षदों ने कहा—हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। हम दोनों भगवान् के पार्षद हैं और आपको लेने के लिए आये हैं। भगवान् ने आपकी तपस्या से प्रसन्न होकर आपको वह ध्रुवलोक प्रदान किया है, जो भगवान् विष्णु का परम-पद है। तुम्हारे पुण्यवान् पिता, पितामह या अन्य किसी भी पुरुषों को वह स्थान आज तक प्राप्त नहीं हो सका। महर्षिगण उस स्थान की वन्दना करते हैं। चन्द्र, सूर्य और तारागण उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। भगवान् ने आपके लिए यह विमान भेजा है। आप हमारे साथ इस विमान द्वारा चल कर उसे स्वीकार करें। पार्षदों की यह मधुर वाणी सुनकर ध्रुव प्रसन्न हो उठे और ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे स्वस्तिवाचन कराया। अनन्तर 'भगवद्विमानाय नमः। इस मन्त्र से विमान का गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि से पूजन किया तथा परिक्रमा कर उस पर चढ़ने के लिए जैसे ही उद्यत हुए उन्होंने सामने से आते हुए मृत्यु-देवता को देखा—

तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ।

मृत्युदेवता ने ध्रुव को प्रणाम कर कहा—महाराज! मुझे स्वीकार करें। ध्रुव ने कहा—देव! आपका स्वागत है। थोड़ी देर विश्राम करें। मैं चलता हूँ। यह कहकर ध्रुव ने भगवान् का स्मरण किया और सामने विमान के समीप बैठे हुए मृत्यु-देवता के पीठ सदृश मस्तक पर पैर रख दिव्य रूप धारण कर विमान पर चढ़ गये—

मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥३०॥

आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवतागण पुष्पवृष्टि करने लगे। गन्धर्व गाने लगे। चारों ओर आनन्द छा गया। मार्ग में जाते हुए ध्रुव ने अपनी माता सुनीति का स्मरण किया। पार्षदों ने आगे-आगे विमानपर जाती हुई सुनीति का दर्शन उन्हें कराया। इससे ध्रुव को महान् हर्ष हुआ। मार्ग में देवतागण ध्रुव की प्रशंसा करते थे। इस तरह ध्रुव सब ग्रहों को देखते-देखते ध्रुवलोक पहुँचे। वहाँ तीनों लोकों में चूड़ामणि के समान प्रकाशित हुए। देवर्षि नारद अपने भक्त की यह अद्भुत महिमा देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रचेताओं के यज्ञ में वीणापर ध्रुव की कीर्ति का बखान किया। नारद ने कहा—तपस्या द्वारा ध्रुव ने जो गति प्राप्त की, उसे ज्ञानी भी नहीं प्राप्त कर सकते, साधारण राजाओं की तो बात ही क्या है? उसने पाँच ही वर्ष की अवस्था में मेरे उपदेश से अजेय भगवान् को वश में कर उनका दिव्य पद प्राप्त कर लिया। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! जो तुमने प्रश्न किया था—तदनुसार मैंने यह मङ्गलमय ध्रुवचरित्र तुम्हें सुनाया। यह चरित्र मनुष्यों को धन, आयु, यश तथा स्वर्ग देने वाला है। जो मनुष्य श्रद्धा से पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, श्रवण, व्यतीपात, संक्रान्ति तथा अन्य किसी भी पर्वकाल में इसे सुनता है या सुनाता है उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं—

इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ।
हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥५२॥

हे विदुर! जो पाँच वर्ष का बालक ध्रुव क्रीड़ासामग्री तथा राजभवन का त्यागकर भगवान् की शरण में चला गया, उस भक्तशिरोमणि ध्रुव के चरित्र का हमने तुमसे वर्णन किया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

तेरहवाँ अध्याय

(अध्याय १३ से २३ तक महाराज पृथु का चरित्र)

ध्रुव के वंश में वेनका जन्म, उसके अत्याचारों से राजा अंग का गृह-त्याग

सूतजी बोले—हे शौनक! मैत्रेयजी से ध्रुव-चरित्र सुनकर विदुरजी ने पूछा—

के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ।
कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत ॥२॥

हे भगवान्! वे प्रचेता कौन हैं और किसके पुत्र हैं जिनके यज्ञ में नारदजी ने ध्रुवचरित्र का गान किया था? इस पर मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ध्रुव के ज्येष्ठ पुत्र उत्कल ने पिता के वन चले जाने पर राज्य-सिंहासन ग्रहण नहीं किया। वह जन्म से ही शान्तचित्त, सर्वत्र भगवान् को देखने वाला और अपने स्वरूप में ही सर्वदा स्थित रहता था। वृद्ध मन्त्रियों ने उसे पागल समझकर भ्रमि के कनिष्ठ पुत्र वत्सर को राजगद्दी पर बैठाया—

वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥११॥

वत्सर के स्वर्वीथी पत्नी से छः पुत्र हुए। उसके ज्येष्ठ पुत्र पुष्पार्ण के भी छः पुत्र हुए, जिनमें सबसे छोटे पुत्र व्युष्ट से उस चक्षुनामक पुत्र को उत्पन्न किया जिससे 'चाक्षुष मनु' हुए। चाक्षुष मनु के १२ पुत्रों में सबसे छोटे उल्मुक के पुष्करिणी भार्या से छः पुत्र हुए जिसमें प्रथम पुत्र अङ्ग था। उसकी पत्नी सुनीथा ने वेन को उत्पन्न किया जो अत्यन्त क्रूर प्रकृति का निकला। वेन के अत्याचार के दुःखी होकर राजा अङ्ग राज्य त्यागकर घर से निकल गये। ऋषियों ने शाप देकर हुँकार से वेन को भी मार डाला। अराजकता फैलने पर ऋषियों ने दक्षिण बाहु का मन्थन किया, जिससे भगवान् के अंशभूत आदि-राजा पृथु का जन्म हुआ। विदुरजी बोले—हे मुने! धर्मात्मा राजा अङ्ग का पुत्र वेन दुष्ट क्यों हुआ और उसको शाप देकर ऋषियों ने क्यों मार डाला? मेरे इस संशय को कृपया आप निवृत्त करें। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! राजा अङ्ग ने अश्वमेध

यज्ञ आरम्भ किया था, जिसमें देवताओं ने अपना भाग ग्रहण नहीं किया। ऋत्विजों ने विस्मत होकर राजा से कहा—राजन्! हम श्रद्धा से मन्त्रों द्वारा देवताओं का आह्वान कर उनका भाग दे रहे हैं, किन्तु वे उसे ग्रहण नहीं कर रहे हैं। यज्ञ में किसी प्रकार का वैगुण्य भी नहीं हुआ है। फिर भी भाग न लेने का क्या कारण हैं? इस पर आप विचार करें। राजा ने यज्ञ के आचार्य से कहा—भगवन्! आप ही विचार कर इसका कारण बताने की कृपा करें। आचार्य ने विचार कर कहा—राजन्! इसमें आपके पूर्वजन्म का एक पाप है, जिससे आपको पुत्र नहीं हुआ। पुत्रेष्टियज्ञ द्वारा आपके पुत्रवान् होने पर सब देवता यज्ञभाग ग्रहण करेंगे। इस पर ऋत्विजों ने राजा को पुत्रप्राप्ति के लिए भगवान् विष्णु को समन्त्र पुरोडाश दिया। तत्काल यज्ञकुण्ड से एक दिव्य पुरुष निकला जिसके हाथों में खीर से भरा सुवर्ण का पात्र था। उस पात्र को राजा ने ब्राह्मणों की आज्ञा से ग्रहण कर अपनी पत्नी को दिया। उसी खीर के प्राशन से गर्भ रह गया और उसके वेन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सुनीथा मृत्यु की पुत्री थी। उससे पुत्र वेन ने जन्म से ही अपने नाना मृत्यु का अनुसरण किया था, इसलिए वह अत्यन्त क्रूर प्रकृति का हुआ।

स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ।
अधर्मांशोद्भवं मृत्युं[1] तेनाभवदधार्मिकः ॥३९॥

जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च ।
गुरुद्वेषात् त्रिभिर्दोषैर्हरिद्वेषी भवेद् ध्रुवम् ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

वेन धनुष-बाण लेकर जंगलों में घूमा करता और दीन प्राणियों को मारता था। खेलते बालकों को गला दबाकर मार डालता था। उसकी सूरत ही इतनी भयानक थी कि उसे देखकर सब भागने लगते थे। राजा ने उसे सुधारने की बहुत चेष्टाएँ की, किन्तु वह सुधर न सका। राजा अंग को उसके अत्याचारों से बहुत दुःख हुआ। हे विदुर! अन्ततः एक दिन अर्द्धरात्रि में वह सोती पत्नी को छोड़ कर घर से निकल गये—

हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥४७॥

प्रातःकाल होने पर मन्त्रियों ने राजा की बहुत खोज की पर कुछ पता न चला। तब मन्त्रियों ने ऋषियों के पास जाकर राजा के लापता होने का समाचार उनसे निवेदन किया।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

---

[1] अधर्मांश से उत्पन्न मृत्यु नामक असुर वेन का मातामह था। धर्मांश से उत्पन्न यम के भ्राता मृत्युदेवता इससे अन्य थे।
मृत्युदेवो यमभ्राता वेनमातामहोऽसुरः (विजयध्वजतीर्थ) पिता के दोष तथा मातामहके दोष एवं गुरु के दोष से इन तीनों द्वेषों से मनुष्य भगवद्द्वेषी होता है।

चौदहवाँ अध्याय

नास्तिक वेन का ऋषियों द्वारा वध और उससे निषाद की उत्पत्ति

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! संसार का हित करनेवाले मुनियों ने राजा के अभाव में वेनका ही राज्याभिषेक कर दिया यद्यपि प्रजा उसे चाहती नहीं थी। जब वेन सिंहासन पर बैठा तो उसके भय से सब चोर डाकू जहाँ तहाँ छिप गये। किन्तु वह बड़ा मदोन्मत्त था। धार्मिक पुरुषों को पूजा-पाठ करते देखकर उसे बड़ा क्रोध आता था। उसने राज्यभर में ढिंढ़ोरा पिटवा दिया था—

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित्।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥६॥

कोई भी मेरे राज्य में पूजा-पाठ, दान-हवन आदि न करें, ऐसी घोषणाकर धार्मिक जनता पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यह सुनकर मुनियों को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने प्रजा के कल्याण के लिए यह निश्चय किया कि एक बार हम लोग चलकर उसे समझायें यदि वह न माने तो उसे अपने तेज से भस्म कर दिया जायगा। ऐसा निश्चय कर सब मुनि एकत्र हो वेन के समीप गये और उससे बोले राजन्! आपको इस प्रकार धर्म का खण्डन नहीं करना चाहिए। धर्म से ही राजा और प्रजा का कल्याण होता है। भगवान् विष्णु की प्रसन्नता का एकमात्र कारण धर्म ही है। उनकी प्रसन्नता से ही सबको परलोक में सद्गति प्राप्त होती है। इसलिए आप धर्म के विरुद्ध इस प्रकार की घोषणा न करें। आपके हित के लिए ही हम यहाँ आये हैं। हम जो कुछ उपदेश दें, उसे ध्यान से सुनें—

धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति।
आयुश्च कीर्तिं च तपश्च धर्मं धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः ॥
धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य धर्मः सखा चात्र परे च लोके।
त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च धर्मादृते नास्ति तु किञ्चिदेव ॥

(ब्रह्मपुराण, २४५-३७,३८)

राजन्! मनुष्य धर्म से ही राज्य प्राप्त करता है, धर्म से ही स्वर्ग में जाता है, धर्म से आयु, कीर्ति, तपस्या एवं धर्म का उपार्जन करता है एवं धर्म से ही उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस लोक में तथा परलोक में भी धर्म ही मनुष्य का पिता, माता तथा सखा है। रक्षा करनेवाला तथा मोक्ष देनेवाला भी धर्म ही है। धर्म के सिवा अन्य कोई भी वस्तु परलोक में काम नहीं आती। अतः प्रजा का कल्याणकारी वह धर्म नष्ट नहीं होना चाहिए।

धर्म के नष्ट होने पर राजा ऐश्वर्य तथा राज्य से च्युत हो जाता है। जिस राजा के राज्य में वर्ण तथा आश्रम की मर्यादा से यज्ञपुरुष भगवान् का पूजन होता है, उस पर भगवान् प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होने पर राजा के लिए कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! यह सुनकर वेन ने कहा—अरे! तुम सब बड़े अज्ञानी जान पड़ते हो। तुम्हें कुछ भी विवेक नहीं। अधर्म को ही धर्म मान बैठे हो। वृत्ति देनेवाले अपने स्वामी को छोड़कर जार पति की उपासना करते हो—यह क्या उचित है। राजा का अनादर करनेवालों को कहीं सुख नहीं मिलता। राजा के शरीर में समस्त लोकपालों का निवास रहता है। अतः राजा सर्वदेवमय कहा जाता है। तुम सब मेरी आराधना करो। मुझसे अन्य आराध्य देव और कौन है?

मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान्।

इस प्रकार ऋषियों की याञ्चा-भंग करने पर वे अत्यन्त कुपित हो उठे। कोप से उनके नेत्र लाल हो गये और शरीर काँपने लगा। उन्होंने उसे डाँटते हुए कहा—

हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ॥३१॥

अरे इसे मारो मारो, यह स्वभाव से ही क्रूर तथा महापापी है। यह निर्लज्ज भगवान् की निन्दा करता है। इसके जीवित रहने से जगत् का नाश हो जायगा—ऐसा कहकर ऋषियों ने क्रोधभरी दृष्टि से उसकी ओर ताका और साथ ही एक भयंकर हुंकार की, जिससे वह सिंहासन-सहित उलट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा एवं उसके प्राणपखेरू उड़ गये। इस पर राज्य भर में चारों ओर हाहाकार मच गया। धर्मद्वेषी नास्तिक वेन का इस प्रकार नाश कर ऋषि अपने-अपने आश्रमों को चले गये। सुनीथा वेन के शव को तेल में डालकर उसकी रक्षा करती रही। एक दिन मुनिगण सरस्वती तट पर बैठे हवनकर भगवत् कथा का प्रवचन कर रहे थे। उन्हें नाना प्रकार के उत्पात दिखायी दिये। चोर प्रजा का धन-धान्य लूटते, परस्पर एक दूसरे को मारते थे। चोरों लुटेरों और हत्यारों का उपद्रव दिन पर दिन बढ़ने लगा; यह देखकर ऋषि एकत्र होकर पुनः राजभवन गये। वहाँ उन्होंने अराजकता की निवृत्ति के लिए वेन की दक्षिण ऊरुका मन्थन किया। जिससे एक छोटा सा पुरुष (बौना) उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त काला और कुरूप था। उसकी भुजाएँ बहुत छोटी और ठोड़ी बड़ी लम्बी थी। छोटे पैर, चपटी नाक, लाल नेत्र तथा लाल केश थे। उसने हाथ जोड़ कर मुनियों से कहा—क्या आज्ञा है? मुनियों ने कहा—निषीद (बैठ जाओ) इससे वह निषाद हो गया।

निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥४५॥

इसके वंशज नैषाद कहलाये और वे जंगलों-पहाड़ों में रहने लगे। ऋषियों ने इस प्रकार वेन की ऊरु का मन्थन कर उसके शरीर से पापरूपी नास्तिक अंश निषाद के रूप में निकाल कर उसे शुद्ध कर दिया।

वेन के प्रसंग में आस्तिक-नास्तिक संवाद

एक बार एक नास्तिक ने एक आस्तिक सन्त के निकट जाकर प्रश्न किया कि तुम्हें प्रतिदिन आहार कहाँ से मिलता है?

आस्तिक ने कहा—प्रभु के अक्षय भण्डार से।

नास्तिक बोला—खाते हो हम लोगों का और नाम लेते हो ईश्वर का।

आस्तिक—मैंने कभी तुमसे कुछ लिया है?

नास्तिक—मुझसे तो कुछ नहीं लिया, पर क्या तुम्हारा आहार स्वर्ग से आता है?

आस्तिक—मेरा ही नहीं संसार के सभी जीवों का आहार स्वर्ग से आता है।

नास्तिक—तो दरवाजा बन्द करके पड़े रहो, देखें आहार कैसे आता है?

आस्तिक—बहुत ठीक कहा, मैं जब बालक था तब दो वर्ष तक पड़ा ही रहता था तो भी आहार मेरे मुख में पहुँच ही जाता था।

नास्तिक—क्या तुमने कभी कोई ऐसा मनुष्य भी देखा है जो बिना बोये काट लाता हो?

आस्तिक—हाँ, बहुत से, एक तो तुम्हीं को देख रहा हूँ, अच्छा बताओ तो सही तुमने अपने मस्तक के केश कब बोये थे, जो उगते और कटते रहते हैं।

नास्तिक—ठीक, मान लो आकाश में जब तुम हवाई जहाज पर बैठे हो तो वहाँ आहार कैसे आयेगा?

आस्तिक—एक पक्षी की भाँति।

नास्तिक—यदि धरती में गड़े हो तो?

आस्तिक—एक चींटी की तरह।

यह उत्तर सुनकर नास्तिक सन्न रह गया। उसके नेत्रों से पश्चात्ताप के आँसू छलक आये। दीनभाव से जब उसने उपदेश की प्रार्थना की तो सन्त बोले—भाई!

संदिग्धेऽपि परे लोके कर्तव्यो धर्मसंचयः ।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः ॥

यदि परलोक के विषय में सन्देह भी हो तो भी धर्म का उपार्जन करना चाहिए। यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि परलोक नहीं है तो भी धर्म का उपार्जन करने वालों की कोई हानि नहीं है। यदि शास्त्रानुसार है तो नास्तिक मारा जायगा। दूसरी बात यह है कि—

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
सुखं च न विना धर्मात् तस्माद् धर्मपरो भवेत् ॥

प्रत्येक प्राणी यह चाहता है कि मुझे सुख मिले, किन्तु वह सुख धर्म के बिना मिल नहीं सकता, इसलिए मनुष्य को सर्वदा धर्म का आचरण करना चाहिए।

महात्मा का यह उपदेश सुनकर नास्तिक मुग्ध हो गया। उसके नाना प्रकार के कुतर्क विलीन हो गये। उसने विनयपूर्वक सन्त के चरणों पर गिरकर उनसे क्षमा माँगी और उस दिन से वह परम आस्तिक बन गया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

पन्द्रहवाँ अध्याय

वेन की भुजा से अर्चि-सहित महाराज पृथु का जन्म तथा उनका राज्याभिषेक

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर!

अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः ।
बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ।।१।।

फिर ऋषियों ने अपुत्र राजा वेन की तीनों भुजाओं का मन्थन किया जिनसे एक जोड़ा उत्पन्न हुआ। इसमें पुरुष महाराज पृथु और कन्या इनकी पत्नी अर्चि थी। ये दोनों भगवान् विष्णु और लक्ष्मी के अंश थे। अतः इनका परस्पर विवाह भी विरुद्ध नहीं। इन्हें देखकर देवगण आकाश में दुन्दुभि बजाने लगे, गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। जगद्गुरु ब्रह्मा देवताओं के साथ वहाँ आये। पृथु के दक्षिण हाथ में चक्र का चिह्न देखकर सभी ने उन्हें भगवान् विष्णु का अंश जाना।

यस्य रेखान्तराभिन्नं चक्रं पाणितले भवेत् ।
स भवेत् पृथिवीपालो विष्णोरंशसमुद्भवः ।।

ऋषियों के साथ उन्होंने विधिपूर्वक वेदमन्त्रों द्वारा पृथु का राज्याभिषेक किया। इस अवसर पर कुबेर ने राजा पृथु को सुवर्ण का सिंहासन दिया, वरुण ने छत्र, वायु ने दो चँवर, इन्द्र ने मुकुट, यमराज ने दण्ड, ब्रह्मा ने कवच, सरस्वती ने हार, विष्णु ने चक्र तथा लक्ष्मी ने उन्हें नाना प्रकार की सम्पत्तियाँ प्रदान की। पर्वत, नदी तथा समुद्र ने उन्हें जाने का मार्ग दिया। ऋषियों ने अमोघ आशीर्वाद दिये। बन्दीगण उनकी स्तुति करने को उद्यत हुए, यह देखकर पृथु ने उनसे कहा—हे बन्दीगण! अभी आप लोग मेरी स्तुति न करें। मैं अभी इसके योग्य नहीं हूँ। कारण संसार में अभी मेरा कोई भी गुण प्रकट नहीं हुआ। भावी गुणों की सम्भावना पर स्तुति परिहासजनक होती है। उत्तम श्लोक भगवान् के रहते साधारण पुरुष की स्तुति करना उचित भी नहीं। इसलिए मैं अपनी स्तुति नहीं कराऊँगा।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का सातवाँ विश्राम)

❖

सोलहवाँ अध्याय

महाराज पृथु की स्तुति

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ।
तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥१॥

बन्दीगण महाराज पृथु की ऐसी अमृतमयी वाणी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर कहने लगे—महाराज! आप साक्षात् भगवान् के अवतार हैं। आपके गुणों का वर्णन बृहस्पति भी नहीं कर सकते हम अज्ञानियों का सामर्थ्य ही क्या है? ब्राह्मणों के आशीर्वाद से ही हमें कुछ सामर्थ्य प्राप्त हुआ है, जिससे हम आपके गुणों का वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार करेंगे। आपके गुण संसार में पहले से ही फैले हुए हैं, इसलिए हमारी स्तुति व्यर्थ न होगी। आप प्रजा को धर्ममार्ग में प्रवृत्त करेंगे। अधर्मियों को दण्ड देंगे। न्याय की गद्दी पर बैठकर आप अदण्डनीय शत्रुपुत्र को भी दण्ड नहीं देंगे और दण्डनीय अपने पुत्र को भी दण्ड देने में नहीं हिचकेंगे। आप अपने मनोरञ्जक चरित्रों द्वारा प्रजा को अपने में अनुरक्त करेंगे। इससे आप राजा कहलायेंगे। मानसोत्तर पर्वत से लेकर जहाँ तक सूर्य तपते हैं, वहाँ तक आपका अखण्ड राज्य होगा। आप सत्यप्रतिज्ञ एवं ब्रह्मण्य होंगे। अपने तीखे बाणों से पर्वतों को चूर-चूर कर पृथ्वी को समतल करेंगे। वरुण के समान आपके कार्य बड़े गम्भीर होंगे। आपका सामना करने की क्षमता किसी को न होगी। आपसे प्रभावित सभी राजा आपको कर देंगे और आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करेंगे। आप पृथ्वीरूप गौ से सम्पूर्ण पदार्थ दुहेंगे। सरस्वती-तटपर सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे। अन्तिम अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र आपके यज्ञीय अश्व का अपहरण करेंगे। आपका अन्तिम चरित्र अत्यन्त शिक्षाप्रद और लोक का आदर्श होगा।

एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ।
आराध्य भक्त्याऽलभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥२५॥

आप अपने राजभवन के उपवन में परमज्ञानी सनत्कुमार को प्राप्त कर, श्रद्धा भक्ति से उनकी आराधना कर उनसे वह निर्भय ज्ञान प्राप्त करेंगे जिससे परम ब्रह्म श्रीकृष्ण का साक्षात्कार होता है। आप अपने तेज से लोक में उपद्रव करनेवालों का समूल नाश करेंगे। सभी आपके सुयश को बखानेंगे और आप ही पृथ्वी के आदि राजा कहे जायेंगे। आप लोकपालों की मूर्ति धारणकर उनका प्रजापालन-रूप कार्य करेंगे। इन्द्र के वर्षा न करने पर आप स्वयं अपनी योगशक्ति से वर्षा कर प्रजापालन करेंगे। सुर, असुर सभी आप के प्रभाव का गान करेंगे और आप सम्पूर्ण भूमण्डल के राजा होंगे।

सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥२७॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।

सत्रहवाँ अध्याय

पृथु का अन्नार्थ गोरूपधारिणी पृथ्वी पर कोप और पृथ्वी द्वारा पृथु की स्तुति

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! महाराज पृथु ने बन्दीजनों को अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान कर सन्तुष्ट किया और ब्राह्मण, विद्वान्, पुरोहित, नागरिक, व्यापारी जो भी वहाँ उपस्थित थे, उन सभी का यथोचित सत्कार किया। विदुर जी ने पूछा—हे मुने!

कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी।
यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम्॥३॥

पृथ्वी ने गौ का रूप क्यों धारण किया और पृथु ने उसे क्यों दुहा? इस दोहन के समय बछड़ा कौन था और पात्र क्या था? पृथु के यज्ञीय अश्व का इन्द्र ने अपहरण क्यों किया? सनत्कुमार से ज्ञान प्राप्त कर राजर्षि पृथु ने कौन-सी गति प्राप्त की? इन प्रश्नों का समाधान करने की आप कृपा करें। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! जब ऋषियों ने पृथु का राज्याभिषेक किया और उन्हें प्रजा का पालक घोषित किया तब प्रजा ने उनके समीप जाकर कहा—

प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन्॥९॥

हे महाराज! हम सब भूख से तड़प रहे हैं, हमारे शरीर सूख गये हैं, पृथ्वी पर अन्न नहीं है, जब तक हमारे प्राण नहीं निकलते तब तक आप हमारे लिए अन्न का प्रबन्ध करें। हम आपकी शरण में हैं और आप ही जीविका देने वाले हमारे स्वामी हैं। प्रजा का ऐसा करुण विलाप सुनकर राजा पृथु बहुत देर तक इस स्थिति का कारण सोचते रहे और अन्त में उन्हें इसका कारण ज्ञात हुआ तो उन्होंने तत्काल भूमि को लक्ष्य कर धनुष पर बाण चढ़ाया। यह देखकर पृथ्वी गौका रूप धारण कर मारे भय के भाग खड़ी हुई और महाराज पृथु ने उसका पीछा किया। श्रान्त हुई पृथ्वी ने कहा—महाराज! आप धर्मात्मा होकर निरपराध मुझ स्त्री को मारने के लिए क्यों उद्यत हैं?

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागस्स्वपि जन्तवः।
किमुत त्वद्विधा राजन् करुणा दीनवत्सलाः॥२०॥

हे राजन्! पामर प्राणी सापराध स्त्रियों पर भी प्रहार नहीं करते फिर आप सरीखे दयावान् दीनवत्सल सत्पुरुष निरपराध गौपर प्रहार करें यह उचित नहीं। स्त्रियों पर प्रहार करना शास्त्रों में निषिद्ध बताया गया है। उससे घर में दरिद्रता और वंश का उच्छेद होता है—

वंशोच्छेदश्च दारिद्र्यं पत्नीसन्ताडनाद् भवेत्।

अतः किसी भी अवस्था में स्त्री प्रहार के योग्य नहीं है। आप प्रजापालक है। मेरी भी रक्षा करें। आप यह भी तो विचार करें कि मुझे मारकर आप जल में प्रजा को कैसे स्थापित करेंगे।

महाराज पृथु ने कहा—हे धरित्री! तू माया से गौ बनी है। प्रतिदिन पेट भर भूसा खाती है किन्तु दूध नहीं देती। तू मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रही है। इसलिए मैं तेरा वध करूँगा तूने सम्पूर्ण औषधियाँ और बीज निगल लिये हैं, उन्हें उगा नहीं रही हैं। इस कारण सम्पूर्ण प्रजा में भूख से हाहाकार मचा है। ऐसी दुष्टा का वध प्रजा के रक्षार्थ सर्वथा उचित है। अब तेरी मेदा से ही प्रजा का पोषण करना पड़ेगा और प्रजा को मैं अपने योग-बल से जल में भी धारण कर सकूँगा।

पुमान् योषिदुत क्लीब आत्मसम्भावनोऽधमः ।
भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥२६॥

पुरुष, स्त्री या नपुंसक कोई भी क्यों न हो—नीच होकर भी यदि वह अपने को सर्वोत्कृष्ट ठहराता है और प्राणियों की रक्षा में बाधा पहुँचाता हुआ निर्दय है तो राजाओं द्वारा ऐसे दुष्टों का वध, वध नहीं कहा जाता। इस प्रकार कृतान्त के समान क्रोधमयी मूर्ति धारण किये पृथु को देखकर पृथ्वी काँप उठी और हाथ जोड़कर आठ श्लोकों से उनकी स्तुति करती हुई बोली—हे भगवन्! आप क्रोध न करें। आपका तो स्वरूप रागद्वेष से रहित है। आप ही नाना मूर्ति धारण कर जगत् की रक्षा करते हैं। आपने ही मेरा जल से उद्धार कर मुझे जीवों का आधार बनाया है और आज थोड़े से अन्न के निमित्त आप ही मुझे मारने को उद्यत हैं। मैं आज किसकी शरण में जाऊँ। आप की लीला बड़ी विचित्र है। उसे कोई जान नहीं सकता, मैं वीरमूर्ति आपको ही बार-बार नमस्कार करती हूँ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थ स्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

अठारहवाँ अध्याय

पृथ्वी से अन्न आदि पदार्थों का पृथु आदि के द्वारा दोहन

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर!

इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ।
पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥१॥

इस प्रकार क्रोध से भरे पृथु की स्तुति कर पृथ्वी पुनः बोली—महाराज! आप क्रोध को शान्त करें और मेरी प्रार्थना सुनें। अब आप उपाय द्वारा ही अन्न प्राप्त कर सकते हैं। विद्वान् पुरुष भ्रमर के समान वस्तुओं से सार को ग्रहण करते हैं। तत्त्वदर्शी

मुनियों ने प्रजा के कल्याणार्थ नाना प्रकार के उपाय बताये हैं। उनका जो अवलम्बन करता है, उसका अभीष्ट अवश्य सिद्ध होता है। पहले ब्रह्मा ने प्रजा की रक्षा के लिए व्रीहि आदि नाना प्रकार के अन्नों की सृष्टि की थी, किन्तु यज्ञादि में उनका समुचित उपयोग न हो सका। आपके पिता वेन ने नास्तिकतावश धर्म का खण्डन कर यज्ञयागादि बन्द कर दिये। अतः वृष्टि न होने के कारण यह भयंकर अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसमें मेरा क्या दोष हैं? जो कुछ अन्न बचा था उसे मैंने यज्ञों की रक्षा के लिए निगल लिया। अब मैं आपको अन्नप्राप्ति का उपाय बताती हूँ, जिससे आप अन्न प्राप्त कर सकेंगे। मेरे लिए आप बछड़ा, दोहनपात्र तथा दोग्धा की व्यवस्था करें। जिससे आप सुस्वादु पुष्टिकारक अन्न प्राप्त कर सकेंगे। मेरे दोहन से अवश्य ही आप को सब प्रकार के अन्नों की प्राप्ति होगी। आप मुझ पर ऐसी समतलता भी ला दें; जिससे वर्षा का जल सर्वत्र पहुँच सके।

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः।
वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत् सकलौषधीः ॥१२॥

पृथ्वी के ऐसे मधुर वचन सुनकर महाराज पृथु ने स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाया और अपने हस्तरूपी पात्र में पृथ्वी से समस्त धान्यादि पदार्थ दुहे। तदनन्तर गोरूपी पृथ्वी से सभी ने अपनी-अपनी अभीष्ट वस्तुएँ दुही। ऋषियों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाकर इन्द्रियरूपी पात्र में वेदरूपी दुग्ध दुहा। देवताओं ने इन्द्र को वत्स बनाकर सोने के पात्र में अमृत दुहा। दैत्यों ने प्रह्लाद को वत्स बनाकर लोहे के पात्र में मदिरा दुही। यद्यपि पृथु के वंशज दक्ष की कन्या दिति के पौत्र प्रह्लाद का जन्म तब हुआ नहीं था किन्तु—

प्रतिमन्वन्तरं प्रायः प्रह्लादाद्या बभूविरे।

इस वचन के अनुसार दैत्यों द्वारा बनाये गये वत्स प्रह्लाद को यहाँ भावनामय जानना चाहिए। गन्धर्वों ने विश्वावसु को वत्स बनाकर कमल के पात्र में गानविद्या दुही। पितरों ने अर्यमा को वत्स बनाकर मिट्टी के पात्र में कव्य दुहा। स्वधा-शब्द से पितरों को दिया गया हविष्य अन्न कव्य कहलाता है। हाथ से निर्मित अपक्व मिट्टी का पात्र पितर तथा देवताओं को अत्यन्त प्रिय है। कुलाल चक्र से निर्मित पक्व मिट्टी का पात्र ग्राह्य नहीं है।

अपक्वं मृण्मयं पात्रं पितॄणां वल्लभं सदा।
तच्च हस्तेन घटितं ग्राह्यं चक्रोद्भवं नहि ॥
कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं दैविकं न तत्।
तदेव हस्तघटितं दैविकं पैतृकं तथा ॥

(छन्दोगपरिशिष्ट)

सिद्धों ने कपिल को वत्स बनाकर आकाशरूपी पात्र में अणिमादि सिद्धियाँ दुहीं। पिशाचों ने रुद्र को वत्स बनाकर खप्पर में रक्त दुहा। सर्पों ने तक्षक को वत्स बनाकर मुखरूपी पात्र में विष दुहा। मांसभक्षी जानवरों ने सिंह को वत्स बनाकर अपने-अपने शरीर में भक्ष्य मांस दुहे। पक्षियों ने गरुड़ को वत्स बनाकर कीट, पतङ्ग, फल आदि दुहे। पर्वतों ने हिमालय को वत्स बनाकर अपने शिखररूपी पात्रों में नाना प्रकार की धातुएँ दुहीं। इस प्रकार सभी ने पृथ्वी से अपनी-अपनी जाति में मुख्य को वत्स बनाकर पृथ्वी से अभीष्ट वस्तुएँ दुह लीं। इस पर राजा पृथु बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने पृथ्वी को पुत्री की तरह मानकर उसका बड़ा सम्मान किया। अनन्तर उन्होंने चारों ओर से पृथ्वी को समतल बनाकर मनुष्यों के निवासार्थ—पुर, ग्राम, नगर आदि की सुन्दर रचना की और उनमें प्रजा निर्भय होकर निवास करने लगी।

यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥३२॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

उन्नीसवाँ अध्याय

पृथु के सौवें अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र द्वारा यज्ञीय अश्व का अपहरण

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर!

अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ।
ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१॥

इसके बाद महाराजा पृथु ने ब्रह्मावर्त में पूर्ववाहिनी सरस्वती के तटपर १०० अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया। ९९ यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होने पर उन्होंने अन्तिम सौवाँ यज्ञ आरम्भ किया। इन्द्र (शतक्रतु) इसे सहन न कर सके और ईर्ष्यावश विघ्न करने में तुल गये। राजा पृथु के यज्ञ में भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सब देवता अपने-अपने पार्षदों सहित पधारे थे। ऋषि, मुनि, योगेश्वर, सिद्ध, विद्याधर आदि भी सब वहाँ उपस्थित थे। महाराज पृथु के यज्ञ में पृथ्वी कामधेनु बनकर यजमान के मनोरथ पूर्ण करने लगी। दूध, दही और घी की नदियाँ बह चलीं। वृक्षों ने सभी ऋतुओं के भाँति-भाँति के पुष्प, फल उत्पन्न कर दिये। समुद्र ने रत्नों की भेंट की, पर्वतों के अधिष्ठाता देवों ने चतुर्विध (भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य) अन्नों में अनुपम स्वाद भर दिया। लोकपालों ने नाना प्रकार की वस्तुएँ भेंट दी। इस प्रकार महाराजा पृथु का वैभव देखकर इन्द्र उसे सहन न कर सके और उन्होंने नाना प्रकार से विघ्न करना आरम्भ कर दिया। सौवें यज्ञ का आरम्भ होते ही इन्द्र ने पाखण्ड का रूप धारण कर चुपके से यज्ञीय अश्व का अपहरण कर लिया। महर्षि अत्रि ने इन्द्र को आकाश-मार्ग

से जाते देखा और पृथु-पुत्र से कहा—देखो, वह तुम्हारा अश्व लिए जा रहा है, उसे जीतकर अपना अश्व ले आओ। जब पृथु-पुत्र खड़ा रह, खड़ा रह कहते हुए अश्वहर्ता की ओर झपटे तो उन्होंने उसे जटा और भस्म धारण किये देखा एवं धर्मात्मा समझकर उस पर बाण नहीं छोड़ा। अत्रि ने पुनः पृथु-पुत्र से कहा—अरे, यह यज्ञ में विघ्न करने वाला पाखण्ड-रूपधारी नीच इन्द्र ही है, कोई दूसरा नहीं, इसका वध कर डालो—

जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुधाधमम् ॥१५॥

यह कहने पर पृथु-पुत्र मारे क्रोध से रावण पर जटायु के समान इन्द्र पर झपटे। इन्द्र तुरन्त अश्व और पाखण्ड रूप को त्याग कर अन्तर्हित हो गये। वीर पृथु-पुत्र अश्व को लेकर यज्ञमण्डप में आये। पृथु-पुत्र के इस अद्भुत कर्म को देखकर मुनियों ने उनका नाम विजिताश्व रख दिया। जब दुबारा पुनः यज्ञ आरम्भ हुआ तब इन्द्र ने माया से घोर अन्धकार फैलाकर सुवर्ण की जंजीर से खम्भे में बँधे हुए अश्व का जंजीर-सहित अपहरण कर लिया। अत्रि के कहने पर जब पृथु-पुत्र ने इन्द्र का पुनः पीछा किया तब वह पुरुष नरकपाल, नरमञ्जरी धारण किये दिखाई पड़ा। विजिताश्व ने महात्मा समझकर उसे फिर नहीं मारा। अत्रि की प्रेरणा पर उन्होंने उसे मारने के लिए धनुष पर बाण चढ़ाया तब इन्द्र अश्व और अपने बनावटी रूप को त्याग कर पुनः अन्तर्हित हो गये। विजिताश्व पुनः अश्व को लेकर यज्ञमण्डप में आये। इन्द्र द्वारा छोड़े गये उक्त रूपों को वाममार्गी कापालिक आदि ने जीविकार्थ ग्रहण किया, जिससे संसार में बहुत-सा पाखण्ड फैल गया। इन पाखण्डियों का अनुसरण करने पर मनुष्य का यह लोक और परलोक बिगड़ जाता है। इनके भ्रामक वेष तथा मीठी बातों से मनुष्य को सदा बचना चाहिए। इन पाखण्डों को इन्द्र ने फैलाया यह जानकर महाराज पृथु को बड़ा क्रोध आया और वह स्वयं इन्द्र को मारने को उद्यत हुए। तब ऋत्विजों ने कहा—महाराज आप इन्द्र को न मारें। हम मन्त्रों से यहीं बुलाकर आपके शत्रु इन्द्र का अभी अग्नि में हवन कर देते हैं।

हे विदुर! यह कहकर ऋत्विजगण स्रुवा लेकर ज्यों ही आहुति देने को तैयार हुए ब्रह्मा ने आकर उन्हें रोक दिया और पृथु से कहा—राजन्! आप भगवान् के अंश हैं। इन्द्र पर क्रोध न करें और यह यज्ञ बन्द कर दें। देवताओं के साथ हठ करना उचित नहीं है। आपका एक यज्ञ कम ही रहेगा तो उससे कोई क्षति नहीं होगी। कारण आप तो मोक्षधर्म के ज्ञाता है। यह भी देखें कि आपका अश्व चुराने वाला आपसे लजा रहा है, उससे आप सन्धि कर लें। आप तो धर्म के रक्षार्थ अवतीर्ण हुए हैं। आप फैले हुए इस पाखण्डपथ का अन्त करें।

प्रचण्डपाखण्डपथं प्रभो जहि ॥३८॥

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर!

ब्रह्मा के आदेशानुसार पृथु ने इन्द्र के साथ सन्धि कर यज्ञान्त-स्नान किया और जो वहाँ उपस्थित थे, उन सब देवता, ऋषि और महर्षियों के आशीर्वाद ग्रहण करते हुए उन सबका दान-मान से पूजन किया—

पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥४२॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

बीसवाँ अध्याय

भगवान् के ज्ञानोपदेश से इन्द्र और पृथु की परस्पर मैत्री

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर!

भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः ।
यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥१॥

इन्द्र के साथ भगवान् विष्णु यज्ञशाला में आये और पृथु से बोले—राजन्! आपके यज्ञविघ्नकर्ता ये इन्द्र उपस्थित हैं। ये आपसे क्षमा माँग रहे हैं। इन्हें क्षमा करें। विद्वान् पुरुष शरीर में अभिमान कर प्राणियों से द्रोह नहीं करते। आप सरीखे विद्वान् यदि माया से मोहित होकर प्राणियों से द्रोह करें तो सत्सङ्ग करने का फल ही क्या हुआ? विद्वान् या पण्डित के आठ गुण बताये हैं। उन्हें सुने—

दम्भं नोद्वहते न निन्दति परान् नो भाषते निष्ठुरान्
प्रोक्तं केनचिदप्रियं च सहते क्रोधं च नालम्बते ।
ज्ञात्वा शास्त्रमपि प्रभूतमनिशं संतिष्ठते मूकवत्
दोषांश्छादयते गुणान् वितनुते चाष्टौ गुणाः पण्डिते ॥

कपट न करना, दूसरों की निन्दा न करना, निष्ठुर वचन न बोलना, यदि कोई अप्रिय वचन कह दे तो उसे सह लेना, क्रोध न करना, शास्त्रों का प्रचुरज्ञान रहने पर भी मूक के तुल्य रहना अर्थात् अहंकार न करना, दूसरे के दोषों को छिपाना और गुणों को प्रकट करना—ये आठ गुण पण्डितों में रहते हैं।

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसनं च विद्वत्प्रणामश्च सुशीलता च ।
एतानि यो धारयते स विद्वान् न केवलं यः पठते स विद्वान् ॥

सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों को प्रणाम करना तथा सुशीलता ये गुण जिसमें हों वह विद्वान् हैं। केवल पुस्तक पढ़ने वाला विद्वान् नहीं है। इन गुणों से सम्पन्न विद्वान् पुरुष अविद्यारचित भौतिक शरीर में तथा इससे उत्पन्न गेह, पुत्र, द्रव्य आदि में ममता नहीं करते। केवल स्वयं प्रकाशमान आत्मा का हृदय में चिन्तन करते हैं, जिससे

उन्हें शरीर में रहते हुए भी मान-अपमान तथा सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता। जो कामनारहित होकर श्रद्धा-भक्ति से मेरा भजन करते हैं, उनका अन्तःकरण शनैः-शनैः निर्मल हो जाता है और उसमें मेरी अनुभूति होने लगती है। हे राजन्!

भिन्नस्य लिङ्गस्य गुणप्रवाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ।
दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥१२॥

आत्मा से भिन्न देहाभिमानी जीव को संसार की अनुभूति होती है, आत्मा को नहीं; इसलिए विवेकी पुरुष सम्पत्ति या विपत्ति में हर्ष, शोक आदि के विकार को प्राप्त नहीं होते, क्योंकि उनका प्रेम मुझमें सदा बना रहता है। संसारी पुरुष जिन्हें विपत्तियाँ समझते हैं, वे विपत्तियाँ नहीं और जिन्हें सम्पत्तियाँ समझते हैं वे सम्पत्तियाँ नहीं है—

विपदो विपदो नैव सम्पदो न च सम्पदः ।

विपत्तियाँ और सम्पत्तियाँ क्या हैं—

विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः ।

भगवान् की विस्मृति विपत्ति और भगवान् की स्मृति ही सम्पत्ति बतायी गयी है। आप सुख-दुःख में समदृष्टि रखकर धर्म से प्रजा का पालन करें; उससे परलोक में आपको प्रजा के पुण्य का छठा भाग प्राप्त होगा। जो राजा प्रजा पर कर लगाकर उसकी रक्षा नहीं करता वह प्रजा के पाप का भागी होता है और अन्त में उसे नरक-यातना भोगनी पड़ती है। मैं यज्ञ और तप से उतना प्रसन्न नहीं होता जितना द्वेषहीन समदर्शी प्राणी से होता हूँ। मैं आपके गुण और शील से अत्यन्त प्रसन्न हूँ—आप मुझसे कोई अभीष्ट वर माँगे। मैत्रेय जी बोले हे विदुर! इसी समय इन्द्र पृथु का चरणस्पर्श करने आगे बढ़े तो पृथु ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और द्वेषभाव को त्याग कर इन्द्र से मैत्री कर ली। इस प्रकार दोनों में मैत्री कराकर भगवान् जाने को उद्यत हुए किन्तु पृथु के प्रेम से बद्ध भगवान् जा न सके। पृथु प्रेमविभोर हो भगवान् के चरणों में लोट गये, कुछ कह न सके। उनके शरीर में रोमांच छा गये और नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। वे हाथ जोड़कर भगवान् से बोले—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥२४॥

नाथ! महात्माओं के मुखकमल से निःसृत आपके कथामृत से ओत-प्रोत जहाँ आपके चरणकमलों का मकरन्द नहीं है—ऐसे तुच्छ सांसारिक भोग्य पदार्थों को मैं नहीं चाहता, अधिक क्या कहूँ, मैं कैवल्य भी नहीं चाहता। दो कानों से आपकी कथा सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती। इसलिए आपकी अमृतमयी कथा सुनने के लिए दो कानों में दस हजार कानों की शक्ति प्रदान करने की आप कृपा करें; बस यही दुर्लभ वर मैं चाहता हूँ। पिता जैसे स्वयं बालक का जिसमें हित हो वह करता है उसी प्रकार जो भी मेरे लिए हितकर हो वहीं वह आप मुझे दें। महाराज पृथु के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् ने मुस्कराकर कहा—राजन्! तुम्हारी सर्वदा मुझमें निश्चल भक्ति बनी रहेगी,

जिससे तुम मेरी दुरत्यय माया का अतिक्रमण कर सकोगे। यह कहकर भगवान् महाराज पृथु से पूजित होकर उनका मन हरण कर अपने दिव्य धाम वैकुण्ठ को चले गये। महाराज पृथु भगवान् की दिव्य छवि निहारते रहे। तदनन्तर राजा ने वहाँ उपस्थित सभी देवता, ऋषि, मुनि आदि का दान मान से पूजन किया और वे सब राजा को आशीर्वाद देकर अपने-अपने धाम चल गये। राजा भी यज्ञशाला से अपने नगर को लौट आये।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

इक्कीसवाँ अध्याय

महाराज पृथु का विशाल सभा में प्रजा को धर्मोपदेश

सूतजी ने कहा—हे शौनक! महाराज पृथु का अनुपम दिव्य चरित्र सुनकर विदुरजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मैत्रेयजी का सम्मान कर उनसे पुनः पूछा—हे मुने ब्राह्मणों द्वारा अभिषिक्त महाराज पृथु ने प्रजा के रक्षार्थ पृथ्वी का दोहन कर जो लोकोत्तर कर्म किया उसे लोकपाल भी नहीं कर सके। साधारण राजाओं की तो बात ही क्या है। उनका चरित्र सुनने पर भी मेरी तृप्ति नहीं होती है। अत: आप कृपा कर उनका आगे का भी चरित्र सुनावें।

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! एक समय महाराजा पृथु ने एक महासत्र करने का संकल्प किया। उसमें देवता, ऋषि, महर्षि तथा सिद्ध गन्धर्वों का विशाल समुदाय एकत्र हुआ। राजा ने सबका यथोचित पूजन-सत्कार कर सभा के बीच में उठकर हाथ जोड़ सभासदों से कहा—हे सभ्यवृन्द! मुझे एक जिज्ञासा है, उसपर आप लोग विचार करें, आप लोगों ने मुझे राजा बनाया है और राजा का कर्तव्य है कि प्रजा को धर्म में प्रवृत्त करे जिससे राजा और प्रजा दोनों को ही दिव्य-लोकों की प्राप्ति हो, इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरी सारी प्रजा भगवान् के दिव्य चरित्रों का श्रवण, मनन और कीर्तन करें तथा तन, मन और धन से उन्हीं में लगी रहे।

य उद्धरेत् करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन्।
प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥२४॥

जो राजा कर लेकर प्रजा को धर्म में प्रवृत्त नहीं करता वह परलोक में प्रजा के पाप का फल भोगता है और ऐश्वर्य से च्युत होकर सत्पुरुषों की निन्दा का पात्र बनता है। मेरे इस कथन का आप सभी लोग अनुमोदन करें, क्योंकि कर्ता, उपदेष्टा तथा अनुमोदनकर्ता इन तीनों को परलोक में समान फल की प्राप्ति होती है। मनु, ध्रुव और हमारे पितामह महाराज अङ्ग, प्रह्लाद तथा बलि आदि सभी भगवान् का अस्तित्व मानकर श्रद्धा भक्ति से उनकी आराधना करते थे क्योंकि उनका भगवान् से प्रयोजन था—

कृत्यमस्ति गदाभृता।

केवल मृत्यु की पुत्री सुनीथा का पुत्र वेन अपने मातामह के दोष से धर्म से च्युत होकर घोर नास्तिक हुआ जो भगवान् की निन्दा करता था। वह महान् अपराधी था। अतएव वह ब्राह्मणों की क्रोधाग्नि से नष्ट हुआ। उसे अपनी नास्तिकता का फल इसी जन्म में मिल गया। यहाँ पर गदाभृता यह शब्द साभिप्राय है। जो धर्म-कर्महीन नास्तिक एवं आचारहीन मनुष्यों को परलोक में गदाप्रहार की स्मृति दिलाता है।

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिः सृता सरित् ॥३१॥

जिन भगवान् के चरणंकमलों की सेवा में प्रतिदिन बढ़ती हुई अभिरुचि संसारतप्त प्राणियों के अनेक जन्मों के संचित अन्तःकरण के मल के वैसे ही धो देती है जैसे गङ्गा मनुष्यों की पापराशि को धो डालती है। जिस पुरुष का चित्त भगवान् के चरणकमलों में रम जाता है उसे संसार में किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता। अतएव मेरी प्रजा उन्हीं का भजन करें। संसार में जितने भी पदार्थ हैं वे सभी भगवान् की कृपा से प्राप्त होते हैं। यज्ञादि कर्मों का फल भी उन्हीं से प्राप्त होता है। इसलिए मेरी प्रजा उन्हीं का अनुसरण करें। यह मेरा मनोरथ यदि सिद्ध हुआ तो मैं इसे आपका ही अनुग्रह मानूँगा। मेरी प्रजा सर्वदा ब्राह्मण-कुल की सेवा करें, कारण भगवान् ब्राह्मणों के मुख में प्रदत्त पदार्थों को जैसे प्रेम से ग्रहण करते हैं वैसे यज्ञ में दिये पदार्थों को भी ग्रहण नहीं करते। मैं आप लोगों की चरणरज शिरोधार्य करता हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होकर मेरा यह मनोरथ पूर्ण करें। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! महाराज पृथु का ऐसा अद्‌भुत वक्तव्य सुनकर सभी ऋषि-महर्षि बड़े प्रसन्न हुए और उनके हृदय गद्‌गद हो उठे। वे मुक्तकण्ठ से साधु-साधु कहकर महाराज की प्रशंसा करते हुए बोले—हे महाराज! आप धन्य है, आपके इस अमृतमय उपदेश से आज हम कृतार्थ हो गये। आपने हमें सनाथ कर दिया। पुत्र का नाम भी आज आपने चरितार्थ कर दिया। नास्तिक वेन का भी उद्धार आपके द्वारा हो गया। इसमें सन्देह नहीं, आप इसी प्रकार प्रजा को शिक्षा देते हुए सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहें। भगवान् में आपकी इस प्रकार निष्ठा देखकर हमारे आनन्द की सीमा न रही। आपने अपने इस अनुपम उपदेश द्वारा संसार के उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया। हम आपके इस प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन करते हैं और भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आपकी प्रजा का प्रेम भगवान् में उत्तरोत्तर बढ़ता रहे।

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे।
यो ब्रह्म-क्षत्रमाविश्य विभर्तीदं स्वतेजसा ॥५२॥

जो ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिय का तथा क्षत्रिय द्वारा ब्राह्मण का पालन कर जगत् की रक्षा करते हैं, उन शुद्ध सत्त्वमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् को हम सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

बाईसवाँ अध्याय

महाराज पृथु को सनत्कुमार का ज्ञानोपदेश

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम्।
तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥१॥

इस प्रकार सभामण्डप में ऋषि, मुनि, सिद्ध गन्धर्व सब राजा की जय जयकार कर प्रशंसा कर ही रहे थे कि सूर्य के समान तेजस्वी सनकादिक चारों भाई आकाश-मार्ग से उतरते हुए दिखाई दिए और थोड़ी ही देर में वे सभामण्डप में आ पहुँचे। उनके तेज से सारी सभा प्रकाशित हो उठी। राजा ने उठकर उन्हें प्रणाम किया और बड़े आदर से सुवर्ण के सिंहासन पर बैठाकर अर्घ्य-पाद्य से उनका विधिवत् पूजन किया। तदंनन्तर बद्धाञ्जलि हो विनीत भाव से उनसे कहा—भगवन् मैंने ऐसा कौन पुण्य किया जिससे आज आप महानुभावों के दर्शन हुए। जिस पर भगवान् और ब्राह्मण प्रसन्न हो जायँ उसके लिए संसार में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है। जिसके घर कृपा कर आप लोग पहुँच जाते हैं, वह निर्धन भी धनी हो जाता है। निखिल सम्पत्तियों से परिपूर्ण भी जो गृह ब्राह्मणों के पाद-प्रक्षालन-जल से वर्जित हैं वे सर्पों के आलयरूप सूखे वृक्ष के समान है। और भी कहा हैं—

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि।
स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥

जहाँ ब्राह्मणों के पादप्रक्षालन जल से पङ्क नहीं, शास्त्र और वेदध्वनि की गर्जना नहीं तथा स्वाहाकार और स्वधाकार नहीं वे घर श्मशानतुल्य कहलाते हैं।

मैं आप लोगों का हृदय से स्वागत करता हूँ। आप जन्म से ही नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण कर भगवान् का भजन करते हैं। आप आत्माराम हैं। आपलोगों की कुशल मैं क्या पूछूँ? कारण आपके कुशल और अकुशल का प्रश्न ही नहीं उठता।

दुःखमय इस संसारसमुद्र में पड़ा हुआ मैं अपनी भी कुशल क्या कहूँ। मैं दृढ़ विश्वासपूर्वक यही पूछना चाहता हूँ कि संसार में मनुष्यों को भगवान् की प्राप्ति सुखपूर्वक किस साधन से हो सकती है?

सम्पृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ॥१५॥

राजा के ऐसे सुमधुर वचन सुनकर सनत्कुमार बड़े प्रसन्न हुए और मुस्कराते हुए बोले—राजन्! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया। इससे जगत् का कल्याण होगा।

सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः ॥९॥

सत्पुरुषों का संग श्रोता एवं वक्ता दोनों के लिए हितकर होता है। सत्सङ्ग मनुष्यों के लिए पारसमणि खजाना है।

इसलिए अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को थोड़ा-सा समय निकालकर प्रतिदिन अवश्य सत्सङ्ग करना चाहिए। भगवान् के गुणानुवाद में आपकी मति निश्चल है। इससे आपकी वासनायें शीघ्र ही निवृत्त हो जायँगी। शास्त्रों में भगवत्प्राप्ति का मुख्य साधन यही बतलाया गया है कि मनुष्य सांसारिक पदार्थों में आसक्ति का त्यागकर भगवान् में निश्चल प्रीति करें। भगवान् में प्रेम, श्रद्धा—भगवद्धर्मानुष्ठान योगेश्वरों की उपासना तथा भगवत्कथा के श्रवण से होता है। भगवत्कथा के श्रवण से बढ़कर दूसरा श्रेष्ठ धर्म नहीं है।

नैतादृशः परो धर्मो तत्कथाश्रवणं हरेः। (पद्मपुराण)

पुराणों का श्रवण सब धर्मों से श्रेष्ठ माना गया है—

पुराणश्रवणं नित्यं सर्वधर्मात्परं मतम्।
आयासः सर्वधर्मेषु वर्जयित्वा हरेः कथाम्॥
अतः कलौ हरिकथाश्रुतिः संसृतिनाशिनी।

(स्कन्दपुराण, केदार खण्ड)

सभी धर्मों के अनुष्ठान में श्रम होता है किन्तु भगवत्कथा-श्रवण में श्रम नहीं होता, इसलिए कलियुग में भगवत्कथा का श्रवण ही बिना परिश्रम के संसारबन्धन से मुक्ति देनेवाला है। साधक को चाहिए कि विषयी पुरुषों का संग त्यागकर एकान्त में निवास करे और यम नियमों का पालन करे एवं भगवान् के नाम का निरन्तर कीर्तन तथा जप करे। ऐसा करने से शीघ्र ही भगवान् में उसका दृढ़ अनुराग हो जाता है। ज्ञानाग्नि की वृद्धि से सूक्ष्म शरीर भी भस्म हो जाता है और सर्वत्र भगवद्दृष्टि हो जाने से अपने और पराये का भेद भी नष्ट हो जाता है। फिर उसे द्रष्टा और दृश्य के व्यवधान से रहित आत्मा का साक्षात्कार होता है। विषयों का चिन्तन करना मनुष्य के नाश का कारण है। वह मनुष्य को ज्ञानविज्ञान से भ्रष्ट कर स्थावर योनि में ले जाता है। अतएव साधक को विषयी पुरुषों का संग नहीं करना चाहिए।

हे राजन्! स्थावर जंगम सभी जीवों में अन्तर्यामी रूप से ईश्वर का निवास है। वही सबका आधार है। तुम भी अपने को उसका अंश समझो। जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है वैसे ही उस आत्मा में ही नाना प्रकार का मायिक प्रपञ्च भासित हो रहा है। तुम इस प्रपञ्च में सर्वत्र उस नित्य, शुद्ध बुद्ध आत्मा को ही देखो। जिनके चरणकमलों की भक्ति से योगी पुरुष अहंकार का त्याग कर साक्षात् भगवान् को प्राप्त करते हैं; तुम भी उन्हीं भगवान् वासुदेव का भजन करो।

कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्षयन्ति।
तत् त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥४०॥

संसार को पार करने के लिए जिसने भगवान् के चरणरूपी नौका का आश्रय नहीं लिया उसे ही संसार पार करने में महान् क्लेश होता है। तुम भगवान् की चरणरूपी नौका का आश्रय लेकर इस दुस्तर संसारसागर को पार करो।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ब्रह्मज्ञानी सनत्कुमारजी के इस अमूल्य उपदेश से राजा को भगवत्प्राप्ति का साधन तथा आत्मा के स्वरूपज्ञान का निश्चय हुआ। वह हाथ जोड़कर कुमारों की प्रशंसा करते हुए बोले—भगवन् दयासागर भगवान् ने मुझपर जो पहले अनुग्रह किया था उसी को सम्पन्न करने के लिए आपका यहाँ शुभागमन हुआ है। आपके उपदेश से मुझे बड़ी शान्ति मिली। मेरा संशय निवृत्त हुआ, गुरुदक्षिणा के रूप में मैं आपको क्या समर्पण करूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। देह, गेह स्त्री-पुत्र-धन, धान्य, राज्य, कोश, सैन्य आदि जो भी आप देख रहे हैं ये सब ब्राह्मण तथा महात्माओं के दिये हुए उच्छिष्ट पदार्थ हैं, उन्हीं का मैं उपभोग कर रहा हूँ, इनमें मेरा स्वत्व कुछ भी नहीं है।

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥४६॥

ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है, अपनी ही वस्तु दूसरों को देता है। ब्राह्मण के ही अनुग्रह से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीनों उसी की दी हुई वस्तुओं का उपभोग करते हैं। उनका उसमें किञ्चिन्मात्र भी स्वत्व नहीं है भगवन्! आपने अध्यात्मतत्त्व को लक्ष्य में रखकर जिस अद्भुत ढंग से अमूल्य वासुदेवतत्त्व का प्रतिपादन करते हुए मेरा जो उपकार किया है भला इसका क्या प्रत्युपकार हो सकेगा। अमूल्य वस्तु का मूल्यांकन करना उपहास का ही विषय होगा। अतः मैं आपके समक्ष अञ्जलि बाँधकर नतमस्तक हो रहा हूँ—

विपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः॥

(पुराणान्तर)

जो विपत्तिरूपी अन्धकार दूर करने में सहस्रों सूर्य के समान हैं, अभीष्ट वस्तु प्रदान करने में कामधेनु के समान है तथा अपार संसारसमुद्र को पार करने में सेतु के समान हैं वह आप सरीखे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण महात्माओं की चरणरज इसी प्रकार मुझे सदा पवित्र करती रहे।

मैत्रेय जी कहते हैं—हे विदुर! राजा की इस प्रकार श्रद्धाभक्ति देखकर चारों कुमार बड़े प्रसन्न हुए। वे राजा के विनय तथा शील की प्रशंसा करते हुए सबके देखते-देखते आकाशमार्ग से जाने लगे—

शीलं तदीयं शंसन्तः खेऽभूवावन्मिषतां नृणाम् ॥४८॥

राजा उनके उपकार का बार-बार स्मरण कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनकी छवि निहारते रहे। उस दिन राजा ने अपने को कृतकृत्य माना और सम्पूर्ण राज्य से उनकी

पूर्ण विरक्ति हो गयी। वह घर में अतिथि के समान रहा करते थे। उन्होंने राज्य का पालन करते हुए अपनी अर्चि नाम की पत्नी में ५ पुत्र विजिताश्व, धूम्रकेतु, हर्यक्ष, द्रविण और धृक् नाम के उत्पन्न किये। सब लोकपालों का तेज भी राजा पृथु ने अकेले ही धारण किया और यथासमय उनका कार्य भी किया। इससे संसार में उनकी इतनी कीर्ति फैली कि वे भगवान् श्रीराम की तरह सबके कानों तक पहुँच गये—

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिवः ।।६३।।

सत्संग की महिमा में दृष्टान्त

एक समय काला कीड़ा गाड़ी की लीक पर बड़ी तेजी से जा रहा था। दैववश उसी मार्ग से व्यासजी निकले। उन्होंने कीड़े से पूछा—तुम क्यों भाग रहे हो? कीड़े ने कहा—प्राण बचाने के लिए। यह चर्चा हो ही रही थी कि गाड़ी आयी और वह कीड़ा दबकर तुरन्त मर गया। दूसरे जन्म में वह शूद्र हुआ। व्यास जी ने उसके पास जाकर पूछा—तुम पूर्वजन्म में कीड़े थे इसका तुम्हें कुछ स्मरण है। कीड़े ने कहा—महाराज! कुछ भी नहीं इस पर व्यासजी ने कमण्डलु का जल हाथ में लेकर उसपर छिड़का जिससे उसकी पूर्व स्मृति जाग उठी और वह मुनि के चरणों में गिर पड़ा। व्यासजी उसे साधन बताकर चले गये। वह क्रम से जन्मान्तर में वैश्य और क्षत्रिय हुआ, व्यासजी बराबर उसके पास जाकर उसे स्मृति दिला-दिलाकर साधन बताते गये। अनन्तर उसका जन्म ब्राह्मणकुल में हुआ और वह कथावाचक बना। अवशिष्ट पूर्वजन्म के पातकवश वह स्त्रियों पर बुरी दृष्टि रखता था इस कारण उसके सारे शरीर में कुष्ठ हो गया। व्यासजी पुनः उसके पास पहुँचे और साधन बताते हुए उन्होंने कहा—तुम समुद्रसंगम पर चले जाओ वहाँ एक बनियाँ धन की इच्छा से धरना देकर बैठा है। तुम उसे उठाकर वहीं सिद्धपीठ पर जप करो। वैश्य से कह देना कि यहाँ जप करूँगा, मरने पर मेरा शव संगम में डलवा देना, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जाएगा। ब्राह्मण ने वहाँ जाकर वैश्य से वैसा ही कहा और वह राजी हो गया। ब्राह्मण ने व्यासजी के उपदेशानुसार ५० वर्ष तक घोर तपस्या की जिससे उसके सारे पातक धुल गये उसका शरीर तपस्या से चमक उठा। एक दिन जप करते-करते उसके प्राण पखेरू उड़ गये। वैश्य ने ब्राह्मणों द्वारा उसका शव संगम में डलवा दिया। इस तरह सत्संग के प्रभाव से वह कीड़ा अग्रिम जन्म में मैत्रेय मुनि हुआ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

तेईसवाँ अध्याय

महाराज पृथु का वानप्रस्थाश्रम तथा योग द्वारा सपत्नीक वैकुण्ठगमन

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! एक दिन महाराज पृथु ने अपने वार्धक्य का विचार कर पुत्र विजिताश्व को बुलाया और मन्त्रियों के परामर्श से उसका राज्याभिषेक कर

दिया। अनन्तर तप करने के लिए वे सस्त्रीक वन में चले गये। वहाँ उन्होंने पूर्णरूप से वानप्रस्थ नियमों का पालन करना आरम्भ किया और कन्द, मूल, फल का आहार करते हुए तप करने लगे। वे सदा भूमि पर शयन करते, कभी सूखे पत्ते खाते, कभी वायु ही पीकर रह जाते। गर्मी में पञ्चाग्नि में तप करते, वर्षा में धारासम्मत वृष्टि सहते और शिशिर में कण्ठपर्यन्त जल में खड़े रहकर भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करते हुए कठोर तप करने लगे—

आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमम् ॥७॥

सनत्कुमार जी ने जिस आध्यात्मिक योग का उपदेश दिया था तदनुसार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् की आराधना करने से उनकी भगवान् में दृढ़भक्ति हो गयी। उस भक्ति के प्रभाव से ब्रह्मविद्या तथा अणिमादि सिद्धियाँ मूर्तिमती होकर महाराज पृथु के समक्ष प्रकट हो गयीं और बोलीं—महाराज! हमें स्वीकार करें। राजा ने सिर झुकाकर सबका आदर सत्कार करते हुए उन्हें विदा किया। भक्तिदेवी की ये मुक्ति-भुक्ति आदि सभी सिद्धियाँ दासी के समान पीछे-पीछे घूमा करती हैं।

हरिभक्तिमहादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः ।
भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुद्रुताः ॥

(नारदपञ्चरात्र)

तदनन्तर महाराज पृथु ने तीक्ष्ण ज्ञानरूपी खड्ग से लिङ्ग शरीर का भी छेदन कर डाला जिससे उनका शरीराध्यास भी जाता रहा। यद्यपि उनका शरीर भगवद्विग्रह ही था, किन्तु उन्होंने लीलार्थ अपने में प्राकृतत्त्व की कल्पना कर लोकशिक्षार्थ स्वयं देहत्याग करने का मार्ग प्रशस्त किया था। एकदिन उन्होंने स्वयं शरीर त्यागने के विचार से भगवान् के स्वरूप की दृढ़ धारणा की और गुरुप्रदत्त क्रिया द्वारा एड़ी से गुदामूल को दबाते हुए प्राणापान को सम कर सुषुम्नांचारी प्राण को मूलाधार चक्र से स्वाधिष्ठान में, स्वाधिष्ठान से मणिपूर (नाभिचक्र) में नाभिचक्र से अनाहतचक्र में अनाहत चक्र से विशुद्धाख्यचक्र में और विशुद्धाख्यचक्र से भ्रूमध्य (आज्ञाचक्र) में ले गये—

गीता के अनुसार ऐसा करने पर चक्रों में स्थित पञ्चतत्त्व भी क्रम से लीन हो गये। पृथ्वी जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व प्रकृति में और प्रकृति ब्रह्म में लीन हो गयी। तत्क्षण लोकलीलार्थ उनका भौतिक-शरीर चेतनाशून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पत्नी अर्चि ने प्राणशून्य अपने पतिदेव का शरीर देखकर कुछ देर तक विलाप किया। बाद में उसे चिता पर रख दिया।

अनन्तर उसने स्नान कर अपने पतिदेव को जलाञ्जलि दी। स्वर्ग से दर्शनार्थ आये आकाश में देवताओं को नमस्कार कर चिताग्नि की तीन बार परिक्रमा की और जलती हुई अग्नि में प्रविष्ट होकर पति के साथ सती हो गयी। उसे ताप का किञ्चिन्मात्र भी अनुभव नहीं हुआ। अर्चि दिव्य शरीर से विमान में बैठकर अपने पति के पीछे

परमधाम वैकुण्ठ को चली गयी। मार्ग में आकाश से देवियों ने उस पर पुष्पवृष्टि की और उसके पातिव्रत्य की भूरि-भूरि सराहना की। इस प्रकार, अर्चि सीधे पतिलोक में अपने पति के समीप पहुँचकर दिव्यातिदिव्य आनन्द का अनुभव करने लगी। जो मनुष्य परम मंगलमय इस पृथु के चरित्र को सुनता है उसे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती है। ब्राह्मण ब्रह्मतेज से सम्पन्न, क्षत्रिय राजा, वैश्य सकल सम्पत्तियों का अधिष्ठाता और शूद्र इसे सुनकर पवित्र हो जाता है। अपुत्र पुत्रवान्, निर्धन, धनवान् तथा मूर्ख पंडित के समान हो जाता है। अर्थात् मूर्ख के हृदय में बन्धमोक्ष की जिज्ञासा जागृत हो जाती है। यह मंगलमय आख्यान रोग का निवारण करनेवाला, धन, कीर्ति, आयु तथा स्वर्गसुख को देने वाला है। जो राजा विजय की इच्छा से इस चरित्र का श्रवण कर शत्रु पर चढ़ाई करता है, उसके शत्रु वशीभूत होकर उसे कर प्रदान करते हैं। मैत्रेयजी कहते हैं—हे विदुर! भगवान् तथा भक्तों के माहात्म्य का प्रतिपादन करनेवाले इस अनुपम आख्यान का वर्णन मैंने तुझे किया। इसमें आस्था रखनेवाला पुरुष पृथु की गति वैकुण्ठ को प्राप्त करता है—

अब हम पुष्पिताग्रा छन्द से पृथु के चरणकमलों में पुष्पाञ्जलि समर्पण कर उनके चरित्र को समाप्त करते हैं।

अनुदिनमिदमादरेण श्रृण्वन् पृथुचरितं प्रथयन् विमुक्तसङ्गः ।
भगवति भवसिन्धुपोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥३९॥

जो मनुष्य प्रतिदिन श्रद्धा भक्ति से इस चरित्र का श्रवण करता है अथवा इसकी व्याख्या कर भक्तजनों को सुनाता है। उसका भगवान् में दृढ़ अनुराग हो जाता है बोलो महाराज पृथु की जय।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(पृथु-चरित्र समाप्त)

◆

चौबीसवाँ अध्याय

(२४ से ३१ तक आठ अध्यायों में प्राचीनबर्हि तथा प्रचेताओं का चरित्र)

पृथु के प्रपौत्र प्राचीनबर्हि से प्रचेताओं का जन्म और उनको श्रीरुद्र का उपदेश

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर!

विजिताश्वोऽधिराजासीत् पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ।
यवीयेभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥१॥

पृथु के ज्येष्ठपुत्र विजिताश्व चक्रवर्ती राजा हुए। उनके चार छोटे भाई हर्यक्ष, धूम्रकेश, वृक और द्रविण थे जिन्हें उन्होंने क्रमशः चारों दिशाओं का राजा बना दिया।

विजिताश्व का दूसरा नाम अन्तर्धान भी था, क्योंकि इन्द्र से उन्होंने अन्तर्धान विद्या प्राप्त की थी। विजिताश्व के शिखण्डिनी भार्या में तीन पुत्र—पावक, पवमान और शुचि उत्पन्न हुए।

पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा।
वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥४॥

वसिष्ठ जी के[1] शाप से अग्नि ही तीन रूपों से मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए और उन्हीं की कृपा से पुनः देवत्व को प्राप्त हुए।

उनकी दूसरी भार्या नभस्वती से हविर्धान हुआ। उसके बर्हिषद्, गय, शुल्क, कृष्ण, सत्य और जितव्रत ये छः पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़ा बर्हिषद् था। वह अष्टाङ्ग योग और कर्मकाण्ड में पारङ्गत था। उसने पूर्वाग्र कुशों को पृथ्वी पर बिछाकर इतने यज्ञ किये कि उसका नाम भी प्राचीनबर्हि पड़ गया। समुद्र की पुत्री शतद्रुति के साथ उसका विवाह हुआ। जिससे उसके १० पुत्र हुए। उन सबका नाम प्रचेता था। पिता ने जब उनसे सृष्टि करने को कहा तब वे पश्चिम दिशा में तपस्या करने चले गये। वहाँ एक बड़ा विशाल सरोवर था जो समुद्र से कुछ ही छोटा था। उसका जल बड़ा ही निर्मल था। नाना प्रकार के कमल उसमें खिले थे। हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षी मनोहर कलरव करते थे और भ्रमर भी मधुर-मधुर गुञ्जार कर रहे थे। वहाँ उस सरोवर में उन्हें वीणा, मृदङ्ग, पणव आदि वाद्यों की ध्वनि और स्वर ताल से मिश्रित बड़ा सुन्दर गान होता सुनायी पड़ा। इससे उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने तत्क्षण उस सरोवर से तप्त सुवर्ण के समान देदीप्यमान प्रसन्नवदन नीलकण्ठ भगवान् शिव को निकलते देखा। उन्हें देखकर वे सब आश्चर्यचकित हो उठे। तुरन्त दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। भगवान् शिव ने कहा—हे प्रचेताओं! तुम प्राचीनबर्हि के पुत्र हो। तुम्हारा अभिप्राय जानकर ही मैंने तुम्हें दर्शन दिया है। तुम भगवान् के भक्त हो। अतएव मेरे

---

[1] एक समय वसिष्ठजी की पत्नी अरुन्धती के सौन्दर्य पर रीझकर अग्निदेव उन पर आसक्त हो गये। अग्नि-पत्नी स्वाहा ने यह जानकर अरुन्धती का रूप बनाया और अपने पतिदेव का मनोरथ पूर्ण किया किन्तु वह पूर्णरूपसे अरुन्धती का रूप धारण न कर सकी, अतः अग्निदेव उन्हीं पर मोहित रहे। वसिष्ठजी ने योगबल से अग्निदेव की यह कुचेष्टा जानकर उन्हें बुलाकर कहा—तुम मेरी पत्नी का पातिव्रत्य भङ्ग करना चाहते हो, अतः तुम मनुष्य योनि में चले जाओ। इसी शाप के कारण अग्निदेव तीन पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। अग्नि को अपने तेज का बड़ा गर्व था। उसके नाशार्थ भगवान् शिव ने यह लीला की थी। उसी से मोहित होकर अग्निदेव ऐसे निन्दित कर्म में प्रवृत्त हुए थे। स्वतः वे निर्दोष हैं।

पावकोऽपि जगच्छ्रेष्ठो मोहितः शिवमायया।
कामाधीनः कृतो गर्वात्ततस्तेनैव चोद्धृतः ॥
(शिवपुराण उमासंहिता ४-१९)

अत्यन्त प्रिय हो। जो प्रकृति और पुरुष से परे भगवान् वासुदेव के शरणागत है वह मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्
विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम्।
अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं
पदं यथाऽहं विबुधाः कलात्यये ॥२९॥

अपने धर्म में निष्ठा रखनेवाला पुरुष सौ जन्मों में ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। उससे भी अधिक पुण्य होने पर मुझे शिवलोक को प्राप्त करता है। सर्वत्र भगवद्दृष्टि रखनेवाला वैष्णव तो देह त्यागने पर सीधा अप्राकृत विष्णुलोक में चला जाता है। उसके मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट नहीं होती, जैसे मैं तथा अन्य अधिकारी देवता अधिकार की समाप्ति पर वैष्णव पद को प्राप्त करते हैं। तुम सदुपदेश के बिना भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकते। अतः मैं तुम्हें भगवत्प्राप्ति के लिए योगादेश नामक स्तोत्र का उपदेश करता हूँ—

जो रुद्रगीत नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भगवान् के दिव्य स्वरूप का वर्णन है। तुम एकान्त में स्थिरचित्त होकर इसका जप करो। इसके पाठ से तुम्हें भगवान् का साक्षात्कार होगा और तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे। यह कहकर भगवान् शिव ने हाथ जोड़कर खड़े हुए प्रचेताओं को रुद्रगीत का उपदेश दिया। इस रुद्रगीत में ३६ श्लोक है। प्रथम श्लोक से भगवान् के उत्कर्षण का वर्णन कर आनन्दसत्ता-लाभ के लिए सर्वस्वरूप भगवान् को नमस्कार किया गया है। दो श्लोकों से अन्तःकरण के अधिष्ठाता वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन ४ देवताओं को नमस्कार कर सात श्लोकों से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, सोम तथा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप से भगवान् का अभिवादन किया है। नौ श्लोकों से भगवान् के दर्शन की प्रार्थना की गयी है। पन्द्रह श्लोकों से भगवान् की दुर्लभता तथा सत्सङ्ग की महिमा बताकर अनुग्रह, तत्त्वज्ञान आदि भगवान् से ही प्राप्त होते हैं, ऐसा कहकर अन्त में दो श्लोकों से रुद्र के भय से त्रस्त जगत् की रक्षा के लिए भगवान् से प्रार्थना कर स्तोत्र की समाप्ति की गयी है।

इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः।
शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ॥७८॥

जो मनुष्य ब्राह्म मुहूर्त में उठकर इस स्तोत्र का श्रद्धा और भक्ति से पाठ करता है अथवा सुनता है या सुनाता है वह कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है।

गीतं मयेदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम्।
जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम् ॥७९॥

हे प्रचेताओं! मैंने तुम लोगों के लिए परम पुरुष परमात्मा के इस दिव्य स्तोत्र का उपदेश किया है। तुम एकाग्रचित्त से इसका जप करते हुए तप करो इससे तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

पच्चीसवाँ अध्याय

(२५ से २९ तक पुरञ्जनोपाख्यान)

प्राचीनबर्हिको पुरञ्जन-कथा द्वारा नारद का तत्त्वोपदेश

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! प्रचेताओं को भगवान् शिव इस प्रकार रुद्रगीत का उपदेश देकर उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। अनन्तर वे सभी प्रचेता जल के अन्दर जाकर दस हजार वर्षों तक इस स्तोत्र का जप करते हुए घोर तप करने लगे।

प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ।
नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ।।३।।

इधर प्राचीनबर्हिको कर्मकाण्ड में अत्यन्त आसक्त देखकर नारदजी को उस पर दया आ गयी। वे उसे ज्ञान का उपदेश देने के लिए उसके समीप गये और समझाते हुए बोले—राजन्! तुम किस कर्म से आत्मा का श्रेय प्राप्त करना चाहते हो। जो कुछ कर्म तुम कर रहे हो इससे न दुःख की निवृत्ति हो सकती है और न सुख की प्राप्ति ही। ऐसा कर्म करने से क्या लाभ? प्राचीनबर्हि ने कहा—भगवन्! कर्म करते-करते तो मेरी बुद्धि विक्षिप्त-सी हो गयी है। श्रेय का मार्ग क्या है इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं? आप कृपाकर मुझे उत्तम ज्ञान का उपदेश करें। नारदजी ने कहा—राजन्! यज्ञ में तुमने जिन पशुओं का वध किया है। उन्हें आकाश में देखों, वे तुम्हें मारने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

जब तुम मरकर परलोक में जाओंगे तब वे सब क्रुद्ध होकर लोहे के-से तीक्ष्ण सींगों से तुम्हारा शरीर छिन्न-भिन्न कर डालेंगे।

इस संकट से निस्तार करनेवाला राजा पुरञ्जन का अध्यात्मविषयक इतिहास मैं तुम्हें सुनाता हूँ। तुम इसे ध्यानपूर्वक सुनो। पुरञ्जन नामक एक राजा था जिसकी संसार में बड़ी कीर्ति फैली हुई थी। अविज्ञात नाम का उसका एक मित्र भी था। पुरञ्जन अपने रहने के लिए पृथ्वी पर एक रमणीय स्थान खोजने निकला, किन्तु उसे अपने अनुरूप कोई स्थान मिला नहीं। तब वह हिमालय के दक्षिण प्रदेश में गया। वहाँ उसने एक दिव्य नगर देखा जिसमें नौ दरवाजे बने थे। उसके चारों ओर परकोटा और खाई थी। वन उपवन, अटारी तथा सुवर्ण-शिखरयुक्त भवनों से वह नगर सुशोभित था। वहाँ की भूमि विचित्र मणियों से बनी थी। वह नगर सभी साधनों से पूर्ण था। नगर के बाहर एक

दिव्य बगीचा भी था। जिसमें बड़े सुन्दर जलाशय और झरने थे। जिन्हें देखकर सबका मन आकृष्ट हो जाता था। इस दृश्यावली से मुग्ध होकर वह वहाँ बगीचे की सैरं करने लगा। उसी समय, एक सुन्दर युवती दस भृत्य एवं अपनी सखियों के साथ घूमती हुई उधर से आ निकली। उसके दाँत, नासिका और कपोल अत्यन्त मनोहर थे। उभरे हुए अपने छोटे-छोटे स्तनों को वह अपनी साड़ी से ढकती जाती थी। पाँच सिर वाला एक सर्प उसकी रक्षा कर रहा था। पुरञ्जन उसे देखकर उसपर मोहित हो गया और उसने उसके पास जाकर पूछा—

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति।
इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे॥२६॥

हे सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? कहाँ से आई हो? यहाँ क्या करना चाहती हो? तुम्हारे साथ में ये कौन हैं? तुम लक्ष्मी हो अथवा सरस्वती हो? तुम्हारा सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक है। तुम मेरे साथ विवाह कर इसी पुरी में रहो। तुम्हें देखकर मैं काम से अत्यन्त व्याकुल हो गया हूँ तुम मेरी रक्षा करो और थोड़ा-सा घूँघट खोलकर ढकी हुई अपनी मुखश्री मुझे दिखा दो। नारदजी बोले—हे राजन्! पुरञ्जनकी ऐसी प्रार्थना सुनकर हँसती हुई वह तरुणी बोली—हे राजन्! मैं अपना नाम और गोत्र नहीं जानती। मुझे इस पुरी के बनानेवाले का भी ज्ञान नहीं। ये सखा और सखियाँ मेरे साथ है। जब मैं सो जाती हूँ तो यह सर्प ही इस पुरी की रक्षा करते हैं। तुमको मेरे नाम और गोत्र से क्या प्रयोजन? तुम यहाँ आ गये यही बहुत है। तुम्हारी विशाल बाहु और वक्षस्थल देखकर किस स्त्री का चित्त तुमपर आसक्त न होगा। मैं सौ वर्ष तक इन नाना प्रकार के भोगों से तुमको प्रसन्न करती रहूँगी। इस वार्तालाप के अनन्तर वे दोनों एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रखकर पुरी के अन्दर चले गये। वहाँ दोनों ने परस्पर खूब विहार किया। वे थकावट दूर करने के लिए जलाशय में प्रवेश कर कभी जलक्रीड़ा भी किया करते थे। उस पुरी के ऊपरी भाग में सात दरवाजे थे। पाँच दरवाजे पूर्व दिशा में, एक दक्षिण में और एक उत्तर में था। दो दरवाजे पुरी के पश्चिम भाग में थे। पुरञ्जन नाना प्रकार के विषयों का भोग उन्हीं दरवाजों से जाकर किया करता था। वह अपनी पत्नी में इतना आसक्त हो गया था कि जब वह खाती-पीती थी तभी यह भी खाता-पीता था। जब वह सोती थी तभी वह सोता था जब जागती थी तभी जागता था। अपना सारा ज्ञान गँवाकर वह उस स्त्री का क्रीड़ा-मृग सा बन गया था। **क्लैब्यात्क्रीड़ामृगो यथा।**

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

छब्बीसवाँ अध्याय

पुरञ्जन का मृगयार्थ वनगमन तथा उसके विरह से कुपित रानी को सान्त्वना-प्रदान

नारदजी बोले—हे राजन्! एक दिन राजा पुरञ्जन हाथ में विशाल धनुष और बाण लेकर शीघ्रगामी रथपर चढ़कर शिकार खेलने पञ्चप्रस्थ नामक वन में गये—

पञ्चप्रस्थमगाद् वनम् ।

रानी को छोड़कर शिकार की लालसा से धनुष पर बाण चढ़ाकर वन में इधर-उधर घूमने लगे। वहाँ आसुरी वृत्ति धारण कर उन्होंने निर्दयता से शश, मृग, वराह आदि जीवों का वध करना आरम्भ किया और जब थकावट आ गयी तब भूख-प्यास से व्याकुल होकर घर लौटे। वहाँ स्नान, भोजनादि से निवृत्त होकर चन्दन, माला, इत्र आदि से अपना शृङ्गार किया और काम से व्याकुल हो अपनी रानी को खोजने लगे। जब वह नहीं मिली तब घबड़ाकर अन्त:पुर की स्त्रियों से पूछा—देवियों! तुम्हारी मालकिन कहाँ है? उसके बिना सारा घर सूना-सा मालूम पड़ रहा है। वह समय-समय पर ज्ञान का उपदेश देकर मेरा दु:ख दूर करती थी। आज वह कहाँ गई? स्त्रियों ने कहा—राजन!

नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद्व्यवस्यति ।
भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१७॥

तुम्हारी रानी के मन की बात तो हम जानती नहीं। न जाने क्यों वे आज नाराज होकर बिना विस्तर के जमीन पर पड़ी हैं। नारदजी ने कहा—हे राजन् पुरञ्जन इस प्रकार अपनी स्त्री को पृथ्वी पर पड़ी देखकर घबड़ा उठे और अतिमधुर वाणी से उसे मनाने लगे। उसके पैर छूकर उन्होंने उसे अपनी गोद में बैठा लिया और बोले—

पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् ॥२०॥

देवि! मैं आज तुमसे बिना पूछे शिकार खेलने चला गया था। मुझे क्षमा करो या दण्ड दो, पर एक बार अपना सुन्दर मुख ऊपर उठाकर मुझे दिखा दो। यदि किसी दूसरे ने तुम्हारा कोई अपराध किया हो तो बतलाओं मैं उसे उचित दण्ड दूँगा। तुम्हारा मुख आज मलिन और क्रोधयुक्त मालूम पड़ता है। अधरोष्ठ की लालिमा भी छूट गयी है। तुम अब मुझपर प्रसन्न हो जाओ और मेरा अपराध क्षमा करो। मैं तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करनेवाला सेवक हूँ। मुझे अपना लो और क्रोध शान्त कर एक बार मुझे अपनी प्रेमभरी दृष्टि से निहार लो।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक-पारायण का आठवाँ विश्राम)

❖

सत्ताईसवाँ अध्याय

पुरञ्जन का रानी से विहार, नगर पर चण्डवेग का आक्रमण और उसकी कन्या जरा का नारद को शाप

नारदजी बोले—हे राजन्! राजा पुरञ्जन की पूर्वोक्त चाटुकारिता सुनकर रानी उस पर रीझ गयी और प्रेम भरी चितवन से उसे निहारती हुई, उसके साथ विहार करने लगी। राजा और रानी दोनों ने अद्भुत शृङ्गार किया और वे दोनों परस्पर एक दूसरे पर मुग्ध हो गये।

तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ।
न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥

रानी राजा का आलिङ्गन कर उसके गले से लिपट गयी और धीरे-धीरे दोनों सुरतसम्बन्धी गुप्त बातों में तल्लीन हो गये। राजा का चित्त इतना विभोर हो उठा था कि उसे काल का भी परिज्ञान न रहा। रात-दिन वह रानी के साथ विहार में तल्लीन रहता था। मद्यपान कर एक विशाल पर्यङ्क पर रानी की बाहु का तकिया लगाकर वह सोता था। स्त्री के साथ सम्भोग ही उसका परम पुरुषार्थ बन गया और उसे अपने वास्तविक स्वरूप का भी ज्ञान न रहा। इस प्रकार विहार करते उसकी युवावस्था आधे क्षण के समान बीत गयी, रानी के ग्यारह सौ पुत्र और एक सौ दस कन्याएँ हुईं। पाञ्चाल देश के राजा पुरञ्जन ने अपने पुत्रों का विवाह सुन्दरी कन्याओं से तथा कन्याओं का विवाह सुन्दर वरों से यथासमय सम्पन्न कर दिया। उसके पुत्रों में भी एक-एक के सौ-सौ पुत्र हुए जिससे पञ्चाल देश में पुरञ्जन का वंश बहुत फैल गया। अपने परिवार में राजा की ममता बहुत बढ़ी और वह अपना परिवार देखकर बड़ा प्रसन्न होता था। एक बार उसने पशु-बलि के विशाल यज्ञों द्वारा देवता और पितरों का यजन आरम्भ किया, जैसा कि तुम कर रहे हो। अनन्तर एक दिन राजा पुरञ्जन ने नगर पर गन्धर्वों के अधिपति राजा चण्डवेग ने चढ़ाई कर दी। जिसकी सेना में गन्धर्व और गन्धर्वियाँ ही युद्ध करती थीं। उनकी संख्या ७२० थी। वह सेना पुरञ्जन की पुरी को नष्ट-भ्रष्ट करने लगी। पुरी के रक्षक प्रजागर ने अकेले ही उन सैनिकों को रोका।

प्रत्यषेधत् प्रजागरः ।

और उनके साथ युद्ध करने लगा, पर विशाल सेना के समक्ष अकेले युद्ध में वह पार न पा सका। राजा को नगर और परिवार की चिन्ता सता रही थीं। इस चण्डवेग राजा की एक पुत्री जरा थी, जो त्रिलोकी को अपना पति बनाना चाहती थी किन्तु उसे कोई भी स्वीकार नहीं करता था। एक दिन मैं (नारद) ब्रह्मलोक से भूलोक में आ रहा था कि मार्ग में मेरी उससे भेंट हो गयी। उसने मुझे ही पति बनाना चाहा। जब मैंने

इसका निषेध किया तब उसने मुझे शाप दे डाला कि हे मुनिवर! आपने मेरी इच्छा पूर्ण नहीं की, इसलिए आप पृथ्वी पर कहीं एक जगह स्थिर नहीं रह सकेंगे।

स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥२२॥

अनन्तर मैंने उसे समझाया तुम यवनराज भय को अपना पति बना लो। मेरे कथनानुसार वह कन्या भय के पास गयी। भय ने उससे कहा यदि संसार में तुम्हें कोई ग्रहण नहीं करता है तो तुम गुप्तरूप से सब प्राणियों का उपभोग किया करो। मेरे सैनिकों के साथ जमकर प्रजा का संहार करो। प्रज्वार मेरा भाई है और तुम मेरी बहन बन जाओ। मैं तुम दोनों के साथ गुप्तरूप से संसार में भ्रमण कर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

अट्ठाईसवाँ अध्याय

पुरञ्जन को स्त्रीत्व की प्राप्ति और सत्सङ्ग से उसकी मुक्ति

नारद जी बोले—हे राजन्! यवनेश्वर राजा भय के सैनिक प्रज्वार और कालकन्या जरा के साथ पृथ्वी पर घूमने लगे—

त एकदा तु रभसा पुरञ्जनपुरीं नृप ।
रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥२॥

उन्होंने बड़े वेग से राजा पुरञ्जन की पुरी, जिसकी रक्षा एक बूढ़ा सर्प करता था, उसे घेर लिया। कालकन्या जरा बलात्कार से उस पुरी का उपभोग करने लगी। यावनी सेना ने चारों ओर से उस पुरी में घुसकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यह देखकर राजा पुरञ्जन को महान् क्लेश हुआ। उस समय उसके पुत्र पौत्र कोई भी उसकी सहायता न कर सके। पूरा पाञ्चाल देश शत्रुओं से आक्रान्त हो गया। राजा पुरञ्जन उस पुरी का परित्याग करने का विचार कर ही रहा था कि राजा भय के बड़े भाई प्रज्वार ने आकर उस पुरी में आग लगा दी। पुरञ्जन उससे व्याकुल हो उठा। उसे अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री और कन्याओं की चिन्ता सताने लगी। वह सोचने लगा—मेरे न रहने पर मेरी स्त्री किस प्रकार घर का भार सम्भालेगी। वह बड़ी पतिव्रता है। मैं उसे कहाँ पाऊँगा? वह यह सब सोच ही रहा था कि उसी समय राजा भय ने आकर पुरी के रक्षक सर्प को घेरा तो वह पुरी से निकल भागा और पुरी नष्ट हो गयी। पुरञ्जन भी मृत्यु को प्राप्त हो गया। जब वह मरकर यमलोक में पहुँचा तब वहाँ यज्ञ में मारे पशुओं ने उसका शरीर कुठारों से विदीर्ण कर डाला।

कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ॥२६॥

इस प्रकार नरक में सैकड़ों वर्ष तक नाना यातना भोगता हुआ पुरञ्जन अगले जन्म में राजा विदर्भ के घर कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ इसका नाम वैदर्भी पड़ा जब इसका स्वयंवर हुआ तब राजा मलयध्वज ने सब राजाओं को जीत कर इसके साथ विवाह किया। मलयध्वज ने उससे सात पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की। सातों पुत्र द्रविड देश के राजा हुए और इनमें से प्रत्येक ने बहुत से पुत्र उत्पन्न किए जिन्होंने उस मन्वन्तर का उपभोग किया। मलयध्वज की कन्या का विवाह अगस्त्य के साथ हुआ जिसके पुत्र दृढ़च्युत हुए। दृढ़च्युत का पुत्र इध्मवाह हुआ। अन्त में राजा मलयध्वज अपने पुत्रों को पृथ्वी का राज्य सौंपकर भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना के लिए एक पर्वत पर चले गये। उनके पीछे उनकी रानी वैदर्भी भी चली गयी। वहाँ दिव्य नदियों में स्नान कर राजा का चित्त निर्मल हो गया। वह कन्दमूल और फल खाकर कठोर तप द्वारा शरीर सुखाने लगे। उन्होंने सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास को जीतकर एक पैर पर खड़े होकर सौ वर्ष तक भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना की और उन्हीं के मन्त्र का जाप किया। उससे उनका चित्त स्थिर हो गया। उन्हें बाहर का कुछ भी ज्ञान न रहा। कुछ दिन बाद उनका शरीर छूट गया और वह भगवान् के धाम चले गये। वैदर्भी इस दशा में अकेली उस वन में भयभीत होकर विलाप करने लगी—हे राजन्! आप उठकर पृथ्वी का पालन करें। मुझे अकेली छोड़कर आप कहाँ चले गये। इस प्रकार करुण विलाप करती हुई वह अपने पति का शरीर चिता पर रखकर सती होने का विचार कर ही रही थी कि उसके पूर्वजन्म का अविज्ञात नामक सखा आया। वह मधुर वाणी में बोला—

का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि।
जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥५२॥

अरे, तू कौन है? किसकी कन्या है? यह कौन सो रहा है जिसका तू शोककर रही हैं? मैं तेरा मित्र हूँ क्या तू मुझे भी भूल गयी? हम-तुम दोनों किसी समय मानसरोवर में विचरते थे। तुम मुझे छोड़कर बिषयभोग के लिए किसी स्त्री के निर्मित नगर में चले गये थे। वहाँ किसी रानी से तुम्हारा सम्बन्ध हो गया था। उसी से तुम्हारी यह दशा हुई है। तुम न तो विदर्भ की कन्या हो और न यह तुम्हारा पति है। यह सब तो नौ दरवाजें वाली पुरी में तुम्हारे घूमने का ही फल है। इसी से तुमको यह सब विपरीत ज्ञान हो गया है। हम और तुममें कुछ भी अन्तर नहीं है। जब इस प्रकार मित्र ने वैदर्भी को समझाया तब उसे ज्ञान हुआ और उसकी पूर्वजन्म की स्मृति जागृत हो गयी। दोनों मित्र पुनः परस्पर मिलकर आनन्द करने लगे। नारद जी बोले—हे राजन्! मैंने राजा पुरञ्जन की कथा के व्याज से तुमको अध्यात्म-ज्ञान का उपदेश किया है। तुम इसका बुद्धि से विचार करो। इससे तुम्हारा सांसारिक क्लेश निवृत्त हो जायगा एवं तुम्हें परम शान्ति प्राप्त होगी।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

उन्तीसवाँ अध्याय

पुरञ्जनोपाख्यान का सरल आध्यात्मिक अर्थ और राजा प्राचीनबर्हिकी मुक्ति

प्राचीनबर्हि ने कहा—

भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते।
कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥१॥

देवर्षे! मैं आपके इस कथन का अभिप्राय ठीक-ठीक नहीं समझ सका। ऐसे गूढ़ विषयों का अभिप्राय विद्वान् पुरुष ही समझ सकते हैं कर्मकाण्ड के चक्कर में पड़े हम लोग नहीं जान सकते। आप कृपया इसकी स्पष्ट व्याख्या कर मुझे समझायें। नारद जी ने कहा—हे राजन्! यहाँ पुरञ्जन का अर्थ जीव है। उसका मित्र अविज्ञात स्वयं ईश्वर ही है। जीव अपने मित्र ईश्वर का संग त्याग कर संसार में अपने रहने का स्थान खोजने लगा। वहाँ उसे संसार में पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि कोई भी योनि पसन्द नहीं आयी। वह हिमालय के दक्षिण में स्थित भारतवर्ष में गया। वहाँ मनुष्ययोनिरूप पुरी को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसमें उसका मन रम गया। मनुष्ययोनि रूप पुरी के पूर्व-भाग में दो नेत्र, दो नासिकाछिद्र और एक मुख ये पाँच दरवाजे हैं। एक दरवाजा दक्षिण में और एक उत्तर में है जो दोनों कान के छिद्र हैं। जो दरवाजे पश्चिम में हैं। जिनमें एक मूत्रद्वार और दूसरा मलद्वार है। विषय भोग के लिए जीव इसी नौ दरवाजे वाली मानव-तन-रूपी पुरी में प्रविष्ट हो गया है। वहाँ उसके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के ५ बगीचे देखे जिनमें वह घूमने लगा। वहीं उसने घूमती हुई 'बुद्धि' रूपी सुन्दरी के दस सखा ही दस इन्द्रियाँ हैं और इन्द्रियों की वृत्तियाँ ही उस 'बुद्धि' सुन्दरी की सखियाँ है। इन्हीं में बृहद्बल नामक 'मन है जो इन्द्रियों का नायक है। इस पुरी की रक्षा करने वाला 'पञ्च-प्राण ही पाँच सिरवाला सर्प है। यह मानवतनुरूपी पुरी पाँच विषयों को पूर्ण करती हैं, इसीलिए इसका दूसरा नाम 'पञ्चाल देश भी है। इसमें दरवाजे और भी हैं—हाथ और पैर, जो छिद्रहीन होने के कारण अन्धे कहे गये हैं। इन्हीं दो मार्गों से जीव गमन करता है और अभीष्ट वस्तुएँ लाता है। सुन्दरी रानी बुद्धि से विवाह कर जीव उसी के फेर में पड़कर इसी पुरी में रम जाता है। बुद्धि जीव को जो संकेत करती है उन्हें जीव पूर्ण करता रहता है और वह उसे क्रीड़ामृग बनाकर नचाती रहती है। इस प्रकार नाना प्रकार के विषयों का आनन्द लेता हुआ जीव स्वप्न-देह-रूपी रथ पर चढ़कर पञ्चप्रस्थ वन में जाता है और पाँच विषयों से पूर्ण है। वहाँ शिकार में मृगों को मारने की तात्पर्य कर्तृत्त्व के अभिमान से अहंकारवश अबलाओं से विषयभोग करना है। थक जाने पर पश्चात्ताप और स्नान-जपादि से प्रायश्चित कर धर्मानुष्ठान में

प्रवृत्ति ही वन से घर लौटने का तात्पर्य है। अपनी स्त्री सात्त्विकी बुद्धि का अनादर कर राजसी बुद्धि से विषयभोग की लालसावश वह वन में गया था। यही उसकी स्त्री की अप्रसन्नता का कारण है और इसी से जीव उसके पास आकर क्षमा-याचना करता है। यहाँ जीव के ११०० पुत्र हुए, जो मन सहित ११ इन्द्रियों द्वारा सात्त्विक बुद्धि के विवेक, निर्णय आदि परिणाम है। बुद्धि की लज्जा आदि वृत्तियाँ ही पुरञ्जन की ११० कन्याएँ हैं। बुद्धि के परिणामस्वरूप पुत्रों का विवाह जीव इष्टानिष्ट-चिन्ता-रूपी कन्याओं से करता है और बुद्धिवृत्तिरूपी कन्याओं का विवाह विषयभोगरूपी वरों के साथ करता है। इन्हीं सबसे अनन्त परिणाम और वृत्तियाँ उत्पन्न हुई जिनसे संसार परिपूर्ण है। चण्डवेग नाम वर्षरूप काल दिन-रात की आवृत्तिरूप गन्धर्व और गन्धर्वियों की अपनी सेना से, जिनकी संख्या ७२० है, देहपुरी की आयु को क्षीण करता है। शरीर का अध्यक्ष प्राण अकेला ही सौ वर्ष तक उनके साथ लड़ने का संकल्प कर युद्ध करता है। काल की कन्या जरा (वृद्धावस्था) जिसका त्रिलोकी में कोई वरण करना नहीं चाहता था, क्योंकि उससे पुरुष कुरूप हो जाता है। केवल ययाति के पुत्र पूरु ने इसका वरण किया था, जिससे प्रसन्न होकर जरा ने पुरु को भूमण्डल का अखण्ड राज्य दिया था। यह जरा मृत्यु की दूती बनकर प्राणियों को सचेत करती हैं—

कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले समागत्य वक्तीति लोकाः शृणुध्वम्।
परस्त्रीपरद्रव्यवाञ्छां त्यजध्वं भजध्वं रमानाथपादारविन्दम्॥

मृत्यु की दूती जरा (वृद्धावस्था) यमराज का काम करती हुई मनुष्यों के कल्याणार्थ उनके कानों के समीप जाकर कहती है—अरे संसारी मनुष्यों! तुम भगवान् के चरणकमल का भजन करो। यह भजन तभी सफल होगा जब तुम इन दोनों वस्तुओं का मन से त्याग कर दोगे—(१) पराई स्त्री को बुरी दृष्टि से देखना तथा (२) दूसरे की सम्पत्ति को हड़पना। जरावस्था मनुष्यों को कैसा कुरूप कर देती है इस पर भी तनिक ध्यान दें—

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नैव शृणोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते
हा कष्टं जरयाऽभिभूतपुरुषं पुत्रोऽप्यमित्रायते॥

शरीर सूख जाता है, चलना फिरना कठिन हो जाता है, दाँत गिर जाते हैं, दृष्टि कम हो जाती है बधिरता बढ़ने लगती है, मुख से लार टपकती है। सगे सम्बन्धी भी कोई बात नहीं सुनते, पत्नी सेवा नहीं करती; खेद है अधिक क्या कहें पुत्र भी जरा से आक्रान्त पिता को शत्रु की तरह देखता है। आदि शङ्कराचार्य ने भी इस अवस्था का बड़े मार्मिक ढंग से चित्रण किया है, उसपर भी दृष्टि दें—

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्॥
यावद् वित्तोपार्जनशक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाद् धावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे॥
वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः।
क्षीणे वित्ते कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते।

अङ्ग शिथिल हो गया, बाल पक गये, मुख में एक भी दाँत नहीं रहा, बूढ़ा लाठी का सहारा लेकर चलता है, फिर भी आशा उसका पिण्ड नहीं छोड़ती। जब तक मनुष्य धनोपार्जन में समर्थ रहता है तभी तक उसका परिवार उससे अनुराग करता है। वृद्धावस्था आने पर घर में कोई भी उसकी बात नहीं पूँछता। अवस्था ढलने पर कामवासना नहीं रहती, जल के सूखने पर तालाब भी तालाब नहीं कहा जाता, धन-सम्पत्ति का नाश होने पर परिवार साथ नहीं देता एवं आत्मस्वरूप का ज्ञान होने पर फिर संसार भी नहीं रहता इसलिए अरे मूढ़ों! गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजे पुनः पुनः गोविन्द को भजो, तभी संसार से निस्तार हो सकता है। यह जरा यवनों (आधि-व्याधियों) के साथ राजा भय (मृत्यु) से साँठ-गाँठ कर उसके भाई प्रज्वार (वैष्णव ज्वर) के साथ गुप्त रूप से प्रजा का संहार करती है। इसी जरा ने मृत्यु और वैष्णव ज्वर के साथ उस पुरञ्जन पुरी (जीव के शरीर) पर आक्रमण किया, जिसकी रक्षा बूढ़ा सर्प (प्राण) करता था। कालकन्या जरा मनुष्य को वृद्ध बनाती है और राजा भय (मृत्यु की यवनसेना) आधि-व्याधियाँ इन्द्रियों द्वारा जीव के शरीर में प्रवेश कर आँख, कान, नाक, हाथ पैर आदि सभी इन्द्रियों और अंगों को शिथिल कर देती हैं। बुद्धिरूपी स्त्री के पुत्र कोई भी सहायता नहीं कर पाते। इसी समय मृत्यु का बड़ा भाई प्रज्वार (वैष्णव ज्वर) आकर शरीररूपी पुरी में ज्वररूप से आग लगा देता है। उसके प्राण निकल जाते हैं। यही पुरञ्जन पुरी का ध्वंस कहा गया है। यमलोक में पहुँचने पर उसके द्वारा यज्ञ में मारे गये पशु उससे बदला लेने के लिए कुठारों से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। वह बहुत दिन तक अपने पापों का फल नरक में भोगता रहता है। दूसरे जन्म में वह एक कर्मनिष्ठ राजा विदर्भ की कन्या वैदर्भी हुई और भगवद्भक्त मलयध्वज के साथ उसका विवाह हुआ। इसका तात्पर्य है कि विषयी जीव को भगवद्भक्त का सङ्ग प्राप्त हुआ। तदनन्तर उसे कृष्ण से रुचि नामक एक कन्या और (१) श्रवण, (२) कीर्तन, (३) स्मरण, (४) पादसेवन, (५) अर्चन, (६) वन्दन और (७) दास्य नामक सात पुत्र हुए जो द्रविड देश के पालक कहे गये हैं। द्रविड भूमि भक्ति के लिए प्रसिद्ध है। अगस्त्य ने वैदर्भी की कन्या कृष्णसेवारुचि से विवाह किया, जिससे दृढ़च्युत पुत्र

हुआ उससे इध्मवाह हुआ। तात्पर्य यह है कि अगस्त (मन) का कृष्णसेवा में अनुराग हुआ जिससे वह दृढ़च्युत[१] बनकर ऐतिहासिक और पारलौकिक भोगों से विरक्त हो गया और उसने गुरुसेवा के लिए इध्मों (समिधाओं) का वहन किया। स्त्रियों का गुरु पति ही हैं। इसलिए उसने पति की ही सेवा की है।

तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

मलयध्वज पृथ्वी पर श्रवण, कीर्तनादि भक्ति का प्रचार कर कृष्ण की आराधना के लिए वेंकटाद्रि पर चला गया और वहाँ सौ वर्ष तक तपकर उसने भगवान् का लोक प्राप्त किया। अनन्तर वैदर्भी के विलाप और सती होने के समय पहले के अविज्ञात नामक मित्र रूप भगवान् आये और उनके द्वारा यह कौन है जिसका तू शोक कर रही है? न तू विदर्भ की 'कन्या है और न यह तेरा पति है' यों स्वरूप का स्मरण कराने से पूर्वस्मृति का जागरण कहा गया है।

जीव अपने अंशी ईश्वर से पुनः मिलकर सर्वदा के लिए आनन्दमय हो गया। इस प्रकार नारद जी ने प्राचीनबर्हि राजा को सारी बातें पुरञ्जनकथा के व्याज से स्पष्ट कर समझा दी। हे राजन्! तू महामूर्ख है जो तूने सारी पृथ्वी कुशों से पाट दी और यज्ञ में पशुओं का वध कर अभिमानी हो अपने को बड़ा कर्मनिष्ठ समझने लगा है। जो वास्तविक कर्म है उसे तू जानता ही नहीं। वस्तुतः जिससे भगवान् प्रसन्न हो वही कर्म है और जिससे भगवान् में निश्चल मति हो वही विद्या है—

तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया।

सात्त्विक राजस और तामस कर्मों से देव मनुष्य, तिर्यक् आदि योनियों में भ्रमण करता हुआ यह जीव प्रारब्ध के अनुसार सुख-दुःख भोगता रहता है। उसे वास्तविक शान्ति कदापि नहीं होती जैसे भूख से व्याकुल कुत्ता घर-घर चक्कर मारता हुआ कहीं डण्डा और कहीं रोटी का टुकड़ा प्रारब्धानुसार पा जाता है। दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीन प्रकार के दुःखों में से कोई न कोई दुःख जीव को सदा बना ही रहता है। चाहे कितना ही प्रतीकार क्यों न करें सर्वथा दुःख की निवृत्ति नहीं होती। लोक में जो प्रतीकार किये जाते हैं, वे भी सब दुःखरूप ही हैं। जैसे भारवाहक भारी बोझा सिरसे वहन करता है और थकने पर वह उसे कन्धे पर रख लेता है, कन्धे के पीठ पर पीठ से कमर पर किन्तु उसका भार सर्वथा निवृत्त नहीं होता। उसी प्रकार जितने भी उपाय दुःख निवृत्ति के लिए किये जाते हैं, वे सर्वथा दुःखनिवर्त्तक नहीं होते—

यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन्।
तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥३३॥

स्वप्न में पुत्र के मरने से दुःख की अनुभूति होती है, किन्तु जीवित होने पर कुछ देर के लिए दुःखनिवृत्त हो जाता है, परन्तु जब पुनः उसे सर्प डस लेता है तो दुःख

---

[१] दृढेभ्यो ब्रह्मलोकादिभ्योऽपि च्युतः निस्पृहः।

फिर ज्यों का त्यों हो जाता है, इससे यह सिद्ध होता है कि जैसे स्वाप्निक दुःख की निवृत्ति जागरण के बिना नहीं हो सकती, उसी प्रकार सांसारिक दुःख की निवृत्ति संसारनिवृत्ति के बिना नहीं हो सकती। संसार की निवृत्ति भगवान् में निश्चल भक्तियोग से ही हो सकती हैं। वह भक्तियोग नित्य श्रद्धापूर्वक भगवत्कथा के श्रवण से होता है। यह कथा भक्तों के समाज में ही सुलभ होती है।

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र-
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णै-
स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥४०॥

भक्तों के समाज में विद्वान् महात्माओं के मुखकमल से निःसृत भगवान् के मंगलमय चरित्रों की अमृतमयी नदियाँ चारों ओर बहा करती हैं जो उनका निरन्तर आदरपूर्वक सेवन करते हैं, उन्हें भूख, प्यास, भय, शोक, मोह आदि सांसारिक दुःख पीड़ा नहीं पहुँचा सकते।

हे राजन्! जैसे पुष्पवाटिका में मृगी के साथ विहार एवं गान-श्रवण में आसक्त मृग के आगे वृक (भेड़ियाँ) है और पीछे व्याध है किन्तु वह उन्हें नहीं देखता और व्याध के बाण से मारा जाता है, ठीक उसी प्रकार इस गृहस्थाश्रम में तुच्छ कामसुख से अन्धे जीव को आगे और पीछे से काल बाणद्वारा बेधता है इसे तुम नहीं देखते। तुम मृग के समान अपनी दशा जानकर चित्त को स्थिर कर बहिर्वृत्तिको रोको। कामी पुरुषों की गन्दी बातों से मलिन इस नारकीय गृहबन्धन का त्याग करो। जीवों के रक्षक एवं विश्रामस्थान भगवान् को प्रसन्न करो। इस प्रकार क्रमशः धीरे-धीरे सांसारिक दुःखों से निवृत्त हो जाओ—

प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥५५॥

हे राजन्! इसलिए तू यह सब यज्ञादि प्रपञ्च को छोड़कर भगवान् की शरण पकड़ और तन-मन-धन से उन्हीं का भजन कर। इससे तुझे पूर्ण ज्ञान एवं शान्ति की प्राप्ति होगी। यह कहकर नारद जी ब्रह्मलोक चले गये और राजा इस उपदेश से कृतार्थ हो गया। वह मन्त्रियों को पुत्रों के लिए राज्य का आदेश देकर स्वयं तप करने के लिए कपिल मुनि के आश्रम गंगासागर को चला गया। वहाँ एकाग्रचित्त से भगवान् की आराधना कर भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हो गया—

एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं
देवर्षिवर्यमुखनिः सृतमात्मशौचम्।
यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं
नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥८४॥

जो मनुष्य देवर्षि नारद के मुखकमल से निःसृत अध्यात्म ज्ञान से ओत-प्रोत अमृतमय इन पुरञ्जनोपाख्यान को सुनता या सुनाता है उसका फिर इस संसार में आवागमन नहीं होता और वह समस्त बन्धनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(पुरञ्जनोपाख्यान समाप्त)

◆

तीसवाँ अध्याय

(दो अध्यायों से प्रचेताओं का शेष-चरित्र)

प्रचेताओं को भगवान् विष्णु से वरप्राप्ति तथा उनका वार्क्षी कन्या के साथ विवाह

विदुर जी ने कहा—हे मुने! आपने पुरञ्जन का बड़ा सुन्दर आध्यात्मिक उपाख्यान सुनाया। इससे मुझे बड़ी शान्ति मिली है। अब आप कृपाकर यह बतायें कि—

ये त्वयाभिहिता ब्रह्मन् सुताःप्राचीनबर्हिषः ।
ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ।।१।।

प्राचीनबर्हि के पुत्र जिन प्रचेताओं का आपने २४वें अध्याय में वर्णन किया था। उन्होंने रुद्रगीत से कौन-सी सिद्धि प्राप्त की और उन्होंने क्या किया? मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! पिता की आज्ञापालन करने वाले प्रचेताओं ने समुद्र के अन्दर १० हजार वर्ष तक कठोर तपस्या की। उससे प्रसन्न हो दिव्य मूर्ति धारण कर भगवान् विष्णु उनके सामने प्रकट हुए और बोले—राजपुत्रों! तुम्हारे परस्पर प्रेम से मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो भी इच्छा हो, मुझसे वर माँगो। तुमने पिता की आज्ञा का जो पालन किया है इससे संसार में तुम्हारी कीर्ति फैलेगी। तुम्हारे एक बड़ा तेजस्वी पुत्र होगा जिसकी सन्तान से त्रिलोकी पूर्ण हो जायगी। तुम मारिषा नाम की सुन्दरी कन्या को ग्रहण करो। वह कण्डु ऋषि से प्रम्लोचा अप्सरा से उत्पन्न हुई है। वृक्षों ने उसका पोषण किया है। तुम सभी की वह एक ही पत्नी होगी। तुम उसके साथ १२ लाख वर्षों तक दिव्य भोगों का उपभोग कर अन्त में विरक्त हो हमारे लोक को प्राप्त करोगे। मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! यह सुनकर प्रचेता बड़े प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे—हे भगवन्! आप भक्तों के क्लेश दूर करने वाले हैं। मन तथा वाणी से परे हैं। लीला के लिए ही आप नाना रूप धारण करते हैं। आपको नमस्कार है। आपने हमें दिव्य रूप से जो दर्शन दिया है इससे बढ़कर और आपका

क्या अनुग्रह होगा। आपके चरण-कमलों को प्राप्त कर हमने क्या नहीं पाया अर्थात् सब कुछ पा लिया। आपकी माया से मोहित हम लोग जब तक संसार में भ्रमण करें तब तक आपके भक्तों का सङ्ग हमें बराबर प्राप्त होता रहे, यही हमारी अभिलाषा है। सत्संग की तुलना स्वर्ग और मोक्ष से भी नहीं की जा सकती। मनुष्यों के राज्यादि सुख की तो बात ही क्या? भक्तों के समाज में आपकी अमृतमयी कथा होती है, जिससे तृष्णा की निवृत्ति तथा आपके चरणों में अनुराग होता है—ऐसे सत्संग को कौन नहीं चाहेगा। आपके परमप्रिय भगवान् शिव के क्षणमात्र के समागम से भवरोग के वैद्य आप ही हमको प्राप्त हो गये। अब हमें क्या चाहिए—

यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ।
सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय ।।४०।।

हमने जो कुछ पढ़ा, गुरु, वृद्ध, ब्राह्मणों की सेवा की तथा अन्न का त्याग कर इतने दिनों तक जल में रहकर जो कठोर तपस्या की तथा और भी जो सत्कर्म किये हैं वे सब आपकी प्रसन्नता के लिए हों। मनु, ब्रह्मा आदि कोई भी आपकी महिमा जानने में समर्थ नहीं हो सके। आप शुद्ध चिन्मय वासुदेव-स्वरूप से जगत् का पालन करते हैं, आपको हमारा नमस्कार है। इस प्रकार २१ श्लोकों से प्रचेताओं ने भगवान् विष्णु की स्तुति की है।

मैत्रेय जी बोले—विदुर! इस प्रकार प्रचेताओं द्वारा संस्तुत भगवान् विष्णु उन्हें वर प्रदार कर अन्तर्धान हो गये। बाद में प्रचेता समुद्र से बाहर निकले एवं समस्त पृथ्वी पर वृक्षों को देखकर वे बड़े कुपित हुए। मुखसे अग्नि और वायु को प्रकट कर वे वृक्षों को भस्म करने लगे जिससे हजारों वृक्ष जलकर भस्म हो गये। यह देखकर ब्रह्मा ने आकर उन्हें समझाया और वृक्षों को जलाने से रोका। जो वृक्ष बचे थे, उन्होंने भयभीत होकर ब्रह्मा के आदेश से उन्हें अपनी मारिषा (वार्क्षी) नाम की कन्या दे दी। वृक्षों के पालन करने से ही इस कन्या का नाम वार्क्षी हुआ था उन्होंने उससे विधिपूर्वक विवाह किया। उसी से दक्ष का जन्म हुआ जिसने पूर्वजन्म में भगवान् शिव का अपमान किया था। ब्रह्मा दक्ष को प्रजापतिपद में नियुक्त कर स्वयं अपने धाम चले गये।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

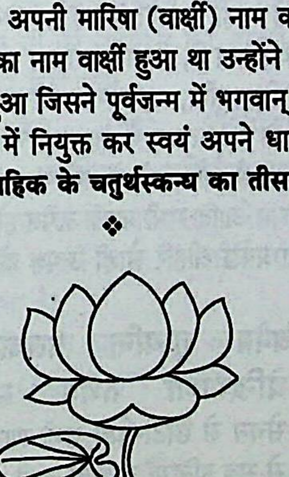

इकतीसवाँ अध्याय

दक्ष का राज्याभिषेक तथा नारद के उपदेश से प्रचेताओं की मुक्ति

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर!

तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम्।
स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात्॥५॥

इस प्रकार प्रचेताओं ने भगवान् के आदेशानुसार १२ लाख वर्षों तक राज्य का पालन किया। बाद में वैराग्य होने पर अपने पुत्र दक्ष का राज्याभिषेक कर तप करने के लिए वे राजभवन त्याग कर वन में चले गये। पश्चिम दिशा में समुद्र-तटपर, जहाँ जाजलि ऋषि ने सिद्धि प्राप्त की थी, वहाँ प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों का निरोध कर शान्त चित्त से वे भगवान् का ध्यान करने लगे। ध्यान करते हुए प्रचेताओं को देवर्षि नारद ने देखा। प्रचेता भी नारद जी को देखते ही उठकर खड़े हो गये और अर्घ्य-पाद्य से उनका विधिवत् पूजन कर एक दिव्य आसन पर उन्हें बैठाया और बोले—भगवन्! आपका स्वागत है। आज आपके दर्शन से हम कृतार्थ हो गये हैं। आपका भ्रमण संसार के कल्याण के लिए होता है। आपने और भगवान् शिव ने पहले हमें जो उपदेश किया था, उसे गृहस्थी में आसक्ति के कारण हम सब भूल गये हैं। कृपाकर पुनः आप इस ज्ञान का उपदेश करें जिससे हम यह दुस्तर संसार-सागर को पारकर सकें।

नारद जी बोले—हे राजपुत्रों!

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः।
नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः॥९॥

वही जन्म सार्थक है, वही कर्म श्लाघ्य है वही आयु सफल है, वही वाणी उत्तम है, और वही मन वास्तविक मन है, जिससे भगवान् श्रीहरि की सेवा की जा सके। वह तप, वह स्वाध्याय, वह तीक्ष्णबुद्धि, वह योगाभ्यास वह ज्ञानचर्या एवं अन्यान्य साधन निष्फल हैं, जो भगवान् के साक्षात्कार में सहायक न हो सकें। जैसे सूर्य से ही वर्षा ऋतु में जल की वृष्टि होती है और गर्मी में वहीं जल फिर सूर्य में चला जाता है एवं जैसे पृथ्वी से स्थावर, जंगम आदि सभी प्राणी उत्पन्न होकर फिर उसी में लीन हो जाते हैं ठीक वैसे ही यह सारा प्रपञ्च श्रीहरि से ही उत्पन्न होकर फिर श्रीहरि में ही लीन हो जाता है।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥१४॥

जैसे वृक्ष के मूल-सेचन से छोटी-बड़ी सभी शाखायें हरी-भरी हो जाती हैं एवं जैसे प्राण को भोजन देने से सब इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती है, पृथक्-पृथक् इन्द्रियों में अन्न

लेपन करने से नहीं। उसी प्रकार भगवान् के पूजन से सब देवताओं का पूजन हो जाता है। जो लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा से रहित होकर भगवान् का चिन्तन करते हैं; भगवान् उनके वशीभूत होकर उनके हृदय में विराजमान हो जाते हैं और फिर उनके हृदय से कभी हटते नहीं। जो विद्या और धन के मद में उन्मत्त होकर भक्तों का अनादर करते हैं, ऐसे अहंकारियों की पूजा भगवान् ग्रहण नहीं करते और न ऐसों को सद्गति ही प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि भक्तों के लिए भगवान् लक्ष्मी तथा देवताओं तक का परित्याग कर देते हैं। भगवान् को भक्तों के समाज में जैसी प्रसन्नता होती है वैसी अन्यत्र नहीं और वहाँ उनका स्थिर निवास रहता है। ऐसे दयालु भगवान् की शरण में कौन नहीं जायेगा? तुम हृदय से भक्तों का आदर करो, प्रतिदिन भगवत्कथा का श्रवण करो एवं सर्वत्र समदृष्टि रखकर भगवान् का भजन करो। यही कल्याण का मार्ग है।

मैत्रेय जी बोले—हे विदुर! नारद जी प्रचेताओं को इस प्रकार ज्ञान का उपदेश देकर एवं भगवत्सम्बन्धी कुछ उत्तम कथाएँ सुनाकर ब्रह्मलोक को चले गये। हे विदुर! तुमने जो नारद और प्रचेताओं का संवादरूप आख्यान पूछा था उसका वर्णन समाप्त हुआ। शुकदेव जी ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे मनु के प्रथम पुत्र उत्तानपाद का वंश वर्णन किया। अब उनके द्वितीय पुत्र प्रियव्रत का चरित्र सुनो जिन्होंने पहले नारद से आत्मज्ञान प्राप्तकर राज्य का पालन किया था तथा पश्चात् पुत्रों को राज्यभार सौंप कर वन में तपस्या करते हुए परमपद प्राप्त किया। इस प्रकार विदुर जी श्रीमैत्रेय जी द्वारा वर्णित भगवान् की दिव्य कथा सुनकर आनन्दमग्न हो गये; उनका हृदय गद्गद हो गया और नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। अनन्तर उन्होंने मैत्रेय जी के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और हृदय में भगवान् के चरणों का ध्यान करते हुए कहा—हे मुने! आज आपने संसार से उद्धार का मार्ग दिखाकर मुझे कृतार्थ कर दिया है। मैं आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ। शुकदेव जी ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार विदुर मैत्रेय जी को नमस्कार कर उनकी आज्ञा लेकर अपने बन्धु धृतराष्ट्रदि को देखने हस्तिनापुर चले गये।

एतद्यः श्रृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ।
आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ।।३१।।

हे राजन्! जो मनुष्य श्रद्धाभक्ति से भगवद्भक्त प्रचेताओं का यह चरित्र सुनता है उसका सर्वथा कल्याण होता है। उसकी आयु, धन कीर्ति की वृद्धि होती है और अन्त में वह वैकुण्ठलोक प्राप्त करता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के चतुर्थस्कन्ध का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(चतुर्थ-स्कन्ध समाप्त)

❖

पञ्चम-स्कन्ध प्रारम्भ

(इस स्कन्ध में २६ अध्याय है और पुराण के तृतीय लक्षण स्थान
(भू-द्वीप आदि की स्थिति) का वर्णन है।)

पहला अध्याय

प्रियव्रत को नारद से ज्ञान-प्राप्ति, राज्य का उपभोग तथा उनका वैकुण्ठगमन

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से कहा—हे मुने!

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने।
गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥१॥

मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत तो भगवान् के अनन्यभक्त एवं ज्ञानी थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम का ग्रहण क्यों किया? जिससे स्वरूप की विस्मृति और आत्मा का बन्धन होता है। भगवान् के चरणों की छाया में जिनके तप्त मन शीतल हो रहे हों ऐसे महात्माओं की कुटुम्ब में तो स्पृहा नहीं होनी चाहिए। स्त्री-पुत्रादि में अनुरक्त होने पर भी उनकी भगवान् श्रीकृष्ण में निश्चल मति तथा मोक्ष कैसे हुआ? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है। आप इसे निवृत्त करने की कृपा करें।

बाढमुक्तं भगवत् उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किञ्चिदन्तरायविहतां स्वाशिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥५॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! आपने ठीक कहा। किन्तु जिनका मन भगवान् के चरणकमलों में रम गया हो उनके मार्ग में यदि किसी प्रकार की विघ्न-बाधा उपस्थित हो भी जाय तो वे अपना कल्याणकारी मार्ग छोड़ते नहीं। प्रियव्रत की भी स्थिति ऐसी ही हुई। नारदजी की कृपा से उनको आत्मज्ञान का मार्ग मिल गया था और उनका संकल्प था कि मैं जीवनपर्यन्त ज्ञान का ही उपार्जन करूँ। उनके पिता ने अधिकारी समझकर उनसे राज्यपालन करने का अनुरोध किया, किन्तु उन्हें राज्यपालन की इच्छा नहीं हुई क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति भगवान् में लगी थी। यद्यपि यह उचित नहीं था, फिर भी राज्य के शासन में व्यर्थ ही समय का दुरुपयोग एवं आत्मा का बन्धन होगा, ऐसा विचार कर ही उन्होंने पिता की आज्ञा स्वीकार नहीं की। सृष्टिवृद्धि की चिन्ता करनेवाले

ब्रह्माजी को जब इसका पता चला तब वह अपने लोक से उतरे। मार्ग में देवगण एवं सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर आदि की पूजा ग्रहण करते हुए वह सीधे उस गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे, जिसकी कन्दरा में बैठे नारदजी प्रियव्रत को आत्मज्ञान का उपदेश कर रहे थे। मनुजी भी पुत्र प्रियव्रत को राज्यपालन के निमित्त बुलाने वहाँ उपस्थित थे। नारदजी अपने पिता ब्रह्माजी को आया देखकर मनु और प्रियव्रत के साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने अर्घ्य-पाद्य से ब्रह्माजी का पूजनकर उन्हें एक दिव्य आसन पर बैठाया। अनन्तर ब्रह्माजी मुस्कराते हुए प्रियव्रत से बोले—हे वत्स! मैं भगवान् की प्रेरणा से ही तुमसे सत्य सत्य कहता हूँ—इसमें मुझे दोष न देना। भगवान् के विधान को कोई भी अपने तप, विद्या, योग आदि के बल से टाल नहीं सकता। उनकी आज्ञा का पालन सबको करना पड़ता है। सुख-दुःख का जो भी विधान ईश्वर ने रचा है—उसे विवश होकर भोगना ही पड़ेगा। जीवन्मुक्त प्राणी को भी प्रारब्ध के अनुसार अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। ऐसी स्थिति में जितेन्द्रिय पुरुष को गृहस्थाश्रम कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता और अजितेन्द्रिय को वन में जाने से भी कोई लाभ नहीं, उसे वन में भी कामादि छः शत्रुओं का भय बना ही रहेगा। कहा भी है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥

विषयी पुरुष को वन में भी कामादि शत्रु सताते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष का घर में भी पाँच इन्द्रियों का निग्रह करना तप हैं। जिसका झुकाव विषय की ओर न हो तथा जिसके हृदय में वैराग्य जागृत हो उसके लिए घर ही तपोवन हो जाता है। दूसरी बात यह हैं—

यः षट् सपत्नान् विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम्।
अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन् क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित्॥१८॥

जो इन छः शत्रुओं को जीतना चाहे, वह गृहस्थाश्रम-रूपी किले का आश्रय लेकर शनैः शनैः इन पर विजय प्राप्त करें। इनके क्षीण होने पर फिर जहाँ चाहे घर में या वन में विचरण करे। जैसे राजा किले के आश्रय से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। उनके क्षीण होने पर यथेच्छ विचरता है। तुमने तो भगवान् के चरणरूपी दुर्ग का आश्रय लेकर इन शत्रुओं को जीत ही लिया है। फिर तुम्हें चिन्ता किस बात की? अब तुम प्रारब्ध के अनुसार भगवान् के दिये दिव्य भोगों का उपभोग करो। बाद में सबका संग त्यागकर अपने स्वरूप का चिन्तन करो—**विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व।**

इसमें आपत्ति ही क्या है? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यह अमूल्य उपदेश सुनकर प्रियव्रत ने नतमस्तक हो ब्रह्माजी की आज्ञा सादर शिरोधार्य की। इस प्रकार ब्रह्माजी प्रियव्रत को राज्यपालन में प्रवृत्त कर सबसे पूजित हो अपने लोक को चले गये। मनु भी अपने मनोरथ की पूर्ति से बहुत प्रसन्न हुए एवं नारदजी की अनुमति से प्रियव्रत

को सम्पूर्ण भूमण्डल का चक्रवर्ती राजा बनाकर स्वयं विरक्त हो तप करने वन में चले गये। इस प्रकार भगवान् की इच्छा से राज्य प्राप्तकर प्रियव्रत निरन्तर भगवान् का ध्यान करते हुए पृथ्वी का पालन करने लगे। विश्वकर्मा प्रजापति की कन्या बर्हिष्मती से उनका विवाह हुआ, जिससे उनके (१) आग्नीध्र, (२) इध्मजिह्व, (३) यज्ञबाहु, (४) महावीर, (५) हिरण्यरेता, (६) घृतपृष्ठ, (७) सवन, (८) मेधातिथि, (९) वीतिहोत्र और (१०) कवि ये दस पुत्र और ऊर्जस्वती नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। इसमें कवि महावीर और सवन ये तीन पुत्र परमहंस हुए। ये जन्म से ही भगवान् की आराधना में निरत रहे एवं देहाध्यास का त्याग कर भगवान् के साथ सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुए। दूसरी भार्या से प्रियव्रत के उत्तम, तामस और रैवत तीन पुत्र थे जो मन्वन्तरों के अधिपति हुए। इस प्रकार पुत्रों को उत्पन्न कर रानियों के साथ दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए प्रियव्रत ने ११ करोड़ वर्षों तक पृथ्वी का पालन किया और अपने भुजबल से धर्म के प्रतिपक्षी अधर्म को अपने राज्य में टिकने नहीं दिया। एक समय उन्होंने सूर्य के समान तेजस्वी रथ पर चढ़कर रात्रि को भी दिन करने के विचार से सात बार सूर्य की परिक्रमा की।

एवं कुर्वाणं प्रियव्रतमागत्य चतुराननस्तवाधिकारो नास्तीति वारयामास ।

ऐसा करते हुए प्रियव्रत के समीप आकर ब्रह्मा ने कहा तुम्हारा यह अधिकार नहीं है—यह कहकर उन्हें रोक दिया। उनके रथ के पहियों के दबाव से जो खाइयाँ हुई वे ही सात समुद्र[१] बन गये।

जिसके कारण पृथ्वी पर सात द्वीपों की रचना हुई। क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, दुग्धोद, दधिमण्डोद, शुद्धोद ये सात समुद्र और जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीप प्रसिद्ध हुए। प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रों को क्रम से इन सात द्वीपों का अधिपति बना दिया और अपनी पुत्री का विवाह शुक्राचार्य जी के साथ कर दिया जिससे देवयानी कन्या उत्पन्न हुई। महापराक्रमी प्रियव्रत इस प्रकार राज्य की समुचित व्यवस्था कर भगवत्कृपा से विषयों से विरक्त होकर सब कुछ त्यागकर नारदजी के उपदेशानुसार पुनः वन में चले गये और वहाँ भगवान् की तीव्र आराधना से परमपद को प्राप्त हुए।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त ।।

❖

---

[१] श्री विजयध्वजतीर्थ का कथन है कि सात समुद्र पहले से ही विद्यमान थे। राजा प्रियव्रत ने उन्हें केवल स्थूल किया—

पूर्वसृष्टान् रथावृत्त्या स्थूलांश्चक्रे प्रियव्रतः ।
समुद्रांस्तेन तत्कर्तेत्याहुरेनं प्रियव्रतम् ॥

दूसरा अध्याय

प्रियव्रत-पुत्र आग्नीध्र के पूर्वचित्ति अप्सरा से नौ पुत्रों का जन्म

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

एवं पितरि सम्प्रवृते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद् धर्मविक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥१॥

पिता प्रियव्रत के परलोक चले जाने पर राजा आग्नीध्र जम्बूद्वीप की प्रजा का धर्मपूर्वक पुत्र के समान पालन करने लगे। एक समय वे पुत्र की कामना से मन्दराचल की कन्दरा में जाकर तप कर रहे थे। यह जानकर ब्रह्मा ने सभा में गान करती हुई पूर्वचित्ति नाम की अप्सरा उनके पास भेजी। वह उनके आश्रम के समीप रमणीय उपवन में आकर उसकी सुषमा निहारती इधर-उधर घूमने लगी। उसके पैरों के दिव्य आभूषणों की रुनझुन से उनकी समाधि टूट गयी। तनिक नेत्र खोलकर जब उन्होंने उसे देखा तो उसके अनुपम सौन्दर्य पर उनका मन आकृष्ट हो गया। वे कामातुर हो उसके समीप जाकर खड़े हो गये और जड़ के समान बोले—हे मुनिराज! तुम कौन हो? यहाँ किस इच्छा से आये हो? तुम्हारी भौहें तो धनुष का काम कर रही हैं। कहीं इनसे हमारे ऊपर बाण न छोड़ देना। तुम्हारे अंगों की सुगन्ध से ये भ्रमर शिष्य की तरह तुम्हारे अनुगामी हो गये हैं और तुम्हारे सौन्दर्य का गान कर रहे हैं। तुम्हारा कटिभाग इतना सुन्दर है कि उसपर वस्त्र मालूम ही नहीं पड़ता। क्या तुमने वस्त्र नहीं पहन रक्खा हैं? हे मित्र तुम किस लोक के हो, जहाँ मनुष्य छाती पर दो गेंद धारण करते हैं। जिन पर मेरी दृष्टि गड़ी है। न जाने इनमें क्या भरा है। जिससे मेरा सारा आश्रम सुगन्धित हो रहा है?

येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥११॥

क्या मुझे भी इनका कुछ प्रसाद मिल सकता है? तुम्हारे मुख से भी बड़ी सुगन्ध निकल रही हैं। तुमने लाल-लाल क्या वस्तु खायी है? तुम इस समय जो गेंद खेल रहे हो इस खेल में इधर-उधर दौड़ने पर वायु तुम्हारा कटिवस्त्र उड़ा देता है। इसकी धृष्टता तो देखो। इससे मेरा मन विकृत हो उठा है। हे मित्र! तुमने किस तपस्या से यह रूप प्राप्त किया है? मेरी इच्छा है कि तुम मेरे ही साथ यहाँ रहकर तप करो, तो बड़ा अच्छा है? कहीं सृष्टि का विस्तार करने वाले ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर तुमको मेरी स्त्री बनाकर तो यहाँ नहीं भेजा हैं?

किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥१५॥

क्योंकि मुझे इस समय बड़े ही शुभ शकुन दिखाई दे रहे हैं। हिरणियाँ मेरे दक्षिण भाग से निकलकर जा रही हैं। मित्र! शीघ्र मेरे पास आ जाओ। शुकदेवजी बोले—हे

राजन्! स्त्री को मनाने में अत्यन्त निपुण आग्नीध्र ने अपनी ऐसी सुमधुर प्राकृत भाषा से उस अप्सरा को वशीभूत कर लिया और वह उनके पास आकर बड़े आनन्द से विहार करने लगी। उसने दस करोड़ वर्षों तक राजा आग्नीध्र के साथ दिव्य भोगों का उपभोग किया। उससे आग्नीध्र के नौ पुत्र हुए जिन्हें उन्होंने आगे चलकर नौ खण्डों का अधिपति बनाया। उनके नाम थे—(१) नाभि, (२) किंपुरुष, (३) हरिवर्ष, (४) इलावृत, (५) रम्यक्, (६) हिरण्मय, (७) कुरु, (८) भद्राश्व और (९) केतुमाल। इन पुत्रों को उत्पन्न कर वह अप्सरा फिर ब्रह्मा के पास चली गयी। आग्नीध्र के सभी पुत्र माता के अनुग्रह से बलवान् थे और उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त दृढ़ हुए सुडौल थे। सब नवों खण्डों का पालन करने लगे। राजा आग्नीध्र विषयों से तृप्त नहीं हुआ। वह निरन्तर अप्सरा का ही ध्यान करता था और यज्ञानुष्ठान के द्वारा उसने उसी का लोक प्राप्त किया। जहाँ पर प्राप्त हुए धार्मिक पुरुष को पितर नाना प्रकार के सुख प्रदान करते हैं—

तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते ॥२२॥

पिता के परलोक जाने पर इन नौ भाइयों ने मेरु नामक प्रजापति की मेरुदेवी, आदि नौ कन्याओं के साथ विवाह किया, जिनके नाम थे—मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्भा, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ।।

◆

तीसरा अध्याय

आग्नीध्र-पुत्र नाभि के राजभवन में भगवान् ऋषभदेव का अवतार

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या ।
भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत ॥१॥

आग्नीध्र के ज्येष्ठ पुत्र नाभि ने पुत्रप्राप्ति की कामना से अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ भगवान् का यजन किया। उनकी श्रद्धा और भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् उनका मनोरथ पूर्ण करने के लिए यज्ञ में प्रकट हुए। मुकुट, कुण्डल, वनमाला आदि दिव्य आभूषणों से भूषित चतुर्भुजधारी भगवान् के सुन्दर श्रीविग्रह का दर्शनकर सभी को बड़ी प्रसन्नता हुयी। अर्घ्य, पाद्य से उनका पूजनकर नतमस्तक हो सब प्रेम से उनकी स्तुति करने लगे—हे भगवान्! यज्ञ में बैठें ऋत्विक्, सदस्य, यजमान आदि हम सेवकों की तुच्छ पूजा आप ग्रहण करें। हम स्तुति करना तो जानते नहीं। हमने सत्पुरुषों से केवल नमो नमः करना ही सीखा है। मायाजाल में फँसा कौन पुरुष प्रकृति से परे आपके स्वरूप का निरूपण कर सकता है। यद्यपि आप परिपूर्ण हैं, फिर भी भक्तों की पूजा

ग्रहण करते हैं। यहाँ तक कि भक्तों द्वारा समर्पित जल, पल्लव, तुलसीदल, दूर्वाङ्कुर तथा शुद्धाशुद्ध शब्दों से भी आप सन्तुष्ट हो जाते हैं। आपने हमारे यज्ञ में प्रकट होकर हमें दर्शन दिया, जिससे हम सब कृतार्थ हो गये। इससे बढ़कर और वर क्या होगा। बड़े-बड़े आत्माराम ज्ञानी भी आपके मङ्गलमय गुणों का कीर्तन करते हैं, किन्तु उन्हें भी सहसा आपका दर्शन नहीं हो पाता। यद्यपि हम आपके दर्शन से ही कृतार्थ हैं फिर भी हम एक बार यह चाहते हैं कि भूख, प्यास ज्वर तथा मरण आदि भीषण दशा में भी पापों का नाश करनेवाले आपके गुणकृत मङ्गलमय नाम हमारी जिह्वा पर आ जाएँ।

ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥

दूसरा वर यह है कि हमारे यजमान महाराज नाभि ने पुत्र की कामना से यह यज्ञ किया है और ये आप सरीखा पुत्र चाहते हैं; इनका भी मनोरथ आप पूर्ण करने का अनुग्रह करें। ऐसे थोड़े से कार्य के लिए हमने आपको यहाँ बुलाया। हमारी यह धृष्टता आप क्षमा करें। इस प्रकार १२ गद्यात्मक स्तोत्र से ऋत्विजों ने भगवान् की स्तुति की। स्तुति सुनकर परमदयालु भगवान् ने कहा—हे ऋषियों! आप लोगों ने वर तो बड़ा दुर्लभ माँगा है। मेरे सदृश तो संसार में दूसरा कोई है ही नहीं, इसलिए मैं ही अपने अंश से नाभि के पुत्ररूप में अवतीर्ण होऊँगा, क्योंकि ब्रह्मवाक्य मिथ्या नहीं होना चाहिए। यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! इस प्रकार नाभि के सन्तोषार्थ और परमहंस ज्ञानियों के धर्म के प्रकाशनार्थ नाभि की पत्नी मेरुदेवी में शुद्ध सत्त्वमूर्ति भगवान् ने ऋषभदेव के रूप में अवतार लिया।

शुक्लया तनुवावततार ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

चौथा अध्याय

ऋषभदेव के सौ पुत्रों का जन्म

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणदेवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥१॥

जन्म से ही ऋषभदेव के अङ्गों में भगवान् के दिव्य लक्षणों को देखकर ब्राह्मण, देवता तथा सारी प्रजा उन्हीं को राजा बनाना चाहती थी। उनका दिव्य विग्रह, बल, तेज, यश और प्रभाव सबसे श्रेष्ठ था। इसलिए पिता ने उनका नाम ऋषभ रखा था।

एक समय इन्द्र ने स्पर्धावश उनके राज्य में वृष्टि नहीं की, किन्तु उन्होंने अपने योगबल से अजनाभ[१] नामक खण्ड में वर्षा कर सबको सुखी किया। राजा नाभि अपने मनोनुकूल सुन्दर पुत्र को प्राप्तकर प्रेम से विह्वल हो, हे वत्स! हे तात! इस प्रकार उसका प्यार करते हुए बड़े सुखी हुए। ऋषभदेव के शील स्वभाव से प्रजा उनपर अत्यन्त अनुरक्त थी। इसलिए पिता ने धर्ममर्यादारक्षणार्थ उनका राज्यपद पर अभिषेक कर दिया और स्वयं अपनी पत्नी के साथ तप करने के लिए विशाला[२] अर्थात् बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ दीर्घकाल तक नर-नारायण की उपासना कर मुक्ति को प्राप्त हुए। राजा नाभि के आदर्श चरित्र का कौन पुरुष अनुकरण कर सकता है, जिनकी विशुद्ध भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए। ब्राह्मणभक्त भी उनके सदृश दूसरा न था। उनकी भक्ति से प्रसन्न हुए ब्राह्मणों ने अपने तेज से यज्ञ में उन्हें भगवान् का साक्षात्कार करा दिया। नाभि के तपस्यार्थ वन चले जाने पर भगवान् ऋषभदेव ने इस भूमि को कर्मक्षेत्र मानकर गुरुकुल में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याभ्यास किया और गृहस्थाश्रम में आकर इन्द्र के द्वारा प्रदत्त जयन्ती नाम की कन्या से विवाह कर उससे १०० पुत्र उत्पन्न किये। उनमें सबसे बड़े और प्रतापी पुत्र भरत थे। जिनके नाम पर ही इस खण्ड का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। नौ पुत्र कुशावर्त[३] आदि नौ खण्डों के अधिपति हुए। कवि, हरि आदि नौ[४] पुत्र सिद्धेश्वर हुए जिनका चरित्र ग्यारहवें स्कन्ध में कहेंगे। शेष ८१ पुत्र बड़े कर्मनिष्ठ याज्ञिक हुए जो देखने में ब्राह्मणसदृश मालूम पड़ते थे। ऋषभदेव स्वेच्छाचारिता को दूर कर स्वयं गृहस्थाश्रम में रहकर धर्मोपदेश से प्रजा को गृहस्थाश्रम में रहने की शिक्षा दिया करते थे। ब्राह्मणों द्वारा प्रदर्शित मार्ग से प्रजा का पालन करते थे। उनकी प्रजा राजा में प्रेम के अतिरिक्त और किसी से कुछ भी वस्तु नहीं चाहती थी। एक समय वह घूमते-घूमते ब्रह्मावर्त में ब्रह्मर्षियों की सभा में जा पहुँचे। वहाँ प्रजा के सुनते-सुनते स्वयं अपने शिक्षित पुत्रों को मोक्षधर्म का उपदेश देते हुए इस प्रकार बोले।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

◆

---

[१] पहले भारतवर्ष का नाम अजनाभ था। अजः ऋषभदेवः नाभिस्तत्पिता ताभ्यां रक्षितत्वात्। अजनाभ्योरिदम् इत्यण् संज्ञापूर्वकत्वात् वृद्ध्यभावे अजनाभविति रूपं सिद्ध्यति।

[२] विशालेन नृपतिना यतस्तप्तं विशेषतः ।
अतो विशाला सा प्रोक्ता बदरीवनमेदिनी ॥

[३] कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट।

[४] कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥

पाँचवाँ अध्याय

ऋषभदेवजी का पुत्रों को ज्ञानोपदेश तथा स्वयं परमहंसवृत्ति-धारण

ऋषभजी बोले—हे पुत्रों!

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद् यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥१॥

मनुष्यों का यह दुर्लभ शरीर कूकर-सूकर के समान विषयभोग के लिए नहीं हैं। इस शरीर से कठोर तपस्या करनी चाहिए, जिससे अन्तःकरण की शुद्धि तथा अनन्त ब्रह्मसुख प्राप्त हो सके। संसार में महात्माओं का संग मोक्ष का और स्त्री-लम्पटों का संग नरक का द्वार बताया गया है। महात्मा वे हैं—जो शान्त, समदर्शी, क्रोधविहीन तथा परोपकारी हों। ईश्वर में जिनका अटूट प्रेम हो। गृह, मठ आदि सांसारिक समस्त प्रपञ्चों से सर्वथा विरक्त हों। लोक में केवल देहनिर्वाहार्थ जिनका सम्बन्ध हो—ऐसे महात्माओं की शरण में जाना चाहिए। मनुष्य इन्द्रियों की तृप्ति के लिए नाना प्रकार के पापकर्म करता है। उससे उसे क्लेशदायक नाना योनियाँ प्राप्त होती है। अतः पापकर्म करना उचित नहीं। जबतक मनुष्यों को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता तबतक वह कर्म से निवृत्त नहीं हो सकता और कर्मनिवृत्ति के बिना देह का बन्धन नहीं छूट सकता। अतः स्वरूप-ज्ञान के लिए भगवान् में प्रेमलक्ष्णा भक्ति करना आवश्यक है। उससे ज्ञान की प्राप्ति होने पर देह का भान नहीं रहता। कर्मजन्य देह का बन्धन स्वतः निवृत्त हो जाता है और साधक को परमशान्ति प्राप्त होती है।

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥८॥

संसार में स्त्री-पुरुष का जो जोड़ा है उन दोनों के हृदय में परस्पर एक-एक ग्रन्थि है। प्रथम ग्रन्थि—पति कहता है यह मेरी पत्नी है, द्वितीय ग्रन्थि—पत्नी कहती है यह मेरे पति हैं। ऐसी स्थिति में यदि साधन द्वारा पति को वैराग्य हुआ भी तो पत्नी उसे छोड़ना नहीं चाहती। वह पुनः उसके मोह में फँस जाता है। इसी मिथुनीभाव से गृह, क्षेत्र, पुत्र, धन आदि के कारण जीव को अहं मम इस प्रकार का घोर मोह उत्पन्न हो जाता है। जीव मोहवश ही देह में अहंबुद्धि और स्त्री, पुत्र आदि में ममता कर बन्धन को प्राप्त होता है। शास्त्रों में बन्ध और मोक्ष के लिए दो पद बतलाये गये हैं—मम और न मम। जब मनुष्य मेरा है—ऐसा कहता है तब उसका बन्धन; और मेरा कुछ नहीं है—ऐसा करने पर वह मुक्त हो जाता है—

द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते॥
(गरुड़पुराण)

जिस समय मनुष्य की मनरूपी दृढ़ हृदयग्रन्थि साधन द्वारा शिथिल पड़ जाती है तब उसे मिथुनीभाव से शनैः शनैः विरक्ति होने लगती है एवं वह अनर्थ के कारणभूत अहंकार का त्यागकर जीवन्मुक्त हो परम पद को प्राप्त करता है। महर्षियों ने अहङ्कार-निवृत्ति के लिए पच्चीस साधन बतलाये हैं—उनमें से कुछ साधनों का उल्लेख किया जाता है। (१) गुरु तथा ईश्वर में भक्ति, (२) गुरु के वचनों में श्रद्धा और विश्वास, (३) भगवत्कथा-श्रवण, (४) ब्रह्मचर्य का पालन, (५) आत्मा और अनात्मा का विचार तथा (६) मङ्गलमय भगवान् के नामों का संकीर्तन। इस प्रकार पिता पुत्र को, गुरु शिष्यों को तथा राजा प्रजा को प्रेमपूर्वक धार्मिक शिक्षा दें। उन पर क्रोध न करें। उन्हें काम्यकर्म से हटाकर निष्काम कर्म करने का ही उपदेश दें। जो गुरु शिष्य को बन्धनमुक्त न कर सकें वह गुरु, गुरु कहलाने योग्य नहीं। ऐसे ही पिता, माता, पति, देवता और स्वजन भी जो पुत्रादि को संसारबन्धन से मुक्त न कर सकें वे पिता, माता, पति, देवता और स्वजन कहलाने योग्य नहीं है, प्रत्युत वैरी हैं। उनका त्याग करना ही उचित है। जैसे बलि ने शुक्राचार्य, का विभीषण ने भाई रावण का, प्रह्लाद ने पिता हिरण्यकशिपुका, भरत ने माता कैकेयी का, खट्वांग ने इन्द्रादि देवताओं और यज्ञपत्नियों ने पतियों का त्याग किया था—

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न
मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥१८॥

स्थावर जङ्गम जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है; जो भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं। उनकी तुलना किसी से नहीं हो सकती। ब्राह्मणों के मुख में श्रद्धा से अर्पित पदार्थों को भगवान् जैसे ग्रहण करते हैं वैसे अग्नि में आहुति दिये गये पदार्थों को नहीं। अतः इनका सर्वत्र आदर करना चाहिए और समस्त प्राणियों में भगवद्दृष्टि रखनी चाहिए। मन वाणी आदि इन्द्रियों का मुख्यफल भगवान् की आराधना ही है। आराधना के बिना कोई भी प्राणी कालपाश से मुक्त नहीं हो सकता—

कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत्॥२७॥

इस प्रकार पुत्रों को उपदेश देकर ऋषभदेव ने कहा—हे पुत्रों! अब तुम सब मिलकर निष्कपट बुद्धि से बड़े भाई भरत की सेवा करो। इसी से मेरी प्रसन्नता एवं प्रजा का कल्याण होगा। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को शिक्षा देकर भरत का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं परमहंसवृत्ति धारण कर अकेले

ही ब्रह्मचर्य से निकल गये। उन्मत्त, मूक और जड़ के समान वह चुपचाप नगर, ग्राम और पर्वतों पर अकेले ही घूमा करते थे। दुर्जन पुरुष उन्हें अवधूत समझकर नाना प्रकारों से अपमानित भी करते थे, किन्तु उनके हृदय में कभी किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता था। उनके कर, चरणादि अवयव और हास्य इतने आकर्षक थे कि स्त्रियाँ देखते ही उन पर मोहित हो जाती थीं। जब संसारी मनुष्य उन्हें विशिष्ट महात्मा समझकर उनके पास भीड़ बाँधने लगे तब उन्होंने इसको विघ्न समझकर अजगरव्रत धारण कर लिया और पृथ्वी पर लेटे हुए ही खाते-पीते, मलमूत्र का त्याग करते थे और कभी उसी में लोट भी जाते थे।[1]

लोग इनके इस वीभत्स कर्म से घृणा करते थे, फिर भी अलौकिक योगशक्ति के प्रभाव से उनके पुरीष की सुगन्धित वायु १० योजन तक की भूमि को सुरभित करती थी—

तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं
दशयोजनं समन्तात् सुरभिं चकार ।।३३।।

हे राजन्! इस प्रकार निरन्तर समाधि द्वारा भगवान् में निरत ऋषभदेव के समक्ष खेचरत्व, मनोजवित्व, अन्तर्धान, परकायप्रवेश आदि योगसिद्धियाँ मूर्तिमती होकर सेवार्थ उपस्थित हुईं। ऋषभदेव ने सिर झुकाकर प्रणामकर सादर उन्हें विदा कर दिया। किन्तु उन्हें विघ्नकारक समझकर हृदय से उनका अभिनन्दन नहीं किया—

योगैश्वर्याणि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ।।३५।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

छठा अध्याय

ऋषभदेव का दिव्यविग्रह वनाग्नि में तिरोहित

राजा परीक्षित ने पूछा—हे भगवन्! ऋषभदेव जी आत्माराम तथा परम ज्ञानी थे। उनके कर्म ज्ञानाग्नि में दग्ध हो चुके थे उनको सिद्धियों से कुछ अनिष्ट तो हो नहीं सकता था, फिर उन्होंने उन्हें ग्रहण क्यों नहीं किया? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तुमने ठीक कहा। किन्तु योगी पुरुष इस चंचल मन का विश्वास हीं करते। जैसे कपटी व्याध मृग को पकड़ लेने पर भी उसका विश्वास नहीं करता। इस मन के विश्वास पर ही सौभरि मुनि की तपस्या भंग हो गयी थी—

यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ।

---

[1] यद्यपि 'मलमूत्रादिरहिताः पुण्यश्लोकाः प्रकीर्तिताः' के अनुसार उनके दिव्य शरीर में मलमूत्रादि की कल्पना करना सर्वथा अनुचित है तथापि योग में विघ्नकारक जनसम्पर्क के परिहारार्थ लोकदृष्टि से यहाँ ऐसा प्रदर्शन किया गया है।

मन का विश्वास करने पर ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभी शत्रु शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसलिए उसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। ऋषभदेवजी ने यही विचार कर सिद्धियों को ग्रहण नहीं किया। जड़ के समान विलक्षण अवधूत-वेष तथा वैसी ही बोल-चाल एवं आचरणों से उनका वास्तविक स्वरूप कोई समझ नहीं पाता था। एक दिन वे अपने शरीर को तिरोहित करने की इच्छा से योगियों के देह त्यागने का मार्ग प्रदर्शित करते हुए वहाँ से उठकर चल दिये। उस समय उनको अपने देह का अनुसन्धान न था। प्रकृति की इच्छा से उनका शरीर इधर-उधर घूमता हुआ दैवयोग से दक्षिण देश कर्णाटक में जा पहुँचा। वहाँ उन्होंने एक बगीचे में जाकर—अब तो न बोलना है और न कुछ खाना ही है—ऐसा विचार कर मुख में एक पत्थर का टुकड़ा डाल लिया था और वहाँ वे उन्मत्त के समान नग्न होकर इधर-उधर घूमते फिरते थे। दैवयोग से उसी समय वन में भयंकर अग्नि लग गयी। अग्निदेव ने ऋषभदेव के साथ वह सारा वन भस्म कर दिया ऋषभदेव जी का शरीर जलाने में अग्नि का सामर्थ्य न था। वह उनकी इच्छा से स्वयं तिरोहित हो गया—

अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ।

इसके अनुसार योगी का शरीर अग्नि, जल आदि के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता था, अतः उनका शरीर अग्नि से दग्ध हुआ यह व्याख्या करना उचित नहीं। जिन ऋषभदेव के इस अद्‌भुत चरित्र को सुनकर कर्णाटक देश का राजा अर्हत् उनका रहस्य समझ न सका और भवितव्यतावश मोहित हो अपने विशुद्ध धर्म का परित्याग कर शास्त्रनिन्दित पाखण्ड मत के प्रचार में लग गया—

स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाखण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः सम्प्रवर्तयिष्यते ।।९।।

जिस मत का अवलम्बन करनेवाले पाखण्डी जन स्मृतिविहित स्नान, आचमन, शौच आचार से हीन तथा केशोल्लुञ्चनादि निन्दित व्रतों का स्वेच्छा से ग्रहण कर वेद, देवता और ब्राह्मणों की निन्दा तथा स्मृति के सदाचारवाक्यों की अवहेलना करने लगे।

वे स्मृतिवाक्य ये हैं—

"मृज्जलाभ्यां देहं मृज्यात्"

मिट्टी और जल से देह की शुद्धि करें।

"मलवद्वाससा न संवदेत्"

मलिनवस्त्र धारण करनेवाले मनुष्य से भाषण न करें।

अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम् । (वि.पु.)

स्नान किये बिना भोजन करनेवाला मल का भक्षण करता है एवं बिना जप किये भोजन करनेवाला पीब और रूधिर का पान करना है। इस शौचाचारविहीन पाखण्डियों का अनुसरण करनेवाले मनुष्य अन्धपरम्परा न्याय से घोर नरकगामी होते हैं। ये स्वयं तो नष्ट हैं ही दूसरों को भी नष्ट किया करते हैं।

भगवान् ऋषभदेव का अवतार वस्तुतः राजसी प्राणियों के मोक्षमार्ग के प्रदर्शनार्थ हुआ था, न कि कुत्सित मार्ग के प्रचार के लिए; महर्षियों ने इसी के अनुरूप श्लोकों का गान करते हुए कहा है—

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥१३॥

अहो बड़े आनन्द की बात है इस सप्तद्वीपवती पृथ्वी के समस्त द्वीप एवं खण्डों में यह भारतवर्ष ही अधिक पुण्यप्रद माना गया है। जहाँ की प्रजा भगवान् के अवतार सम्बन्धी मङ्गलमय चरित्रों का गान करती हैं। अहो आज राजा प्रियव्रत का वंश अपनी कीर्तिकौमुदी से भूमण्डल को धवल कर रहा है। जिस वंश में पुराणपुरुष भगवान् ने ऋषभरूप में अवतीर्ण होकर मोक्षधर्म का उपदेश किया था। कौन राजा अथवा योगी मनोरथ से भी उनके मार्ग का अनुसरण कर सकता है। जिन ऋषभदेव ने स्वयं सेवार्थ उपस्थित अणिमादि सिद्धियों को अपने स्वरूपानन्द से निस्तेज कर ठुकरा दिया था। हे राजन्! इस प्रकार समस्त देवता एवं ब्राह्मणों के परम गुरु भगवान् ऋषभदेव के परम मङ्गलमय पापनाशक इस विशुद्ध चरित्र का मैंने आपके समक्ष वर्णन किया। जो श्रद्धा-भक्ति से इसका श्रवण करता है अथवा इसे सुनाता है उन दोनों की भगवान् में निश्चल भक्ति हो जाती है। भक्तिरस में निमग्न ऐसे भक्तजन मुक्ति का भी अनादर कर देते हैं।

हे राजन्! भक्तवत्सल भगवान् आपके पूर्वज पाण्डवों के गुरु, देवता, सुहृद, दूत, सारथि आदि सब कुछ बने, फिर भी भजन करने वालों को वे मुक्ति भले ही दे दें, किन्तु भक्तियोग नहीं देते हैं। यह भक्तियोग भगवान् के निर्मल चरित्रों के श्रवण से प्राप्त होता है, जिससे भगवान् आकृष्ट होकर भक्त के समीप स्वयं आ विराजते हैं। अब हम ऋषभदेव का यह मङ्गलमय चरित्र समाप्त कर रहे हैं। आप लोग हाथ जोड़कर उनका ध्यान करें—

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ।
लोकस्य यःकरुणयाऽभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥१९॥

नित्य अनुभूत अपने स्वरूपानन्द से जिनकी तृष्णा सर्वथा निवृत्त थी ही किन्तु उपदेश द्वारा जिन्होंने दूसरों की भी तृष्णा निवृत्त कर दी तथा अज्ञाननिद्रा में सुप्त संसारी प्राणियों के उद्धारार्थ आत्मतत्त्व का उपदेश किया, उन भगवान् ऋषभदेव को हम सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का छठाँ अध्याय समाप्त ।।

सप्ताह के द्वितीय दिन की कथा समाप्त (अध्याय संख्या ४८)

(मासिक-पारायण का नवाँ विश्राम)

❖

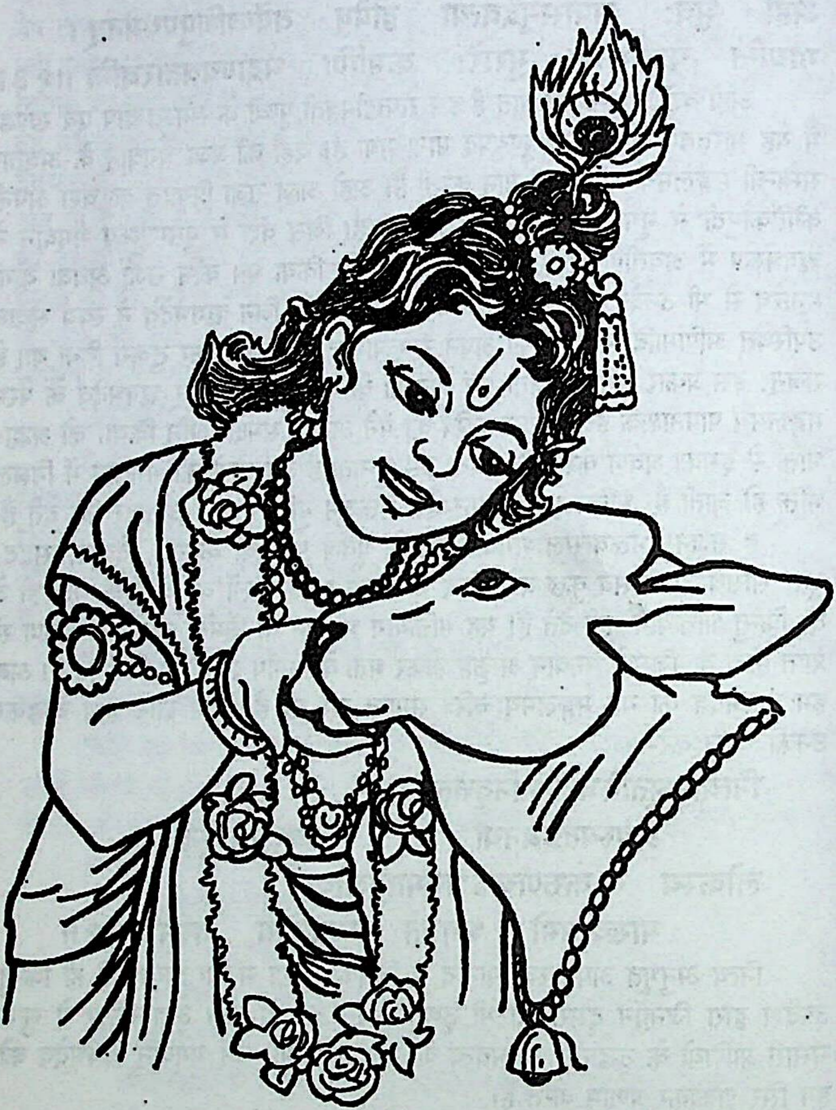

श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक)

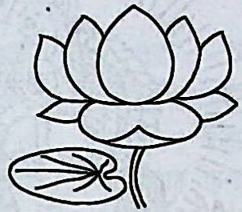

सप्ताह के तृतीय दिन की कथा

* * *

तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्धपूरणम्

(पञ्चम स्कन्ध के ७वें अध्याय से सप्तम स्कन्ध के १५वें अध्याय तक)

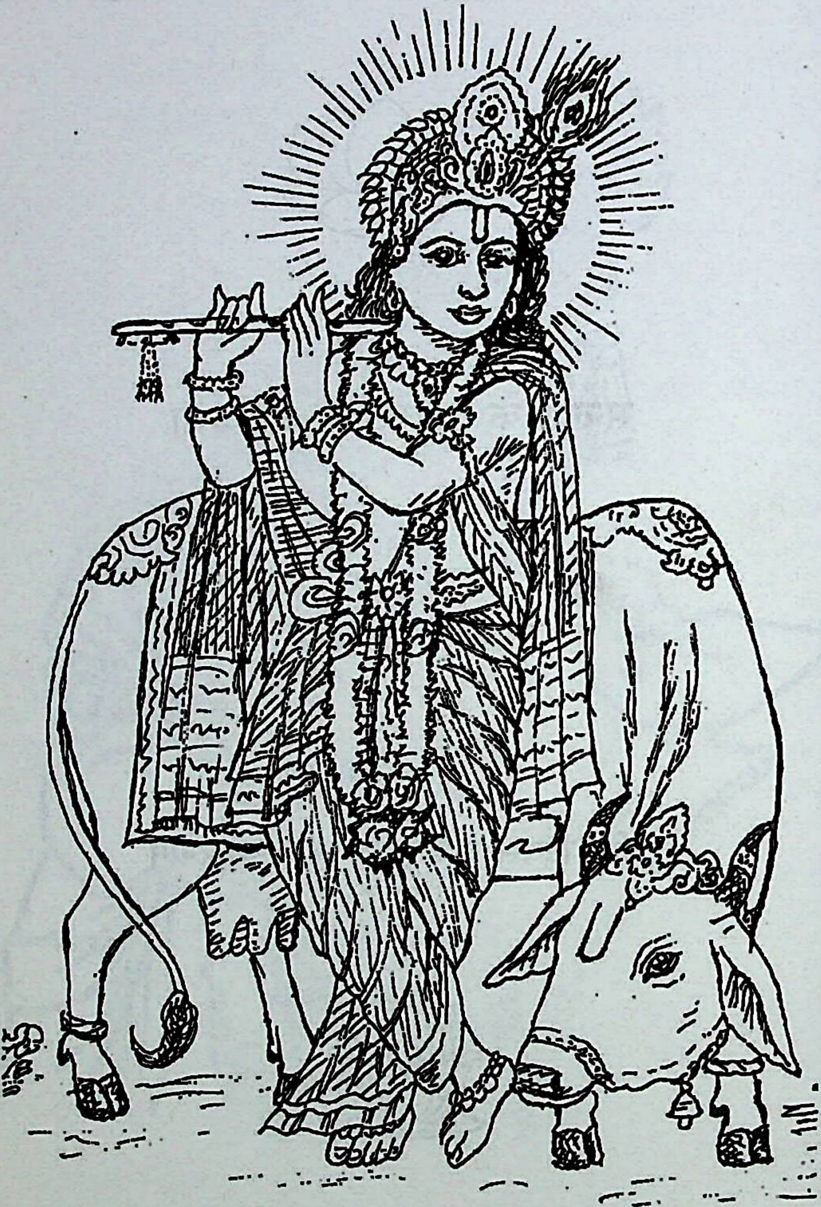

सातवाँ अध्याय

ऋषभ-पुत्र भरत का राज्य-पालन तथा पुलहाश्रम में तप

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवतावनितलपरिपालनाय सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥१॥

परमभागवत राजर्षि भरत, पिता द्वारा प्रजापालन में नियुक्त हुए। उन्होंने विश्वरूप प्रजापति की कन्या पञ्चजनी से विवाह किया। पञ्चजनी से उनके पाँच तेजस्वी पुत्र हुए—सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु। पहले इस खण्ड का नाम अजनाभ था। कारण, नाभि और उनके पुत्र अज (ऋषभ) इन दोनों ने इसका पालन किया था। किन्तु बाद में इन भरत के ही कारण इस खण्ड का नाम भारतवर्ष पड़ा। राजर्षि भरत बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने पिता-पितामह की तरह बड़े प्रेम से अपने-अपने धर्म में निरत प्रजा का पालन किया। फल की कामना से रहित होकर नाना प्रकार के यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन किया और उन यज्ञों का फल भगवान् को ही अर्पित कर दिया। इससे उनका अन्तःकरण अत्यन्त विशुद्ध हो गया और भगवान् उनके हृदय में आविर्भूत होकर चित्र की भाँति अंकित हो गये। फलतः उनकी भक्ति का उद्रेक उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया। इस प्रकार राजर्षि भरत ने दस हजार वर्षों तक धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन किया। तत्पश्चात् अपने पुत्रों में राज्य का यथोचित बँटवारा कर स्वयं तप करने के लिए सकल सम्पदाओं से परिपूर्ण अपने राज-भवन का त्याग कर पुलहाश्रम में चले गये। उस आश्रम को चक्राङ्कित शालग्राम-शिलाओं से अलंकृत पुण्यसलिला गण्डकी नदी पवित्र करती थी—

यत्राश्रमपदान्युभयतो नाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥१०॥

राजर्षि भरत ने अकेले ही उस आश्रम में निवास कर पुष्प, पल्लव, तुलसी, जल तथा कन्द-मूल, फल आदि विविध प्रकार के नैवेद्यों से भगवान् का पूजन आरम्भ किया। इस प्रकार अनवरत भगवान् की परिचर्या एवं नाम-कीर्तन से आनन्द का प्रवाह उत्तरोत्तर इतना बढ़ा कि उनका हृदय द्रवीभूत हो गया, शरीर में रोमाञ्च हो उठे एवं नेत्रों से प्रेमाश्रुधारा बह चली जो रोकने पर भी रुकती न थी। इस विलक्षण दशा में अपनी की हुई पूजा का भी उन्हें स्मरण न रहता।

तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥१२॥

इस प्रकार निरन्तर भगवान् के व्रत, त्रिकाल स्नान, सन्ध्या तथा जप से राजर्षि भरत का शरीर अग्नि के समान चमक उठा था, एक दिन प्रातःकाल उदय होते सूर्य के सामने खड़े होकर सूर्योपस्थान करते हुए वे यह ऋचा बोले—

परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥१४॥

हे भगवन्! मैं आपके इस दिव्य अनुपम तेज की शरण में हूँ। जिससे इस सम्पूर्ण जगत् का निर्माण हुआ है और जिसमें प्रविष्ट होकर आप सदा अपने अंशभूत जीव को देखा करते हैं, किन्तु अभागा यह जीव आपको नहीं देख पाता। केवल आपके बगीचे को ही देखता है। 'आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन' आप मेरी बुद्धि में ऐसी तीव्र शक्ति दें जिससे मैं आपको देख सकूँ। एतदर्थ मैं आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

आठवाँ अध्याय

मृग में आसक्ति से भरत को मृग-योनि की प्राप्ति और उससे मुक्ति

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक समय राजर्षि भरत गण्डकी नदी में स्नान-सन्ध्योपासन कर तट पर बैठे प्रणव का जप कर रहे थे कि एक गर्भिणी हरिणी प्यास से व्याकुल हो जल पीने की इच्छा से वहाँ पर आयी—

तत्र तदा राजन् हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥२॥

उसने जल पीना आरम्भ ही किया था कि एक सिंह ने बड़ी भयंकर गर्जना की। उसे सुनकर वह घबड़ा गयी और मारे भय के एक ही छलांग में उसने नदी को लाँघ दिया। इस हलचल में उसका गर्भ योनि से निकलकर नदी के प्रवाह में गिर गया और हरिणी पीड़ा से व्याकुल होकर एक गुफा में जाकर गिर पड़ी और वहीं मर गयी। इधर मृगी का बच्चा प्रवाह के वेग से बहता हुआ भरतजी के समीप आ गया। उसे देखकर भरत को बड़ी दया आयी। मातृहीन उस बच्चे को उठाकर अपने आश्रम में ले गये और बड़ी ममता से उसका पालन-पोषण करने लगे। उसके पालन में निरत होने से उनके यम, नियम और भगवान् की परिचर्या आदि कृत्य एक-एक करके धीरे-धीरे छूटने लगे और अन्त में सभी छूट गये। एक दिन बैठे-बैठे उनके मन में विचार आया—अहो! कालचक्र का मारा यह दीन मृगी का बच्चा अपने यूथ से बिछुड़कर मेरी शरण में आया है। मुझे ही माता, पिता, भाई, बन्धु तथा यूथ के संगी साथी समझता है और किसी को जानता भी नहीं। मुझमें इसका पूर्ण विश्वास है। अतः मुझे भी इसका पालन-पोषण मनोयोग से करना चाहिए। इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं, क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है शरणागत के त्याग से महापातक लगता है—

शरण्यस्य परित्यागे महापातकयुग् भवेत्।

अतएव वे बड़ी लगन से हर समय उसे अपने साथ रखते थे। जब कभी वे वन में फल, पुष्प, कन्द-मूल, जल, कुश, समिधा आदि लेने जाते तब उसे भी साथ ले जाते थे। मार्ग में जहाँ कहीं वह जातिस्वभाववश हरी-हरी कोमल घास चरता हुआ रुक जाता तब बड़े प्रेम से उसे उठाकर कभी कन्धे पर कभी गोद में और कभी छाती से लगाकर उसका दुलार करते उनको बड़ा सुख मिलता था।

क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद् वत्स ते सर्वत इति ॥१४॥

पूजन के समय भी बीच-बीच में उठ-उठकर जब उसे देखते तब स्वस्थचित्त से उसे आशीर्वाद देते—बेटा! सर्वदा तेरा कल्याण हो।

कुछ दिनों के बाद जब वह बड़ा हुआ, तब भरत का संग छोड़कर उनके आश्रम से निकल गया और अपने साथी मृगों के झुण्ड में जा मिला। उस दिन से भरत उसे न देखकर अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। प्रतिक्षण उसी का चिन्तन करते विलाप करते हुए कहते थे—अरे! मैंने कौन-सा ऐसा अपराध किया जो वह मुझे छोड़कर यहाँ से चला गया? क्या मैं कभी फिर उसे अपने आश्रम में घास चरते देखूँगा? क्या वह मुझे अपना समझ फिर लौटकर मेरे समीप आयेगा। वन मे उसे सिंह, भेड़ियाँ, सूकर या कुत्ते तो नहीं खा जायँगे? सूर्य अस्ताचल पर जा रहे हैं, हाँ! अभी तक मृगी का धरोहर रूप वह बच्चा नहीं आया—

अद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥

क्या करूँ? जब मैं नेत्र बन्द कर ध्यान करता था तब वह मेरे समीप आकर कोमल शृंगों से मुझे कुरेदता था। उससे मुझे बड़ा सुख मिलता था। जब कभी वह कुशों पर रक्खी हवनसामग्री को दाँतों से खींचकर दूषित कर देता तब मेरे डाँटते ही मुनिकुमार के समान शान्त होकर चुपचाप बैठ जाता था। हाँ! अब तो रात्रि हो गयी। आकाश में चन्द्रमा का भी उदय हो गया अभी तक वह आया नहीं। हे चन्द्रदेव! जहाँ भी वह हो तुम अपनी शीतल किरणों से उसे सुख पहुँचाना। उसके वियोगानल से दग्ध-हृदय मुझपर भी अपनी शीतल किरणों से अमृत बरसाना। इस प्रकार दुष्पूर मनोरथों से व्याकुलहृदय भरत मृगासक्ति के कारण योग-साधना तथा भगवान् की आराधना से भ्रष्ट हो गये। उनकी मृत्यु का समय भी सन्निकट आ गया। उस समय भी शोकाकुल पुत्र के समान समीप में बैठे मृग को देखते और उसी का ध्यान करते-करते उनका शरीर छूट गया और साधारण प्राणी के समान उन्हें मृगयोनि प्राप्त हुयी, किन्तु भगवान् की आराधना के प्रभाव से उनकी पूर्वजन्म की स्मृति नष्ट नहीं हुयी। मृगयोनि की प्राप्ति का कारण जानकर उन्होंने पश्चात्ताप करते हुए कहा—अहो! बड़ा कष्ट है।

मैं ज्ञानी महात्माओं के बताये मार्ग से भ्रष्ट हो गया। मैंने समस्त परिवार की आसक्ति का त्यागकर एकान्त वन में निवास किया। मेरा प्रत्येक प्रहर भगवान् की आराधना में ही व्यतीत होता था, किन्तु न जाने किस दुरदृष्ट के कारण मेरा मन मृगशावक में आसक्त हो गया और मैं अपने लक्ष्य से च्युत हुआ। हा! अब मैं क्या करूँ? इस प्रकार अन्तर्निहित तीव्र वैराग्य की भावना से प्रेरित हो राजर्षि भरत अपनी मृगी माता का परित्याग कर अपने जन्मस्थान कालञ्जर पर्वत से शालग्राम क्षेत्र में प्रवाहित गण्डकी नदी के तट पर आ गये। वहाँ भी संग से अत्यन्त भयभीत हो काल की प्रतीक्षा करते हुए एकाकी ही इधर-उधर घूमते-फिरते थे। भूख लगने पर रूखे पत्ते, तृण, लता आदि चरकर गण्डकी नदी में आकर बैठ जाते थे। एक दिन गण्डकी नदी में आधा शरीर डुबाकर बैठे भरत ने मृगयोनिप्राप्ति में कारणभूत प्रारब्धकर्म के समाप्त होते ही तीर्थोदक से आर्द्र अपना मृगशरीर छोड़ दिया।

मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ।।३१।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

नवाँ अध्याय

राजर्षि भरत का ब्राह्मण कुल में जन्म और भद्रकाली द्वारा बलिदान से उनकी रक्षा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार मृगशरीर का परित्याग कर राजर्षि भरत ने अंगिरा गोत्र के श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुल में जन्म लिया। उनके नौ भाई और थे। वहाँ भी वे पूर्वजन्म की स्मृति के कारण परिवार के संग से बड़े भयभीत रहा करते थे। लोक में जड़, अन्ध, बधिर और पागल के समान व्यवहार करते थे। पिता ने बड़े स्नेह से विधिपूर्वक उनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया और शौच-आचमन आदि नियमों की शिक्षा दी। किन्तु उन्हें यह सब व्यर्थ सा मालूम पड़ता था, क्योंकि उनका चित्त सर्वदा भगवान् के चरणों में लगा रहता था।

त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान् मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ।।५।।

पिता के द्वारा पुत्र को शिक्षा दी जानी चाहिए इस विचार से पिता ने उनको चैत्रादि चार मास तक गायत्री-मंत्र रटाया, किन्तु उन्हें वह भी ठीक तरह कण्ठस्थ न हो सका। उनका आशय था कि एक शब्द भगवान् का नारायण नाम रट लिया है उसी को दिन रात रटते रहेंगे, अधिक शब्दों के रटने से क्या लाभ? उससे केवल बुद्धि ही विक्षिप्त होती है।

नानुध्यायेत् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत् ।

पिता ने उन्हें शिक्षा देने के नाना प्रयत्न किये, किन्तु उनका मनोरथ पूर्ण न हो सका। वह शिक्षा देते-देते स्वयं ही एक दिन परलोक सिधार गये। माता भी अपनी सौत को पुत्र सौंपकर पति के साथ सती हो गयी। पिता के परलोकगामी होने पर उनका प्रभाव न जानने वाले भाइयों ने ब्रह्मविद्या में उनकी निष्ठा न जान उन्हें जड़-बुद्धि समझकर लिखाना-पढ़ाना बन्द कर दिया। वे जड़, बधिर तथा पागल की भाँति इधर-उधर घूमते फिरते थे। यदि कोई बेगारी में उन्हें पकड़कर किसी काम में जोत देता तो वह उसे भी कर देते थे। खाने को रूखा-सूखा जो भी कुछ दैवयोग से मिल जाता उसी से संतुष्ट रहते थे। सर्दी, गर्मी और वर्षा में साँड़ के समान नग्न रहा करते थे। उनके शरीर पर धूल जम गयी थी और जनेऊ काला पड़ गया था। लोग नरपशु कहकर जहाँ-तहाँ उन्हें चिढ़ाते थे तथा नाना प्रकार के व्यंग्य कसते थे, किन्तु वे किसी की कुछ सुनते ही न थे, कारण उनका देहाभिमान निवृत्त हो चुका था। जब कभी कोई दो पैरवाले नरपशु, पागल, मूर्ख या बहरा कहकर उन्हें पुकारते तो वे उसी के अनुरूप चेष्टा कर वैसा ही बोल दिया करते थे। जब भाइयों ने उन्हें दूसरों का काम करते देखा तब उन्होंने भी अपने धान के खेतों में भूमि सम करने में उन्हें लगा दिया, किन्तु सम-विषम का तो उन्हें कुछ ज्ञान था नहीं। कहीं खोदकर गड्ढा बना देते तो कहीं मेड़ तोड़कर भूमि सम कर देते थे। भाई लोग चावल की कनी, खरी, भूसी, जला-भुना जो कुछ भी अन्न खाने को दे देते थे वे उसे ही अमृत के समान समझकर खा लेते थे। एक समय चोरों के एक सरदार ने पुत्र की कामना से भद्रकाली के लिए नरबलि देने का संकल्प किया। जो मनुष्य बलि के लिए पकड़कर लाया गया था वह दैवयोग से अवसर पाकर कहीं भाग गया। सरदार के सेवक अंधेरी रात में उसे खोजने चारों ओर दौड़ पड़े, वह तो मिला नहीं धान के खेत में रक्षार्थ वीरासन से बैठे हुए ब्राह्मणकुमार जड़भरत उनकी दृष्टि में पड़ गये। वे शरीर से मोटे-ताजे तो थे ही और स्वरूप से भी अत्यन्त सुन्दर थे। समग्रलक्षणसम्पन्न जानकर वे सब बड़ी प्रसन्नता से स्वामी की कार्यसिद्धि के लिए उन्हीं को रस्सी से बाँधकर भद्रकाली के मन्दिर में ले गये—

अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥१४॥

चोर सरदार के पुरोहितों ने ब्राह्मणकुमार भरत को स्नान कराकर सुन्दर कोरे वस्त्र पहनाये और चन्दन-तिलक तथा अन्यान्य विविध सुगन्धित वस्तुओं से उनका शृङ्गार किया बढ़िया-बढ़िया भोजन कराया। फिर धूप, दीप, माला, खील, पल्लव, अंकुर, फल आदि उपहार सामग्री के सहित बलिदान की विधि से ढोलक-मृदङ्ग आदि बाजे बजाते हुए देवी के सामने सिर झुकाकर बैठा दिया। तदनन्तर पुरोहित ने नरपशु के रक्त से देवी को प्रसन्न करने के लिए देवी के मन्त्रों से अभिमन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग उठाया। इस प्रकार धन के मद से उन्मत्त महातामसी इन दुष्टों का शास्त्रविरुद्ध भयंकर

कुकर्म देखकर दु:सह ब्रह्मतेज से देवी का शरीर जलने लगा। वह एकाएक मूर्ति फोड़ बाहर निकलकर ख़ड़ी हो गयी—

ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥

क्रोध से उनका मुख लाल हो गया था और भ्रुकुटि चढ़ी थी। उन्होंने कड़क कर भीषण अट्टहास किया और उछलकर उसी अभियन्त्रित खड्ग से उन पापियों के सिर उड़ा दिये और अपने गणों के साथ उनके गले से बहता हुआ गरम-गरम रक्त पान कर नृत्य करती हुई सिरों की गेंद बनाकर खेलने लगीं। तत्पश्चात् देवी ने जड़भरत को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और ध्यानमग्न उनकी नेत्रमुद्रा को देखकर चकित रह गयीं। अनन्तर भरत के शिर पर अपना वरद हस्त रखकर कुछ देर तक उनको प्यार करती रहीं और फिर अन्तर्धान हो गयीं। भरतजी यह दृश्य चकितदृष्टि से देखते ही रहे किन्तु कुछ समझ न पाये कि यह क्या हो रहा है। सच है महापुरुषों के प्रति किये गये अपराध का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है—

एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कात्स्न्र्येन आत्मने फलति ॥९॥

हे राजन्! मृत्युकाल उपस्थित होने पर भी जड़भरत को किसी प्रकार की व्याकुलता नहीं हुई, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। जो भगवान् के अनन्यभक्त हैं, भगवान् उनकी रक्षा नाना प्रकार से इसी तरह किया करते हैं। अन्तकाल उपस्थित होने पर भी उन्हें कभी किसी प्रकार का भय या विकार उत्पन्न नहीं होता।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

दसवाँ अध्याय

जड़भरत की सर्वज्ञताद्योतन के लिए रहूगण का उपाख्यान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक समय सिन्धुसौवीर देश के राजा रहूगण ज्ञानप्राप्ति की इच्छा से पालकी में बैठकर कपिलजी के आश्रम में जा रहे थे। मार्ग में इक्षुमती नदी के तटपर कहारों के मुखिया को पालकी ढोनेवाले एक कहार की आवश्यकता पड़ी। कहार की खोज में दैववश ये जड़भरत ही उसकी दृष्टि में पड़ गये। ये शरीर से मोटे-ताजे, हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् थे। मुखिया ने यह सोचकर कि यह बैल और गदहे के समान भली-भाँति बोझा ढो सकता है, उन्हें भी अन्य कहारों की भाँति बेगारी में पकड़कर जबर्दस्ती पालकी में जोत दिया। यद्यपि वे इसके योग्य नहीं थे, फिर भी वे पालकी ढोने लगे—

उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥१॥

मार्ग में कहीं कोई चींटी आदि जीव-जन्तु पैर के तले दब न जायँ इस भय से आगे की दो हाथ भूमि देखकर वे चला करते थे, ऐसी दशा में उन्हें बचाने के हेतु बीच-बीच में कूद जाते थे जिससे पालकी ऊँची-नीची हो जाने से राजा को धक्का लगता था। राजा ने कहारों से कहा—

हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥२॥

अरे ढ़ोनेवालों! तुम यह क्या करते हो? ठीक तरह पालकी ले चलो। ऊँची-नीची क्यों करते हो? राजा के क्रुद्ध वचन सुनकर कहार दण्ड से भयभीत हो बोले— राजन्! हम सब तो बड़ी सावधानी से पालकी ढो रहे हैं, पर यह जो नया कहार अभी नियुक्त हुआ है इसके साथ हम पालकी ठीक तरह नहीं ढो पाते। यह पालकी लेकर बीच-बीच में कूदता जाता है। इस एक के दोष में हम सभी दोषी हो रहे हैं। यह सुनकर राजा को कुछ क्रोध-सा आ गया। उसने भस्म से आच्छन्न अग्नि के समान छिपे ब्रह्मतेज सम्पन्न जड़भरत से कहा अरे भैया! बड़े दुःख की बात है मालूम पड़ता है तुम बहुत थक गये हो। इतना लम्बा मार्ग अकेले ही तुमने तय किया है। अधिक मोटे-ताजे भी तो तुम नहीं हो। अंग भी तुम्हारे हट्टे-कट्टे नहीं हैं। वृद्धावस्था ने तुम्हें दबा रक्खा है। तुम्हारे साथी तो ऐसे नहीं जान पड़ते। इस प्रकार राजा के ये व्यंग्य वचन सुनकर जड़भरत को कोई विचार नहीं हुआ और वे पहले की तरह ही फिर भी चुपचाप पालकी ढोते रहे। जब कुछ देर बाद फिर पालकी ऊँची-नीची हुई और राजा को जोर का धक्का लगा तब तो राजा के क्रोध की सीमा न रही। उसने तेजी से डपटकर जड़भरत से कहा—अरे तू तो जीता ही मुर्दा जान पड़ता है। मैं तेरा स्वामी हूँ। तू मेरा निरादर कर मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है। बड़ा ही उन्मत्त जान पड़ता है। अब तो दण्ड द्वारा ही तेरी चिकित्सा करनी पड़ेगी जिससे तेरा होश ठिकाने आ जायेगा। रहूगण को राजा होने का बड़ा अभिमान था। उसने अभिमानवश इस प्रकार बहुत सी असम्बद्ध बातें बक दीं और भगवान् के अनन्यभक्त परमज्ञानी जड़भरत का तिरस्कार कर दिया। किन्तु देहाभिमानशून्य होने के कारण उन्हें किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ वे मुस्कराते हुए बोले—

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः।
गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥९॥

हे राजन्! तुमने जो कुछ कहा—वह सब ठीक है, आक्षेप नहीं। यदि भार नाम का कोई पदार्थ है तो वह ढोने वाले देह को होगा। इसी भाँति यदि कोई गन्तव्य मार्ग हो तो वह चलनेवाले देह के लिए होगा न कि मेरे लिए। मैं चेतनआत्मा हूँ, मेरा देह से कोई सम्बन्ध नहीं, जैसे जल में रहते हुए भी कमल-पत्र का जल से सम्बन्ध नहीं होता। अतः आत्मा के श्रम आदि की कल्पना सर्वथा मिथ्या है। इसी प्रकार यह मोटा पतला यह व्यवहार देह में होता है, आत्मा में नहीं, यह विद्वानों का मत है। इसी प्रकार

स्थूलता, कृशता, आधि, व्याधि, भूख, प्यास आदि देहाभिमानी जीव को ही होते हैं, मुझे नहीं। ये श्रम आदि केवल व्यवहारमात्र हैं, इनमें सत्यता नहीं है। मेरी आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। उत्पन्न और नष्ट होने वाला ये सम्पूर्ण जगत् ही जीवन्मृतक कहा गया है। आत्मा के प्रति ऐसी कल्पना सम्भव नहीं है। जहाँ स्वामी और सेवकभाव नित्य होता है वहीं आज्ञानुसार सेवक का कार्य सम्पन्न होता है। मरने पर तू क्या स्वामी रह सकता है? प्रमत्त की चिकित्सा तू क्या करेगा? और उस चिकित्सा से होगा भी क्या? तू आटे को पीसकर क्या गेहूँ बना सकता है? मूर्ख कहीं का चला है, ज्ञान सीखने।

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! परमज्ञानी जड़भरत इस प्रकार राजा के व्यंग्य वचनों का उत्तर देकर मौन हो गये और शान्त चित्त से पुनः पालकी उठाकर चल दिये। राजा रहूगण अपने व्यङ्ग्य वचनों की ऐसी अद्भुत व्याख्या सुनकर चकित रह गया। उसका राजमद जाता रहा। वह पालकी से तुरन्त उतरकर जड़भरत के चरणों में गिर पड़ा और हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हुए बोला—भगवन्! आप कौन हैं जो यज्ञोपवीत धारण कर छिपे हुए विचर रहे हैं? क्या कोई अवधूत हैं? कहाँ से यहाँ प्रकट हो गये? क्या मेरे कल्याण के लिए ही कपिल बनकर तो यहाँ नहीं आ गये—

नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात्।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥१७॥

मैं इन्द्र के वज्र से, रुद्र के त्रिशूल से, यमराज के दण्ड से और किसी भी देवता के अस्त्र से नहीं डरता, केवल ब्रह्मकुल के अपमान से ही डरता हूँ। आप मुझे क्षमा करें। आपके गूढ़ वचनों में मेरा मन प्रवेश नहीं कर पा रहा है। मन्दबुद्धि गृहस्थ योगेश्वरों की गति कैसे जान सकें? आपने मेरे वचनों का खण्डन तो किया, पर वह मेरी समझ में नहीं आया। कर्म करने से जीवमात्र को श्रम होना अनिवार्य है। आप चल रहे हैं, पालकी ढो रहे हैं, तब श्रम कैसे नहीं हुआ? मिथ्या घट से कभी भी जल का लाना सम्भव नहीं हो सकता, सत्य घट से ही हो सकता है। इसलिए व्यवहार सत्य है, मिथ्या नहीं—

स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः।
देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात् तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥२२॥

जैसे चूल्हे पर चढ़ी बटलोई में पहले ताप होता है, उससे जल का ताप फिर उससे तण्डुल के बहिर्भाग और फिर आभ्यन्तर भाग का ताप होता है। यह प्रत्यक्ष हैं, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं, वैसे ही सूर्य के ताप से पहले देह में ताप फिर इन्द्रियों में, तदनन्तर प्राण में, तब मन्त्र में, मन से आत्मा में ताप की अनुभूति होती है। इसी प्रकार देह, इन्द्रिय और अन्तःकरण के सम्बन्ध से जीव को भी श्रम होना अनिवार्य है। फिर आपने श्रम न होने की जो बात कही उसकी सङ्गति कैसे? कृपया मुझे इसका रहस्य

समझायें और मेरी धृष्टता को क्षमा करें। मैंने आपका बड़ा अपमान किया, आप मुझपर ऐसी कृपादृष्टि करें जिससे मैं आप सरीखे महात्माओं के अवज्ञारूपी पातक से मुक्त हो सकूँ।

यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥२४॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

ग्यारहवाँ अध्याय

जड़भरत द्वारा राजा रहूगण को ज्ञानोपदेश तथा संसार के मिथ्यात्व का वर्णन

जड़भरत जी बोले—हे राजन्!

अकोविदः कोविदवादवादान् वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ।
न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥१॥

ज्ञान तो तुम्हें कुछ है नहीं। केवल ज्ञानियों की तरह उदाहरण ही देना जानते हो। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के अनुसार ज्ञानी व्यवहार को सत्य नहीं मानते। यज्ञादि कर्मों का फल जो स्वर्ग कहा गया है, वह भी सत्य नहीं है। क्योंकि इस लोक की तरह उस लोक का भी नाश होता है—

तद् यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते ।

यह तत्त्वज्ञान 'तत्त्वमसि', अहं 'ब्रह्मास्मि', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि वेदान्तवाक्यों के रट लेने से नहीं हो सकता। इसमें अन्तःसाधन की आवश्यकता है। संसार का मिथ्यात्व तुम स्वप्न के दृष्टान्त से समझो। जैसे स्वप्न-सुख अल्पकालीन, नश्वर तथा मिथ्या हैं वैसे ही गृहस्थसम्बन्धी जाग्रत सुख भी हैं, यह अनुमान द्वारा निर्णीत है फिर भी उसमें स्वयं हेयबुद्धि नहीं होती है।

स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥

इसका प्रधान कारण मन है, जो गुणों के वशीभूत होकर इन्द्रियों द्वारा पुण्य-पाप करता है। इस वासनावश ही मन ऊँच-नीच देव, तिर्यक् आदि योनियों को प्राप्त करता है और सुख-दुःख भोगता रहता है। यद्यपि संसार का मुख्य कारण मन ही है तथापि जीव की उपाधि होने से उसका फल जीव को भोगना पड़ता है। जब तक मन विषयों पर आसक्त रहता है तभी तक उसका बन्धन है। निर्विषय होते ही वह मुक्त हो जाता है।

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः ।

जैसे दीपक जब घी की बत्ती को जलाता है तब उसकी ज्योति धूमयुक्त होती है। घृत के अभाव में अपने कारणभूत अग्नितत्त्व में मिलकर उसका स्वरूप तेजोमय हो

जाता है। मन अपनी वृत्तियों के वश ही विषयभोग के लिए लालायित होकर नाना क्रियाओं में फँसा रहता है। वृत्तियों का रोध होने पर ही उसे तत्त्वज्ञान हो जाता है। मन की १० वृत्तियाँ हैं ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और ५ कर्मेन्द्रियाँ। इनके १० विषय हैं। मन की एक वृत्ति अभिमान भी है। अभिमान का आधार (विषय) शरीर है। विवेकी पुरुष इस शरीर में ममत्व कर मेरा शरीर है—ऐसा समझते हैं। यह ग्यारहवीं वृत्ति का विषय है। अज्ञानी पुरुष इस शय्या (शरीर) में अहं बुद्धि कर मैं ही शरीर हूँ ऐसा समझता है। यह बारहवीं वृत्ति का विषय है। ऐसा कुछ लोग कहते हैं।

एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥१०॥

ये ग्यारह मन की वृत्तियाँ काल, कर्म, स्वभाव और विषय आदि के द्वारा सैकड़ों, हजारों, करोड़ो के भेद में परिणत होकर अनन्त हो जाती हैं। भगवान् की सत्ता से ही इन वृत्तियों की सत्ता है, स्वतः नहीं। अतः इन समस्त वृत्तियों तथा उनके विषयों को मिथ्या समझना चाहिए। कारण सत्य तो केवल एक परमात्मा वासुदेव ही है, जो अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र ओत-प्रोत है। हे राजन् जब तक जीव ज्ञान के द्वारा अहन्ता ममता रूप माया का निवारण कर आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता तब तक वह नाना योनियों में भटकता ही रहता है, मुक्त नहीं होता। तुम्हारा यह मनरूपी शत्रु ही सम्पूर्ण दुःखों का मूल है। जो शोक, मृत्यु आदि नाना प्रकार के श्रम तथा ममता को उत्पन्न करता है। मिथ्या होते हुए भी इसने आत्मा के स्वरूप को आच्छादित कर रक्खा है। तुम्हारी उपेक्षा से ही उसकी शक्ति बढ़ गयी है। तुम भगवान् के चरणों की उपासनारूपी भक्ति से प्राप्त ज्ञानखड्ग के द्वारा इस मनरूपी शत्रु का विनाश कर डालो, तभी तुम पूर्ण शान्ति का अनुभव कर सकोंगे।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

बारहवाँ अध्याय

रहूगण की शङ्काओं का समाधान

राजा रहूगण ने कहा—हे योगेश्वर! आप अवधूत-वेष से अपने स्वरूप को छिपा कर विचर रहे हैं। इससे मैं आपको पहचान न सका। आपका स्वरूप एवं ज्ञान दोनों ही विलक्षण हैं। क्षमा करें। मैं आपको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ—

ज्वरामयार्तस्य यथागदं सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः।
कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन् वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥२॥

ज्वर से पीड़ित के लिए जैसे श्रेष्ठ औषध या ग्रीष्म से सन्तप्त प्राणी के लिए जैसे ठंडा जल अमृतरूप है उसी प्रकार देहाभिमानरूपी सर्प से डँसे हुए मुझ विवेकहीन

के लिए आपके उपदेशवचन अमृतरूपी औषध है। मैं अपनी शङ्काएँ तो बाद में पूछूँगा। पहले आप अध्यात्मज्ञान से भरे हुए अपने अत्यन्त दुर्गम उन वचनों का तात्पर्य मुझे समझायें। भारवहनादि क्रियाओं का फल (श्रम) प्रत्यक्ष होते हुए भी व्यवहारमात्र है, 'सत्य' नहीं। यह मेरी समझ में नहीं आया। आप इसकी ऐसी सुगम व्याख्या करें, जिसे मैं भी समझ सकूँ। जड़भरत ने कहा—हे राजन्! सुनो, यह शरीर पृथ्वी का एक विकार ही तो है। शरीर जब चलने लगता है तब वही 'भारवाहक' कहा जाता है। जो पाषाण आदि नहीं चलते वे जड़ हैं। उनको न भार है और न श्रम ही, बस इतना ही तो दोनों में भेद है। अत: देह के जड़ होने से न भार है न श्रम है। पृथ्वी के विकार रूप शरीर में भी दोनों पैर, गुल्फ, जानु, ऊरु कटि वक्षस्थल, ग्रीवा आदि अङ्ग उसके अवान्तर विकार है। कन्धे पर लकड़ी की पालकी है, पालकी में सौवीर देश का झूठा राजा बनकर जो तू बैठा है—यह भी पृथ्वी का एक विकार है। तू अपने को प्रजा का रक्षक घोषित करता है और इन दीन दु:खियों को पालकी में बेगारी से जोतकर निर्दयता का व्यवहार कर रहा है, क्या यह उचित है? यह तुझे शोभा नहीं देता। तू अत्यन्त धृष्ट है और सभ्य-समाज में बैठने योग्य नहीं है। इस प्रकार उक्त विकारों के सभी भार क्रम से पैरों पर आते हैं और पैर से पृथ्वी पर आ जाते हैं। इस पृथ्वी में ही चराचर जगत् की उत्पत्ति और विनाश होता है। इस पृथ्वी से अतिरिक्त यदि कोई दूसरा विकार हो तो तू बता? यह पृथ्वी भी सत्य नहीं, क्योंकि यह अपने उपादान कारण परमाणुओं में लीन हो जाती है। इसलिए यह पृथ्वी भी परमाणुओं की समष्टि कही जाती है। इन परमाणुओं को भी सत्य नहीं कहा जा सकता, कारण कार्य को देखकर वादियों ने इनकी कल्पना कर ली है। वस्तुत: ये भी सत्य नहीं? इसलिए न किसी पर भार है और न किसी को श्रम ही हुआ, यह स्पष्ट है। इसी प्रकार पतला-मोटा, छोटा-बड़ा, चेतन-अचेतन, कार्य-कारण आदि जो भी व्यवहार दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब मायाकल्पित है, सत्य नहीं। सत्य तो केवल ब्रह्म ही है—जिसे वासुदेव कहते हैं—**यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति।**

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥१२॥

हे रहूगण! यह ज्ञान, तप, यज्ञ, अन्नदान, गृहस्थधर्म, वेदाभ्यास, जल, अग्नि तथा सूर्य आदि की उपासना से प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक ज्ञानी-महात्माओं की चरणधूलि का अभिषेक प्राप्त न हो। महात्माओं के समाज में मङ्गलमयी भगवान् की कथाएँ हुआ करती हैं जिनके श्रवण से मनुष्य का मन विषयों से हटकर भगवान् की ओर स्वत: खिंच जाता है। पूर्वजन्म में मैं भरत नाम का राजा था और ऐहिक तथा पारलौकिक विषयों को त्याग कर भगवान् की आराधना में लगा रहता था। एक मृग में आसक्तिवश मुझे मृगयोनि में जाना पड़ा, किन्तु भगवत्कृपा से मेरी मृगयोनि की स्मृति

आज तक नष्ट नहीं हुई। मैं मनुष्यमात्र के संसर्ग से भयभीत होकर अकेला ही विचरता हूँ। हे राजन्! इसलिए जिज्ञासु पुरुष को चाहिए कि वह ज्ञानी महात्माओं के संग से ज्ञानरूपी खड्ग को प्राप्त कर स्त्री-पुत्र आदि का मोहरूपी बन्धन काट डाले और भगवान् की दिव्य लीलाओं का श्रवण, मनन और चिन्तन करता हुआ इस भवाटवी के पार चला जाय।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

तेरहवाँ और चौदहवाँ अध्याय

भवाटवी का वर्णन, रहूगण के सन्देह की निवृत्ति

जड़भरत जी बोले—हे राजन्!

दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमःसत्त्वविभक्तकर्मदृक् ।
स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन् भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ।।१।।

जैसे व्यापारी धनोपार्जन के लिए वन आदि दुर्गम स्थानों की यात्रा करता है; वैसे ही यह जीवात्मा विषयों की लालसा से माया द्वारा इस भवाटवी में ढकेला गया है। यहाँ वह सुख की इच्छा से प्रवृत्तिमार्ग में पड़कर बन्धनकारी कर्म करता है जिससे जीवन में उसे सच्चा सुख नहीं मिलता। इस संसार-रूपी वन में छः भयानक डाकू घूमा करते हैं जो उसका धन लूटते हैं। मन सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ जीव के धर्मार्थ धन को विषयभोग में लगाकर नष्ट कर देती हैं। इस वन में स्त्री-पुत्र आदि सारा कुटुम्ब भेड़ियों एवं शृगालों के समान है। ये सभी मिलकर उसके सुरक्षित धन को देखते-देखते छीन कर ले जाते हैं जैसे प्रतिवर्ष जोतने वाला खेत बीज बोते समय नाना प्रकार के घास-फूस, लता आदि से दुर्गम हो जाता है। उसमें मच्छर, मक्खियाँ भिनभिनाकर काटा करती है, वैसे ही यह गृहस्थाश्रम भी कर्मों का एक खेत ही है। इसमें वासनाएँ रह जाने के कारण कर्मों का समूल नाश नहीं होता। डांस मच्छर आदि के समान ही दुर्जन पुरुष नाना प्रकार की पीड़ा देते हैं और चोर, पक्षी, चूहे आदि इस बेचारे के अन्न, धन को ढो-ढोकर ले जाते हैं और इस गरीब को रोना ही हाथ लगता है। जब कभी वह गन्धर्वनगर के समान अपना कुटुम्ब देखता है तब उसे सत्य समझकर उसी में आसक्त हो जाता है। जैसे वन में व्यापारी अग्नि की तलाश में अग्निमुख पिशाच (अगियावेताल) को पकड़ना चाहता है वैसे ही यह रजोगुणी जीव सुख की खोज में सुवर्ण को चाहता है। यह सुवर्ण अगियावेताल के समान प्राणघातक है। कभी मनुष्य, धन, भूमि आदि आजीविका के साधनों के चक्कर में पड़कर इधर-उधर भटकता फिरता है, तो कभी वन की आँधी से उनके नेत्रों में धूलि भर जाती है और उसे कुछ

दिखाई नहीं पड़ता। उधर, वायु के समान स्त्री भी कभी प्रेमालिङ्गन से उसे मोह लेती है। उससे जीव को और भी नशा चढ़ जाता है। नेत्र बन्द हो जाते हैं। वह कर्मसाक्षी देवताओं को भी भूल जाता है। कभी वन में झींगुर और उल्लुओं के शब्द उसके कान और हृदय में शूल की तरह चुभते हैं। कभी वह कुकर्मों के कारण शत्रुओं द्वारा, राजा द्वारा और कभी सबके सामने अथवा कभी परोक्ष में डाँटा जाता है। कभी वह इस वन में जल की आशा से सूखी नदी की ओर दौड़ता है वहाँ ठोकर खाकर गिर पड़ता है और अंग-भंग के कारण भयानक पीड़ा सहता है। कभी वह पाखण्ड-मार्ग का अवलम्बन करता है। जिससे उसके लोक-परलोक दोनों बिगड़ते हैं। कभी व्यापारी बनकर धन की इच्छा से ऊँचे-ऊँचे पर्वतों पर चढ़ने की इच्छा करता है, किन्तु पैरों में काँटे-कंकड़ चुभने से वह उदास हो बैठ जाता है। कभी लक्ष्मीप्राप्ति की इच्छा से बड़े-बड़े अनुष्ठान करता है, पर जब विघ्नोंवश वे पूरे नहीं होते तब पश्चात्ताप करता है। कभी भूख से व्याकुल होकर वह अपने कुटुम्ब पर कोप करता है।

क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन् शय्यासनस्थानविहारहीनः।
याचन् परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥

कभी धन क्षीण होने पर शय्या, कम्बल आदि गेहीय सुखों से हीन होकर दूसरों से माँगता है। न मिलने पर चोरी करता है और राजदण्ड का भागी बनता है। कभी धन के अभाव में पुत्र और पुत्रियों को बेचता है। कभी निद्रारूपी अजगर से ग्रस्त होकर मृतक के समान पड़ा रहता है। कभी काम से व्याकुल होकर दूसरे की स्त्री को ताकता है और उसके स्वामी अथवा राजा द्वारा दण्डित होता है। कभी अधिक मात्रा में विषयों के सेवन से गिरिकन्दरारूप यक्ष्मा आदि भयंकर रोग के जाल में फँस जाता है। यदि किसी प्रकार रोग से मुक्त हुआ भी तो फिर विषयी पुरुषों का सङ्ग करता है, जिससे उसका दुःख कभी निवृत्त नहीं होता और वह जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा ही रह जाता है। हे राजन्! तुम भी इसी भवाटवी में ढकेले गये हो। इसलिए अपने शरीर, मन और वाणी से किसी का तिरस्कार न करो। सबके साथ मित्रता का व्यवहार करो। विषयों से चित्त हटाओ और भगवान् की सेवा से तीक्ष्ण ज्ञानरूपी खड्ग लेकर इस भवाटवी के पार चले जाओ—

ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥२०॥

राजा रहूगण यह अमूल्य उपदेश सुनकर जडभरत के पैरों पर गिर पड़े और हाथ जोड़कर बोले—भगवन्! संसार में मनुष्य जन्म से बढ़कर कोई दूसरा जन्म नहीं है, कारण अन्य जन्मों में इस प्रकार आप सरीखे महात्माओं का समागम होना कठिन है। आज आपके एक मुहूर्त के समागम से मेरा कुतर्कपूर्ण सारा अज्ञान नष्ट हो गया। मुझे बड़ी शान्ति मिली। भगवान् में मेरी भक्ति हो गयी। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आ वटुभ्यः ।
ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ।।२३।।

ब्रह्मज्ञानियों में जो वयोवृद्ध हैं उन्हें नमस्कार है। जो शिशु हैं, जो युवा हैं और जो क्रीड़ारत छोटे-छोटे बालक हैं उन सभी को मेरा नमस्कार है। अवधूत वेश में जो ब्राह्मण पृथ्वी पर विचरते हैं उनसे राजाओं का कभी अमङ्गल न हो, सर्वदा कल्याण हो। मैं उन्हें भी सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! इस प्रकार ब्राह्मणपुत्र जड़भरत राजा रहूगण को निर्मल ज्ञान का उपदेश तथा आशीर्वाद देकर उनके द्वारा पूजित हो समुद्र के समान गम्भीर, निर्विकार तथा शान्त भाव से चले गये और स्वेच्छा से पृथ्वी पर विचरने लगे। जड़भरत की कृपा से राजा का देहाभिमान छूट गया। वे पूर्ण शान्ति प्राप्त कर कालान्तर में भगवान् के धाम को चले गये। हे राजन्! हमने तुम्हें राजर्षि जड़भरत का यह जो सुन्दर चरित्र सुनाया यह आयु, धन और कीर्ति बढ़ाने वाला तथा मोक्षदायक है। जो श्रद्धा-भक्ति से इसको सुनता या सुनाता है उसके सब मनोरथ स्वयं पूर्ण हो जाते हैं। उसे किसी से कुछ माँगना नहीं पड़ता और वह भगवान् की निश्चल भक्ति प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है—

सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ।।४६।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का तेरहवाँ-चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

भरतवंशीय राजाओं में महाराज गयका महत्त्व

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! भरत के पुत्र सुमति हुए, यह सातवें अध्याय में कह चुके हैं। कुछ पाखण्डी लोग कलियुग में उन्हें बुद्ध का अवतार मानेंगे। उनकी वंश-परम्परा में देवताजित् आदि १४ राजाओं के बाद नक्त के महाराज गय उत्पन्न हुए। वे बड़े यशस्वी थे। उनको लोग भगवान् का अंशावतार मानते थे। वे निरभिमान होकर पृथ्वी का पालन करते थे। श्रद्धा, मैत्री आदि दक्ष की कन्याओं ने उनका अभिषेक किया था। उनके राज्य में पृथ्वी प्रजा के सब मनोरथ पूर्ण करती थी। युद्ध में बाणों से पराजित राजा उनको कर देते थे। दक्षिणाओं से पूजित ब्राह्मणों ने स्वर्ग में उन्हें अपने पुण्य का छठा हिस्सा दिया। इन्द्र ने उनके यज्ञ में इतना सोमरस पिया कि वे आनन्द-विभोर हो उठे। उनकी श्रद्धा और भक्ति से प्रसन्न होकर यज्ञमूर्ति भगवान् ने स्वयं प्रत्यक्ष होकर उनके यज्ञ का फल ग्रहण किया।

यत्प्रीणनाद् बर्हिषि देवतिर्यङ्मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात्।
प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद् गयस्य ॥१३॥

जिन भगवान् के तृप्त होने पर ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तृप्त हो जाता है; उन सर्वान्तर्यामी भगवान् ने महाराज गय के यज्ञ में मैं पूर्णरूप से तृप्त हो गया हूँ, यह कहकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी। उनकी बराबरी कौन राजा कर सकता है, ऐसा प्राचीन लोगों ने कहा है। महाराज गय के गयन्ती भार्या से तीन पुत्र हुए चित्ररथ, सुगति और अवरोधन। उनकी वंश-परम्परा में अन्तिम राजा विरज हुए। उनकी विषूची नामक पत्नी में शतजित् आदि सौ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। राजा विरज ने महाराज प्रियव्रत के वंश को अपनी कीर्ति से वैसे ही अलंकृत किया जैसे कि वामन भगवान् ने देवकुल को अलंकृत किया था।

अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

सोलहवाँ अध्याय

(५ अध्यायों में भूगोल (भगवान् के स्थूल रूप) का वर्णन)

जम्बूद्वीप के खण्ड, सुमेरु की स्थिति और परिमाण

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे मुनिवर! जहाँ तक सूर्य का प्रकाश जाता है और जहाँ तक तारागण के सहित चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं आपने वहाँ तक भूमण्डल का विस्तार बताया है। उसमें भी आपने यह बताया कि महाराज प्रियव्रत के रथ के पहियों की सात लकीरों में सात विस्तृत समुद्र हुए, जिनके कारण इस भूमण्डल में सात द्वीपों का विभाग हुआ। मैं इन सबका परिमाणसहित पूरा विवरण जानना चाहता हूँ। क्योंकि भगवान् के स्थूल रूप में लगा हुआ मन सूक्ष्म रूप में भी सरलता से स्थिर किया जा सकता है। इसलिए हे गुरुवर! आप इसका विशदरूप से वर्णन करने की कृपा करें।

शुकदेवजी बोले—राजन्! भगवान् के माया गुण का इतना अधिक विस्तार है कि देवताओं की आयु पाने पर भी मनुष्य मन या वाणी से उसका अन्त नहीं पा सकता।

तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥४॥

अतः हम संक्षेप में ही मुख्य-मुख्य बातों को लेकर नाम, रूप, प्रमाण और लक्षण द्वारा इस भूमण्डल की विशेषताओं का वर्णन करेंगे। जिस भूमण्डल में हम निवास करते हैं यह जम्बूद्वीप कहा जाता है। इसका विस्तार एक लक्ष योजन है। यह कमलपत्र के समान गोलाकार है। इसमें नौ खण्ड हैं, जो नौ-नौ हजार योजन विस्तृत

हैं। ये खण्ड आठ मर्यादा-पर्वतों से विभक्त हैं, जो प्रत्येक खण्ड की सीमा बनाते हैं। इन खण्डों के बीच में एक इलावृतखण्ड और है, जिसके मध्य में कुलपर्वतों का राजा सुमेरु स्थित है। इसकी ऊँचाई एक लक्ष योजन है। यह पर्वत चौरासी हजार योजन पृथ्वी के बाहर खड़ा है और सोलह हजार योजन पृथ्वी के भीतर घुसा है। इसके मूल की चौड़ाई सोलह हजार और उर्ध्व भाग की चौड़ाई बत्तीस हजार योजन है। इलावृत खण्ड के उत्तर भाग में नील, श्वेत और शृङ्गवान् ये, तीन पर्वत हैं। जो क्रमशः रम्यक, हिरण्मय और कुरुखण्डों की सीमा ब्रताते हैं। ये पूर्व से पश्चिम समुद्र तक फैले हैं इनकी चौड़ाई दो-दो हजार योजन है। इलावृत के दक्षिण भाग में निषध, हेमकूट और हिमालय ये तीन पर्वत हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारत की सीमा बताते हैं और पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं। ये दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं। इलावृत के पूर्व और पश्चिम भाग में माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत हैं। ये केतुमाल और भद्राश्व की सीमा बताते हैं।

केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥१०॥

ये उत्तर में नील और दक्षिण में निषध पर्वत तक फैले हुए हैं। तथा दो-दो हजार योजन ऊँचे हैं। सुमेरु के चारों ओर मन्दर, मेरु-मन्दर, सुपार्श्व और कुमुद ये चार पर्वत स्तम्भ (खम्भे) के समान खड़े हैं। इनकी लम्बाई और चौड़ाई दस-दस हजार योजन है। इन चारों पर्वतों पर क्रमशः आम्र, जम्बू, कदम्ब और वट के वृक्ष ध्वजा के समान शोभा पा रहे हैं। इनमें प्रत्येक वृक्षों की ऊँचाई ग्यारह सौ योजन तथा मोटाई सौ-सौ योजन है। इन वृक्षों की शाखाओं का विस्तार ग्यारह सौ योजन है। इन पर्वतों पर दुग्ध, मधु, इक्षुरस और शुद्ध जल के चार सरोवर हैं। इनके सेवन से अणिमादि अष्टसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इन चार पर्वतों पर लोकपालों के नन्दन, चैत्ररथ वैभ्राजक और सर्वतोभद्र नाम के चार उपवन है, जिनमें देवतागण अप्सराओं के साथ विहार करते हैं। ग्यारह सौ योजन ऊँचे मन्दराचल पर्वत पर जो आम का वृक्ष उसके अमृतमय विशाल फल नीचे गिरने पर फट जाते हैं। उनके सुमधुर सुगन्धित रस से अरुणोदा नाम की नदी बनकर इलावृत के पूर्व भाग को सींचती हुई बहती है—

अरुणोदा नाम नदी मन्दरगिरि-
शिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥१७॥

उसी प्रकार मेरुमन्दर पर्वत पर स्थित जम्बू वृक्ष से गिरे फलों के रससे बनी जम्बू नदी दक्षिण भाग को सींचती हुई बहती है। सुपार्श्व पर्वत पर स्थित कदम्ब वृक्ष से पाँच मधु की धाराएँ निकलकर इलावृत के पश्चिम भाग को सुगन्धित करती हैं। कुमुद पर्वत पर स्थित वट वृक्ष से दुग्ध, दधि, घृत, मधु आदि के नद निकलकर इलावृत के उत्तर भाग को सींचते हुए बहते हैं। इनके सेवन से सर्वदा युवावस्था बनी रहती है। किसी प्रकार के दुःख की अनुभूति नहीं होती। सुमेरु के मूल भाग में बीस पर्वत और चारों दिशाओं में विशाल आठ पर्वत हैं जिनसे वह अग्नि के समान चमचमाता रहता है—

अष्टभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥

सुमेरु के बीच शिखर पर ब्रह्मा की सुवर्णमयी पुरी दस हजार योजन की है, जिनके चारों कोने सम हैं। इस पुरी का नाम मनोवती है। इसके चारों ओर आठ दिशाओं में लोकपालों की आठ पुरियाँ हैं, जिनमें प्रत्येक का परिमाण ढाई हजार योजन है। उनके नाम ये हैं—इन्द्र की अमरावती, अग्नि की तेजोवती, यम की संयमनी, निर्ऋति की कृष्णाङ्गना वरुण की श्रद्धावती, वायु की गन्धवती, कुबेर की महोदया और ईशान की यशोवती—

मेरौ नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ।
तेजोवती संयमनी तथा कृष्णाङ्गना परा ॥
श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया ।
यशोवती च ब्रह्मेन्द्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम् ॥

(पुराणान्तर)

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

सत्रहवाँ अध्याय

गंगा का अवतरण और इलावृत खण्ड में शिव द्वारा संकर्षण का स्तवन

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! जब राजा बलि की यज्ञशाला में भगवान् वामन ने दक्षिण पैर से पृथ्वी को नापकर बायाँ पैर ऊपर के लोकों की ओर बढ़ाया तब उनके अंगुष्ठ-नख के आघात से ब्रह्माण्ड का ऊपरी भाग फट गया, जिससे बाहर की चिन्मयी जलधारा ने भीतर प्रविष्ट होकर भगवान् के किञ्जल्कोपरञ्जित चरणकमल धोये। इसी कारण उसका नाम विष्णुपदी पड़ गया। वह धीरे-धीरे बहती पाँच हजार वर्षों में स्वर्ग के शिरोभाग ध्रुवलोक में अवतीर्ण हुई। ध्रुवने अपने कुलदेवता का चरणोदक जानकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से प्रणाम किया। अपने नेत्रों में लगाया, आचमन किया और उसे सिर पर धारण किया, जिससे ध्रुव आनन्दविभोर हो उठे, उनके शरीर में रोमांच छा गये तथा नेत्रों में अश्रुधारा बह चली। वह गद्गद कण्ठ से चिरकाल तक हाथ जोड़कर भगवती गंगा की स्तुति करते रहे। बाद में सप्तर्षियों ने उसे अपनी तपस्या का साक्षात् फल समझकर अपने जटामण्डल में धारण किया। वही निर्मल जलधारा आकाशमार्ग से नीचे उतरकर चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती हुई सुमेरु के ऊपर ब्रह्मलोक में आ गिरी। वहाँ से वह सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा इन चार धाराओं में विभक्त होकर

चारों दिशाओं के समुद्रों में जा मिली। सीता नाम की धारा ब्रह्मलोक से गन्धमादन पर्वत पर आकर भद्राश्वखण्ड के भीतर से होती हुई पूर्वदिशा में क्षारसमुद्र में जा मिली। चक्षु नाम की धारा माल्यवान् पर्वत से उतर कर केतुमालखण्ड के भीतर से होती हुई पश्चिमदिशा के समुद्र में जा मिली। भद्रा नाम की धारा शृङ्गवान् पर्वत से उतर कर उत्तरकुरुखण्ड के भीतर से होती हुई उत्तरदिशा के समुद्र में जा मिली। इसी प्रकार अलकनन्दा नाम की चौथी धारा ब्रह्मसदन के दक्षिण से हेमकूट पर्वत को लाँघकर भरतखण्ड के भीतर से होती हुई दक्षिणदिशा के समुद्र में जा मिली।

यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे-
पदेश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥९॥

इस धारा में स्नानार्थं आने वाले प्राणी को पद-पद पर, अश्वमेध, राजसूय, आदि यज्ञों का फल दुर्लभ नहीं है।

दृष्टान्त

हरिद्वार से दस मील दूर किसी ग्राम में एक वैश्य रहता था। जो बड़ा ही धार्मिक एवं सदाचार-सम्पन्न था। उसके दरवाजे पर जो कोई भी आ जाता, उसे वह कभी विमुख न करता, मधुर वाणी बोलता, यथोचित दान देता, प्रतिदिन देवताओं का पूजन एवं ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता था। उसके एक पुत्र था, जो उससे विपरीत स्वभाव का बड़ा कंजूस, सत्पुरुषों का निन्दक, मैले-कुचैले वस्त्र धारण करने वाला, नीचों का संग करने वाला, महान् क्रोधी एवं कटुवचन बोलने वाला था। स्वर्ग और नरक से आये मनुष्यों की पहचान इन्हीं लक्षणों से की जाती है।

'स्वर्ग तथा नरक से आये हुए मनुष्यों के लक्षण'

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति।
दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥
कार्पण्यवृत्तिः सुजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः।
अतीव रोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य॥

(पद्मपुराण-सृष्टि खण्ड, अ. ४३)

वैश्य अपने ऐसे कुलक्षण पुत्र से सदा दुःखी रहा करता था। उसकी स्त्री भी बड़ी पतिव्रता थी। उसे भी लड़के के लक्षण भाते न थे। एक दिन वैश्य ने सपरिवार पुरोहित को साथ लेकर पैदल ही गंगा जी की यात्रा आरम्भ की जब गंगा जी तीन मील रह गयीं तो सायंकाल सबने एक स्थान पर निवास किया। रात्रि को लगभग एक बजे पुरोहित जी शौच के लिए दक्षिण दिशा की ओर गये। कुछ दूर जाने पर उन्होंने बड़ा प्रकाश देखा। वँहाँ भीड़ की भीड़ भोजन कर रही थी। पुरोहित ने बड़े धैर्य से उनके पास जाकर

पूछा—आप लोग कौन हैं? वे बोले—हमलोग भूतप्रेत हैं। हमारी लड़की की शादी है। बरात भोजन कर रही है। वर कल आयेगा। पुरोहित जी ने पूछा—वर कहाँ से आयेगा। प्रेतों ने कहा—सेठजी का जो यह सोलह वर्ष का लड़का जा रहा है—वह कल प्रात:काल मर जाएगा और क़र्मानुसार प्रेत बनेगा। उसी से हमारी लड़की की शादी होगी। पुरोहित यह सुनकर हक्का बक्का सा रह गया। सोचने लगा—कहीं यह बात सच न हो जाय। प्रात:काल उठकर वे सब गंगा जी को चल दिये। गंगा जी एक मील दूर रही होंगी कि उधर से एक विशाल साँड़ दौड़ता हुआ आया। उसके सींगों में गंगा की मृत्तिका लगी थी। उसने आकर लड़के के पेट में अपने सींग घुसेड़ दिये जिससे वह तुरन्त मर गया। अब किसका नहाना धोना। जैसे-तैसे नहाकर सब रोते-रोते उसी जगह पहुँचे जहाँ पहले रात्रि में रहे थे। वहाँ पुरोहित जी ने उसी जगह सब भूत-प्रेतों को रोते देखा। पुरोहित ने कहा—प्रेतों! हमारे यजमान का लड़का तो मर गया। तुम्हारी कन्या की शादी हो गयी होगी, फिर रोते क्यों हो? प्रेतों ने कहा—महाराज! लड़के का कर्म तो ऐसा ही था, पर क्या कहें मरते समय उसके पेट में गंगा की मिट्टी चली गयी जिससे वह कर्मबन्धन से मुक्त हो सीधा वैकुण्ठ चला गया। यह सुनकर पुरोहित जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। गंगा का इस प्रकार का माहात्म्य सुनकर उनके नेत्रों में आँसू भर आये और उन्होंने शेष जीवन गंगातट पर ही व्यतीत करने का संकल्प किया।

गंगा की मृत्तिका और उसके जल की महिमा

ललाटे या लोकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
तमो हन्तुं धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम्।
विलुम्पन्ती सद्यो विधिलिखितदुर्वर्णसरणिं
त्वदीया सा मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम्॥

मनुष्यों द्वारा तिलक के रूप में धारण की गयी गंगा जी की मृत्तिका अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने में मध्याह्नकालीन प्रखर सूर्य के समान हैं एवं मस्तक में लिखित ब्रह्मा के दुर्वर्णको शीघ्र मिटाने वाली है—ऐसी आपकी मृत्तिका हमारे शोकसन्ताप को शीघ्र दूर करें।

यदा यदा यान्ति नरा हि जाह्नवीं
रुदन्ति पापानि वदन्ति चाप्रियम्।
अये कृतघ्ना नितरां नराधमाः
स्वयं समुत्पाद्य निहन्तुमुद्यताः॥

जिस समय मनुष्य स्नानार्थ गङ्गा जी को चलते हैं; उस समय उनके शरीर में स्थित पाप रोने लगते हैं और स्नान करने वालों को कोसते हुए कहते हैं। अरे! तुम

बड़े कृतघ्न हो, नराधम हो, जो स्वयं हमें उत्पन्न कर हमारे नाश के लिए उद्यत हुए हो।

इदं हि गाङ्गं त्यजतामिहाङ्गं पुनर्न चाङ्गं यदि वापि चाङ्गम्।
करे रथाङ्गं शयने भुजङ्गं याने विहङ्गं चरणेऽम्बु गाङ्गम्॥

गंगाजल में यदि किसी प्रकार से शरीर का त्याग हो जाय तो फिर मनुष्य को शरीर धारण करना नहीं पड़ता। यदि कदाचित् शरीर प्राप्त होगा भी तो उसके हाथ में चक्र, शयन के लिए शेषनाग भ्रमण के लिए गरुड़ एवं चरण में गंगाजल होगा अर्थात् वह भगवान् का पार्षद बन जायेगा। इस प्रकार प्रत्येक खण्ड में मेरु आदि पर्वतों में निकलती हुई और भी सैकड़ों नद-नदियाँ विद्यमान हैं। उन सब खण्डों में भारतवर्ष ही कर्मभूमि है। शेष आठ खण्ड स्वर्गीय पुरुषों के, शेष पुण्य के भोगस्थान हैं—

तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति॥११॥

दिव्य, भौम और बिल के भेद से स्वर्ग तीन प्रकार का है। ये आठ खण्ड 'भौम स्वर्ग' कहे जाते हैं। इनमें मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष की और बल दस हजार हाथियों का होता है। शरीर सुन्दर हृष्ट पुष्ट और सर्वदा यौवन-सम्पन्न रहता है तथा विषयभोग का सुख भी पूर्णरूप से सर्वदा मिलता रहता है। एक वर्ष आयु शेष रहने पर स्त्रियों को एक गर्भ होता है। इस सुखोत्कर्ष से उनका जीवनकाल त्रेतायुग के समान सानन्द व्यतीत होता है। वहाँ के निवासी अप्सराओं के हाव, भाव, कटाक्ष और हास्यविलास से आकृष्ट रहा करते हैं। इन नवों खण्डों में भगवान् नारायण आज भी नाना मूर्तियों से विराजमान हैं। इलावृत खण्ड में भगवान् श्रीरुद्र ही एक पुरुष हैं। भवानी के शाप से इस खण्ड में दूसरा कोई पुरुष जा नहीं सकता। यदि कदाचित् कोई पहुँच जाता है तो वह स्त्री हो जाता है। इस प्रसंग को विस्तार से नवमस्कन्ध में कहेंगे। यहाँ श्रीरुद्र अपने इष्टदेव संकर्षण के मन्त्र का जप करते हुए उनका स्तवन करते हैं—

एतदभिगृणन् भव उपधावति॥१६॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त॥

(मासिक परायण का दसवाँ विश्राम)

❖

अठारहवाँ अध्याय

भद्राश्व आदि छः खण्डों के उपास्य एवं उपासकों का वर्णन

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! भद्राश्वखण्ड में उसके स्वामी भद्रश्रवा अपने सेवकों सहित भगवान् हयग्रीव का पूजन, उनके मन्त्र का जप और उनका स्तवन करते हैं—

वदन्ति विश्वं कवयःस्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।
तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ।।४।।

विद्वान् पुरुष शास्त्र द्वारा जगत् को नश्वर बताते हैं। योगी पुरुष समाधि में प्रत्यक्ष उसका अनुभव भी करते हैं फिर भी हे भगवन्! आपकी माया से मोहित हो जाते हैं। आपके चरित्र बड़े आश्चर्यजनक हैं। अतः हम शास्त्रादि में परिश्रम न कर केवल आपको प्रणाम करते हैं। हरिवर्षखण्ड में भगवान् नृसिंहरूप से निवास करते हैं और प्रह्लाद अपने सेवकों सहित उनकी उपासना तथा नृसिंहमन्त्र का जप करते हैं। केतुमालखण्ड में कामदेव के स्वरूप से भगवान् लक्ष्मी के साथ विहार करते हैं। लक्ष्मी जी अपनी सेविकाओं सहित भगवान् की उपासना और उनके मन्त्र का जप करती हैं। रम्यकखण्ड में भगवान् मत्स्यरूप से निवास करते हैं। सत्यव्रत मनु अपने सेवकों सहित उनकी आराधना और उनके मन्त्र का जप करते हैं। हिरण्मयखण्ड में भगवान् कच्छपरूप से विराजमान रहते हैं। पितृगणों के अधिपति अर्यमा अपने सेवकों सहित उनका पूजन तथा उन्हीं के मन्त्र का जप करते हैं। उत्तरकुरुखण्ड में भगवान् वराहरूप से निवास करते हैं। पृथ्वी देवी उत्तरकुरुखण्डवासियों सहित दृढ़ भक्ति से उनका पूजन और उपनिषद् का पाठ करती हैं।

इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ।।३४।।

हे राजन्! इस प्रकार हमने तुमसे छः खण्डों के उपास्य एवं उपासकों का संक्षेप में वर्णन किया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

उन्नीसवाँ अध्याय

किम्पुरुष और भारतवर्ष में उपास्य-उपासक-भाव तथा भारत की श्रेष्ठता

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! किम्पुरुष खण्ड में परमभक्त हनुमान् श्रीरामजी की उपासना करते हैं। वे गन्धर्वों द्वारा वर्णित भगवान् की कथा आर्ष्टिषेण मुनि के साथ सुनते हैं एवं श्रीराम-मन्त्र का जप तथा नामकीर्तन करते हैं। भारतवर्ष में गन्धमादन पर्वत पर भगवान् नर-नारायण लोककल्याणार्थ तप करते हैं। देवर्षि नारद भारतवासी प्रजा के साथ उनका पूजन और मन्त्र का जप तथा स्तवन करते हैं। हे भगवन्! आप ऊँकार स्वरूप, शान्त स्वभाव एवं भक्तों के सर्वस्व हैं आप नर नारायण के रूप से हमें दर्शन देकर कृतार्थ कर रहे हैं। हम आपको बार-बार प्रणाम करते हैं। सृष्टि, पालन और संहार करते हुए भी जिन्हें कर्तृत्वाभिमान छू तक नहीं गया, जो देह में रहते हुए भी

दैहिक क्षुधा, पिपासा आदि द्वन्द्वधर्मों से अभिभूत नहीं होते, द्रष्टा होते हुए भी जिनकी दृष्टि विषयों से विकृत नहीं होती उन निर्लिप्त सर्वसाक्षी नर-नारायण को हम प्रणाम करते हैं। जगद्गुरु ब्रह्मा ने योगाभ्यास एवं समस्त साधनों का मुख्य फल यही बताया है कि अन्तकाल में देहाभिमान त्यागकर अपने चञ्चल मन को भगवान् में स्थिर कर दें।

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन्।
शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद् यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

जैसे ऐहिक तथा पारलौकिक विषयों में आसक्त मूढ़ पुरुष, स्त्री, पुत्र और धन की चिन्ता करते हुए मृत्यु से डरता है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी कुत्सित शरीर के नाश से घबराते हैं तो उसका शास्त्राभ्यास करना व्यर्थ है। यह भारतवर्ष सब खण्डों में श्रेष्ठ है यह कर्मभूमि कहा गया है। इसमें भी चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, कावेरी, गोदावरी, नर्मदा, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, गोमती, सरयू आदि बड़ी-बड़ी पुण्य नदियाँ है जो केवल नाम लेने मात्र से मनुष्यों के अन्तःकरण को पवित्र कर देती है। भारतवासी बड़े भाग्यशाली हैं जिन्हें इन नदियों में स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। देवतागण भी भारत के महत्त्व का यों गान करते हुए कहते हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥

अहो! इन भारतवासियों ने कौन-सा ऐसा पुण्य किया होगा जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने इन्हें भारतवर्ष में जन्म दिया। यहाँ मुकुन्द भगवान् की सेवा करने का अपूर्व अवसर प्राप्त है। हम लोग इसके लिए तरसते हैं। दुष्कर यज्ञ, तप, व्रत तथा दानादि के द्वारा नश्वर स्वर्गादि प्राप्त करने से क्या लाभ? जहाँ विषयभोगों की अधिकता से भगवान् के चरणकमलों की विस्मृति हो जाती है कल्पपर्यन्त आयुवाले ब्रह्मा आदि के लोकों की अपेक्षा स्वल्प आयुवाले मनुष्यों का लोक भारतवर्ष श्रेष्ठ हैं। क्योंकि वहाँ मनुष्य स्वल्पकाल में भगवान् में कर्मों का समर्पण कर उनके निर्भय वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करते हैं।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

जहाँ भगवान् की अमृतमयी कथा नहीं होती, उनके प्रेमी भक्तजन नहीं रहते तथा उनका पूजन एवं उत्सव नहीं होते, ऐसा ब्रह्मलोक भी सेवनयोग्य नहीं है, हम लोगों का यदि कुछ भी पुण्य शेष हो तो उससे हमारा जन्म भारतवर्ष में हो, जिससे हमें भगवान् के पूजन आदि का अवसर मिल सके। वहाँ यज्ञ में श्रद्धा से समर्पित वस्तु को भगवान् बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण करते हैं। इस प्रकार स्वर्गवासी देवतागण भारतवर्ष की प्रशंसा करते हुए उनमें जन्म लेने की प्रार्थना करते हैं। जिन मनुष्यों ने इस भारतवर्ष में सब साधनों से परिपूर्ण मनुष्ययोनि पाकर भी संसारबन्धन से मुक्त होने का प्रयत्न

नहीं किया, वे बड़े ही अभागे हैं। शुकदेव जी बोले हे राजन्! इस प्रकार हमने संक्षेप में जम्बूद्वीप के नौ खण्डों का विभागवर्णन किया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

बीसवाँ अध्याय

शेष छः द्वीप और लोकालोक-पर्वत का वर्णन

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! अब हम जम्बूद्वीप के वर्णन के बाद प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप और पुष्करद्वीप इन छः द्वीपों का क्रम से वर्णन करते हैं। जैसे मेरुपर्वत जम्बूद्वीप से घिरा है वैसे ही लक्षयोजन विस्तीर्ण जम्बूद्वीप उतने ही परिमाण वाले क्षीरसमुद्र से वेष्टित है। क्षीरसमुद्र के बाद दो लक्ष योजनवाला प्लक्षद्वीप है। वह उतने ही परिमाण वाले इक्षुरस के समुद्र से वेष्टित हैं। जम्बूद्वीप में जैसे जामुन का वृक्ष है, वैसी ही यहाँ सुवर्णमय प्लक्ष (पाकड़) का वृक्ष है। इसी से यह प्लक्षद्वीप कहा जाता है। यहाँ सात जिह्वा वाले अग्निदेव निवास करते हैं। प्रियव्रत के पुत्र इध्मजिह्व इसके अधिपति हैं। उन्होंने इस द्वीप के सात विभाग कर अपने सातों पुत्रों को दे दिये और स्वयं संसार से उपरत हो गये। इस द्वीप में सात पर्वत और सात नदियाँ प्रसिद्ध हैं। यहाँ चार वर्ण के लोग रहते हैं जो सूर्य की उपासना करते हैं—

भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ।।४।।

वहाँ के मनुष्य देवतुल्य हैं जिनकी आयु एक हजार वर्ष की है। इसके बाद प्लक्षद्वीप से दूना चार लक्ष योजन का शाल्मलिद्वीप है। यह उतने ही विस्तार वाले मदिरा के समुद्र से वेष्टित हैं। यहाँ शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है। इस पर गरुड़ का निवास है। इसके अधिपति प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहु हैं। उन्होंने इस द्वीप के सात खण्डों को अपने सात पुत्रों में विभक्त किया। यहाँ सात पर्वत सात नदियाँ और चार वर्ण हैं जो चन्द्रमा की उपासना करते हैं। शाल्मली-द्वीप से दूने परिमाण का आठ लक्ष योजन का कुशद्वीप हैं। वह मदिरा के सागर से दूने परिमाण वाले घृतसमुद्र से वेष्टित है। इसमें कुश की झाड़ियाँ हैं। इसके अधिपति हिरण्यरेता हैं। वे इसके सात खण्डों को अपने सात पुत्रों में विभक्तकर स्वयं तपस्या करने वन में चले गये। इस द्वीप में भी सात पर्वत, सात नदियाँ और चार वर्ण हैं, जो भगवान् अग्निदेव की यज्ञों द्वारा उपासना करते हैं—

भगवन्तं जातवेदस्वरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ।।१६।।

कुशद्वीप से भी दुगुना सोलह लक्षयोजन का क्रौञ्चद्वीप है जो घृतसमुद्र से दूने विस्तार वाले दुग्ध समुद्र से वेष्टित हैं। यहाँ क्रौञ्च नामक पर्वत है, जिसके अधिपति घृतपृष्ठ हैं। वे इनके सात खण्डों को अपने सात पुत्रों में विभक्त कर स्वयं भगवान्

श्रीहरि की शरण में चले गये। इस द्वीप में भी सात पर्वत, सात नदियाँ और चार वर्ण हैं, जो जल के अधिष्ठाता देवता की उपासना करते हैं इसके आगे बत्तीस लाख योजन का शाकद्वीप है, जो अपने ही परिमाण वाले मट्ठे के समुद्र से वेष्टित है। इसमें शाक नामक वृक्ष है, इसके अधिपति मेधातिथि हैं। वे इस द्वीप के सात खण्डों को अपने सात पुत्रों में विभक्तकर भगवान् में चित्त लगाकर तप करने चले गये। इस द्वीप में भी सात पर्वत, सात नदियाँ और चार वर्ण हैं। ये सब वायु देवता की प्राणायाम द्वारा उपासना करते हैं। शाकद्वीप के बाद उससे दूना चौसठ लक्ष योजन का पुष्करद्वीप है। यह अपने ही परिणाम वाले शुद्धोदक समुद्र से वेष्टित है। इसमें स्वर्णमय एक विशाल कमल है। इस द्वीप के बीच में मानसोत्तर नाम का एक पर्वत है जो पूर्व और पश्चिमीय खण्डों की सीमा का विभाग करता है। इसकी चौड़ाई और ऊँचाई दस हजार योजन हैं। इसके ऊपर मेरु के चारों ओर घूमने वाले सूर्यरथ का चक्र उत्तरायण और दक्षिणायन के क्रम से घूमता है। इस द्वीप के अधिपति प्रियव्रत के पुत्र वीतिहोत्र हैं, जो अपने दो पुत्रों रमणक और धातकि को दोनों खण्डों का अधिपति बनाकर स्वयं पूर्वजों की भाँति तप करने वन में चले गये। यहाँ के पुरुष अद्वैत ब्रह्म की उपासना करते हैं। शुद्धोदक समुद्र के आगे लोकालोक नामक पर्वत है, जो सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशों के बीच उनका विभाग करता हुआ स्थित है।

स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥३८॥

विद्वानों ने प्रमाण और लक्षण द्वारा सम्पूर्ण भूगोल का मान पचास करोड़ योजन बतलाया है। उसका चतुर्थांश अर्थात् साढ़े बारह करोड़ योजन इस पर्वत का मान है। इसकी चारों दिशाओं में ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित नाम के चार दिग्गज हैं। इस पर्वत पर स्वयं भगवान् कल्पपर्यन्त अपने पार्षदों सहित लोक-रक्षार्थ विराजमान रहते हैं। इस पर्वत के बाद योगेश्वरों की ही गति कही गयी हैं, औरों की वहाँ गति नहीं है—

ततः परस्ताद् योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥४२॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

इक्कीसवाँ अध्याय

(३ अध्यायों में खगोल का वर्णन)

सूर्य के रथ की गति का वर्णन

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! इस प्रकार हमने प्रमाण और लक्षण द्वारा भूगोल का स्वरूप संक्षेप में तुमसे कहा। अब खगोल के स्वरूप का वर्णन सुनो।

एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति ॥२॥

भूगोल के मान से खगोल का मान भी वैसे ही सरलता से जाना जा सकता है जैसे चने या मटर के एक दल के परिमाण से दूसरे दल का परिमाण जान लिया जाता है। चने या मटर के दोनों दलों को जोड़ने वाला जैसे एक अँकुआ होता है वैसे ही भूगोल और खगोल के मध्य अन्तरिक्ष ही एक सन्धिसंस्थान है। भगवान् सूर्य इसी अन्तरिक्ष के मध्य में स्थित रहते हुए त्रिलोकी को ताप और प्रकाश देते हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् संज्ञावाली अपनी मन्द, शीघ्र और सम गतियों से यथा समय मकर आदि बारह राशियों के ऊँचे, नींचे एवं समस्थानों में जाकर दिन-रात को बड़ा, छोटा और सम करते हैं। जब सूर्य, मेष और तुला पर जाते हैं तब दिन-रात बराबर होते हैं। जब सूर्य, वृष आदि पाँच राशियों पर चलते हैं, तब क्रमशः दिन बढ़ने. लगते हैं और रात्रियाँ एक-एक घड़ी छोटी होती जाती है जब वे वृश्चिक आदि पाँच राशियों पर भ्रमण करते हैं तब रात्रियाँ बढ़ने लगती हैं और दिन एक-एक घड़ी छोटे होते हैं। आशय यह कि दक्षिणायन का आरम्भ होने तक दिन और उत्तरायण का आरम्भ होने तक रात्रियाँ बढ़ती हैं—

यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः ॥६॥

इस प्रकार पण्डित जन सूर्य द्वारा मानसोत्तर पर्वत की परिक्रमा का मार्ग नौ करोड़ इक्यावन लक्ष योजन का बताते हैं। उस पर्वत पर मेरु के पूर्व की ओर इन्द्र की **देवयानी**, दक्षिण में यम की **संयमनी**, पश्चिम में वरुण की **निम्लोचनी** और उत्तर में चन्द्रमा की **विभावरी** नाम की चार पुरियाँ हैं। इन सब में यथासमय उदय, मध्याह्न, अस्त और अर्द्धरात्रि होती है। जो सुमेरु पर रहते हैं। उनके लिए सदा मध्याह्न ही रहता है। नक्षत्रों के अभिमुख जाते हुए सूर्य यद्यपि सुमेरु को बायीं ओर करते हैं तथापि प्रवह नामक वायु ज्योतिश्चक्र को सदा दायीं ओर घुमाती रहती है। इससे सूर्य सुमेरु को दक्षिण की ओर कर चलते हुए जान पड़ते हैं। भगवान् सूर्य इन्द्रपुरी से यमपुरी में १५ घड़ी में जाते हैं। इतने काल में सवा दो करोड़ साढ़े बारह लाख पच्चीस हजार (२३७७५०००) योजन मार्ग लाँघते हैं। इसी प्रकार वरुण चन्द्रमा की पुरियाँ पारकर फिर इन्द्रपुरी में आते हैं। सूर्य का वेदमय रथ एक मुहूर्त में चौंतीस लाख आठ सौ योजन के हिसाब से चलता हुआ चारों पुरियों में घूमा करता है—

एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥१२॥

सूर्य के रथ की धूरी का एक सिरा मेरु पर्वत की चोटी पर और दूसरा मानसोत्तर पर्वत पर है। इसमें लगा पहिया कोल्हू के पहिये के समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वत के ऊपर चक्कर लगाता है। इस धुरी में जुड़ी हुई एक और धुरी है, जिसका ऊपरी भाग ध्रुवलोक में बाँधा है। उसमें रथी के बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा और

नौ लाख योजन चौड़ा है। इस रथ का जुआ छत्तीस लाख योजन लम्बा है। इस रथ में जोते छन्द रूपी सात अश्व सारथि अरुण से प्रेरित होकर सूर्य को आकाश में ले चलते हैं। साठ हजार बालखिल्य ऋषि सूर्य की ओर मुख किये स्तुति करते चलते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य भूमण्डल का नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन लम्बा घेरा प्रतिक्षण दो हजार दो योजन की रफ्तार से लाँघते जाते हैं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

बाईसवाँ अध्याय

चन्द्र, शुक्र आदि ग्रहों के स्थान और उनकी गति से इष्टानिष्ट फल

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्! आपने कहा कि सूर्य राशियों की ओर जाते समय मेरु और ध्रुव की दाहिनी ओर से चलते जान पड़ते हैं जब कि वस्तुतः उनकी गति दक्षिणावर्त नहीं है। इसको हम कैसे समझें? शुकदेव जी बोले—हे राजन्! जैसे कुम्हार के घूमते चक्र पर चलती चींटी आदि की गति भिन्न-भिन्न जान पड़ती है वैसे ही काल-चक्र में घूमते भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रों में स्थित सूर्यादि ग्रहों की भी गति भिन्न-भिन्न होती है। सूर्य सम्पूर्ण लोक के आत्मा हैं। उन्हीं से वसन्त आदि छः ऋतुएँ होती हैं। वह कालचक्र में स्थित होकर राशिसंज्ञक बारह मासों का भोग करते हैं। यह मास चान्द्रमान से दो पक्ष का पितृमान से रात-दिन का और सौरमान से सवा दो नक्षत्र (एक राशि) का बताया गया है। सूर्य जितने काल में संवत्सर के छठे भाग अर्थात् दो राशियों का भोग करते हैं उसे ऋतु कहते हैं—

यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ।।५।।

इसी प्रकार सूर्य धुरी का जितना मार्ग है, उसके आधे भाग (अर्थात् छः राशियों) का जितने समय में भोग करते हैं, उसको अयन कहते हैं। और सम्पूर्ण अर्थात् बारह राशियों का भोग करने पर वह काल संवत्सर कहलाता है। जब शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को संक्रान्ति होती है तब सौर तथा चान्द्र मास की एकसाथ प्रवृत्ति होती है। इस तरह संवत्सर का आरम्भ होता है। इस क्रम में सौर मान से वर्ष में छः दिन बढ़ जाते हैं एवं चान्द्रमास से छः दिन घट जाते हैं। इस प्रकार बारह दिनों का व्यवधान होने से वे आगे पीछे हो जाते हैं। पाँच वर्ष बीतने पर मध्य में दो मलमास होते हैं। उसके बाद फिर छठे संवत्सर का आरम्भ होता है। सूर्य की मन्द, शीघ्र तथा समगति के कारण वर्ष के पाँच भेद हो जाते हैं—संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर तथा वत्सर। सूर्यमण्डल से एक लाख और पृथ्वी से दो लाख योजन पर चन्द्रमा हैं। इनकी गति बड़ी तेज है। यह सूर्य की एक वर्ष की गति को एक मास में, एक मास की गति को सवा दो दिन

में और एक पक्ष की गति को एक दिन में ही पूरा कर लेते हैं। यह शुक्ल और कृष्ण पक्ष से विभाग करते हुए तीन मुहूर्त में एक नये नक्षत्र का भोग करते हैं। अभिजित् सहित अट्ठाईस नक्षत्र चन्द्रमा से तीन लाख और पृथ्वी से पाँच लाख योजन दूर हैं। ये मेरु के दक्षिण भाग से घूमते हैं। इनमें दो लाख तथा पृथ्वी से सात लाख योजन ऊपर शुक्र है। ये प्रायः मनुष्यों के अनुकूल ग्रह कहे गये हैं तथा वृष्टि रोकने वाले ग्रहों को शान्त करते हैं। शुक्र से दो लाख तथा पृथ्वी से नौ लाख योजन ऊपर बुध हैं। इनकी गति शुक्र के समान ही जाननी चाहिए किन्तु जब यह सूर्य से पृथक् होकर गति करते हैं तब यह आँधी, बादल, अनावृष्टि आदि की सूचना देते हैं। इनसे भी दो लाख तथा पृथ्वी से ११ लाख योजन ऊपर मङ्गल हैं। ये अशुभ ग्रह है अमङ्गल के सूचक हैं। यदि वक्री न हों तो प्रायः अनुकूल रहते हैं। जिसके दशम स्थान में मङ्गल हों वह कुल में दीपक होता है।

दशमेऽङ्गारको यस्य स जातः कुलदीपकः।

इनसे दो लाख तथा पृथ्वी से १३ लाख योजन ऊपर बृहस्पति है। ये यदि वक्री न हों तो प्रायः ब्राह्मण-कुल के अनुकूल रहते हैं। इनसे दो लाख तथा पृथ्वी से १५ लाख योजन ऊपर शनैश्चर हैं। इनकी गति बड़ी मन्द है। ये एक-एक राशि में तीस-तीस मास रहते हैं। अतः इन्हें सब राशियों का भोग करने में तीस वर्ष लग जाते हैं। प्रायः ये सभी के लिए अशान्तिकारक हैं—

प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥१६॥

वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। जो नास्तिक धर्म-कर्म-हीन हैं, लोक परलोक को नहीं मानते, उन्हीं नरपशुओं को ये कर्मानुसार भगवत्प्रेरणा से मृत्युतुल्य कष्ट देते हैं। धर्मकर्म तथा परलोक में आस्था रखने वाले कर्मनिष्ठ प्राणियों को नहीं। उन्हें खड्ग-प्रहार-जन्य-पीड़ा के स्थान पर कण्टकजन्य स्वल्पपीड़ा देकर उनका भोग समाप्त कर देते हैं। इसीलिए यहाँ प्रायः शब्द का प्रयोग किया गया है। ये बड़े ही ओजस्वी उग्र ग्रह कहे जाते हैं। ये क्षणमात्र में राजा को रंक तथा रंक को राजा बनाने की सामर्थ्य रखते हैं। उनकी प्रसन्नता में एक छोटी सी कथा है—

एक बार भगवान् शनि ने कौतुकवश महाराज दशरथ के साहस की परीक्षा लेने का विचार किया। तदनुसार उन्होंने रोहिणी के शकटभेदन का संकल्प किया, जिसका फल था बारह वर्षों तक अवर्षण तथा भयंकर अकाल। महर्षि वशिष्ठ के यह बताने पर राजा ने उन्हीं से इसके प्रतीकार का उपाय पूछा—वशिष्ठ जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—मैं शनिदेव का सामना नहीं कर सकता, तुम्हीं इसका समुचित प्रतीकार करो। महाराज-दशरथ यह सुनकर पहले तो कुछ घबड़ा उठे। पश्चात् साहस कर रथ पर सवार हो अर्धरात्रि के समय नक्षत्रमण्डल में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने बड़े धैर्य से उग्रमूर्ति शनिपर संहारास्त्र के प्रयोग का उपक्रम किया। शनि महाराज दशरथ का यह अद्भुत साहस देखकर चकित रह गये और प्रसन्न होकर बोले—राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा

यह साहस! ओह मेरी दृष्टि के सामने आकर तुम जीवित रह गये, यह आश्चर्य और महान् आश्चर्य है। मैं तुम्हारे इस पराक्रम से बहुत प्रसन्न हूँ—जो इच्छा हो मुझसे वर माँगो। राजा ने कहा—भगवन्! आज से आप कभी भी रोहिणी का शकटभेदन न करें। मैं यही वर चाहता हूँ। शनि ने 'तथास्तु' कहकर राजा का मनोरथ पूर्ण किया और भी अनेकानेक आशीर्वाद दिये। प्रसन्नतावश राजा दशरथ के नेत्रों में आनन्दाश्रु झलक आये और बोले—भगवन्! आप मुझ पर प्रसन्न हुए—यह मेरा अहोभाग्य है। तदनन्तर राजा ने आठ श्लोकों से उनका स्तवन किया। उनमें प्रथम श्लोक यह है—

कोणोऽन्तको रौद्रयमोऽथ बभ्रुः कृष्णः शनिः पिङ्गलमन्दसौरिः ।
नित्यं स्मृतो यो हरते च पीडां तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥

इत्यादि राजा की स्तुति सुनकर शनि बहुत प्रसन्न हुए एवं राजा के मस्तक पर वरदहस्त रखकर अन्तर्धान हो गये।

सूर्यादि ग्रहों के रथों का स्वरूप—

सूर्य का– एकचक्रो रथो यस्य दिव्यः कनकभूषितः ।
स मे भवतु सुप्रीतः पद्महस्तो दिवाकरः ॥

सोम का– रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः ।
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ ॥

भौम का– अष्टास्त्रः काञ्चनः श्रीमान् भौमस्यापि रथो महान् ।
पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः ॥

बुध का– वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च ।
पिशङ्गैस्तुरगैर्युक्तः सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभिः ॥

गुरु का– अष्टाभिः पाण्डुरैर्युक्तो वाजिभिः काञ्चनो रथः ।
तस्मिंस्तिष्ठति वर्षान्ते राशौ राशौ बृहस्पतिः ॥

शुक्र का– सवरूथः सानुकर्षो युक्तो भूसम्भवैर्हयैः ।
सोपाङ्गः सपताकस्तु शुक्रस्यापि रथो महान् ॥

शनि का:– आकाशसम्भवैरश्वैः शबलैःस्यन्दनं युतम् ।
तमारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चरः ॥

शनि से ग्यारह लाख तथा पृथ्वी से २६ लाख योजन ऊपर सप्तर्षि हैं। ये विश्व का कल्याण मनाते हुए भगवान् विष्णु का परमपद जो ध्रुवलोक हैं, उसकी परिक्रमा किया करते हैं—

भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं तत्प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

तेईसवाँ अध्याय

ध्रुवलोक तथा शिशुमारचक्र का वर्णन

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! सप्तर्षियों से १३ तथा पृथ्वी से ३९ लाख योजन पर ध्रुवलोक है। यह विष्णु का परमपद कहा जाता है। इसमें उत्तानपाद के पुत्र भगवद्भक्त ध्रुव निवास करते हैं। अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म इसकी परिक्रमा किया करते हैं। यह स्तम्भ के समान है। इसके ही आश्रित सम्पूर्ण ग्रह और नक्षत्र-मण्डल वायु से प्रेरित होकर वैसे ही घूमा करते हैं जैसे कोल्हू में बँधे बैल चक्कर लगाते हैं। प्रकृति और पुरुष के संयोग से वे ऐसे बँधे हैं कि पृथ्वी पर गिर नहीं सकते।

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥४॥

कुछ विद्वान् भगवान् की योगमाया के आश्रय से स्थित नक्षत्रमण्डल की शिशुमार के (सूंसके) शरीर के अवयवों से कल्पना कर उसका वर्णन करते हैं। कुण्डलीभूत अधोमुख शिशुमार के पुच्छ के अग्रभाग में ध्रुव कल्पित हैं। मध्य में नक्षत्ररूप से प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म कल्पित हैं। पुच्छमूल में धाता तथा विधाता कल्पित हैं और कटि में शकटाकाररूप से स्थित सप्तर्षि कल्पित हैं। उसके दक्षिण भाग में उत्तरायण के चौदह नक्षत्र (अभिजित् से लेकर पुनर्वसुपर्यन्त) कल्पित हैं एवं उसके वाम भाग में दक्षिणायन के चौदह नक्षत्र (पुष्य से लेकर उत्तराषाढ़ापर्यन्त) कल्पित हैं। पृष्ठ में अजवीथी और उदर में आकाशगङ्गा है। पुनर्वसु और पुष्य दाहिने और बाँयें कटितट में आर्द्रा और श्लेषा पीछे के दाहिने-बाँये पैरों में, अभिजित् तथा उत्तराषाढा दक्षिण-वाम नासिका में, श्रवण और पूर्वाषाढा दक्षिण-वाम नेत्र में, धनिष्ठा और मूल दक्षिण-वाम कर्ण में, मघा आदि दक्षिणायन के आठ नक्षत्र दक्षिण पार्श्व की पसलियों में एवं शतभिषा और ज्येष्ठा दाँयें-बाँयें स्कन्धों में कल्पित हैं। ठोड़ी के ऊपरी भाग में अगस्त्य और निचले भाग में यम हैं। मुख में मंगल, लिङ्ग में शनैश्चर, ककुद में बृहस्पति, वक्षस्थल में सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनी-कुमार, प्राण और अपान में बुध एवं गले में राहु की स्थिति कल्पित की गयी है। उसके सम्पूर्ण अङ्गों में केतु और रोमावलि में समस्त तारागण कल्पित हैं। यह भगवान् का समस्त देवतामय अद्भुत रूप है।

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥९॥

ग्रह, नक्षत्र तथा तारारूप से अवस्थित सर्वाधिदेव भगवान् का यह दिव्य रूप त्रिकाल मन्त्रजप करने वालों का पापनाशक है। जो श्रद्धा और भक्ति से तीनों कालों में इस रूप को नमस्कार या इसका स्मरण करता है उसके सब पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

अण्डगोलक का मान

सूर्यमण्डल से ध्रुवलोक ३८ लाख योजन, ध्रुवलोक से महर्लोक १ करोड़ योजन, महर्लोक से जनलोक २ करोड़ योजन, जनलोक से तपोलोक ८ करोड़ योजन एवं तपोलोक से सत्यलोक १२ करोड़ योजन है। इस प्रकार सूर्यमण्डल से सत्यलोक २३ करोड़ ३८ लाख योजन होता है। सत्यलोक से वैकुण्ठ १ करोड़ ६२ लाख योजन है। उसके बाद अण्डगोलक है। इस प्रकार विष्णुपुराण के अनुसार सूर्य से ऊपर अण्डकटाह २५ करोड़ योजन है। सूर्य मण्डल से पृथ्वी १ लाख योजन नीचे हैं। पृथ्वी से नीचे १०-१० हजार योजन की दूरी पर सात पाताल हैं। पाताल से ३० हजार योजन नीचे भगवान् शेष है। शेष जी से २४ करोड़ ९८ लाख योजन गहरा गर्भोद है। इस प्रकार जोड़कर ऊपर से नीचे तक ब्रह्माण्डगोलक का परिमाण ५० करोड़ योजन होता है। पञ्चाशत्कोटिविस्तृत:।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

चौबीसवाँ अध्याय

सूर्य के नीचे राहु आदि की स्थिति और अतलादि सात लोकों का वर्णन

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! पौराणिकों का कथन है कि सूर्य से दस हजार योजन नीचे नक्षत्र के समान राहु घूमता है। वह भगवान् की कृपा से ग्रह होकर देवयोनियों में सम्मिलित हो गया है, यद्यपि वह उसके योग्य न था। उनके जन्म और कर्मों का वर्णन छठे स्कन्ध में करेंगे। सूर्य का तपता हुआ मण्डल जो दृष्टिगोचर होता है उसका विस्तार दस हजार योजन है। चन्द्र-मण्डल का विस्तार बारह हजार और राहु-मण्डल का तेरह हजार योजन बताया गया है। अमृतपान के समय राहु ने देववेष धारण कर सूर्य और चन्द्र के बीच में बैठकर अमृत पी लिया था। चन्द्र और सूर्य के संकेत से भगवान् ने उसका सिर काट डाला। इसी से वैरवश वह पर्व के दिन चन्द्र और सूर्य पर आक्रमण करने के लिए दौड़ता है किन्तु सूर्य-चन्द्र के रक्षार्थ नियुक्त सुदर्शन चक्र

निरन्तर घूमता रहता है। उसके असह्य तेज से घबड़ा कर राहुमुहूर्त मात्र उनके सामने स्थित होकर दूर ही से लौट जाता है। जितनी देर यह खड़ा रहता है उसी को लोग ग्रहण कहते हैं—

आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥३॥

राहु की ऋतु तथा वक्र स्थिति से सर्वग्रास तथा खण्डग्रास का व्यवहार होता है। वस्तुतः अत्यन्त दूर होने के कारण भास नहीं होता है। राहु से दस हजार योजन नीचे सिद्ध और विद्याधरों का स्थान है। उससे नीचे यक्ष, राक्षस तथा भूत-प्रेतादिकों का विहारस्थान अन्तरिक्ष है। जहाँ तक वायु की गति है और मेघ दिखाई पड़ते हैं उससे सौ योजन नीचे पृथ्वी की सीमा है। जहाँ तक हंस, बाज आदि पक्षी उड़ा करते हैं। हे राजन्! मैंने तुमसे इस प्रकार पृथ्वी के ऊपरी स्थानों का वर्णन किया। अब नीचे के लोकों का वर्णन सुनो, जिन्हें बिलस्वर्ग कहते हैं। इनकी संख्या सात है—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। ये प्रत्येक १०-१० हजार योजन की दूरी पर स्थित है। इनमें स्वर्ग से भी अधिक विषयभोग ऐश्वर्य, आनन्द, संतानसुख तथा अतुल सम्पत्ति वर्तमान है। यहाँ के वैभवपूर्ण भवन तथा उपवन आदि दिव्य स्थानों में दैत्य और दानव सुन्दरी स्त्रियों के साथ विहार करते हैं। दिव्य औषधियों और रसायन के सेवन से उनकी युवावस्था सदा बनी रहती है। उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहता। बड़े-बड़े सर्पों के सिर की मणियाँ पाताल में प्रकाश करती हैं। अतल में मय दानव का पुत्र बल रहता है, जिसने छियानबे मायाओं का विस्तार किया था। जम्हाई लेते समय जिसके मुख से स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली ये तीन प्रकार की स्त्रियाँ उत्पन्न हुई थीं, जो बिलस्वर्ग में प्रविष्ट पुरुषों को स्वर्णरस पिलाकर उनके साथ विहार करती हैं। वितल में भगवान् शिव पार्वती के साथ निवास करते हैं, जिनके वीर्य से वहाँ हाटकी नाम की नदी बहती हैं। उसमें हाटक (सुवर्ण) उत्पन्न होता है। सुतल में राजा बलि का निवास है। भगवान् उसके द्वार पर रहकर सदा उसकी रक्षा किया करते हैं। तलातल में मय नाम का दानव निवास करता है। महातल में भयंकर सर्पों का अनेक सिरों वाला क्रोधवश नाम का गण रहता है, जिसमें कुहक, तक्षक, कालिय आदि प्रधान हैं। वे अपने स्त्रीपुत्रादि-कुटुम्ब-सहित आनन्द से विहार करते हैं। रसातल में पणिनामक दैत्य-दानव रहते हैं, जो निवातकवच, कालेय और हिरण्यपुरवासी कहे जाते हैं। वे देवताओं के प्रबल शत्रु, जन्म से ही बड़े बलवान् तथा महासाहसी हैं। भगवान् के सुदर्शन चक्र से घबड़ा कर वे भी सर्पों के समान छिपकर रहा करते हैं। इन्द्र की दूती सरमा[1] (देवशुनी के) कठोर शब्दों को सुनकर वे इन्द्र से भी डरते हैं।

---

[1] इस सन्दर्भ में एक वैदिक आख्यान है—एक समय पणि नाम के असुरों ने गौ को छिपा दिया। उसे ढूँढ़ने के लिए इन्द्र ने सरमा नाम की देवशुनी को भेजा। असुर उससे सन्धि करना चाहते थे, सरमाने उनसे सन्धि न कर उन्हें शाप दे डाला—अरे

रसातल के नीचे पाताल है, जहाँ शंख, कुलिक आदि बड़े-बड़े फणों वाले महाक्रोधी नाग रहते हैं। जिनमें वासुकि प्रधान है। उनमें कोई पाँच, कोई सात, कोई दस, कोई सौ और कोई हजार सिरवाले हैं, जिनके फणों में लगी बड़ी-बड़ी मणियाँ सूर्य के समान चमकती हुई सम्पूर्ण पाताल को प्रकाशित करती हैं—

येषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

पच्चीसवाँ अध्याय

पाताल के नीचे भगवान् शेष की स्थिति

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! पाताल के नीचे तीस हजार योजन की दूरी पर भगवान् शेष का निवास है। जो अनन्त नाम से विख्यात हैं। यह भगवान् की तामसी कला[1] कहे जाते हैं।

द्रष्टा और दृश्य के एकीकरण से इनका नाम संकर्षण है।

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

इनके एक हजार फण हैं। उनमें से एक फण पर रक्खी हुई यह पृथ्वी सरसों के दाने के समान दिखाई पड़ती है। प्रलयकाल में जब इन्हें विश्व का संहार करने की इच्छा होती है, तब इनके क्रोधवश कुटिल भ्रूमण्डल से तमोगुणी, रुद्र हाथ में त्रिशूल लिये प्रकट होते हैं, जिन भगवान् शेष के चरण-कमल की नखमणि-ज्योति को नागराज भक्तों सहित प्रणाम करते हुए उसमें अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखकर प्रसन्न होते हैं। नागराजों की कन्याएँ भी विविध कामनाओं से शेष जी के समीप जाकर उनका विधिवत् पूजन कर प्रणाम करती हैं एवं रजतस्तम्भ के समान धवल, कदलीस्तम्भ के तुल्य चिकनी कोमल विशाल भुजाओं में अगर, कुंकुम, चन्दन आदि का लेप करती

असुरो! तुम इन्द्र के द्वारा मारे जाने पर पृथ्वी पर सो जाओ इसी कारण वे इन्द्र से डरते हैं।

हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्।

[1] तमोगुण के कार्य संहार के प्रवर्तक होने के कारण तामसी कला कही जाती है स्वतः यह तामसी नहीं है। अन्यथा—

मूर्ति न पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धम्-

इस अग्रिम ग्रन्थ से विरोध होगा।

हुई उनके मृदु स्पर्श से कामासक्त होकर सस्मित लज्जाभाव से उनके मुखकमल को निहारती रहती हैं। वे अनन्त गुणों के सागर भगवान् शुद्ध सत्त्वात्मक मूर्ति धारण कर संसार के कल्याणार्थ वहाँ विराजमान हैं। सुर, असुर, नाग सिद्ध और गन्धर्व निरन्तर उनका ध्यान करते हैं। वे अपने सुमधुर उपदेशामृत से पार्षद तथा देवगणों को तृप्त किया करते हैं। उनके दिव्य श्रीविग्रह में नीलाम्बर, गले में वैजयन्ती माला तथा कर्ण में अनुपम कुण्डल शोभा पाता है। श्रद्धा और भक्ति से उनके गुणों का श्रवण तथा स्वरूप का चिन्तन अनादिकालीन कर्मवासनाओं को शीघ्र ही समूल नष्ट कर संसार से मुक्त कर देता है। एक समय देवर्षि नारद ने ब्रह्मा जी की सभा में उनके गुणों का बखान करते हुए चार श्लोकों से उनके प्रभाव का वर्णन किया था। जिनकी कृपा तथा निरीक्षण से प्रकृति के जड़ गुण सक्रिय होकर सृष्टि आदि कार्य करने में समर्थ होते हैं। उनका स्वरूप अनादि और अनन्त है। उनका रहस्य कोई जान नहीं सकता है। जिन्होंने हम लोगों पर महती कृपा कर यह शुद्ध सत्त्वात्मक दिव्य विग्रह धारण किया है, जिसमें यह कार्य-कारण-रूप सम्पूर्ण प्रपञ्च भासित हो रहा है। भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए जिन्होंने नाना प्रकार की सुमधुर लीलाएँ की हैं।

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद् भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥११॥

जिनका मङ्गलमय पवित्र नाम महापातकी अथवा आर्त प्राणी यदि एक बार परिहास में भी अकस्मात् उच्चारण कर लेता है तो उसकी सम्पूर्ण पापराशि तत्काल भस्म हो जाती है। ऐसे परम दयालु देवता का कौन मुमुक्षु पुरुष आश्रय न करेगा। जिनके एक मस्तक पर सम्पूर्ण भूमण्डल एक धूलिकण के समान निहित है, उनके पराक्रमों की गणना सहस्र-जिह्वाधारी भी नहीं कर सकता। ऐसे प्रभावशाली भगवान् अनन्त समस्त लोकों के रक्षार्थ बिना परिश्रम इस पृथ्वी को धारण किये हैं। उन्हें हमारा बार-बार प्रणाम है। हे राजन्! मैंने तुमसे जिन-जिन स्थानों का वर्णन किया है वे सभी स्थान काम्यकर्म करने वाले मनुष्यों को उनके कर्मानुसार ही प्राप्त होते हैं। आचार-भ्रष्ट अधर्म करने वाले मनुष्यों को नाना प्रकार के नरकों में जाना पड़ता है, उन्हें वहाँ अत्यन्त तीव्र यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। उनका वर्णन अग्रिम अध्याय में किया जायेगा।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

छब्बीसवाँ अध्याय

पापियों के दण्डविधानार्थ नरकों का वर्णन

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे महर्षे!

एतद् वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥१॥

मनुष्यों को ऊँच और नीच गतियाँ प्राप्त होती है—उनमें इतनी विषमता क्यों? शुकदेव जी बोले—हे राजन्! सात्त्विक, राजस तथा तामस भेद से तीन प्रकार के प्राणी होते हैं। उनकी श्रद्धाओं के भेद से गतियों फलों में भेद हो जाता है। जैसे सात्त्विक श्रद्धा से धर्म होता है। उससे प्राणियों को सुख की प्राप्ति होती है। राजसी श्रद्धा से धर्म और अधर्म दोनों होते हैं। उनसे सुख और दुःख की प्राप्ति होती है। एवं तामसी श्रद्धा से केवल अधर्म होता है। उससे दुःख तथा मोह की प्राप्ति होती है। किसी भी पुरुष की सर्वदा एक-सी श्रद्धा नहीं रह सकती है। गुणों के परस्पर सम्मर्द से प्राणी के हृदय में यथासमय तीनों गुणों का संचार होता है। तदनुसार समस्त जीवों को ये सभी गतियाँ क्रम से प्राप्त हुआ करती है। अतः जैसे शास्त्रविहित धर्म करने का फल स्वर्ग कहा गया है। उसी प्रकार अधर्म का फल नरक बताया गया है। दिव्यस्वर्ग, भूस्वर्ग तथा विलस्वर्ग के भेद से स्वर्ग तीन प्रकार के हैं। उनका वर्णन पीछे कर चुके हैं। अब नरकों का वर्णन सुनिये। राजा ने कहा—भगवन्!

नरका नाम भगवन् किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥४॥

आप जिनका वर्णन करना चाहते हैं वे नरक पृथ्वी के कोई देशविशेष हैं अथवा ब्रह्माण्ड से बाहर हैं या ब्रह्माण्ड के भीतर हैं?

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! वे ब्रह्माण्ड के भीतर, दक्षिण दिशा में पाताल के नीचे तथा गर्भोद के ऊपर स्थित हैं। इसी दिशा में अग्निष्वात्त आदि पितृगण भी अपने वंशजों की शुभकामना करते हुए निवास करते हैं। नरकलोक में सूर्यपुत्र भगवान् यम अपने गणों के साथ रहते हैं। वे अपने दूतों द्वारा लाये गये प्राणियों को भगवान् के आदेश से उनके कर्मानुसार उचित दण्ड देते हैं। प्रधानरूप से नरक २८ बताये गये हैं। हम नाम, रूप तथा लक्षणों द्वारा उनका क्रमशः वर्णन करते हैं।

(१) तामिस्र—जो मनुष्य परायी स्त्री और धन का हरण करता है वह तामिस्र नरक में जाता है। उसे यमदूत कालपाश से बाँधकर बलात् इस नरक में गिराते हैं। यहाँ गिराये गये जीव को भोजन-पानी कुछ नहीं मिलता। वह लाठियों से पीटा जाता है और अन्धकार में इधर-उधर दौड़ता है।

तामिस्रमस्ति अस्मिन्निति . तच्छब्दार्थः ।

(२) अन्धतामिस्त्र—जो मनुष्य तू मेरी धर्म की बहन है, शिष्या है इस प्रकार वञ्चना कर उसका उपभोग करता है। वह प्राणी अन्धतामिस्त्र नरक में गिराया जाता है। वहाँ बड़ी कड़ी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। जड़ से कटे वृक्ष के समान उसका शरीर सूख जाता है। वहाँ वह त्राहि-त्राहि करता हुआ घोर अन्धकार में भटकता हुआ अपने पाप का फल भोगता है।

अन्धतामिस्त्रमस्ति अस्मिन्निति तच्छब्दार्थः।

(३) रौरव—जो मनुष्य अहंकार या ममतावश प्राणियों से द्रोह कर अपने कुटुम्ब का पोषण करता है। वह इस नरक में आता है, वहाँ भूरिभृङ्ग नाम के जीव उसके मांस को नोच-नोचकर खाते हुए उसे पीड़ा पहुँचाते हैं।

रुरवो हिंसन्ति यत्र स रौरवः।

(४) महारौरव—इसी का भेद महारौरव भी है। वहाँ विषमुख वाले मृग उसके टुकड़े-टुकड़े कर खा जाते हैं।

मृगा नानाविषमुखा रुरवः परिकीर्तिताः।

(५) कुम्भीपाक—जो अपने पेट के लिए जीवित पशु-पक्षियों की हत्या कर उसे पकाता है, उस हृदयहीन तथा राक्षस से भी गये बीते पुरुष को यमदूत खौलती हुई तेल की कड़ाही में डालकर पकाते हैं—

यस्त्विह वा उग्रः पशून् पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति, तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥१३॥

तैलं कुम्भ्यां पच्यन्ते यत्र स कुम्भीपाकः।

(६) कालसूत्र—जो पुरुष माता-पिता और ब्राह्मणों से द्रोह करता है तथा वेद की निन्दा करता है, उसे इस नरक में गिराया जाता है। वहाँ अग्नि से तप्त १० हजार योजन की ताँबे की भूमि है। उस पर उस पापी को दौड़ाया जाता है। भूख-प्यास से व्याकुल वह छटपटाता हुआ इधर-उधर गिरता पड़ता रहता है। शरीर में जितने रोम होते हैं उतने वर्षों तक उसे ऐसी दुर्गति भोगनी पड़ती है।

दुःखानुभवः कालः सूच्यते ज्ञायते यस्मिन्निति तदर्थः।

(७) असिपत्रवन—जो धर्मपथ का त्याग कर पाखण्ड का आश्रय करता है, उसे इस नरक में बलात् ढकेला जाता है। वहाँ यमदूत उसे कोड़ा मार-मारकर दौड़ाते हैं। जिससे उस प्राणी के अङ्ग तीक्ष्णधारवाले पत्तों से कट-कटकर गिर जाते हैं। इस प्रकार उसे स्वधर्म के त्याग का फल भोगना पड़ता है।

असिसदृशानि पत्राणि येषां वृक्षाणां तेषां वनम्।

(८) शूकरमुख—जो राजा निरपराध प्राणी को दण्ड तथा ब्राह्मण को प्राणदण्ड देता है। उस पापी राजा को शूकरमुख कोल्हू में डालकर यमदूत गन्ने की तरह पेरते हैं।

शूकरस्येव मुखं येषां तैर्जन्तुभिर्नितरां पीड्यमाना अवयवा यस्मिन्निति तदर्थः। शूकरस्येव मुखं यस्मिन्निति वा ॥

(९) अन्धकूप—जो मच्छर, खटमल आदि जीवों को मारते हैं, उन्हें इस नरक में डाला जाता है। वहाँ ये ही सब मिलकर उसका खून चूस-चूस कर पीते हैं। वह अन्धकार में इधर-उधर घूमता-फिरता है। उसे निद्रा का अवसर नहीं मिलता।

अन्धकारावृतकूपोऽन्धकूपः ।

(१०) कृमिभोजन—जो बिना किसी को दिये स्वयं खाता है तथा भोजन के समय गोग्रास भी नहीं निकालता, उसे इस नरक में लाया जाता है। वहाँ एक लाख योजन विस्तीर्ण तथा कीड़ों से भरा हुआ एक कुण्ड है। वहाँ स्वयं कीड़ा बनकर वह कीड़ों को खाता है और कीड़े उसे खाते हैं।

कृमिभिर्भुज्यते कृमीन् भुङ्क्ते वा तदर्थः ।

(११) संदंश—जो लोग चोरी से या बलात्कार से ब्राह्मण के धन का अपहरण करते हैं, उन्हें इस नरक में डालकर यमदूत जलती हुई सँड़सी से उनकी खाल खींचते हैं।

यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः संदंशस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥
सदंशैः सन्दशन्ति यत्र सः ।

(१२) तप्तसूर्मि—जो पुरुष अगम्या स्त्री से सम्भोग करता है अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुष से सम्भोग करती हैं, यमदूत उन दोनों में से पुरुष को तप्त लोहे की बनी स्त्री-प्रतिमा से और स्त्री को तप्त लोहे की बनी पुरुष-प्रतिमा से आलिङ्गन कराते हैं।

तप्ता सूर्मिर्यस्मिन् सः ।

(१३) वज्रकण्टकशाल्मली—जो मनुष्य सभी जाति की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करता है, उसे यमदूत वज्र के समान तीक्ष्ण काँटे वाले सेमल के वृक्ष पर चढ़ाकर नीचे की ओर खींचते हैं।

वज्रकण्टकशाल्मलिर्यस्मिन् सः ।

(१४) वैतरणी—जो राजा अथवा राजपुरुष सत्कुल में जन्म पाकर भी धर्म-मर्यादा को नष्ट करते हैं, उन्हें यमदूत वैतरणी में ढकेलते हैं। उस नदी में मल-मूत्र, पीव, रक्त, मांस, मज्जा आदि दुर्गन्धपूर्ण वस्तुएँ भरी हैं। वह पापी उसी में डूबता उछलता हुआ स्वकृत अधर्म का फल भोगता है।

वितरणं दानं तेन तीर्यते इति वैतरणी
दानं वितरणं प्रोक्तं तेन सा तीर्यते यतः ।
वैतरणीति ततः प्रोक्ता गोदानेन विशेषतः ॥

(१५) पूयोद—जो पुरुष शौचाचार से हीन हो लज्जा को तिलाञ्जलि देकर शूद्राओं के साथ गठबन्धन कर उनके साथ समागम करते हैं, उन दुराचारियों को उस विशाल ह्रद में डालते हैं, जो विष्ठा, मूत्र, पीव, रक्त आदि से बजबजाता है। भूख लगने पर पापियों को वही खाना-पीना पड़ता है।

पूयमुदकं नास्मिन् सः ।

(१६) प्राणरोध—जो ब्राह्मणादि उच्चवर्ण के होकर भी कुत्ते आदि अस्पृश्य पशु-पक्षियों को पालते हैं, शिकार आदि का शौक रखते हैं, वे इस नरक में गिराये जाते हैं। वहाँ यमदूत उन्हें लक्ष्य बनाकर बाणों से बेधते हैं। इसमें प्राणरोध के तुल्य व्यथा होती है। इसी से इस नरक का नाम प्राणरोध है।

प्राणानां निरोधो यस्मिन् सः ।

(१७) विशसन—जो पाखण्डभरे यज्ञों में पशुओं का वध करते हैं, उन्हें इस नरक में डालकर यमदूत तीक्ष्ण शस्त्र से उनके शरीर का खण्ड-खण्ड करते हैं।

विशसन्ति विहिंसन्ति यस्मिन्निति तदर्थः ।

(१८) लालाभक्ष—जो द्विजाति कामातुर होकर अपनी सवर्णा भार्या के मुख में मोहवश वीर्यपात करता है। उस पापी को यमदूत वीर्य की नदी में गिराकर बलात् वीर्यपान कराते हैं।

लाला रेतः तस्य भक्षणं यस्मिन् सः ।

(१९) सारमेयादन—जो चोर या डाकू अथवा राजपुरुष किसी के घर में आग लगा देते हैं या किसी को विष दे देते हैं अथवा व्यापारियों की पूँजी लूटते हैं, उन्हें यमदूत इस नरक में डालकर वज्र के समान तीक्ष्ण दाढ़ों वाले ७२० कुत्तों से कटवाते हैं।

सारमेयकर्तृकमदनं यस्मिन्निति तदवयवार्थः ।

(२०) अवीचिमान्—जो मनुष्य गवाही देने में, व्यापार में अथवा दान के समय झूठ बोलता है उसे १०० योजन ऊँचे पर्वत के शिखरों से नीचे सिर करके गिराया जाता है। वहाँ इस नरक की भूमि जल के समान जान पड़ती है किन्तु वहाँ जल नहीं है, पत्थर ही पत्थर हैं। उस पर गिरने से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, प्राण फिर भी नहीं निकलते। इस प्रकार बार-बार उसे पर्वत से गिराकर तीक्ष्ण यातना दी जाती है—

वीचिस्तरङ्गः सोऽस्यास्तीति वीचिमत् जलं तन्न विद्यते यस्मिन्निति तदवयवार्थः।

(२१) अयःपान—जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी अथवा व्रत में स्थित कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है, उसे यमदूत इस नरक में गिरा देते हैं और उसकी छाती पर चढ़कर गलाया हुआ गरम-गरम लोहा जबरन पिलाते हैं—

अयसः पानं यस्मिन्निति तदवयवार्थः ।

(२२) क्षारकर्दम—जो स्वयं अधम होकर उच्च होने की चेष्टा करता है एवं उच्च कुल में उत्पन्न बड़े लोगों का सम्मान नहीं करता, उस नीच को लवणात्मक कर्दम के कुण्ड में नीचे को सिरकर डुबा दिया जाता है, जिससे उसे असह्य कष्ट भोगना पड़ता है—

क्षारः कर्दमो यस्मिन्निति तदवयवार्थः ।

(२३) रक्षोगणभोजन—जो पुरुष अथवा स्त्री नरबलि से भद्रकाली आदि देवताओं का यजन करते हैं और प्रसादरूप से उनका मांस खाते हैं। वे ही बलि दिये नर वहाँ राक्षस बनकर कसाई के समान तीक्ष्ण छुरों से उनका मांस काट-काटकर खाते हैं और रक्त पीकर आनन्द से नाचते-गाते हैं।

रक्षोगणानामसृग् रक्तं भोजनं यस्मिन्निति तदवयवार्थः ।

(२४) शूलप्रोत—जो नरपशु वन अथवा ग्राम में निरपराध मृग आदि सीधे-सीधे जीवों को त्रिशूल, भाला आदि नुकीले शस्त्रों से क्रीड़ारत होकर मारते हैं, उन्हें इस नरक में गिराकर शूल में पिरो दिया जाता है एवं कङ्क, बटेर आदि तीक्ष्ण चोंच वाले भयानक पक्षी उसके मांस को नोच-नोचकर खाते हैं। वह पड़ा-पड़ा तड़पता रहता है।

शूलाः प्रोता यस्मिन्निति तदवयवार्थः ।

(२५) दन्दशूक—जो सर्प के समान उग्रस्वभाव वाले दूसरों को उद्विग्न करते हैं। साधारण-सी बात पर मरने-मारने पर तुल जाते हैं वे इस नरक में ढकेल दिये जाते हैं। वहाँ पाँच-पाँच और सात-सात मुख वाले भयानक सर्प उन्हें चूहों की तरह निगल कर उनका प्राण घोटते हैं।

दन्दशूकाः सन्ति अस्मिन्निति तदवयवार्थः ।
अत्र अर्शआदेराकृतिगणत्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः ॥

(२६) अवटनिरोधन—जो दूसरे प्राणियों को गड्ढा, धान के कुठिला या गुफा आदि में बन्दकर सताते हैं, उन्हें यमदूत वैसे ही स्थानों में बन्दकर विषैले धुएँ से उनका प्राण घोटते हैं।

निरुध्यतेऽस्मिन्निति निरोधः। अवटो गर्तो निरोधः निरोधकरो 'यस्मिन्निति तदवयवार्थः ।

(२७) अक्षिपर्यावर्तन—जो गृहस्थ अपने घर आये अतिथि या अभ्यागतों को क्रोधभरी कुटिल दृष्टि से देखते हैं। उन्हें यमदूत इस नरक में डाल देते हैं। वहाँ गिद्ध, चील, कौए आदि पक्षी वज्र के समान कठोर चोंचों से उन पापियों के नेत्रों को निकाल लेते हैं।

अक्ष्णोः पर्यावर्तनमुत्पाटनं यस्मिन्निति तदवयवार्थः ।

(२८) सूचीमुख—जो अपने को बड़ा धनी समझकर दूसरों को टेढ़ी नजर से देखता है और बात-बात पर सन्देह करता है। यक्ष के समान धन का संग्रह कर किसी को एक कौड़ी भी उठाकर नहीं देता, उस धनपिशाच को यमदूत इस नरक में गिरा देते

हैं एवं वहाँ वे उसके सम्पूर्ण अङ्गों को फाड़ कर दर्जियों के समान सुई के धागे से सी डालते हैं।

सूच्या मुखं प्रधानकार्यं यस्मिन् सः।

हे राजन्! इस प्रकार यमलोक में सैकड़ों, हजारों नरक हैं जिनका उल्लेख यहाँ किया गया अथवा नहीं किया गया है। उसमें उन सभी कुकर्मरत पापियों को बारी-बारी से कर्मानुसार जाना पड़ता है, उसी प्रकार शुभ-कर्म-निरत पुण्यात्मा पुरुष स्वर्ग आदि लोकों में जाते हैं। भोग से बचे शेष पुण्य और पापों के द्वारा इस मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं। धर्म और अधर्म दोनों से विलक्षण जो निवृत्ति-मार्ग है उसका वर्णन द्वितीय स्कन्ध में हो चुका है। पुराणों में जिसका १४ भुवनों के रूप में वर्णन किया गया है, वह ब्रह्माण्ड कोश इतना ही है और यह साक्षात् भगवान् का मायामय स्थूल रूप कहा जाता है।

जो आधुनिक सुधारवादी लोक-परलोक में आस्था रखकर ईश्वर को नहीं मानते उन्हें भी अगत्या मृत्यु को तो मानना ही पड़ेगा। कितनी ही उछल-कूद क्यों न करें वे उससे किसी तरह बच नहीं सकते। 'मृत्युः सर्वहरश्चाहम्' के अनुसार मृत्यु भगवान् का ही स्वरूप है। हे सुधारवादियों! वह जब चाहे तुम्हें मारकर तुम्हारी दुर्गति बना सकता है। क्योंकि तुम उसके अधीन हो, उस समय तुम्हारा अभिमान तथा कुतर्क चल नहीं सकेगा। तुम्हारे घनिष्ठ सगे-सम्बन्धी भी काम न आयेंगे। यमदूत दण्डों की मार से तुम्हें जर्जर बना देंगे। तुम भूख-प्यास से तड़पते रह जाओगे। कोई सुनेगा नहीं, इसलिए तुम अब भी चेत जाओ। अहंकार त्यागकर भगवान् की शरण लो। जीवों के परमहितैषी त्रिकालदर्शी महर्षि श्रीव्यास जी ने जो यहाँ भयानक नरकों का वर्णन किया है; वह अक्षरशः सत्य है उसमें कुछ भी मिथ्या नहीं। पापी किसी प्रकार भगवान् के सम्मुख हो जायँ, पाप करना छोड़ दें, इस दृष्टि से उन्होंने यह सच्ची विभीषिका दर्शायी है। इन पाँच सूत्रों का सबको ध्यान रखना चाहिए—धर्म का आचरण करना, परायी स्त्री को बुरी दृष्टि से न देखना, नित्य यथासमय नाम-कीर्तन तथा भगवत्कथा का श्रवण करना, किसी को न सताना और भूखे को रोटी का टुकड़ा देना। बस इतने से प्रभु सब अपराध क्षमा कर देंगे।

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था।
गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥४०॥

हे राजन्! मैंने तुमसे पृथ्वी, द्वीप, वर्ष, नदी, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, नक्षत्र-मण्डल तथा लोकों की स्थिति का संक्षिप्त वर्णन किया। यही सब जीवों के धाम भगवान् का अद्भुत स्थूल रूप है। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति से इस रूप में सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखकर मन को स्थिर कर लेता है, वह भगवत्कृपा से उनके सूक्ष्म रूप को भी सरलता से जान लेता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के पञ्चमस्कन्ध का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(पञ्चम स्कन्ध समाप्त)

षष्ठ-स्कन्ध प्रारम्भ

(इस स्कन्ध में १९ अध्याय हैं और पुराण के चतुर्थ लक्षण पोषण का वर्णन है।)
(इसमें तीन अध्यायों से अजामिल का, छः से विश्वरूप का, आठ से वृत्रासुर का एवं दो अध्यायों से मरुद्‌गणों का उपाख्यान वर्णित है।)

पहला अध्याय

अजामिल का उपाख्यान

राजा परीक्षित् ने कहा—भगवन्! आपने भूगोल, खगोल एवं नरकों का बड़ा ही अद्‌भुत वर्णन किया है। अब आप कृपया ऐसा उपाय बतायें जिससे मनुष्य इन भयंकर यातनावाले नरकों में न जायँ।

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ।
नानोग्रयातनान्नेयात् तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! शरीर, मन और वाणी से किये गये पापों का जो यथावत् प्रायश्चित्त नहीं करता उसे नरकों में जाकर अवश्य ही तीव्र यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

तस्मात् पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यताऽऽत्मना ।
दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥

जब तक मनुष्य रोगादि विपत्तियुक्त तथा निर्बल न हो तब तक उसे मृत्यु के पहले ही अपने पापों का शीघ्र प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए। जैसे कि अनुभवी वैद्य रोगों का निदान कर दोषों के अनुसार उनकी चिकित्सा करता है।

परीक्षित् ने पूछा—भगवन्! यद्यपि मनुष्य यह जानता है कि पाप करने से मुझे इस लोक तथा परलोक में दण्ड मिलेगा, फिर भी वह विवश होकर पाप-कर्म में प्रवृत्त होता है—ऐसी स्थिति में उसके पापों का प्रायश्चित्त कैसे होगा? वह कभी प्रायश्चित्त के द्वारा कुछ समय के लिए पापों से निवृत्त हो जाता है, किन्तु पुनः उसकी पाप कर्मों में प्रवृत्ति हो जाती है। ऐसी दशा में कुञ्जर-स्नान के समान उसका प्रायश्चित्त करना व्यर्थ है। शुकदेव जी ने कहा—हे राजन्! तुमने ठीक कहा, कृच्छ्रादि प्रायश्चित्तरूपी कर्मों से पापरूपी कर्मों का समूल नाश नहीं हो सकता, क्योंकि प्रायश्चित्त करने वाला अधिकारी पुरुष अज्ञानी है। जब तक उसके अज्ञान का नाश नहीं होगा तब तक उसके पापाचरण का संस्कार उद्‌बुद्ध होता रहेगा। इसलिए मुख्य प्रायश्चित्त ज्ञान बताया गया है—

अविद्वदधिकारित्वात् प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

जैसे पथ्य भोजन करने वाले को रोग नहीं होते, वैसे ही यम, नियमों का पालन करने वाला शनैः शनैः तत्त्वज्ञान में समर्थ होता है। उसकी पुनः पापकर्म में प्रवृत्ति नहीं होती है। कुछ लोग केवल भक्ति के द्वारा ही अपने सम्पूर्ण पापों को वैसे ही नष्ट कर देते हैं जैसे सूर्य कुहरे को नष्ट कर देता है। वस्तुतः शास्त्रों में सबसे सरल और मुख्य प्रायश्चित्त यही बताया गया है कि मनुष्य भक्तों का संग कर श्रद्धा से भगवान् की कथा का श्रवण एवं उनके नामों का कीर्तन करे—

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान् स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥१९॥

जिन्होंने एक बार भी भगवान् के चरणकमलों में अपना मन लगा दिया एवं जिनका भगवान् के गुणानुवाद में प्रेम हो गया, उन्होंने सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित्त कर डाला। वे कभी स्वप्न में भी यम या उनके पाशधारी दूतों को नहीं देख पाते।

हे राजन्! इस विषय में मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। जिसमें विष्णुदूत और यमदूतों का संवाद है। कान्यकुब्ज देश में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो कुसंग में पड़कर बड़ा ही दुराचारी हो गया था। घर में उसने एक दासी रख ली थी। चोरी और जुए के साथ पक्षियों को जाल में फँसाकर निन्दित वृत्ति से वह कुटुम्ब का पालन करता था। वह बड़ा ही अशुचि तथा जीवहिंसक था। इसी वृत्ति से पुत्रों का लालन-पालन करने में उसके अठासी वर्ष बीत गये थे—

कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥२३॥

उसके दस पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटे का नाम नारायण था। उस पर उसका बड़ा स्नेह था। वह खाते-पीते, चलते-फिरते सदा उसका चिन्तन किया करता था। वह उस बच्चे की तोतली वाणी एवं क्रीड़ाओं से बड़ा प्रसन्न होता। पुत्र के स्नेह में वह इतना आसक्त हो गया कि सिर पर आये काल को भी न जान सका। मृत्यु के समय उसने हाथों में पाश लिये यमराज के तीन दूत देखे, जो उसे ही लेने आये थे। उनकी आकृति बड़ी भयानक थी, मुख टेढ़े-मेढ़े और शरीर के रोएँ खड़े थे। अजामिल उन्हें देखकर घबड़ा गया और उसने कुछ दूरी पर खेल में आसक्त अपने पुत्र को बड़ी विकलता से 'नारायण'-'नारायण' कहकर पुकारा—

दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम्।
प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥२९॥

भगवान् विष्णु के दूत मृत्यु के समय इस प्रकार अपने स्वामी का नारायण 'नारायण' नाम का कीर्तन सुनकर सहसा वहाँ पहुँचे। उस समय यमदूत अजामिल के शरीर से सूक्ष्म शरीर खींच रहे थे। विष्णुदूतों ने बलपूर्वक उन्हें रोका। इस पर यमदूतों ने विष्णुदूतों से कहा—अरे! धर्मराज की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले आप कौन है?

कहाँ ये आये हैं? इस पापी को ले जाने से हमें क्यों रोकते हैं? हम धर्मराज की आज्ञा से इसे लेने आये हैं। विष्णुदूतों ने कहा—यदि तुम धर्मराज के आज्ञाकारी दूत हो तो बताओ धर्म का स्वरूप क्या है? दण्ड किस कारण होता है? उसका स्थान कौन है? क्या सभी कर्म करने वाले दण्डनीय है अथवा कुछ? यमदूत बोले—वेदविहित कर्म ही धर्म और वेदनिषिद्ध कर्म ही अधर्म कहा गया है। उसके साक्षी सूर्य आदि धर्म (विष्णु) पर्यन्त १४ देवता है।

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥

इनके द्वारा प्राणियों का वृत्त जाना जाता है और दण्ड के स्थान का भी निर्णय किया जाता है। कोई भी शरीरधारी बिना कर्म किये रह नहीं सकता, क्योंकि उसका प्रकृति के गुणों से सम्बन्ध है। इसलिए उससे पुण्य तथा पापों का होना स्वाभाविक है। यह ब्राह्मण पहले बड़ा सदाचारी एवं शीलवान् था। गुरु, अग्नि,. अतिथि तथा वेदों की सेवा में निरत रहता था एवं सब सद्गुणों से सम्पन्न था। एक समय यह पिता की आज्ञा से फल, पुष्प और समिधाएँ लेने वन में गया था। मार्ग में इसने वेश्या के साथ बैठे हुए एक कामी शूद्र को देखा। उन दोनों के नेत्र मदिरा के मद से घूम रहे थे। कामी शूद्र भुजाओं में वेश्या को जकड़ कर हृदय से लगा रहा था। इसी बीच वेश्या के कटिभाग से साड़ी नीचे खिसक गयी और कामी शूद्र सोल्लास उसके साथ क्रीड़ा करने लगा। ऐसा दृश्य देखकर यह कामासक्त हो गया और हर समय उसी वेश्या का ध्यान करने लगा। इसने वेश्या को प्रसन्न करने के लिए अपने पिता का सारा धन फूँक दिया। अपनी पतिव्रता स्त्री का भी परित्याग कर यह न्याय या अन्याय से जैसे धन मिले उसी से वेश्या के कुटुम्ब का पोषण भी करने लगा। कोई भी पापकर्म इससे बचा नहीं और इसका जीवन भी पापमय हो गया। अतएव हम इसको यमराज के समीप ले जायेंगे। जहाँ दण्ड द्वारा इसकी शुद्धि की जायेगी। कारण इसने अपने जीवन में अपने पापों का कोई प्रायश्चित्त भी नहीं किया—

नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुद्ध्यति॥६८॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त॥

❖

दूसरा अध्याय

महापापी अजामिल का भगवन्नाम से उद्धार

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम्।
उपधार्याथ तान् राजन् प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥१॥

धर्मवेत्ता विष्णुदूत यमदूतों का यह वक्तव्य सुनकर उनसे बोले—अहो! यह तो बड़े आश्चर्य और खेद की बात है कि धर्मराज की सभा में भी अधर्म का प्रवेश हो रहा है। क्या अब निष्पाप और निरपराध प्राणियों पर भी दण्डविधान होने लगा है? जो प्रजा की पिता के समान पालन करते हैं एवं सब पर समदृष्टि रखते हैं, यदि वे ही प्रजा के प्रति विषमता का व्यवहार करेंगे तो फिर प्रजा किसकी शरण लेगी। सत्पुरुष जैसा आचरण करते हैं, उसे देखकर साधारण पुरुष भी वैसा ही आचरण करने लगते हैं। वे जिसको प्रमाण मानते हैं उसी का साधारण लोग भी अनुसरण करते हैं। अरे यमदूतों! इसने तो करोड़ों जन्मों के पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है, कारण मरते समय इसने भगवान् के चार अक्षर वाले मङ्गलमय नारायण नाम का उच्चारण किया है—

यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥८॥

हे नारायण! आप—आओ आओ? इस प्रकार चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गोघाती आदि कैसे भी पापी क्यों न हों सबके लिए भगवन्नामोच्चारण ही सबसे बड़ा प्रायश्चित कहा गया है। मनु आदि धर्मशास्त्र के वेत्ताओं द्वारा कहे गये कृच्छचान्द्रायणादि प्रायश्चित्तों से पापियों की वैसी शुद्धि नहीं होती जैसी भगवान् के नामोच्चारण से होती है, क्योंकि वह अन्तःकरण को शुद्धकर पापों की वासना को जड़ से मिटा देता है।

पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥१५॥

जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्ग-भङ्ग होते समय, सर्प के डसते, अग्नि में जलते तथा चोट लगते समय भी विवशता से हरि, हरि कहकर भगवान् के नाम का उच्चारण करता है, उसे यमयातना भोगनी नहीं पड़ती। ज्ञान अथवा अज्ञान से उच्चारण किया गया भगवन्नाम वैसे ही पापराशि को भस्म कर देता है जैसे अग्नि काष्ठ तथा तूलराशि को भस्म कर देती है; जैसे अनजाने में भी किया गया अग्नि का स्पर्श हाथ जला देता है उसी प्रकार अनजान में अनिच्छा से भी पापियों द्वारा उच्चारण किया गया भगवन्नाम उनकी पापराशि को भस्म कर देता है।

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥१४॥

पुत्र आदि किसी का संकेत कर (नाम रखकर) हास-परिहास में, गान में, निन्दा से या क़िसी प्रकार से यदि प्राणी भगवान् के नाम का उच्चारण करता है तो उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे यम-यातना नहीं भोगनी पड़ती।

पतिं वः पृच्छत भटा धर्मेऽस्मिन् यदि संशयः।
स वेद परमं गुह्यं धर्मस्य भगवान् यमः॥

हे दूतो! यदि तुम्हें इस विषय में सन्देह हो तो तुम अपने स्वामी धर्मराज से पूछो! वे धर्म के रहस्य को भली-भाँति जानते हैं। उनसे तुम्हें पूर्ण सन्तोष हो जायेगा।

यह कहकर विष्णुदूतों ने यमराज के पाश से अजामिल को छुड़ा लिया और यमदूत निराश होकर वापस लौट गये। उन्होंने यमराज के समीप जाकर सारा वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह सुनाया। इधर अजामिल यमपाश से छुटकारा पाकर कुछ स्वस्थ हुआ सिर झुकाकर भगवान् के दूतों को प्रणाम कर कुछ कहना ही चाहता था किं वे उसके देखते-देखते सहसा अन्तर्धान हो गये। अजामिल ने भगवान् के दूतों से जो भगवन्नाम का माहात्म्य सुना, उससे उसकी भगवान् में भक्ति जागृत हुई। उसे अपने पापों का स्मरण कर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और मन ही मन अपने को धिक्कारता हुआ बोला—अरे मैं ब़ड़ा पापी हूँ मैंने अपनी पतिव्रता पत्नी का परित्याग कर पुंश्चली का संग किया। उसके गर्भ से पुत्र उत्पन्न कर मैंने अपने ब्राह्मणत्व को भी नष्ट कर डाला। मैं निश्चय ही नरक में जा गिरूँगा। मुझे धिक्कार है। हाय! वे चारों सिद्ध कहाँ गये, जिन्होंने मुझे यमपाश से छुड़ाया। इस प्रकार पश्चात्ताप करते अजामिल को वैराग्य हो आया और वह सब कुछ त्यागकर हरिद्वार में गङ्गा-तट पर जाकर बैठ गया। वहाँ उसने योग द्वारा अपनी इन्द्रियों एवं प्राण का निरोध कर मनको भगवान् के दिव्यं रूप में लगा दिया, जिससे उसकी समाधि लग गयी और देहाध्यास जाता रहा। फिर उसने पहले के उन्हीं चार सिद्धों को आते देखा और तुरन्त उठकर उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। तत्क्षण उसका शरीर प्राणरहित होकर गंगा में गिर पड़ा और उसे भगवान् के पार्षदों का रूप प्राप्त हो गया। भगवान् के दूत उसे सुवर्ण के सुन्दर विमान में बैठाकर विष्णुलोक को ले गये। यह रहस्यमय इतिहास समस्त पापों का नाश करने वाला है। जो मनुष्य श्रद्धा से प्रेमपूर्वक इसे सुनता है या बाँचता है, वह नरक में कभी नहीं जाता। यमराज के दूत तो उसकी ओर आँख उठाकर ताक भी नहीं सकते। शुकदेव जी ने आगे कहा—हे राजन्!

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥

जब महापापी अजामिल मरते समय पुत्र के ब्याज से भगवान् का नाम उच्चारण कर विष्णुलोक चला गया तब जो श्रद्धा और भक्ति से भगवान् का नाम उच्चारण करता है, उसका तो कहना ही क्या है?

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ।।

(मासिक परायण का ग्यारहवाँ विश्राम)

◆

तीसरा अध्याय

यमराज और उनके दूतों का संवाद

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्!

निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान् प्रति धर्मराजः ।
एवं हताज्ञो विहतान् मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ।।१।।

धर्मराज ने अपने दूतों के वचन सुनकर फिर उनसे क्या कहा—जिन धर्मराज के वशीभूत सम्पूर्ण जगत् है उनके दूतों का पराजय तथा उनकी आज्ञा का उल्लंघन कैसे हुआ? ऐसा प्रसंग तो पहले कभी सुनने में नहीं आया। हमें इस पर बड़ा कौतूहल है, आप इसका समाधान करने की कृपा करें।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! विष्णुदूतों से पराजित यमदूत यमराज के निकट जाकर बोले—

कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ।
त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ।।४।।

हे प्रभो! कर्मों का फल देने वाले जीवलोक के शासक कितने हैं? यदि दण्ड देने वाले शासक अनेक हों तो किसको दण्ड हो और किसको दण्ड न हो इसकी व्यवस्था कैसे ठीक बन सकेगी? हम तो आज तक आपको ही समस्त प्राणियों के अधीश्वर एवं उनके पाप के अनुसार दण्ड देने वाले शासक समझते थे, किन्तु आज लोक में आपके दण्ड की अवहेलना की गयी। हम आपके आदेश से एक पापी को ला रहे थे, पर वहाँ चार अद्भुत सिद्धों ने आकर उसे छुड़ा लिया। उस पापी के मुख से 'नारायण का नाम' निकलते ही तुम मत डरो यह कहते हुए वे शीघ्र ही वहाँ आ डटे और हमें डाँटकर उन्होंने भगा दिया। भगवन्! हमें इस पर दुःख और आश्चर्य हुआ। आप कृपा कर इसका रहस्य हमें बताएँ? दूतों की बातें सुनकर यमराज भगवान् श्रीहरि के चरणकमलों का स्मरण कर बोले—हे दूतों! इस सम्पूर्ण जगत् के प्रधान स्वामी भगवान् 'नारायण' ही हैं। उन्हीं में सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है। सब उन्हीं की आज्ञा का पालन करते हैं। मन या वाणी से कोई भी उन्हें यथार्थ रूप से जान नहीं सकता। वे बड़े ही भक्तवत्सल एवं

दयालु हैं। उनके दूत भक्तों के रक्षार्थ सदा सर्वत्र घूमा करते हैं। धर्म की गति बड़ी ही सूक्ष्म है। उसे जानना कठिन है। ब्रह्मा, शिव, नारद आदि कुछ ही महापुरुष धर्म का वास्तविक स्वरूप जानते हैं। शास्त्रों में सबसे श्रेष्ठ धर्म वही माना गया है जिससे नाम कीर्तन आदि के द्वारा भगवान् में निश्चल भक्ति हो। भगवान् के नामोच्चारण का प्रभाव तो तुमने प्रत्यक्ष देख ही लिया। जिससे महापापी अजामिल भी मृत्यु के पाश से छूट गया। भगवान् के नाम का उच्चारण सभी पापों का उत्तम प्रायश्चित्त है। जैसे मृतसंजीवनी औषध को न जानकर वैद्य त्रिफला, निम्ब, त्रिकटु, तिक्त आदि औषधियों का प्रयोग करते हैं वैसे ही धर्मशास्त्र के ज्ञाता मनु आदि ने शास्त्र में अत्यन्त गोप्य इन नाम माहात्म्य को न जानकर कृच्छ-चान्द्रायणादि प्रायश्चित्तों का वर्णन किया। दूसरी बात यह भी है कि लोक में देखा जाता है कि मनुष्यों की बड़े-बड़े यज्ञ-यागादि अनुष्ठानों में जैसी श्रद्धा होती है वैसी स्वल्प व्यय से होने वाले साधारण अनुष्ठानों में नहीं होती है। अतः सम्भव है इसका कोई ग्राहक न हो यह विचार कर उन्होंने प्रायश्चित्तों में भगवन्नाम की गणना नहीं की। वस्तुतः इसका तात्पर्य यह है कि यदि सबको नाम-माहात्म्य का ठीक तरह परिज्ञान हो जाय तो सभी जीवों की मुक्ति हो जाने से सृष्टि का लोप हो जायेगा। इससे भगवान् की लीला में बाधा होगी, यही सोच विचार कर भगवन्नाम का प्रायश्चित्तों में वर्णन नहीं किया।

नाममाहात्म्यज्ञाने सर्वेषां मुक्तिप्रसंगादित्येषा दिक्[1]**। (श्रीधरी)**

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्॥
(वि.पु.)

यमराज अपने पाशधारी दूतों से जाते समय उनके कान में कहते हैं—हे दूतों! तुम सब भविष्य में यह ध्यान रखना कि जो भगवान् के भक्त हैं, सदा उनकी कथा में निरत रहते हैं, उनके समीप कभी मत जाना। मैं धर्महीन प्राणियों को दण्ड देता हूँ। भगवद्भक्तों को दण्ड देने में मैं समर्थ नहीं हूँ। मेरे समीप जिन पुरुषों को लाना है उनको मैं बताता हूँ, ध्यान से सुनो—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥२९॥

---

[1] दिगर्थस्तु सर्वमुक्तौ हि हरिलीलासाधनीभूतसृष्टेरभावः स्यात्। तच्चानुचितमेवेति भावः। लीलार्थं कुरुते सृष्टिं ब्रह्मद्वारा जनार्दनः। (इति पुराणान्तरोक्तेः)

जिनकी जिह्वा कभी भगवान् के नाम का उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त कभी भगवान् के चरणकमलों का ध्यान नहीं करता, जिनके मस्तक, भगवान् के चरणों में कभी नहीं नमते तथा जिन्होंने कभी भगवान् के पूजन आदि कृत्य नहीं किये केवल उन्हीं पापी पुरुषों को डण्डों से पीटते हुए तुम मेरे समीप लाओ।

तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्द-
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्त्रम् ।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञै-
र्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥२८॥

जो भगवान् के चरणकमलों की भक्ति-सुधामाधुरी से सर्वथा विमुख हैं तथा नरक के द्वारभूत धर्म-कर्म-विहीन घर में ही जिनकी तृष्णा लगी है, उन दुष्ट प्रकृति वाले पुरुषों को मेरे समीप लाओ।

यमराज इस प्रकार दूतों को समझाकर, भगवान् का ध्यान करते हुए बोले—हे भगवन्! हमारे दूतों ने आपके पार्षदों का जो अपमान किया है उसे आप क्षमा करें हमारे दूत आपका प्रभाव नहीं जानते थे। हम उनके साथ अञ्जलि बाँधकर आपके समक्ष खड़े हैं। आप हमें क्षमा करें। हमारा आपको बार-बार नमस्कार है। शुकदेव जी बोले—हे राजन्! यमदूत अपने स्वामी धर्मराज से भगवान् के नाम का ऐसा अद्भुत माहात्म्य सुनकर चकित रह गये। उस दिन से वे भक्तों को दूर से ही देख डर जाते हैं और फिर कभी उन्होंने उनके समीप जाने का दुस्साहस नहीं किया। सचमुच भगवन्नाम-कीर्तन ही बड़े-बड़े पापों का भी सर्वोत्तम मुख्य प्रायश्चित्त है, इसमें सन्देह नहीं। भक्ति से भगवान् के श्रवण तथा कीर्तन से जैसी आत्मा की शुद्धि होती है वैसी अन्य प्रायश्चित्तों से नहीं हो सकती, यह ध्रुव है। हे राजन्! महर्षि अगस्त्य ने मलयाचल पर पूजन के समय ऋषियों के समक्ष इस रहस्यपूर्ण इतिहास को कहा था। वही मैंने तुमको सुनाया, अब जो कुछ और सुनना चाहते हो, उसे कहो।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

चौथा अध्याय

सृष्टि के लिए दक्षद्वारा भगवान् की आराधना

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे राजन्!

देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ।
सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वाम्भुवेऽन्तरे ॥१॥

आपने स्वायम्भुव मन्वन्तर में हुई देव, असुर, मनुष्य आदि की सृष्टि का जो तृतीय स्कन्ध में संक्षेप से वर्णन किया, उसे मैं विस्तार से जानना चाहता हूँ। आप कृपा कर वह प्रकरण मुझे फिर सुनावें।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! सृष्टि का विस्तार दक्ष द्वारा जिस प्रकार हुआ उसे सुनिये। प्राचीनबर्हिके पुत्र दक्ष प्रचेता जब तपस्या से भगवान् हरि को प्रसन्न कर समुद्र से निकले तब उन्होंने पृथ्वी को वृक्षों से आच्छन्न देखा। यह देखकर प्रचेताओं को वृक्षों पर बड़ा क्रोध आया और वे क्रोधवश अपने मुख से अग्नि एवं वायु को उत्पन्न कर वृक्षों को भस्म करने लगे। यह देख वनस्पतियों के राजा सोम ने आकर उन्हें रोका और कहा—आप लोग प्रजा के रक्षक बनाये गये हैं। आपके द्वारा वृक्षों का नाश होना उचित नहीं है।

भगवान् ने प्रजा के हित के लिए वनस्पति तथा औषधियों का निर्माण किया है, जैसे चर अचर आदि पक्षियों के लिए अचर, फल, पुष्प आदि अन्न की रचना की है, गौ, महिष आदि के लिए अपद घास आदि अन्न की रचना की है, व्याघ्र आदि के लिए अहस्त मृग आदि अन्न की रचना की है एवं मनुष्यों के लिए चतुष्पद ब्रीहि आदि अन्नों के साधनभूत बैल आदि की रचना की है—

अन्नंचराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ।
अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

आपके पिता ने प्रजा की सृष्टि के लिए आपको नियुक्त किया है, न कि वृक्षों को जलाने के लिए अतः सत्पुरुषों का अनुसरण कर आप क्रोध न करें। जो मनुष्य हृदय में उत्पन्न क्रोध को विचार द्वारा शान्त कर लेता है उस पर भगवान् प्रसन्न होते हैं। अब आप वृक्षों को जलाना बन्द करें। जो बच गये हैं वे खूब फलें-फूलें। अब आप वृक्षों से पालित इस वार्क्षी (मारिषा) कन्या को पत्नी के रूप में ग्रहण करें।

वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

सोम की आज्ञा से प्रचेताओं ने वार्क्षी कन्या से विधिपूर्वक विवाह किया। उसी से उनके महान् तेजस्वी पुत्र दक्ष उत्पन्न हुए जिनकी सृष्टि से तीनों लोक पूर्ण हो गये। पहले उन्होंने मन से देव, असुर और मनुष्यादि की सृष्टि की। जब इस मानसी सृष्टि से प्रजा की यथेष्ट वृद्धि न हो सकी, तब वे विन्ध्याचल पर चले गये और वहाँ उन्होंने अघमर्षण तीर्थ में स्नान, आचमन कर **'हंसगुह्यस्तोत्र'** से भगवान् का स्तवन कर उन्हें प्रसन्न किया। भगवान् हरि जिस स्तोत्र से दक्ष पर प्रसन्न हुए वह स्तोत्र सुनिये। यह हंसगुह्यस्तोत्र पूर्वसिद्ध स्तोत्र है, दक्षनिर्मित नहीं है। इसमें १२ श्लोक हैं। उनमें पहला श्लोक यह है—

नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबंधवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयम्भुवे ॥२३॥

हे भगवन्! आप सबके अधिष्ठाता पुरुषोत्तम हैं, कार्य में निमित्तभूत प्रकृति के प्रवर्तक हैं। आपका संकल्प सत्य है। तिषयोन्मुख जीव आपके स्वरूप को नहीं देख पाते। ऐसे दुर्गम स्वयं प्रकाशमान आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

हे प्रभो! यद्यपि ईश्वर और जीव एक दूसरे के परस्पर सखा है। एक ही शरीर में दोनों का निवास है, फिर भी जीव ईश्वर को जान नहीं पाता। ठीक वैसे ही जैसे कि रूपादि विषय चक्षुरादि इन्द्रियों को नहीं जान पाते। ऐसे दुर्ज्ञेय महेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ।

हे नाथ! देह, प्राण आदि जड़ पदार्थ अपने को, इन्द्रियों को तथा उनके अधिष्ठाता देवतावर्ग को नहीं जानते किन्तु जीव इन तीनों को जानता हुआ भी जिन सर्वज्ञ आपको नहीं जानता उन्हीं आपका मैं स्तवन करता हूँ।

हे भगवन्! जिस समय मन में निश्चलता आ जाती है एवं दृष्ट पदार्थों की स्मृति भी नहीं रहती, उस समय योगी पुरुषों को स्वरूप-ज्ञान के द्वारा अन्तःकरण में जिनकी अनुभूति होती है उस अनिर्वचनीय तत्त्व को मैं नमस्कार करता हूँ।

हे विभो! जैसे याज्ञिक पुरुष काष्ठ में छिपे अग्निदेव को मन्त्रों द्वारा मन्थनकर प्रकट करते हैं वैसे योगी पुरुष प्राणायाम द्वारा मन्थनकर जड़ वर्ग से पृथक् कर जिसका प्रत्यक्ष करते हैं वह अन्तर्यामी परमात्मा मुझपर प्रसन्न हों।

हे भगवन्! जो माया से नाना रूप धारण कर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। माया का निषेध होने पर जिनके वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि होती है और वह विश्वमूर्ति भगवान् मुझपर प्रसन्न हों।

जिनकी विद्या-अविद्या आदि शक्तियाँ वादी तथा प्रतिवादियों के विवाद और संवाद (सिद्धान्त-स्थान पर) की कारण होती हैं और वे उन्हें बार-बार मोह ग्रस्त करती है—उन अनन्त गुणशाली भगवान् को हमारा नमस्कार है।

उपासक जिन्हें हस्तपादादि से युक्त साकार मानते हैं एवं सांख्यवादी ज्ञानी हस्तपादादि से रहित निराकार मानते हैं। इस प्रकार परस्पर विरोधी धर्म जिस एक वस्तु ब्रह्म में रहने के कारण यद्यपि वह विवादास्पद प्रतीत होता है फिर भी जो वस्तुतः विवादरहित है उस साकार निराकार-रूप-धारी ब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो नाम और रूप से रहित होते हुए भी भक्तों के कल्याणार्थ नाना रूप धारणकर दर्शन देते हैं—वह भगवान् मुझपर प्रसन्न हों।

यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति।
यथाऽनिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥३४॥

जो उपासना के विविध मार्गों से मनुष्यों की वासनाओं के अनुसार नाना रूप से वैसे ही प्रकट होते हैं जैसे कि वायु नाना पुष्पों की गन्ध से नाना गन्धवान् प्रतीत होती है वह भगवान् हमारा मनोरथ पूर्ण करें।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! इस प्रकार विन्ध्याचल के समीप अघमर्षण तीर्थ में स्तुति करते हुए दक्ष के समक्ष भगवान् त्रिलोकसुन्दर रूप धारण कर प्रकट हुए, जिन्हें देखते ही दक्ष का हृदय आनन्द से भर गया। वह विह्वल हो भगवान् के चरणों पर लोट गये। उनकी वाणी रुद्ध हो गयी और नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। भगवान् ने उनका अभिप्राय जानकर कहा—हे महाभाग! तुम सिद्ध हो चुके हो। तुम्हारी इस तपस्या से विश्व की वृद्धि होगी। अतः मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने मेरी ही प्रेरणा से तपस्या की है। मैं स्वयं सृष्टि की वृद्धि चाहता हूँ। अतः तुम पञ्चजन प्रजापति की असिक्नी नाम की जो कन्या है, उसे पत्नी रूप में ग्रहण करो। इसके द्वारा तुम मैथुन-धर्म से सृष्टि की यथेच्छ वृद्धि कर सकोंगे। तुम्हारे बाद आगे की सारी प्रजा मैथुन द्वारा ही सृष्टि करेगी। यह कहकर दक्ष के देखते-देखते भगवान् अन्तर्धान हो गये—

तत्रैवाऽन्तर्दधे हरिः

अनन्तर दक्ष अपनी राजधानी लौट आये।

हमारे पूर्वज सृष्टि के लिए भी भगवान् की आराधना करते थे। जिससे उनकी सन्तान धार्मिक, तेजस्वी तथा भगवद्भक्त होती थी। उससे सबका कल्याण होता था और देश भी निरापद हो सुख-समृद्धि से पूर्ण रहता था। आधुनिक स्वेच्छाचारी इसके विपरीत स्वयं धर्म-कर्म से विहीन रहते हैं। इसलिए उनकी सन्तान अधार्मिक, आचारहीन तथा भगवद्द्वेषी होती है। वह भगवद्द्वेषी ही नहीं होती गुरु, देवता तथा राजा से भी द्वेष करती हैं। इसी से देश में नाना प्रकार के उपद्रवों से अशान्ति रहने के कारण सबको किसी न किसी प्रकार का क्लेश होता है एवं देश की भी सुख-सम्पत्ति का विनाश होता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

❖

पाँचवाँ अध्याय

नारद के गूढोपदेश से दक्षपुत्रों को वैराग्य और दक्ष का नारद को शाप

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ।
हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद् विभुः ॥१॥

भगवान् की कृपा से सामर्थ्य प्राप्तकर दक्ष ने पञ्चजन की पुत्री असिक्नी नामक अपनी भार्या से हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र उत्पन्न किये। उन सबका शील-स्वभाव तथा आचरण एक-सा था। पिता दक्ष ने जब उनसे सृष्टि करने के लिए कहा तब वे पश्चिम दिशा में सिन्धुनदी की ओर समुद्र के संगम पर चले गये। वहाँ नारायण सरोवर

नामक तीर्थ में स्नान और आचमन कर उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया और उनकी भगवद्धर्म में रुचि हो गयी फिर भी उन्हें पिता के आदेश से सृष्टिवृद्धि के लिए उद्यत देखकर वहाँ उपस्थित नारद जी ने उनसे कहा—हे पुत्रों! तुम सब तो बड़े मूर्ख जान पड़ते हो। १. बिना भूमि का अन्त देखे, २. बिना एक पुरुष वाला राष्ट्र देखे, ३. बिना निष्क्रमणद्वार का बिल देखे, ४. बिना बहुरूपिणी स्त्री देखे, ५. बिना पुंश्चली का पति देखे, ६. दोनों तरफ बहती नदी बिना देखे, ७. पच्चीस पदार्थों का अद्‌भुत गृह बिना देखे, ८. विचित्र कथा कहने वाला हंस बिना देखे, ९. छुरे और वज्र-सा अत्यन्त तीक्ष्ण घूमता चक्र बिना देखे एवं १०. सर्वज्ञ अपने पिता के आदेश का रहस्य बिना जाने तुम लोग सृष्टि कैसे करोगे? सृष्टि के पहले इन सबका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! हर्यश्व जन्म से ही बड़े बुद्धिमान् थे उन्होंने नारद जी के इस वाक्कूट (गूढ़ोपदेश) को सुनकर अपनी स्वाभाविक निर्मल बुद्धि से स्वयं उस पर विचार कर कहा—

भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम्।
अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥११॥

भूमिरूप यह सूक्ष्म शरीर ही आत्मा का अनादि बन्धन है। इसका मोक्ष बिना जाने सृष्टिप्रपंच में पड़ने से क्या लाभ? इस राष्ट्र में पुरुष एकमात्र ईश्वर ही है। वह सब कुछ करने में समर्थ है। उसे बिना जाने असत्कर्म करने से क्या लाभ? स्वयं प्रकाशमान ब्रह्म ही निष्क्रमण-मार्ग-रहित बिल है, जिसे प्राप्तकर फिर वहाँ से कोई नहीं लौटता, उस ब्रह्म को बिना जाने इन नश्वर कर्मों से क्या लाभ? व्यभिचारिणी के समान नाना विषयों को चाहने वाली अपनी बुद्धि ही बहुरूपिणी स्त्री है। जब तक उसको विवेक प्राप्त न हो तब तक इन असत् कर्मों से क्या लाभ? इस पुंश्चली का पति जीव है उसका ज्ञान इसकी संगति से नष्ट हो गया है। वह नाना योनियों में जाकर दुःख भोगता है। उसका दुःख निवृत्त किये बिना इन अविवेकपूर्ण कर्मों से क्या लाभ?

सृष्ट्यप्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम्।
मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१६॥

सृष्टि और प्रलयरूप से दोनों तरफ बहने वाली माया ही नदी है। इससे उद्धार का उपाय बिना जाने मत्त पुरुष को संसार में पतन कराने वाले इन असत् कर्मों से क्या लाभ? जीव सहित पच्चीस तत्त्वों के संघातरूप देह में निवास करने वाले अन्तर्यामी पुरुष को प्रेरक तथा सेव्य रूप से जाने बिना इन असत्कर्मों से क्या लाभ? नीरक्षीर के समान बन्धमोक्ष का विवेचन कर ईश्वर का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र ही हंस है, उसे न जानकर बहिर्मुख कर्मों से क्या लाभ? निरन्तर घूमकर आयु का हरण करने वाला यह काल ही चक्र है। इसकी धार छुरे और वज्र से समान अत्यन्त तीक्ष्ण है। यह सम्पूर्ण जगत् को बड़ी तेजी से अपनी ओर खींच रहा है। इस काल से बचने का उपाय

बिना जाने इस सृष्टिरूप असत्कर्मों से क्या लाभ? शास्त्र ही हमारा वास्तविक पिता है। उसकी आज्ञा निवृत्तिपरक है; प्रवृत्तिपरक नहीं। इन रहस्यमय सभी बातों को बिना जाने इन असत्कर्मों से क्या लाभ?

किमसत्कर्मभिर्भवेत् ।

दक्ष के पुत्र हर्यश्व इस प्रकार का निश्चय कर, नारद जी की परिक्रमा कर उस मोक्ष के मार्ग पर चले गये, जहाँ से फिर कोई लौटकर नहीं आता। नारद द्वारा कथित इस वाक्कूट का संग्रह श्लोक—

मोक्षेशब्रह्मबुद्धीनां जीवमायान्तरात्मनाम् ।
शास्त्रज्ञानोपदेशानामज्ञाने किमु कर्मभिः ॥ (श्रीधरी)

मोक्ष आदि इन दस वस्तुओं को जाने बिना सृष्टि आदि व्यर्थ के कर्म करने से क्या लाभ?

इसके बाद देवर्षि नारद वीणा की झङ्कार में अभिव्यक्त भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अपना चित्त स्थिर कर लोकों में विचरने चले गये। अनन्तर दक्ष अपने शीलवान् पुत्रों को निवृत्तिमार्ग में निरत सुनकर बड़े दुःखित हुए। ब्रह्मा जी के समझाने पर दक्ष ने पुनः शबलाश्व नामक एक हजार पुत्र उत्पन्न किये। वे भी अपने पिता की आज्ञा से सृष्ट्यर्थ तप करने के लिए नारायण सरोवर पर चले गये। नारद जी ने उन्हें भी पूर्ववत् कूट-वचन सुनायें, जिससे वे भी अपने भाइयों के ही मार्ग में चले गये। इस बार भी पुत्रों का नाश सुनकर दक्ष को बड़ा क्रोध आया और दैवयोग से दक्ष की नारद जी से एक दिन भेंट भी हो गयी। दक्ष ने कुपित होकर नारद से कहा—अरे मूढ़! तूने मेरे पुत्रों को भिक्षुकों का मार्ग बताकर मेरे वंश का उच्छेद किया है। इसलिए जा तू भी भिक्षुओं की तरह लोकों में इधर-उधर घूमता ही फिरेगा, एक जगह स्थिर न रह सकेगा—

तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेत् भ्रमतः पदम् ॥४३॥

अरे मूढ़! विषयों का अनुभव किये बिना मनुष्य को उनकी दुःखरूपता ज्ञात नहीं होती। विषयों का अनुभव होने पर स्वयं जैसा वैराग्य होता है वैसा बहकाने से नहीं होता—

नानुभूय नजानाति पुमान् विषयतीक्ष्णताम् ।
निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥४१॥

नारद जी ने दक्ष का शाप सहर्ष स्वीकार किया। इसी का नाम साधुता है कि बदला लेने की शक्ति रहते हुए भी दूसरे का अपकार सह लेना।

हर्यश्व तथा शबलाश्व का अर्थ

अविद्यां तत्कार्यं वा हरतीति हरिः, तमश्नुवते प्राप्नुवन्तीति हर्यश्वाः। शं कल्याणं तेन बलते आच्छादयति भक्तजनानिति शबलो विष्णुः, तमश्नुवते प्राप्नुवन्तीति शबलाश्वाः।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।

छठा अध्याय

दक्ष की ६० कन्याओं का वंश और अदिति पुत्र त्वष्टा से विस्वरूप का जन्म

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयम्भुवा।
षष्टिं संजनयामास दुहितृः पितृवत्सलाः ॥१॥

पुत्रों के नाश से दुःखित दक्ष ने ब्रह्मा जी के सान्त्वना देने पर इस बार अपनी असिक्नी पत्नी से साठ कन्याएँ उत्पन्न की। उनमें से दस धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस चन्द्रमा को, दो-दो कन्याएँ भूत, अङ्गिरा और कृशाश्व को दक्ष ने दी। धर्म की भानु, लम्बा आदि १० पत्नियाँ थीं। उनके पुत्र-पौत्रादि से तीनों लोक पूर्ण हो गये। इनसे दिन के अभिमानी प्रदोष के अभिमानी, पुर के अभिमानी, मुहूर्त के अभिमानी देवता एवं पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, नाग, यक्ष, किंन्नर, गन्धर्व, सुर, असुर, आदि नाना प्रकार की सृष्टि हुई। तार्क्ष्य क़श्यप का ही नामान्तर था। उन्हें चार कन्याएँ दक्ष ने और दीं। विनता, कद्रू, पतङ्गी और यामिनी। पतङ्गी से पक्षियों का एवं यामिनी से शलभों का जन्म हुआ। विनता के दो पुत्र हुए अरुण और गरुड़। कद्रू से सहस्रों नाग उत्पन्न हुए। हे राजन्! यहाँ यह सन्देह उठ सकता है कि ऋषि की भार्याओं से पक्षी आदि का जन्म कैसे हुआ? उसका समाधान यह है—

शुक्तौ मुक्ता यथोत्पन्ना गजमुक्ता गजश्रवे।
मृगनाभ्यां च कस्तूरी गोकर्णे धेनुरोचनम् ॥
वंशवृक्षे तु काक्षीरी गोमयाद् वृश्चिकोद्भवः।
ऋषिभार्यासु पक्ष्यादिजन्म ज्ञेयं तथा बुधैः ॥

(वंशीधरी)

जैसे शुक्ति (सीप) में मुक्ता, गज के कर्ण में गजमुक्ता, मृग की नाभि में कस्तूरी, गौ के कर्ण में गोरोचन, बाँस में वंशलोचन और गोमय में बिच्छू, उत्पन्न होते हैं वैसे ही ऋषि की पत्नियों में पक्षी आदि का जन्म होना चाहिए। वस्तुतः सत्यसंकल्प होने के कारण ऋषियों के इस कार्य में कोई आश्चर्य नहीं, कश्यप की पत्नियों में दिति से दैत्य हुए। दनु से दानव हुए। अदिति के १२ पुत्र आदित्य हुए। उनके नाम—

विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाथ सविता भगः।
धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः ॥

विवस्वान् की पत्नी संज्ञा से श्राद्धदेव मनु, यम और यमुना (युगल सन्तान) हुई। संज्ञा विश्वकर्मा की पुत्री थी। सूर्य का तेज सहन न करने के कारण उसने तुरङ्गी का

रूप धारण किया, जिससे अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। विवस्वान् की दूसरी पत्नी छाया से शनैश्चर, सावर्णि मनु एवं तपती नाम की एक कन्या हुई, जिसने राजा संवरण का पति के रूप में वरण किया।

त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचना नाम कन्यका।
सन्निवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥४४॥

त्वष्टा का दैत्यों की छोटी भगिनी रचना के साथ विवाह हुआ जिससे सन्निवेश और तेजस्वी विश्वरूप दो पुत्र उत्पन्न हुए। जब देवगुरु बृहस्पति ने क्रुद्ध होकर देवताओं का परित्याग किया, तब देवताओं ने शत्रुपक्ष के भानजे इसी विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाया था।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का छठा अध्याय समाप्त ।।

❖

सातवाँ अध्याय

बृहस्पति से परित्यक्त देवताओं द्वारा विश्वरूप का पुरोहितरूप से वरण

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्!

कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः।
एतदाचक्ष्व भगवन् शिष्याणामक्रमं गुरौ ॥१॥

देवताओं ने ऐसा क्या अपराध किया, जिससे रुष्ट होकर आचार्य बृहस्पति ने उनका पौरोहित्य त्याग दिया? कृपया यह प्रसंग हमें सुनायें। शुकदेव जी बोले—राजन्! एक समय इन्द्र अपनी इन्द्राणी के साथ सिंहासन पर विराजमान थे। बड़ा विशाल दरबार लगा था। सिद्ध, गन्धर्व नाग, विद्याधर आदि नाना प्रकार की सेवा और स्तुति कर रहे थे। अप्सराएँ नाच रही थीं। इसी समय दैवयोग से बृहस्पति जी वहाँ आ पहुँचे। इन्द्र ने उन्हें देखकर भी न तो उनका अभ्युत्थान किया और न प्रणाम ही किया। यहाँ तक कि वे अपने आसन से टस से मस भी न हुए। बृहस्पति जी इन्द्र को लक्ष्मी के मद से उन्मत्त जानकर चुपचाप वहाँ से लौट गये। बाद में इन्द्र को अपने इस कृत्य पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने कहा—अहो! आज मैंने गुरुदेव का अपमान कर महान् अपराध किया है। न जाने मेरी क्या गति होगी? मुझे धिक्कार है। इस प्रकार वे स्वयं ही भरी सभा में अपनी निन्दा करने लगे। जो यह कहते हैं कि सिंहासन से उठकर किसी का अभ्युत्थान नहीं करना चाहिए, वे धर्म का वास्तविक स्वरूप नहीं जानते—

धर्मं ते न परं विदुः ।

मैं अभी जाकर उनके चरणों पर मस्तक रखकर अपने अपराध की क्षमा-याचना करूँगा। इन्द्र इधर ऐसा सोच ही रहे थे कि उधर बृहस्पति जी अपनी योगशक्ति से अन्तर्धान हो गये। जब इन्द्र देवताओं के साथ उनके आश्रम पर गये तो गुरुदेव को न देखकर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। धीरे-धीरे यह समाचार असुरों के कानों तक पहुँच गया। उन्होंने शुक्राचार्य की सम्मति से देवताओं पर चढ़ाई कर दी और भीषण संग्राम छिड़ गया। इसमें दैत्यों के तीखे-तीखे बाणों तथा अस्त्र शस्त्रों से देवताओं के अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और उन्होंने भागकर ब्रह्मा जी की शरण ली एवं त्राहि-त्राहि की पुकार लगाई। देवताओं को इस प्रकार पीड़ित देखकर ब्रह्मा जी को बड़ी दया आयी। वे सान्त्वना देते हुए बोले—हे देवगण! तुमने ऐश्वर्य के मद से अन्धे होकर ब्रह्मज्ञानी महातेजस्वी गुरु का अपमान कर बड़ा अन्याय किया। तुम्हारी इस दुर्नीति का ही यह कुफल है कि समृद्धिशाली होते हुए भी आज तुम लोगों का निर्बल शत्रुओं के सामने पराभव हो रहा है। भक्ति से शुक्राचार्य की आराधना कर तुम्हारे शत्रु इतने प्रबल हो गये हैं कि वे मेरा भी स्थान छीन सकते हैं।

त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्यमन्त्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ।
न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥२४॥

ऐसी दशा में वे स्वर्ग को क्या समझते हैं। शुक्राचार्य ने अपने शिष्यों को सब प्रकार की शिक्षा दे रखी है। उनकी गुप्त मन्त्रणाएँ भी बड़ी अभेद्य हैं। तुम उन्हें जान नहीं सकते। सच यहा है जिन राजाओं पर गौ, ब्राह्मण एवं भगवान् की अनुकम्पा रहती है, उनका कभी अमङ्गल या पराजय नहीं हो सकता। इसलिए अब तुम सब विश्वरूप के समीप जाओं और प्रार्थना कर उन्हें अपना पुरोहित बना लो। वे बड़े तपस्वी ब्राह्मण हैं, कुछ असुरों का पक्षपात अवश्य करेंगे। यदि तुम लोग उनका यह पक्षपात सहन कर लोगे तो वे तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध कर देंगे।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! ब्रह्माजी की इस सलाह पर देवताओं को बड़ी सान्त्वना मिली। वे प्रसन्नता से विश्वरूप के समीप गये और उन्हें हृदय से लगाकर बोले—हे तात! हम आपके आश्रम में अतिथि के रूप में आये हैं। हम बड़े कष्ट में हैं। हम चाहते हैं कि आप हमारे पुरोहित बन जायँ, जिससे हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें। विश्वरूप ने कहा—देवगण, यद्यपि पौरोहित्य बड़ा निन्दित कर्म है, फिर भी आपको दुःखी देखकर मैं उसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। आप चिन्ता न करें, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तन, मन और धन से आपका अभीष्ट सिद्ध करूँगा—

भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥३७॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यह कहकर विश्वरूप देवताओं के पुरोहित बन गये और उन्होंने वैष्णवी विद्या (नारायणकवच के) प्रभाव से असुरों की सुरक्षित राज्यलक्ष्मी छीनकर इन्द्र को दे दी। जिस वैष्णवी विद्या (नारायणकवच से) सुरक्षित

होकर इन्द्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी, उसका उपदेश भी विश्वरूप ने इन्द्र को दे दिया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

आठवाँ अध्याय

विश्वरूप के द्वारा इन्द्र को नारायणकवच का उपदेश

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्!

भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।
यथाततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥२॥

इन्द्र ने जिसके प्रभाव से संग्राम में शत्रुओं को जीतकर त्रिलोकी की राज्यलक्ष्मी प्राप्त की, कृपा कर आप वह नारायण-कवच हमें भी बतलावें। शुकदेव जी बोले—हे राजन्! इन्द्र के नारायण-कवच पूछने पर विश्वरूप ने कहा—हे देवेन्द्र! हाथ-पैर धोकर, पवित्री धारण कर, तुम उत्तर की ओर मुखकर, आसन पर बैठ जाओ। अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर और षड्क्षर मन्त्रों से अङ्गन्यास और करन्यास कर लो। तब भगवान् नारायण का ध्यान कर कवच को ग्रहण करो। यह कहकर उन्होंने इन्द्र को उस कवच का उपदेश किया और कहा भय का अवसर प्राप्त होने पर शरीर तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए इस कवच को धारण कर इसका यथाशक्ति पाठ करना चाहिए। इस कवच में २२ श्लोक हैं जिनमें प्रथम श्लोक यह है—

हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ।
दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥१२॥

गरुड़ पर चढ़े अष्टभुजधारी भगवान् विष्णु सब ओर से हमारी रक्षा करें। मत्स्यमूर्ति भगवान् जल में, वामन भगवान् स्थल में, त्रिविक्रम आकाश में तथा नृसिंह वन और रणभूमि आदि संकटापन्न स्थानों में हमारी रक्षा करें। वराह भगवान् मार्ग में, परशुराम पर्वत के शिखरों पर, भगवान् राम प्रवास में, नर-नारायण गर्व तथा मारणादि-प्रयोग से, दत्तात्रेय योग में आने वाले विघ्नों से और कपिल भगवान् कर्मबन्धन से हमारी रक्षा करें। सनत्कुमार कामदेव से, हयग्रीव भगवान् मार्गस्थ देवों के अपमान से, नारद जी देवापराध से, भगवान् कच्छप समस्त नरकों से, भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्य से, ऋषभदेव क्षुत्पिपासा आदि द्वन्द्वों से, यज्ञावतार लोकापवाद से, बलराम दुर्जनकृत कष्टों से तथा शेष जी सर्पगणों से हमारी रक्षा करें।

द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात्प्रमादात् ।
कल्किःकले कालमलात् प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥१९॥

व्यास जी अज्ञान से, भगवान् बुद्ध पाखण्डियों के अनाचार तथा आलस्य से, धर्म-रक्षार्थ अवतीर्ण भगवान् कल्कि कलिकाल के दोषों से हमारी रक्षा करें। भगवान् केशव गदा से प्रातःकाल में (दिन की पाँच घड़ीपर्यन्त) रक्षा करें, गोविन्द आसंगव काल में (छः घड़ी से दस घड़ीपर्यन्त), नारायण प्रातःकाल में (ग्यारह घड़ी से पन्द्रह घड़ीपर्यन्त), चक्रपाणि मध्याह्नकाल में (सोलह घड़ी से बीस घड़ीपर्यन्त), मधुसूदन अपराह्न में (इक्कीस घड़ी से पच्चीस घड़ीपर्यन्त), और माधव सायंकाल में (छब्बीस घड़ी से तीस घड़ीपर्यन्त) पद्मनाभ अर्धरात्र में (निशीथ के) पूर्व भाग में (पाँच घड़ी से चौदह घड़ीपर्यन्त) तथा निशीथ काल में भी (पन्द्रहवीं और सोलहवीं घड़ीपर्यन्त) रक्षा करें।

निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥

श्रीवत्सलाञ्छन अपररात्र में (निशीथ के बाद अरुणोदय के पूर्व तक) जनार्दन प्रत्यूष में (चार घड़ी रात्रि शेष रहते), भगवान् दामोदर दोनों सन्ध्याओं में और विश्वेश्वर प्रभात में (सूर्योदय के आसन्न काल में) हमारी रक्षा करें।

हे कौमोदकी गदे? आप कूष्माण्ड, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत आदि ग्रहों को कुचल डालिये, शीघ्र कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओं को चूर-चूरकर दीजिए। हे पाञ्चजन्य! आप अपनी भीषण ध्वनि से शत्रुओं का दिल दहला दीजिए तथा प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस आदि को भगा दीजिए। हे नन्दक (खड्ग) आप हमारे शत्रुओं को काट डालें। हे ढाल! आप हमारे पापी शत्रुओं के नेत्र बन्दकर उन्हें अन्धा कर दें। हे भगवन्! सूर्य आदि ग्रहों से, धूमकेतु आदि पुच्छल ताराओं से तथा विषैले सर्प आदि जीव-जन्तुओं से हमें होने वाले सब प्रकार के भय आपके नाम, रूप और अस्त्रों के कीर्तन से नष्ट हो जायँ। आपके वाहन गरुड़ जी समस्त अविद्या आदि क्लेशों से तथा आपके नाम, रूप तथा आयुध भूत-भौतिक समस्त आपत्तियों से हमारी रक्षा करें। भगवान् नृसिंह दिशा, विदिशा, नीचे, ऊपर, बाहर भीतर सब ओर से हमारी रक्षा करें।

मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।
विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥३५॥

हे देवराज! मैंने तुमसे इस प्रकार नारायण-कवच का वर्णन किया। तुम इसे धारण करो।

इसके पाठ से तुम्हारी सर्वत्र रक्षा होगी। तुम्हारे शत्रु तुरन्त पराजित हो जायेंगे। संसार में किसी से तुमको भय न होगा। इस कवच को धारण करने वाला पुरुष जिस किसी को भी अपने नेत्रों से देख लेता है अथवा पैर से स्पर्श कर लेता है वह भी तत्काल भय से मुक्त हो जाता है। प्राचीनकाल की बात है। एक समय कुशिक गोत्र का एक ब्राह्मण यही कवच धारण कर मरुभूमि में गया था। वहाँ योगद्वारा उसने अपना शरीर त्याग दिया। उस समय विमान से उसके ऊपर होकर चित्ररथ नामक गन्धर्व

निकले। वह नीचे सिर किये विमानसहित पृथ्वी पर गिर पड़े। बालखिल्य ऋषियों ने गन्धर्व चित्ररथ से कहा—इस ब्राह्मण को लाँघकर तुम न जा सकोगे। यह कवच धारण करने का प्रभाव है कि तुम्हारी गति रुद्ध हो गयी और तुम नीचे गिर पड़े। अब तुम इसकी हड्डियाँ ले जाकर सरस्वती नदी में डाल दो। गन्धर्व ने ऐसा ही किया। अनन्तर वह उक्त कवच के प्रभाव पर आश्चर्यान्वित हो अपने गन्तव्य स्थान को चला गया।

शुकदेव जी कहते हैं—हे राजन्! जो मनुष्य भय के अवसरों पर इसका श्रवण तथा श्रद्धा-भक्ति से पाठ करता है, उसके सामने सब शत्रु नतमस्तक हो जाते हैं एवं वह सब प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है। देवराज इन्द्र ने इस प्रकार विश्वरूप से इस वैष्णवी विद्या नारायणकवच को प्राप्त कर संग्राम में शत्रुओं को परास्त किया और गयी हुई त्रैलोक्य की राज्यलक्ष्मी को पुनः प्राप्त किया।

त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥४२॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

नवाँ अध्याय

इन्द्रद्वारा विश्वरूप का वध और वृत्रासुर की उत्पत्ति

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

तस्यासन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत।
सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥१॥

विश्वरूप के तीन सिर थे। उनमें एक से वह सोमरस, दूसरे से मदिरा और तीसरे से अन्न ग्रहण करता था, ऐसा हमने सुना है। एक समय जब यज्ञ आरम्भ हुआ तब उसने ऊँचे स्वर से मन्त्र पढ़कर देवताओं को भाग दिया और अपनी माता के स्नेहवश धीरे से मन्त्र बोलकर मातृपक्षीय असुरों को भी भाग दे दिया। उसके इस कपटपूर्ण कार्य से इन्द्र बड़े भयभीत हुए और उन्होंने क्रुद्ध होकर उसके तीनों सिर काट डाले। उससे कबूतर, चटक और तीतर ये तीन पक्षी उत्पन्न हुए। यद्यपि इन्द्र ब्रह्महत्या के निवारण में समर्थ थे, फिर भी उन्होंने अञ्जलि बाँधकर उसे स्वीकार कर लिया एवं एक वर्ष तक उससे मुक्त होने का कोई उपाय नहीं किया। एक वर्ष के बाद ब्रह्महत्या को चार भागों में विभक्त कर उसके प्रत्येक भाग को पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियों में बाँट दिया। खोदने पर गड्ढा स्वयं भर जायेगा—यह वरदान प्राप्त कर पृथ्वी ने ब्रह्महत्या का चतुर्थांश ग्रहण किया। पृथ्वी के ऊषर के रूप में ब्रह्महत्या देखी जाती है, अतः ऊषर में अध्ययन आदि शुभकर्म निषिद्ध बताये गये हैं। कटने पर पुनः जम जाने का

वरदान प्राप्त कर वृक्षों ने ब्रह्महत्या का चतुर्थांश ग्रहण किया। वृक्षों में गोंद के रूप में ब्रह्महत्या देखी जाती है—

तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८॥

अतः निर्यासान् वर्जयेत्सर्वान्' इस स्मृति के अनुसार पुरुषों को गोंद खाना वर्जित है।

सर्वदा सम्भोग की क्षमता बनी रहेगी—यह वरदान प्राप्तकर स्त्रियों ने ब्रह्महत्या का चतुर्थांश ग्रहण किया। उनमें प्रतिमास ऋतुधर्म के रूप में ब्रह्महत्या देखी जाती है। अतः उस अवस्था में उनका सहवास निषिद्ध है।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥

ऋतुकाल में प्रथम दिन स्त्री 'चाण्डाली' कही जाती है, द्वितीय दिन 'ब्रह्मघातिनी' और तृतीय दिन धोबिन कही जाती है। चतुर्थ दिन में वह शुद्ध होती है, किन्तु उस दिन भी भोजनादि का निर्माण नहीं कर सकती। पूर्वोक्त तीन दिनों तक उसे स्वयं भी किसी के सामने न निकलना चाहिए। अन्यथा उसकी सन्तान लूली, लँगड़ी, अन्धी, कोढ़ी, गूँगी और दुराचारी होती है[१] तथा कालान्तर में उसका पति से वियोग भी हो सकता है। अतः प्रत्येक स्त्री को इस नियम का पालन करना चाहिए। दुग्ध आदि द्रव्य से मिलाने से उसकी वृद्धि हो जायेगी—यह वरदान प्राप्त कर जलने ब्रह्महत्या का चतुर्थांश ग्रहण किया उसमें फेन, बुद्बुद् रूप से ब्रह्महत्या दिखायी पड़ती है। अतः फेन आदि को हटाकर ही जल ग्रहण करना चाहिए।

आपो न परिचक्ष्याः।

इस श्रुति के अनुसार जहाँ जल की निन्दा करने तक का निषेध है वहाँ जल में थूकना, कुल्ला करना या दातौन करना सर्वदा निषिद्ध बतलाया गया है। ऐसा करने से मनुष्य में 'ब्रह्महत्या' प्रवेश करती है।

विश्वरूप की मृत्यु के बाद उनके पिता त्वष्टा अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने 'इन्द्रशत्रो विवर्धस्व' इस ऋचा से इन्द्र के नाशार्थ शत्रु की उत्पत्ति के लिए दक्षिणाग्नि में आहुति डाली उससे तत्क्षण यज्ञकुण्ड से एक बड़ा भयानक असुर उत्पन्न हुआ। वह प्रतिदिन इषीका लाङ्गलकील के समान बढ़ता था।

विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ॥१३॥

---

[१] इषीकाऽत्र बुधैर्ज्ञेया इषुशब्देन नो शरः।
मात्रं स्थूलमिह प्रोक्तं तन्मात्रं वर्धते दिने ॥
'इषा लांगलकीलिका' सेव 'इवे प्रतिकृतौ' इति कन्। शब्दार्थचिन्तामणिः।
यथाश्रुतार्थग्रहणे तु जगन्नाशप्रसंगात्।

उसका रंग, रूप और आकृति इतनी भयानक थी कि उसे देख सब लोग मारे भय के इधर-उधर भागने लगते थे। जिसकी तमोमयी मूर्ति से सब लोकों में अंधेरा छा गया। आवरण करने के कारण ही लोग उसे वृत्त कहने लगे।

येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना।
स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥१८॥

देवताओं ने मिलकर उस पर नाना प्रकार के दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया पर वह एक साथ सब अस्त्रों को निगल गया। यह देखकर देवता घबरा उठे और सब मिलकर भगवान् की शरण में गये। वहाँ उन्होंने सात श्लोकों से भगवान् की स्तुति करते हुए कहा—जिन्होंने मत्स्य रूप धारण कर सत्यव्रत मनु की रक्षा की, प्रलय-कालीन जल में ब्रह्मा की रक्षा की, युग-युग में सर्वदा जो हमारी रक्षा करते आ रहे हैं वही भगवान् आज इस भीषण वृत्रासुर से भी हमारी रक्षा करें। हम उनकी शरण में हैं। इस स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया और कहा—

मघवन् यात भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम्।
विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥५१॥

हे इन्द्र! घबराओं नहीं। तुम लोगों का कल्याण हो। अब विलम्ब मत करो। महर्षि दधीचि के समीप जाकर उनके शरीर की याचना करो। वह तप आदि से अत्यन्त सुदृढ़ हैं। दधीचि शुद्ध ब्रह्म के ज्ञाता हैं। उन्होंने अश्विनीकुमारों को अश्वशिर से इस ब्रह्म का उपदेश दिया था। इस कारण इस ब्रह्म का दूसरा नाम अश्वशिर[१] भी पड़ा। इसके उपदेश से अश्विनीकुमार जीवन्मुक्त हो गये थे। अथर्ववेदी दधीचि ने मेरे स्वरूपभूत इस अभेद्य नारायणकवच का उपदेश त्वष्टा को किया था। त्वष्टा ने विश्वरूप को और

---

[१] अश्वशिर—इस विषय में एक छोटी-सी कथा है—दधीचि ब्रह्मविद्या के पूर्ण ज्ञाता हैं यह जानकर एक समय अश्विनीकुमार उनके समीप गये और उनसे कहा ब्रह्मन्! आप हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश करें। दधीचि ने कहा—इस समय मैं कुछ कार्य में व्यस्त हूँ, फिर किसी समय आना। यह सुनकर अश्विनीकुमार चले गये। उनके चले जाने पर इन्द्र ने आकर दधीचि से कहा—मुने अश्विनीकुमार वैद्य हैं, उन्हें आप ब्रह्मविद्या का उपदेश न करें। यदि आप मेरे कथन की अवहेलना कर उन्हें उपदेश करेंगे तो मैं आपका सिर काट डालूँगा। यह कहकर इन्द्र चले गये। थोड़ी देर बाद अश्विनीकुमारों ने आकर मुनि से फिर वही प्रार्थना की। मुनिद्वारा इन्द्र का वृत्तान्त सुनाने पर अश्विनीकुमारों ने कहा—हे मुनिवर! यदि ऐसी बात है तो हम पहले ही आपका यह सिर काटकर घोड़े का सिर लगा देते हैं। आप इसी से हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश दें। जब इन्द्र आपका घोड़े का सिर काट देंगे तो हम आपके धड़ से गुरु-दक्षिणा के रूप में पुनः असली सिर जोड़ देंगे। मुनि ने मेरा वचन मिथ्या न हो यह विचार कर उनकी बात मान ली और उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश दे दिया। इस प्रकार अश्वमुख से उपदेश करने के कारण इस विद्या का नाम अश्वशिर पड़ा था।

विश्वरूप से तुम्हें प्राप्त हुआ। दधीचि बड़े धर्मज्ञ हैं। अश्विनीकुमार उनके प्रिय शिष्य हैं। उनके माँगने पर वे अपना शरीर आप लोगों को अवश्य दे देंगे। तुम उनके अङ्गों से विश्वकर्मा के द्वारा एक दिव्य शस्त्र का निर्माण कराओ। उसमें मेरी शक्ति भी निहित रहेगी। इससे तुम वृत्रासुर का शिर काट सकोगे।

हे देवताओं! उसके मर जाने पर तुम्हें फिर वही तेज तथा अस्त्र-शस्त्रों की शक्तियाँ प्राप्त हो जाएँगी। तुम यह निश्चित जानो कि मेरे शरणागत भक्तों का कभी कोई नाश नहीं कर सकता—

न हिंसन्ति च मत्परान्।

दध्यङ्ङाथर्वणः—दधाति सर्वमिति दधि ब्रह्म तदञ्चति प्राप्नोति जानातीति वा दध्यङ्। अथर्वादित्त्वाद् आथर्वणः स चासौ स च।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

दसवाँ अध्याय

दधीचि की अस्थियों से वज्र का निर्माण तथा इन्द्र का वृत्रासुर से युद्ध

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान् विश्वभावनः ।
पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवाऽन्तर्दधे हरिः ॥१॥

इन्द्र को ऐसा आदेश देकर भगवान् देवताओं के देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर इन्द्र आदि देवता भगवान् के आदेशानुसार दधीचि के समीप गये। वहाँ जाकर देवताओं ने अपना दुःख निवेदन कर उनसे शरीर की याचना की। दधीचि देवताओं की यह याचना सुनकर हँस पड़े और बोले—हे देवगण! आप लोग क्या यह नहीं जानते हैं कि मृत्यु के समय प्राणियों को कितना कष्ट होता है। कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता। सभी को जीने की प्रबल इच्छा बनी रहती है। जीवों को अपना शरीर इतना प्रिय है कि यदि साक्षात् भगवान् भी याचक बनकर उसकी याचना करें तो भी कोई उसे देने को उद्यत नहीं होगा। देवताओं ने कहा—ब्रह्मन्! आपने ठीक कहा, किन्तु प्राणियों पर दया करने वाले आप सरीखे परोपकारियों के लिए कोई वस्तु अदेय नहीं है। यह संसार बड़ा स्वार्थी है। दूसरे के संकट को नहीं जानता। यदि जानता होता तो याचना क्यों करता और जो देने में समर्थ है, वह अपने याचक को विमुख नहीं करता।

यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥६॥

दधीचि ने कहा—हे देवताओं! आप लोगों के मुख से यह सुनने की इच्छा से ही मैंने आपकी याचना का प्रत्याख्यान किया था। लीजिए, मैं आपके कल्याणार्थ अपने शरीर का परित्याग करता हूँ।

योऽध्रुवेणात्मना नार्थान् न धर्मं न यशः पुमान्।
ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥८॥

जो मनुष्य इस नश्वर शरीर से प्राणियों पर दयाकर धर्म तथा यश का उपार्जन नहीं करता वह वृक्ष आदि स्थावर जीवों से भी गया बीता है। चेतन प्राणी समर्थ होते हुए भी यदि अपने शरीर से किसी का भला न कर सके तो उसे धिक्कार है। हमारे पूर्वजों ने साधारण रूप से धर्म की एक यह भी परिभाषा की है कि प्राणियों के सुख-दुःख में तदनुरूप होकर वैसे ही सुख-दुःख का अनुभव करें।

शुकदेव जी कहते हैं—हे राजन्! महर्षि दधीचि ने ऐसा निश्चय कर योगद्वारा अपने जीवात्मा को परब्रह्म में लीन कर अपना स्थूल शरीर त्याग दिया। अनन्तर विश्वकर्मा ने दधीचि की हड्डियों से वज्र का निर्माण कर इन्द्र को दे दिया। भगवान् ने भी अपनी दिव्य शक्ति उसमें निहित कर दी। इन्द्र ऐरावत पर आरूढ़ होकर वृत्रासुर से युद्ध करने के लिए उद्यत हुए। देवताओं की सेना भी उनके पीछे-पीछे चल दी। इधर वृत्रासुर भी नमुचि, शम्बर आदि प्रमुख दैत्यसेनापतियों के साथ युद्ध के मोरचे पर आ डटा।

ततः सुराणामसुरैः रणः परमदारुणः।
त्रेतामुखे नर्मदायामभवत् प्रथमे युगे ॥१६॥

वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम चतुर्युगीय त्रेतायुग के आरम्भ में नर्मदातट पर भीषण देवासुर-संग्राम हुआ। उभय पक्ष के बड़े-बड़े योद्धा परस्पर एक दूसरे पर बाण, गदा, शूल मुद्गर, फरसा, गड़ासा, बन्दूक, तोप आदि नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करने लगे। देवताओं ने अपने कौशल से असुरों के सब अस्त्र-शस्त्र काट डाले। अस्त्र-शस्त्रों के क्षीण होने पर असुरों ने पर्वतों की चट्टानों, शिखरों और वृक्षों से युद्ध करना आरम्भ किया। देवसेना ने अपने अमोघ शस्त्रों से उन्हें भी चूर-चूर कर डाला। तब सेनापतियों के साथ दैत्यों की विशाल सेना मारे भय के संग्राम भूमि से भाग खड़ी हुई। यह देखकर वृत्रासुर हँसकर अपने सेनापतियों से वीरोचित वाणी में बोला—अरे दैत्यों! कायर की तरह युद्ध से क्यों भागते हो? संग्राम में डटे रहो। एक दिन तो मरना ही है—तब कीर्ति करके ही क्यों न मरो। दो ही प्रकार की मृत्यु संसार में प्रशंसनीय मानी गयी है—या तो योग द्वारा शरीर का परित्याग करने से अथवा संग्राम में पीठ न दिखाकर शस्त्रद्वारा प्राणत्याग करने से—

द्वौ सम्मताविह मृत्यू दुरापौ यद् ब्रह्मसंधारणया जितासुः।
कलेवरं योगरतो विजह्याद् यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥३३॥

ऐसी ही मृत्यु को प्राप्त पुरुष सूर्य-मण्डल भेदकर दिव्यगति प्राप्त करते हैं। क्षत्रियों के वक्षस्थल में क्षत्रियत्व का और पृष्ठ में ब्रह्मत्व का निवास रहता है। इसलिए संग्राम में पीठ दिखाने वाला क्षत्रिय ब्रह्मघाती कहा जाता है।

क्षत्रियस्योरसि क्षात्रं पृष्ठे ब्रह्म व्यवस्थितम्।
तेन पृष्ठं न दातव्यं पृष्ठदो ब्रह्महा भवेत्॥

इसलिए संग्राम से भागना उचित नहीं है—डटे रहो।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

ग्यारहवाँ अध्याय

युद्ध में वृत्रासुर की भगवन्निष्ठा

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः।
नैवागृह्णन् भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥१॥

वृत्रासुर की ऐसी वीरोचित वाणी सुनकर भी असुरसेना रुकी नहीं, भयभीत होकर इधर-उधर भागने ही लगी। यह देखकर वृत्रासुर ने आगे बढ़कर देवसेना को रोका और ललकारते हुए कहा—अरे गीदड़ों! यह क्या कहते हो? भयभीतों को मारने से क्या लाभ? यदि तुम में बल हो तो मेरे सामने आओ। मैं तुम्हारे बल को देखूँ। यह कहकर उसने एक भीषण गर्जना की, जिससे हज़ारों देवता मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, मानो उनपर बिजली गिर पड़ी हो—

निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥७॥

वृत्रासुर हाथ में त्रिशूल लेकर दौड़ाता हुआ मूर्च्छित पड़े देवताओं को बुरी तरह पैरों से रौदने लगा। यह भीषण दृश्य देखकर इन्द्र ने उस पर एक विशाल गदा फेंकी। वृत्रासुर ने उसे बायें हाथ से पकड़ लिया और क्रुद्ध होकर उसी से ऐरावत के गण्डस्थल पर प्रहार किया। गदा के प्रहार से ऐरावत को चक्कर आ गया और वह मुख से रुधिर फेंकता चिल्लाता हुआ २८ हाथ पीछे हट गया, किन्तु इन्द्र ने अपने अमृतस्रावी हाथ के स्पर्श से ऐरावत की पीड़ा दूरकर उसे स्वस्थ कर दिया। इन्द्र की इस विपत्ति से वृत्रासुर थोड़ी देर युद्ध से विरत हो चुपचाप खड़ा रहा। धर्मयुद्ध करने वाले वीर असुर ने ऐसी अवस्था में इन्द्र पर प्रहार नहीं किया किन्तु इन्द्र को ललकारते हुए कहा—अरे दुष्ट इन्द्र! तू ब्रह्मघाती और गुरुद्रोही है। तुझे लज्जा नहीं आती, तेरे इस कर्म की राक्षस तक निन्दा करते हैं मनुष्यों की तो बात ही क्या? तूने मेरे भाई के साथ विश्वासघात कर उसका शिर काट डाला। आज मैं तेरा हृदय त्रिशूल से

विदीर्णकर अपने भाई का बदला चुकाऊँगा। तेरे अनुरागी देवता जो मुझपर अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार कर रहे हैं, उनके भी सिर काटकर मैं भैरव की बलि चढ़ा दूँगा। खड़ा-खड़ा क्या देखता है? मुझ पर वज्र का प्रहार क्यों नहीं करता? तेरा यह वज्र गदा की तरह निष्फल नहीं जायेगा क्योंकि यह दधीचि की तपस्या और भगवान् के तेज से सर्वथा अकाट्य हो गया है। उसी से तू मेरा संहार कर दे। यह निश्चित हैं—जहाँ भगवान् विष्णु हैं वहीं विजय, लक्ष्मी तथा सम्पूर्ण गुणों का निवास रहता है। मैं भगवान् संङ्कर्षण के चरणों में चित्त लगा तेरे वज्र द्वारा प्राण त्यागकर दिव्यगति प्राप्त करना चाहता हूँ एवं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे बन्धनभूत सम्पत्तियाँ मुझे कभी न दें। जहाँ भी मेरा जन्म हो—मैं भगवान् का दासानुदास ही बना रहूँ। मेरा मन और मेरी वाणी सदा उन्हीं के चिन्तन एवं कीर्तन में लगी रहे।

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं निषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

जैसे पंखहीन पक्षियों के बच्चे अपनी माँ की राह देखते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ का दूध पीने को आतुर रहते हैं एवं जैसे वियोगिनी पत्नी प्रवासस्थित अपने प्रियतम से मिलने के लिए उत्कण्ठित रहती है वैसे ही हे भगवन्! मेरा मन आपके दर्शनों के लिए छटपटा रहा है। हे नाथ! मेरी आपसे यही अन्तिम प्रार्थना है कि कर्मवश संसारचक्र में घूमते हुए मुझे सर्वदा आपके भक्तों का संग प्राप्त हो, उन्हीं के साथ मेरी मैत्री हो एवं आपकी माया से स्त्री-पुत्रादि में आसक्त प्राणियों का संग कदापि न हो।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! इस प्रकार इन्द्र युद्ध से विरत होकर कर्तव्यविमूढ़ हो खड़े-खड़े सोच रहे थे। उधर वृत्रासुर भी भगवान् के ध्यान में निमग्न हो उनकी रूपमाधुरी का पानकर रहा था।

विश्वासघात करने में दृष्टान्त

एक समय राजा भोजने कालिदास से अपनी रानी भानुमती का चित्र बनाने को कहा। कालिदास ने उसे वैसा ही बना दिया। अनन्तर हाथ में कमल लेकर सरस्वती का ध्यान करने लगे कि तुरन्त स्याही का एक बिन्दु उसके ऊरु पर जा गिरा। भानुमति के गुह्यस्थान पर तिल था। इससे उसकी पूर्ति हो गयी। कालिदास ने चित्र राजा को दिखायां। उन्होंने चित्र देखते ही निश्चय किया कि हो न हो इसका रानी से अवश्य अनुचित सम्बन्ध है। इससे क्रुद्ध होकर राजा ने कालिदास को देश से निकाल दिया। एक दिन राजा भोज शिकार खेलते-खेलते दुर्गम वन में पहुँचे। सेना से उनका साथ छूट गया। वे भयभीत होकर एक वृक्ष पर जा चढ़े। उस वृक्ष पर एक बन्दर भी रहता था। बन्दर ने राजा से मैत्री कर ली और उनका विश्वासकर वह निश्चित हो रात्रि में वहीं सो गया। रात्रि में बन्दर का विरोधी एक सिंह वहाँ आया और राजा से बोला—इस

बन्दर को हमें दे दो। राजा ने शरणागत के त्याग का दोष बताकर उसे बन्दर नहीं दिया। सिंह ने कहा—यदि तुम इस बन्दर को नहीं दोगे ते नीचे उतरने पर मैं तुम्हीं को खा जाऊँगा। यह सुनकर राजा ने बन्दर को नीचे ढकेल दिया। दैवेच्छा से वह वृक्ष की शाखा पकड़ कर वहीं लटक गया। नीचे नहीं गिरा और क्रुद्ध होकर राजा से बोला—तुम कोढ़ी हो जाओ। राजा के प्रार्थना करने पर बन्दर ने कहा—महाराज! इन चार अक्षरों का अर्थ यदि आप किसी विद्वान् से सुनेंगे तो अवंश्य रोग मुक्त हो जायेंगे। बन्दर ने उन चार अक्षरों को लिख दिया। वे अक्षर इस प्रकार थे—

वि, से, मे, रा

राजा वन से लौटकर अपने राज्य में आये और विद्वानों की एक विशाल सभा की। वहाँ राजा ने पण्डितों से इन चार अक्षरों का अर्थ पूछा किन्तु कोई भी विद्वान् उनका अर्थ नहीं कर सका। देश से निकाले गये कालिदास धारानगरी में एक विद्वान् के यहाँ स्त्रीवेष में रहा करते थे। वृत्तान्त सुनने पर उन्होंने गृहस्वामी से कहा महाराज! आप राजा के समीप जाकर कहो कि हमारी पुत्री आपके उन अक्षरों का अर्थ बता सकती है। राजा ने यह सुनते ही तुरन्त पालकी भेजकर कन्या को सभा में बुला लिया। वह राजदरबार में आकर एक आसन पर बैठ गयीं। राजा ने कहा—पुत्रि! इन अक्षरों का अर्थ क्या है? कन्या अक्षरों को सुनकर मुस्कराती हुई बोली—राजन्! इन अक्षरों में तो आपका ही चरित्र भरा है। आप यह भी नहीं जानते। सारी सभा यह सुनकर चकित हो गयी।

कन्या ने क्रम से उन अक्षरों का अर्थ बताया—

वि– विश्वासप्रतिपन्नेषु ये च विश्वासघातिनः ।
ते यान्ति नरकं घोरं ताड्यमाना यमानुगैः ॥
से– सेतुबन्धे समुद्रे च गङ्गासागरसङ्गमे ।
स्नात्वा पापविमुक्तः स्यान्मित्रद्रोहकरं विना ॥
मे– मेरुतुल्यान्महापापात् कृत्वा सङ्गं सतां नरः ।
मुच्यते नहि सन्देहो मित्रदोही न मुच्यते ॥
रा– राजन् भो शृणु मद्वाक्यं यदि कल्याणमिच्छसि ।
देहि दानं सुविप्रेभ्यस्ततः श्रेयो भविष्यति ॥

राजा भोज यह सुनकर चकित रह गये और प्रसन्न हो कन्या से बोले—हे देवि! तुमने घर में रहकर ही सिंह और कपि का वृत्तान्त कैसे जान लिया? कन्या ने कहा हे राजन्!

देवद्विजप्रसादेन श्रीमत्कालीप्रसादतः ।
सर्वं जानामि भो राजन् भानुमत्यास्तिलं यथा ।।

यह सुनकर राजा ने सिंहासन से उतरकर कन्या-वेष-धारी कालिदास के चरणों पर सिर रख दिया और हाथ जोड़कर उनसे क्षमायाचना की।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

बारहवाँ अध्याय

इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का वध

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! थोड़ी देर बाद जब वृत्रासुर का ध्यान भगवान् की ओर से हटा तब वह युद्ध में विजय की अपेक्षा मृत्यु को श्रेष्ठ मानता हुआ हाथ में त्रिशूल लेकर बड़े वेग से इन्द्र की ओर ऐसे झपटा जैसे कि भगवान् विष्णु पर कैटभासुर। प्रलयाग्नि-सदृश एक भीषण त्रिशूल इन्द्र पर फेंककर उसने सिंहगर्जना की, और क्रुद्ध होकर कहा—अरे पापी इन्द्र! अब तू मरा, बच नहीं सकता। इन्द्र ने उल्का के समान आकाश से आते हुए त्रिशूल को अपने वज्र से काट डाला। साथ वृत्रासुर की विशाल भुजा भी उड़ा दी। बाहु कटते ही वृत्रासुर मारे क्रोध से तमतमा उठा। उसने बाएँ हाथ से एक लौहदण्ड उठाकर इन्द्र की ठोड़ी पर मारा तथा उसी से ऐरावत के मस्तक पर भी प्रहार किया। वृत्रासुर के तीव्र प्रहार से इन्द्र के हाथ का वज्र छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। वृत्रासुर के इस पराक्रम की सभी योद्धाओं ने प्रशंसा की, किन्तु इन्द्र के संकट पर देवता, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर आदि हाहाकार कर चिल्ला उठे।

इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ।
तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ।।६।।

शत्रु के सामने अपने हाथ से गिरे वज्र को उठाने में इन्द्र को बड़ी लज्जा हुई। वृत्रासुर ने इन्द्र को ललकारते हुए कहा—अरे इन्द्र! क्या सोचता है? उठा अपना वज्र और शत्रु पर प्रहार कर। यह समय विषाद का नहीं है। संग्राम जुए के समान है। इसमें जय या पराजय किसकी होगी, यह कहना कठिन है। इसलिए यश, अपयश, जय, पराजय, सुख, दुःख तथा जीवन और मरण में मनुष्य को एक-समान रहना चाहिए। इनमें हर्ष या विषाद करना उचित नहीं। अरे इन्द्र! इधर तो देख, तूने मेरे शस्त्र तथा भुजा काट डाली है फिर भी मैं तेरे प्राण लेने के लिए कितना सचेष्ट हूँ। शुकदेव जी कहते हैं—हे राजन्! वृत्रासुर के इस प्रकार निष्कपट एवं सत्यवचन सुनकर इन्द्र ने वज्र उठा लिया और वृत्रासुर के धैर्य की प्रशंसा कर कहा—

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ।।१९।।

हे दानव! तुम सचमुच सिद्धपुरुष हो तभी तो तुम्हारी रणभूमि में भी विवेकपूर्ण स्थिरमति है। तुमने भगवान् की माया को जीत लिया है एवं तुम असुरभाव का परित्याग कर भक्त-कोटि में पहुँच गये हो। हे राजन्! इस प्रकार धर्मजिज्ञासा से परस्पर वार्तालाप करते हुए महापराक्रमी इन्द्र और वृत्रासुर दोनों आपस में पुनः युद्ध करने लगे। वृत्रासुर ने इस बार पुनः एक दूसरा भीषण लौहदण्ड उठाकर घुमाया और बायें हाथ से इन्द्र पर उसे फेंका, किन्तु देवराज इन्द्र ने तीक्ष्ण धारवाले वज्र से एकही साथ उसकी भुजा और लौहदण्ड दोनों काट डाले। वृत्रासुर पक्षहीन पर्वत की भाँति धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसकी दोनों बाहुओं से खून के फौब्बारे छूटने लगे, फिर भी वृत्रासुर घबड़ाया नहीं। उसने नीचे का ओठ पृथ्वी में और ऊपर ओठ आकाश में लगाकर अपना मुख प्रसारित किया। अनन्तर पादचारी पर्वत के समान वह पृथ्वी को कम्पित करता हुआ इन्द्र के समीप गया और जैसे अजगर हाथी को निगले वैसे ही ऐरावत सहित इन्द्र को निगल गया।

गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन्महीम् ।
जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ।।२१।।

यह देखकर महर्षि सहित सब देवता हाहाकार कर चिल्लाने लगे। किन्तु इन्द्र नारायण-कवच के प्रभाव से उसके उदर में जाकर भी मरे नहीं। वे वज्र से उसका पेट फाड़कर बाहर निकल आये और स्वस्थ होकर उन्होंने वृत्रासुर की ग्रीवा पर वज्र का प्रहार किया। तीव्र वेगशाली वज्र पूरे एक वर्ष (एक देवदिन) में बड़ी कठिनाई से वृत्रासुर का सिर काटकर धड़ से पृथक् कर सका। उस समय वृत्र के शरीर से एक ज्योति निकली जो सबके देखते-देखते अदृश्य हो लोकातीत भगवान् में लीन हो गयी—

पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ।।३५।।

इस पर आकाश में नगाड़े बजने लगे और देवता, सिद्ध, गन्धर्व आदि पुष्पवृष्टि कर इन्द्र की स्तुति करने लगे।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

तेरहवाँ अध्याय

इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण और भगवान् विष्णु द्वारा उनकी रक्षा

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद।
सपाला ह्यभवन् सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियाः ॥१॥

वृत्रासुर के मारे जाने पर तीनों लोकों में आनन्द छा गया और सबका मानसिक सन्ताप मिट गया, किन्तु इन्द्र का क्लेश निवृत्त नहीं हुआ। कारण त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को मारकर इन्द्र को जो ब्रह्महत्या लगी थी उसका पाप तो चार स्थानों में विभक्त कर वे किसी प्रकार पापमुक्त हुए थे। वृत्रासुर का वध करने पर पुनः ब्रह्महत्या ने उन पर आक्रमण किया। उसका रूप बड़ा ही भीषण था। वह यक्ष्मा-रोग से ग्रस्त वृद्धा चाण्डालिन की तरह मालूम पड़ती थी। उसका जर्जर शरीर काँपता था। तन की साड़ी रुधिर से लथपथ थी एवं श्वास और शरीर की दुर्गन्ध से सारा मार्ग गंधा रहा था। उसके श्वेत केश बिखरे हुए थे। उसने इन्द्र को ललकारते हुए कहा—अरे ब्रह्मघातिन्! कहाँ जा रहा है? खड़ा रह, खड़ा रह। यह कहकर वह इन्द्र के पीछे बड़े वेग से दौड़ी। देवराज इन्द्र उसे देखकर काँप उठे और बड़ी तेजी से आकाश, पाताल एवं दिशाविदिशाओं में भागते फिरे। ब्रह्महत्या ने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। जब इन्द्र को कहीं त्राण नहीं मिला तब वे मारे भय के ईशानकोणस्थित मानसरोवर में जा घुसे—

प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥१४॥

वहाँ कमलदण्ड के सूत्र में बिना कुछ खाये पिये एक हजार वर्ष तक छिपे रहे। उन्हें सदा यही चिन्ता लगी रहती थी कि इस ब्रह्महत्या से किस प्रकार मुझे छुटकारा मिले। जल के भीतर देवताओं के दूत अग्नि भी उनको कोई भोग्य वस्तु नहीं पहुँचा सकते थे। इन्द्र जब तक वहाँ रहे तब तक स्वर्ग का पालन राजा नहुष ने विद्या, तप और योगबल के प्रभाव से किया।

इस सन्दर्भ में एक छोटी-सी कथा है। स्वर्ग का शासन करते हुए राजा नहुष ने ऐश्वर्य के मद से अन्धे होकर एक दिन इन्द्राणी से कहा—देवि! इस समय मैं इन्द्र हूँ। अतः तुम मेरा वामाङ्ग अलंकृत करो। इन्द्राणी ने दुःखित होकर यह वृत्तान्त बृहस्पति से कहा। बृहस्पति ने इन्द्राणी को आश्वासन देते हुए कहा—देवि! तुम घबराओ नहीं। तुम नहुष से कहो, यदि आप ब्राह्मणों को पालकी में जोतकर उसमें बैठकर मेरे पास आवें तो मैं आपकी सेवा कर सकूँगी। नहुष ने यह शर्त स्वीकार कर ली। अनन्तर उसने अगस्त्य आदि महर्षियों को पालकी में जोतकर उसमें बैठ इन्द्राणी

के समीप प्रस्थान किया। मार्ग में सर्प सर्प' (जल्दी चलो जल्दी चलो) कहकर उसने अगस्त्य ऋषि का पैर से स्पर्श किया। अगस्त्य ने कुपित होकर उसे शाप दिया—अरे दुष्ट! तू सर्प-सर्प, कहता है अतः अजगर सर्प ही हो जा। इस प्रकार इन्द्राणी ने कौशल से राजा नहुष को तिर्यक् योनि में डलवा दिया—

नीतस्तिरश्चां गतिमिन्द्रपत्न्या ।

इस बीच इन्द्र ब्रह्महत्या से छुटकारा पाने के लिए निरन्तर भगवान् के ध्यान में निमग्न रहे। इन्द्र की दस हजार वर्ष की कठोर आराधना से ब्रह्महत्या अदृश्य हो गयी। तब ऋषिगण इन्द्र को स्वर्ग में बुला लाये और उनसे विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ कराया। उसके द्वारा पुराणपुरुष भगवान् की आराधना करने से इन्द्र का पाप समूल नष्ट हो गया और वे पुनः सूर्य के समान चमकने लगे—

इन्द्रो महानास विधूतपापः ।

सब ओर आनन्द छा गया और इन्द्र पूर्ववत् स्वर्ग का शासन करने लगे।

पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ।
धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथायुषम् ॥२३॥

हे राजन्! इन्द्रसम्बन्धी यह आख्यान समस्त पापों का नाश करने वाला, धन, यश तथा आयु की वृद्धि करने वाला है। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति से इस आख्यान का सर्वदा अथवा पर्व-पर्व पर श्रवण करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती है और वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का बारहवाँ विश्राम)

◆

चौदहवाँ अध्याय

वृत्रासुर पूर्वजन्म में चित्रकेतु था

राजा परीक्षित् ने पूछा—भगवन्!

रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ।
नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः ॥१॥

राजसी और तामसी स्वभाव वाले पापी वृत्रासुर की भगवान् नारायण में इस प्रकार की दृढ़ मति कैसे हुई। सात्त्विक देवता एवं शुद्ध अन्तःकरण वाले ऋषियों की भी भगवान् के चरणकमलों में प्रायः ऐसी भक्ति नहीं होती। ऐसी दशा में इस वृत्रासुर की भीषण संग्राम में भगवान् श्रीकृष्ण में दृढ़ मति कैसे हुई? इस विषय में हमें बड़ा सन्देह है। आप इसका कारण बताने की कृपा करें।

शुकदेव जी बोले—राजन्! इस विषय में मैने अपने पिता वेदव्यास जी, देवर्षि नारद तथा महर्षि देवल के मुख से जो इतिहास सुना है उसे सावधान होकर सुनो। प्राचीन काल की बात है शूरसेन देश में चित्रकेतु नाम के एक बड़े प्रतापी चक्रवर्ती राजा थे। उनके राज्य में पृथ्वी कामधेनु बन गयी और प्रजा सब तरह से सुखी थी। उनकी बहुत-सी रानियाँ एवं पटरानियाँ होने पर भी उन्हें कोई सन्तान न थी। इससे विपुल वैभव रहते हुए भी वे सर्वदा चिन्तित रहा करते थे। दैवयोग से लोकों में विचरते हुये महर्षि अंगिरा एक दिन उनके भवन में आये। राजा ने अभ्युत्थान तथा अर्घ्य-पाद्य से उनका विधिवत् पूजन कर उन्हें एक दिव्य सिंहासन पर बैठाया और स्वयं हाथ जोड़ कर उनके आगे पृथ्वी पर बैठ गये। मुनि ने राज्य, मन्त्री, कोष, सेना और प्रजा की कुशल-क्षेम पूछकर राजा से कहा—राजन् आज मैं तुम्हें बड़ा चिन्तित देख रहा हूँ। तुम्हारा मुख पीला सा दीखता है। बताओं तो सही तुम क्या चाहते हो? मुनि के इस प्रकार पूछने पर राजा ने विनीत भाव से कहा भगवन्! आप समाधि के द्वारा प्राणिमात्र के मनोभाव जानते हैं। आपसे कुछ छिपा नहीं है फिर भी आपके आदेशानुसार अपनी चिन्ता का कारण बताता हूँ। सब सुख होते हुए भी मुझे पुत्र का सुख नहीं है, इससे मुझे महान् कष्ट है। आप कृपा कर कोई ऐसा उपाय करें जिससे मेरे वंश का विस्तार करने वाला एक पुत्र हो जाय। महर्षि अङ्गिरा ने पुत्रेष्टियज्ञ कर चरु से त्वष्टा का पूजन किया और यज्ञ से बची हुई खीर रानी कृतद्युति को देकर राजा से कहा—राजन्! इससे तुम्हें एक पुत्र होगा जिससे तुम्हें हर्ष और शोक दोनों प्राप्त होंगे। यह कहकर अङ्गिरा ऋषि चले गये। खीर के प्राशन से रानी गर्भवती हुई और यथासमय उसने एक सुन्दर कुमार को जन्म दिया। राजा के हर्ष की सीमा न रही। उसने विधिपूर्वक उसका जातकर्म-संस्कार कराया और ब्राह्मणों को प्रचुर सोना, चाँदी, वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़े एवं साठ करोड़ गौएँ दान कीं। यद्यपि इस प्रकार की संख्या में लोगों को सन्देह होता है। उसका समाधान इस प्रकार करना चाहिए—

संख्याया विंशको ह्यंशो ग्रहीतव्यः सदा बुधैः।
इतिहासपुराणादावित्येवं नीलकण्ठवाक्॥

इस प्रकार जहाँ-जहाँ संख्या का आधिक्य प्रतीत हो वहाँ संख्या का २०वाँ हिस्सा लेना चाहिए, ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है। नगर में चारों ओर माङ्गलिक गान तथा आनन्द-महोत्सव की झड़ियाँ लग गयीं। राजा का स्नेह पुत्र एवं पुत्रवती पत्नी में जिस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ा वैसा अन्य स्त्रियों से न रहा। कृतद्युति की सौतों को इससे बड़ी जलन हुई। एक दिन रानी पुत्र को सुलाकर घर की देख रेखकर रही थी कि सौतों ने डाह के कारण उसके पुत्र को विष दे दिया और वह तत्काल मर गया—

विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ।
गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥

कुछ देर बाद कृतद्युति ने पुत्र को लाने के लिए जब धाय को भेजा तो वह पुत्र को मृतक देख तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ी और दोनों हाथों से अपनी छाती पीटती हुई फूट-फूटकर रोने लगी। उसके रोने का शब्द सुनकर रानी भी वहाँ आ गयी और अपने पुत्र को मृत पड़ा देखा—

ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥४७॥

अपने पुत्र की ऐसी दशा देखकर वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। राजा को जब यह समाचार मिला तो वे भी बिलखते हुए वहाँ आकर बालक के पैरों पर गिर पड़े। रोते-रोते उनका गला रुँध गया। रानी को जब होश हुआ तब वह रोती हुई पुत्र के प्रति बोली—हे वत्स! तुम मुझे अकेला छोड़कर कहाँ चले गये। तुम्हारे साथी तुम्हें खेलने को बुला रहे हैं। तुम बहुत देर से सो रहे हो। तुम्हें भूख प्यास लगी होगी। उठो लाल! मेरे स्तन का थोड़ा-सा दूध तो पी लो। हाँ, तुम्हारा मुख आज कैसा हो गया है। तुम कुछ बोलते भी नहीं। क्या मृत्युदेवता तुम्हें अपने लोक को तो नहीं ले गये? मैं तुम्हारी सुमधुर तोतली वाणी नहीं सुन रही हूँ—

नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥५८॥

लाल! क्या तुम मुझसे नाराज हो गये? क्या मुझ दीन को छोड़ चले ही जाओगे? इस प्रकार राजा और रानी वहाँ करुण विलाप कर रहे थे। कोई भी उन्हें धीरज देने वाला न था। सारा अन्तःपुर अचेत-सा हो गया था।

सर्वमासीदचेतनम् ।

इसी समय, नारद जी के साथ महर्षि अङ्गिरा वहाँ आ पहुँचे।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

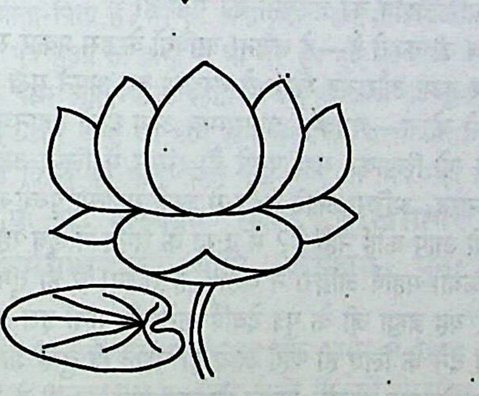

पन्द्रहवाँ अध्याय

अङ्गिरा तथा नारद के ज्ञानोपदेश से चित्रकेतु की शोक निवृत्ति

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! राजा चित्रकेतु को मृत पुत्र के समीप इस प्रकार शोकाकुल पड़े देखकर अङ्गिरा और नारद जी नाना प्रकार से उन्हें समझाते हुए बोले—

कोऽयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति।
त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥२॥

राजेन्द्र! तुम्हारा यह कौन है, जिसके लिए तुम इतना शोक कर रहे हो? इस जन्म में तुम इसके कौन हो? पहले जन्म में तुम इसके कौन थे और भविष्य में कौन होओगे? जैसे जल के प्रवाह से बालुका के कण एक दूसरे से जुड़ते और बिछुड़ते हैं वैसे ही कालचक्र द्वारा इन प्राणियों का संयोग और वियोग होता रहता है। हम, तुम और अन्य भी जितने चराचर प्राणी हैं, वे सभी जन्म के पहले न थे और मृत्यु के पश्चात् भी नहीं रहेंगे। इसलिए वर्तमान समय में भी उनका अस्तित्व नहीं के समान है, ऐसा समझना चाहिए—

देहेन देहिनो राजन् देहाद् देहोऽभिजायते।
बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

हे राजन्! जैसे एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है और नष्ट होता है वैसे ही पिता-माता के देह से पुत्र का देह उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है। देह के अन्तर्गत जो चेतन आत्मा है—वही नित्य है। उसका नाश कभी नहीं होता। अतः शोक करना व्यर्थ है।

आत्मैवेदं जगत् सर्वम्।

इस श्रुति के अनुसार यह सम्पूर्ण जगत् आत्मा ही है। इसमें देही (जीव) तथा देह का विभाग अज्ञान से कल्पित है जैसे कि मृत्तिकारूप वस्तु में घटत्व और घट का, जाति तथा व्यक्तिविशेष की कल्पना की गयी है।

शुकदेव जी कहते हैं—हे राजन्! ऋषियों के इस प्रकार समझाने पर चित्रकेतु का शोक कुछ दूर हुआ और वह शोक से मुरझाये हुए अपने मुख को पोछ कर हाथ जोड़ कर ऋषियों से बोला—भगवन्! ज्ञानसम्पन्न आप दोनों महानुभाव कौन हैं जो अवधूत वेष से अपने को छिपाकर यहाँ पधारे हैं। संसार में लिप्त अज्ञानी जीवों के उद्धारार्थ सनत्कुमार, नारद, अङ्गिरा आदि बहुत से ज्ञानी महात्मा पृथ्वी पर विचरा करते हैं। क्या उन्हीं में से तो आप कोई नहीं हैं? मैं दुःख के समुद्र में डूब रहा था। आपने ज्ञान देकर मेरा उद्धार किया। महर्षि अङ्गिरा ने कहा—हे राजन्! मैं ही तुम्हें पुत्र देने वाला अङ्गिरा ऋषि हूँ और यह ब्रह्मा जी के पुत्र देवर्षि नारद हैं। तुम्हें इस प्रकार शोकाकुल देखकर हम सान्त्वना देने के लिए ही यहाँ आये हैं। पहले ही तुम्हें ज्ञान देना चाहते थे, किन्तु उस समय पुत्रविषयक तुम्हारा आग्रह देखकर तुम्हें पुत्र ही दे दिया। पुत्रवानों को कैसा

क्लेश होता है इसका तुम अब प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हो। राजन्! इसी प्रकार गन्धर्व नगर के समान स्त्री, पुत्र, राज्य, मन्त्री, गृह, कोष ये सभी दुःख देने वाले अनित्य हैं। इनमें आसक्ति का त्याग कर तुम तन, मन और धन से भगवान् की आराधना करो जिससे तुम्हारा द्वैतभ्रम मिट जायेगा और तुम्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त होगी।

अनन्तर देवर्षि नारद ने कहा—राजन्! मैं तुम्हें एक गूढ़ मन्त्रविद्या का उपदेश देता हूँ, इसे ग्रहण करो। इसके अनुष्ठान से सात दिनों के अन्तर ही तुम्हें भगवान् संकर्षण का दर्शन प्राप्त होगा—

यां धारयन् सप्तरात्राद् द्रष्टा संकर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

सोलहवाँ अध्याय

नारद द्वारा चित्रकेतु को शेषतोषिणी महाविद्या का उपदेश

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

अथ देवऋषी राजन् संपरेतं नृपात्मजम् ।
दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥१॥

इस उपदेश के बाद देवर्षि नारद ने शोकाकुल बन्धुओं के समक्ष ही अपनी योगशक्ति से मृत पुत्र के जीवात्मा को प्रत्यक्ष बुलाकर उससे कहा हे जीवात्मन्! तुम्हारा कल्याण हो। देखो, तुम्हारे ये माता-पिता तथा सुहृद्, सम्बन्धी तुम्हारे लिए कितना शोक कर रहे हैं। अपमृत्यु से मरने के कारण तुम्हारी आयु अभी शेष है। तुम पुनः अपने इस शरीर में आकर राजसिंहासन ग्रहण कर पिता के दिये भोगों का उपभोग करो। इस पर उस जीवात्मा ने कहा—महर्षिजी! आप यह क्या कह रहे हैं? ये किस जन्म के मेरे सम्बन्धी, माता-पिता हैं? मैं तो कर्मानुसार नानायोनियों में भ्रमण करता रहता हूँ। कभी मैं इनका पुत्र हुआ तो कभी ये भी मेरे पुत्र हुए हैं। जैसे बेचने-खरीदने की वस्तुएँ व्यापारियों के पास आती जाती रहती हैं वैसे ही जीव भी कर्मानुसार ऊँच-नीच योनियों में आता है और कर्मों का क्षय होने पर फिर चला जाता है। इसलिए दुःख-रूप संसार में कोई किसी का माता-पिता भाई-बन्धु या मित्र नहीं है—

मित्रं कोऽपि न कस्यापि संसारे दुःखसागरे ।
आयाति कर्मसम्बन्धाद् याति कर्मक्षये पुनः ॥

(गरुड़पुराण)

जीव अविनाशी है। वह अहंकारवश ही जब तक शरीर में रहता है तभी तक उसका उसमें ममत्व है। वह वस्तुतः जन्म, मृत्यु आदि विकारों से रहित है। जबतक

जिसका जिससे सम्बन्ध है तभी तक उसका उसमें ममत्व रहता है। भाई, बन्धु आदि सारा परिवार माया का खेल है। प्राणी मिट्टी के खिलौने से सम्बन्ध जोड़ता है टूटने पर अज्ञानी बालक की भाँति रोता है। जो अविनाशी आत्मा है उसे पहचानता ही नहीं। आत्मा को तो इसने पहले भी नहीं देखा था। जिस शरीर को देखा था वह तो अब भी सामने पड़ा ही है, फिर शोक क्यों करता है? यह कहकर जीवात्मा अदृश्य हो गया। जीवात्मा का वक्तव्य सुनकर उसके सम्बन्धियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने शोक का परित्याग कर उसका पारलौकिक संस्कार किया। बालक की हत्या करने वाली स्त्रियों ने भी यमुनातट पर जाकर ब्राह्मणों के आदेशानुसार बालहत्या का प्रायश्चित्त कर अपनी चित्तशुद्धि की। जीवात्मा के उस उपदेश से राजा चित्रकेतु के भी हृदय में आत्मज्ञान का संचार हुआ। उसने यमुना में स्नानकर अपने पुत्र को जलाञ्जलि दी और मुनियों को प्रणाम कर उनके समीप में बैठ गया। देवर्षि नारद ने प्रसन्न होकर चित्रकेतु को शेष तोषिणी महाविद्यां का उपदेश दिया। इसमें सात श्लोक हैं। पाँच श्लोकों से भगवान् को प्रणाम किया गया है। एक श्लोक से रक्षा की प्रार्थना तथा एक से भगवान् की दुर्ज्ञेयता बताकर अन्त में एक मन्त्र का उपदेश किया गया है। शुकदेव जी कहते हैं—हे राजन्! देवर्षि नारद इस प्रकार चित्रकेतु को महाविद्या का उपदेश देकर ब्रह्मलोक चले गये। राजा ने सात दिनों तक केवल जल पीकर उस विद्या का अनुष्ठान किया। जिससे वे विद्याधरों के अधिपति हो गये और कुछ ही दिनों बाद इसी महाविद्या के प्रभाव से शेष-भगवान् के चरणों के समीप पहुँच गये। जहाँ उन्हें भगवान् शेष के दर्शन हुए।

मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम् ।
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं वृतं ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥३०॥

मृणाल के समान जिनका धवल वर्ण है। उसमें नीलाम्बर शोभित हो रहा है। सिद्धेश्वर सनकादि जिनकी उपासना कर रहे हैं ऐसे प्रसन्नवदन शेष जी का दर्शन कर चित्रकेतु का अन्तःकरण शुद्ध हो गया। उसके समस्त पाप नष्ट हो गये और सारा शोक-मोह भी जाता रहा। चित्रकेतु ने भक्तिपूर्वक चौदह आर्या छन्दों से भगवान् शेष की स्तुति की। अन्त में एक श्लोक से चरणों में गिर कर प्रणाम किया। अनन्तर शेष भगवान् ने प्रसन्न होकर कहा—राजन्! महर्षि अङ्गिरा तथा देवर्षि नारद ने जो तुम्हें उपदेश दिया है उससे तथा मेरे दर्शन से तुम सिद्ध हो चुके हो। ज्ञान-विज्ञान को देने वाली इस मनुष्ययोनि को प्राप्त कर जिसने परमात्मा को नहीं जाना उसका मृत्युदुःख कभी निवृत्त नहीं हो सकता। शुकदेव जी कहते हैं—हे राजन्!

आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ।
पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥६५॥

भगवान् शेष चित्रकेतु को इस प्रकार आश्वासन देकर उसके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

सत्रहवाँ अध्याय

चित्रकेतु का पार्वती जी के शाप से वृत्रासुर होना

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ।
विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥१॥

भगवान् शेष जिस ओर अन्तर्धान हुए थे, उस दिशा को नमस्कार कर चित्रकेतु आकाश में विचरता हुआ सुमेरु पर्वत की कन्दरा में विद्याधरियों के साथ भगवान् के निर्मल यश का गान करने लगा। एक समय भगवान् विष्णु द्वारा दिये गये तेजोमय विमान में चढ़कर वह भ्रमणकर रहा था कि उसे एक स्थान पर बड़ी विशाल सभा दिखाई दी। वहाँ भगवान् शिव पार्वती जी को गोद में लिए बैठे थे। उनके चारों ओर सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर आदि बैठे हुए थे। यह देख चित्रकेतु ने पार्वती जी के समक्ष उनका उपहास करते हुए कहा—'ये लोक के गुरु और धर्म के साक्षात् वक्ता हैं फिर भी इस प्रकार सभा के बीच में स्त्री को गोद में लिए बैठे हैं। साधारण पुरुष भी स्त्री के साथ एकान्त में बैठा करते हैं। जटाजूटयुक्त महातपस्वी का इस प्रकार स्त्री को साथ में लेकर बैठना शोभा नहीं देता।' त्रिलोकी के गुरु भगवान् शिव यह सुनकर मुस्कराते हुए चुपचाप बैठे रहे। अन्य सभासदों ने भी इस अनुचित बकवाद की उपेक्षा करते हुए भगवान् शिव जी का अनुसरण किया। चित्रकेतु भगवान् शिव का प्रभाव जानता न था, इसलिए उसने अहंकारवश बहुत कुछ अनुचित बक डाला? किन्तु पार्वती जी को उसका यह अनुचित व्यङ्ग्य सहन न हुआ। वे उसके शिक्षार्थ क्रोधभरी मुद्रा में बोली—अरे! क्या लोक में हम लोगों का शासन करने वाला यही नियुक्त किया गया है? यह नीच तो बड़ा ही धृष्ट है। सभा में बैठे इतने विद्वानों का अनादर कर भगवान् शिव को कटु वचन बोल रहा है। इसे अपने जितेन्द्रियत्व का बड़ा गर्व है। ब्रह्मा, भृगु, नारद, कपिल, मनु आदि क्या धर्म का रहस्य नहीं जानते? यही क्या मूर्ख धर्म का ठेकेदार बना है। जिन भगवान् शिव के चरण कमलों का ब्रह्मा आदि देवता ध्यान करते हैं, जो धर्ममर्यादा के रक्षक एवं जगत् के गुरु हैं उनको यह नीच क्षत्रिय शिक्षा देता है। यह सर्वथा दण्ड के योग्य है। यह दुष्ट भगवान् के चरणों में रहने योग्य नहीं हैं। यह कहकर चित्रकेतु को सम्बोधन करते हुए कहा—

अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ।
यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अरे दुष्ट! ऐसी बातें भद्र पुरुष नहीं करते, राक्षस ही किया करते हैं, अतः तू शीघ्र ही राक्षस-योनि को प्राप्त हो जा, जिससे फिर कभी तू किसी महापुरुष का ऐसा

अपमान न कर सके। शुकदेव जी बोले—हे राजन्! यह शाप सुनकर चित्रकेतु विमान से नीच उतर पार्वती जी के चरणों पर गिर पड़ा और बोला—माँ! मैं अञ्जलि बाँधकर आपका शाप ग्रहण करता हूँ। इससे मेरे पापकर्मों का प्रायश्चित्त हो जायेगा। यह जीव अज्ञान से मोहित होकर संसार में घूमता हुआ इसी प्रकार सुख-दुःख भोगा करता है—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रे ग्रथितो हि लोकः॥

माँ! संसार में सुख-दुःख देने वाला कोई नहीं है। जो दूसरों को सुख या दुःख देनेवाला समझता है, वह कुबुद्धि है। मनुष्य व्यर्थ ही अभिमान कर अपने को सुख-दुःख का कारण समझता है। वस्तुतः सारा जगत् ही कर्म-सूत्र से बँधा हुआ है। उसी से मनुष्य को सुख-दुःख प्राप्त होता है। इस नश्वर जगत् में शाप, अनुग्रह, स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख क्या है? कुछ नहीं। सब माया का खेल हैं। हे देवि! क्षमा करें। मैं शाप-निवृत्ति के लिए आपको प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ। मेरी कही हुई जो बात आपको अनुचित लगी उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। इस प्रकार चित्रकेतु भगवान् शिव और पार्वती जी को प्रसन्न कर वहाँ से चला गया और यथासमय वह पार्वती जी के शाप से त्वष्टा की दक्षिणाग्नि में वृत्रासुर के रूप में उत्पन्न हुआ। हे राजन्! तुमने जो पूछा था कि चित्रकेतु असुर जाति में उत्पन्न क्यों हुआ और युद्ध में उसकी भगवान् में दृढ़ मति कैसे हुई? उसका कारण मैंने तुम्हें बताया। यहाँ असुरजाति में उत्पन्न होने का कारण महापुरुषों का अपराध और भगवान् में मति का कारण महात्माओं का अनुग्रह है—

इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः।
माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद् विमुच्यते ॥४०॥

जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति से भगवद्भक्त चित्रकेतु के इस परम पवित्र इतिहास का श्रवण करता है, वह कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

अठारहवाँ अध्याय

अदिति के अन्य सविता आदि आठ पुत्रों का वंश तथा दिति से ४९ मरुतों का जन्म

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! गत छठे अध्याय के ३९वें श्लोक में मैंने तुमसे कश्यप की पत्नी अदिति के १२ पुत्र हुए—यह कहा था। उनके नाम हैं—विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और वामन—

विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाथ सविता भगः।
धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः॥

उनमें से तीन के वंश का वर्णन पहले कर चुके हैं। अब चौथे त्वष्टा का वंश सुनो। त्वष्टा के वंश में विश्वरूप हुए। जब इन्द्र ने विश्वरूप को मार डाला तब त्वष्टा ने मन्त्रद्वारा अग्निकुण्ड से एक दूसरा पुत्र वृत्रासुर उत्पन्न किया।

पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम्।
अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान्॥१॥

वृत्रासुर पूर्वजन्म में चित्रकेतु नामक राजा था, जो पार्वती जी के शाप से असुरयोनि में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार त्वष्टा के वंश का वर्णन हुआ। अब हम अदिति के पाँचवें पुत्र सविता के वंश का वर्णन करते हैं—

सविता की पत्नी पृश्नि से सावित्री आदि आठ सन्तानें हुईं। इसी प्रकार अदिति के अन्य सात पुत्रों की बहुत-सी सन्तानें हुईं। कश्यप की दूसरी पत्नी दिति के दो पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बड़े प्रतापी हुए जिनके वंश में प्रह्लाद, विरोचन, बलि, बाण आदि बड़ी तेजस्वी सन्तानें हुईं। दिति के ४९ पुत्र और हुए जो मरुद्गण कहे जाते हैं। इन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। इन्द्र ने इन्हें असुर से देवता बना लिया था। परीक्षित् ने पूछा—हे मुने! ये असुरभाव त्यागकर देवयोनियों में कैसे मिले? कृपया यह प्रसङ्ग मुझे सुनायें। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् विष्णु ने इन्द्र का पक्ष लेकर जब दिति के महाप्रतापी पुत्र हिण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का वध कर डाला तब दिति का हृदय शोक और क्रोध से जलने लगा। वह दिन-रात यही सोचती थी कि मेरे एक ऐसा पुत्र हो जो इन्द्र को मार सके। इस कामना से वह कश्यपजी की बड़ी तत्परता से सेवा करने लगी। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन कश्यपजी बोले—सुन्दरी! मैं तुम्हारी सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हूँ तुम क्या चाहती हो? जो इच्छा हो, मुझसे वर माँगो। दिति ने कहा—भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वह वर दें कि मेरा पुत्र इन्द्र को मारने वाला हो। यह सुनकर कश्यपजी घबरा उठे और अपनी स्त्रैणता की निन्दा करने लगे। अन्त में एक युक्ति सोचकर उन्होंने दिति से कहा—

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः ।
संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥४५॥

भद्रे! यदि पूरे एक वर्ष तक तुम पुंसवन व्रत का पालन करोगी तो तुम्हारे इन्द्र को मारने वाला पुत्र अवश्य होगा। यदि कदाचित् नियम-पालन में कुछ त्रुटि हुई तो वह देवताओं का भाई बन जायेगा। दिति ने कहा—भगवन्! मैं नियमों का विधिवत् पालन करूँगी। जो आचरण इसमें निषिद्ध हो कृपया उनका आप उपदेश करें। कश्यपजी ने कहा—हे प्रिये! व्रती किसी की हिंसा न करें। क्रोध न करें। गाली या शाप किसी को न दें। दुर्जनों से वार्तालाप न करें। बिना धुला वस्त्र तथा किसी की उतरी माला न पहने। नख या रोम न काटें। भोजन में पाँच निषेध हैं—किसी का जूँठा, चीटियों का खाया, मांसयुक्त, शूद्रका लाया तथा रजस्वला से दृष्ट अन्न त्याज्य है। अञ्जलि से जल पीना भी वर्जित है। बाहर जाने में सात निषेध है—जूठे मुख, बिना आचमन किये, सन्ध्या के समय, बाल खोलकर बिना शृङ्गार के, व्यर्थ की गप-शप करते हुए तथा बिना चादर ओढ़े घर के बाहर निकलना वर्जित है। शयन में आठ निषेध हैं—बिना पैर धोये, अशुचि अवस्था में, गीले पैर, उत्तर[१] या पश्चिम सिरकर, दूसरे के साथ, नग्न होकर तथा दोनों सन्ध्याओं में शयन वर्जित है। प्रातःकाल गौ, ब्राह्मण तथा लक्ष्मीनारायण का पूजन करें। माला, फल, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से सौभाग्यवती स्त्रियों का पूजन कर उन्हें नाना व्यञ्जन सहित यथेच्छ भोजन करायें। अनन्तर पति का पूजन कर अपनी कुक्षि में उनका ध्यान करें। इस प्रकार एक वर्ष तक निर्विघ्न यदि तुम इस व्रत का नियमपूर्वक पालन करोगी तो तुम्हारे निश्चय ही इन्द्र का नाश करने वाला पुत्र होगा—

शक्रहा भविता सुतः ।

तदनन्तर दिति ने यथासमय कश्यप से गर्भ धारण कर व्रत का पालन करना आरम्भ कर दिया। इन्द्र अपनी मौसी का अभिप्राय जानकर उसके आश्रम में गये और तत्परता से उसकी सेवा करने लगे। वे समय-समय पर फल, पुष्प, कन्द-मूल, समिधाएँ और जल लाकर उसको देते और उसकी त्रुटियों की खोज में रहते। एक दिन दिति बिना हाथ-पैर धोये, जूठे मुख, सन्ध्या के समय सो गयी, अवसर पाकर इन्द्र ने योगशक्ति से उसके उदर में प्रवेश किया और सुवर्ण के समान देदीप्यमान उसके गर्भ के वज्र से सात टुकड़े कर डाले—

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ॥६२॥

फिर भी जब वे नहीं मरे तब इन्द्र ने एक-एक खण्ड के सात-सात खण्ड कर दिये। इस पर वे सब खण्ड हाथ जोड़कर इन्द्र से बोले—हे देवेन्द्र! आप हमें क्यों

---

[१] प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामथवा नृप ।
सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ॥ (विष्णुपुरा, ३,११,१११)

मारते हैं? हम तो आपके ही भाई हैं। इन्द्र ने अभयदान देकर उन्हें अपना पार्षद बना लिया और स्वयं गर्भ से बाहर निकल आये। पुंसवन उक्त व्रत के प्रभाव से दिति का गर्भ नष्ट नहीं हुआ और उससे अग्नि के समान तेजस्वी ४९ बच्चे पैदा हुए। दिति यह देखकर चकित रह गयी। उसने इन्द्र से पूछा—

एकः संकल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन् कथम्।
यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥७०॥

हे पुत्र! मैंने एक पुत्र का संकल्प किया था, ये फिर उन्चास कैसे हो गये? यदि तुम जानते हो तो सच-सच कहो—कारण क्या है? झूठ न बोलना। दिति के यह पूछने पर इन्द्र ने अपनी मौसी को इन ४९ बच्चों का सारा रहस्य समझा दिया और माता को प्रणाम कर सब बच्चों को साथ ले वे स्वर्ग को चले गये। ये ही ४९ पवन कहे जाते हैं। शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥७८॥

यह मरुद्गणों का जन्म बड़ा मङ्गलप्रद है। इसके विषय में तो तुमने पूछा था उसका उत्तर मैंने दे दिया। अब तुम आगे क्या सुनना चाहते हो? कहो। मैं वर्णन करूँ।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

उन्नीसवाँ अध्याय

दिति को उपदिष्ट पुन्सवन-व्रत का विधान

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्!

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यदुदीरितम्।
तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥१॥

आपने पूर्व अध्याय में जो पुंसवन-व्रत का वर्णन किया जिससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। उसका विधान मैं जानना चाहता हूँ।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्!

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया।
आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥२॥

स्त्री अपने पति की आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से यह व्रत आरम्भ करें। यह व्रत सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर दन्तधावनपूर्वक शुद्ध जल से स्नान करें। तदनन्तर हाथ से धुले श्वेत वस्त्र तथा आभूषण धारण कर सर्वप्रथम ब्राह्मणों की आज्ञा ले मरुद्गणों के जन्म की कथा का श्रवण करें। यदि वस्त्र धोबी द्वारा धुले हों तो उन्हें पुनः धोकर धारण करें, क्योंकि धोबी के धोये वस्त्र अशुद्ध माने जाते हैं।

रजकैः क्षालितं वस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः।
हस्तप्रक्षालनेनैव पुनर्वस्त्रं च शुद्ध्यति॥

(पद्मपुराण सृष्टि खण्ड ५१/५३)

प्रात:काल बिना जलपान किये नित्य नियमपूर्वक लक्ष्मीनारायण का अर्घ्य-पाद्यादि से षोडशोपचार पूजन करें। उनके मन्त्र का एक सहस्र या अष्टोत्तरशत जप करें। निवेदित हवि से प्रतिदिन अग्नि में उसी मन्त्र से १२ आहुतियाँ दें। फिर मूलोक्त स्तोत्र द्वारा भक्तिपूर्वक लक्ष्मीनारायण का स्तवन करें। अपने अभीष्ट का चिन्तन करती हुई स्त्री बारम्बार उन्हें प्रणाम करें। यदि कदाचित् पत्नी अस्पृश्य अथवा अशक्त हो जायँ तो उसका पति नियमपूर्वक इस व्रत का पालन करें। पति और पत्नी में से किसी के द्वारा भी किया गया यह व्रत दोनों का माना जाता है। व्रत के लिए पत्नी जो सामग्री मँगायें उसे पति प्रेमपूर्वक ला दें। वे आपस में झगड़ा न करें। पूजन के बाद प्रतिदिन दोनों प्रेम से भगवान् का प्रसाद ग्रहण करें। इस प्रकार बारह मास बिताकर कार्तिक मास के अन्तिम दिन अर्थात् मार्गशीर्ष की अमावस्या को व्रत का उद्यापन करें। पूर्ववत् प्रात:काल उठकर भगवान् का पूजन करें। मन्त्र का जप करें। गोदुग्ध की खीर बनाकर उससे अग्नि में १२ आहुतियाँ दें। पश्चात् १२ ब्राह्मणों को नाना व्यञ्जन सहित खीर का यथेष्ट भोजन करायें और तिलगुड़ सहित जलपूर्ण घटों का दान करें। साथ में उचित दक्षिणा भी दें। आचार्य ब्राह्मणों के साथ आहुतियों से बची खीर पत्नी को खाने के लिए दें और सत्पुत्र होने का हृदय से आशीर्वाद दें। तब दम्पत्ति ब्राह्मणों की परिक्रमा कर दरवाजे के बाहर तक उनको पहुँचा कर घर लौट आयें। अनन्तर सब मिल कर प्रेम से अमृतान्न का भोजन करें।

शुकदेव जी कहते हैं—राजन्! इस व्रत के अनुष्ठान से मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त करता है। स्त्री को पुत्र, धन, यश, सौभाग्य तथा सुन्दर भवन प्राप्त होता है एवं उसका पति चिरायु होता है। कन्या सुन्दर पति, विधवा सद्गति, कुरूपा सुन्दर रूप तथा अभागिनी सौभाग्य प्राप्त करती हैं।

एतच्चरित्वा विधिवद् व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह।
स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम्॥२५॥

जो मनुष्य श्राद्धादि कर्मों में इस प्रकरण का पाठ करता है उसके पितरों तथा देवताओं को अनन्तकालिक तृप्ति होती है। मैंने इस प्रकार तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मरुद्गणों के माङ्गलिक जन्म की कथा तथा दिति द्वारा किये गये श्रेष्ठ पुंसवन व्रत का विधान वर्णन किया—

राजन् महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते॥२८॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के षष्ठस्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥

(षष्ठ स्कन्ध समाप्त)

❖

सप्तम-स्कन्ध प्रारम्भ

(इस स्कन्ध में १५ अध्याय हैं और पुराण के पाँचवें लक्षण ऊति (वासना[1]) का वर्णन है।)

(प्रारम्भिक दस अध्यायों में भक्ति और ज्ञानयोग का तथा ११वें अध्याय से १५ तक कर्मयोग का वर्णन किया गया है।)

पहला अध्याय

नारद-युधिष्ठिर-संवाद तथा जयविजय के तीन जन्मों का वृत्तान्त

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे मुनिवर! आपने पहले यह बताया है कि भगवान् विष्णु ने इन्द्र का पक्ष लेकर दैत्यों का संहार किया, ऐसा क्यों?

समः प्रियः सुहृद् ब्रह्मन्भूतानां भगवान् स्वयम्।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद् विषमो यथा ॥१॥

भगवान् की तो सब प्राणियों पर समदृष्टि है। वे सब के प्रिय एवं निरपेक्ष हितकारी हैं। उन्होंने इन्द्र का पक्ष लेकर दैत्यों का वध क्यों किया? उनकी दैत्यों पर विषमदृष्टि कैसे हुई? हे महाभाग! मुझे भगवान् श्रीनारायण के गुणों के प्रति जो यह सन्देह हुआ है कृपा कर इसे निवृत्त करें। शुकदेव जी बोले—हे राजन्! आपका प्रश्न तो बहुत अच्छा है। इससे भगवान् का मङ्गलमय अद्भुत चरित्र प्रकट होगा जिसका नारद आदि मुनियों ने गान किया है। भगवान् नारायण निर्गुण एवं प्रकृति से परे हैं। उनका गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी वे लीलार्थ प्रकृति के गुणों का आश्रय लेकर देव तथा असुरों के परस्पर बाध्य-बाधकता के कारण बन जाते हैं अर्थात् कभी असुरों से देवताओं का पराजय तो कभी देवताओं से असुरों का पराजय होता है। देवताओं के पराजय में असुर बाधक तथा देवता बाध्य एवं असुरों के पराजय में देवता बाधक और असुर बाध्य हो जाते हैं। गुणों की ह्रास-वृद्धि एक साथ तो हो नहीं सकती। वह समय-समय पर होती है। तथापि सत्त्वगुण की वृद्धि के समय वे देवता और ऋषियों का बल बढ़ाकर दैत्यों का संहार करते हैं। रजोगुण एवं तमोगुण की वृद्धि के

---

[1] शुभवासना और अशुभवासना। प्रह्लाद की शुभ वासना तथा हिरण्यकशिपु की अशुभवासना।

समय दैत्यों तथा राक्षसों का बल बढ़ाया करते हैं। इस स्थिति में दैत्यों द्वारा देवता और ऋषि कष्ट का अनुभव करते हैं। वस्तुतः भगवान् की सर्वत्र ही समदृष्टि है। उनकी विषमदृष्टि का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस सन्दर्भ में एक प्राचीन इतिहास है, जिसे देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर को सुनाया था।

युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में भगवान् के परमद्वेषी शिशुपाल का भगवान् में ही लय एवं दन्तवक्त्र की भी योगिदुर्लभ उत्तमगति देखकर युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नारद जी से इसका रहस्य पूछा। नारद जी ने भरी सभा में कहा—राजन्! निन्दा-स्तुति या मान-अपमान ये सब तो शरीर के धर्म हैं और अज्ञान से कल्पित है। जिन्हें शरीर में अभिमान है उन्हीं को इनसे सुख या दुःख हुआ करता है। भगवान् तो सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद से शून्य आत्माराम अद्वितीय परमतत्त्व हैं। उनका शरीर चिन्मय है। वहाँ ऐसे भौतिक धर्मों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यद्यपि भगवान् में किसी प्रकार का दृष्टिवैषम्य नहीं है, फिर भी वह जीवों के कल्याणार्थ दण्ड का विधान किया करते हैं जिससे जीवों के पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है और वे नरक-यातना से मुक्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं। जैसे काम, क्रोध और भय से भगवान् में मन चला जाता है वैसे भक्ति से नहीं जाता, यह निश्चित है—

गोप्यः कामाद्भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥३०॥
कतमोऽपि न वेनः स्यात्पञ्चानां पुरुषं प्रति।
तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥३१॥

गोपियों ने कामवासना से कंस ने भय से, शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि राजाओं ने द्वेष से, यदुवंशियों ने पारिवारिक सम्बन्ध से, आप लोगों ने स्नेह से और हम लोगों ने भक्ति से अपना मन भगवान् में स्थित किया, किन्तु राजा वेन की इन पाँचों में से किसी में गणना न थी। भगवन्निन्दा के कारण उसे नरक प्राप्त हुआ, किन्तु महाराज पृथु के कारण उसका नरक से उद्धार हो गया। इससे तात्पर्य यही निकलता है कि जैसे भी हो किसी न किसी प्रकार से भगवान् में मन लगा देना चाहिए। यही जीवों का परम-पुरुषार्थ कहा गया है। नारद जी राजा युधिष्ठिर से कहते हैं—हे राजन्! आपके मौसेरे भाई शिशुपाल और दन्तवक्त्र—ये दोनों अन्य कोई नहीं भगवान् के पार्षद जय और विजय ही थे। सनकादि के शाप से ये राक्षस-योनि में उत्पन्न हुए थे और तीन जन्मों में मुक्त होकर भगवान् के ही धाम वैकुण्ठ को चले गये। दोनों की सद्गति आपने अपनी आँखों से देख ली। उनके रावण कुम्भकर्ण होने पर श्रीराम ने और हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु होने पर क्रमशः श्रीवराह भगवान् एवं श्रीनृसिंह भगवान् ने उनका वध कर उन्हें सद्गति प्रदान की। अपने भगवन्निष्ठ पुत्र के साथ द्वेष करना ही हिरण्यकशिपु के वध का कारण हुआ। युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्!

विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ।
ब्रूहि मे भगवन् येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥४७॥

हिरण्यकशिपु ने अपने प्रिय पुत्र प्रह्लाद से द्वेष क्यों किया और प्रह्लाद की भगवन्निष्ठा कैसे हुई? आप यह प्रकरण मुझे सुनाने की कृपा करें।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तमस्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त ।।

❖

दूसरा अध्याय

हिरण्याक्ष के वध से दुःखित परिवार को हिरण्यकशिपु द्वारा सान्त्वना-प्रदान

नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर!

भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ।
हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥१॥

वराह भगवान् के द्वारा भाई हिरण्याक्ष के मारे जाने पर हिरण्यकशिपु का शरीर मारे क्रोध और शोक के जलने लगा एवं आँखें लाल हो गयीं। वह दाँतों तले ओठ दबा, हाथ में त्रिशूल लेकर दैत्यों से बोला—अरे दैत्यों! मैं जो कहता हूँ—उसे ध्यान से सुनो और शीघ्र जाकर वैसा ही करो। इन्द्र आदि तुच्छ स्वार्थी देवताओं ने विष्णु द्वारा आज मेरे भाई को मरवा डाला है। मैं आज अपने त्रिशूल से उस मायावी का गला काटकर उसके रक्त द्वारा अपने भाई का तर्पण करूँगा तभी मेरे हृदय का दाह शान्त होगा। विष्णु के विनष्ट होने पर जड़कटे वृक्ष की डालियों की भाँति सब देवता अपने आप सूख जायेंगे। तुम लोग शीघ्र ही पृथ्वी पर जाकर जप, तप, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत और दान करने वालों को मार डालो।

यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः ।
तं तं जनपदं यात संदीपयत वृश्चत ॥१२॥

जहाँ-जहाँ ब्राह्मणों का समाज हो, वर्णाश्रम का प्रचार हो, गोशालाएँ हो, वेद और पुराणों का प्रवचन होता हो एवं यज्ञ आदि क्रियाओं का अनुष्ठान चलता हो, उन देशों को आग लगाकर फूँक दो। आम्र, जम्बू आदि आजीविका के वृक्षों को काट डालो। इन सबके नाश से विष्णु का नाश स्वयं हो जायेगा, कारण ये ही सब विष्णु के मूल कहे जाते हैं। हिरण्यकशिपु का यह आदेश पाते ही सब दैत्य हाथों में नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर धार्मिक जनता पर टूट पड़े और बुरी तरह उसका संहार

करने लगे। उनके घरों में धड़ाधड़ आग लगने लगी। आजीविका के वृक्षों का नाश हो चला। चारों ओर से त्राहि-त्राहि की ही पुकार आने लगी। देवतागण भी स्वर्ग को छोड़कर जहाँ-तहाँ निकल भागे। चारों ओर बड़ा ही दारुण एवं करुण दृश्य उपस्थित हो गया। हिरण्यकशिपु ने इधर अपने भाई की अन्त्येष्टिक्रिया कर शकुनि, शम्बर आदि अपने भतीजों को सान्त्वना दी। फिर अपनी अनुजवधू रुषाभानु एवं माता दिति को समझाते हुए कहा—हे माँ! हे वधू! तुम सब मेरे वीर भाई का शोक मत करो। उसने संग्राम में वीरोचित उत्तम गति प्राप्त की है। संसार में प्राणियों का मिलन प्याऊ पर पानी पीने वालों के समान ही है। वे जैसे थोड़ी देर के लिए इकट्ठे होते हैं और पृथक् हो जाते हैं वैसे ही नाना योनियों में भ्रमण करते हुए इन जीवों का एक दूसरे से संयोग और वियोग होता रहता है। आत्मा तो वास्तव में नित्य, शुद्ध बुद्ध और अविनाशी है। उसका किसी से संयोग और वियोग होना सम्भव नहीं। इसलिए शोक करना व्यर्थ हैं।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥२७॥

इस विषय में विद्वान् पुरुष एक इतिहास कहते हैं, जिसमें यमराज और प्रेत-बन्धुओं का संवाद है, उसे सुनो। उशीनर देश में सुयज्ञ नाम का एक प्रतापी राजा था। उसे शत्रुओं ने युद्ध में मार डाला। रुधिर से लथपथ होकर वह पृथ्वी पर पड़ा था और उसका सारा परिवार उसे घेर कर बैठा था। उसकी स्त्रियाँ विलाप करती हाथों से अपनी छातियाँ कूट रही थीं। दैव को बारम्बार कोसती हुई वे पछाड़ खातीं, अपने मृतक पति से लिपट जाती थी। सूर्य-नारायण अस्त हो रहे थे फिर भी वे दाह-संस्कार के लिए उसे छोड़ती न थीं। बड़ा ही करुण दृश्य था। यह देख यमराज एक बालक का रूप धारण कर वहाँ आये और बोले—अरे! यह बड़े आश्चर्य की बात है। ये सभी मुझसे अवस्था में बड़े हैं और संसार की गतिविधि को जानते भी हैं कि जहाँ से यह जीव आया था वहीं लौटकर चला गया। एक दिन सभी को वहाँ जाना है, फिर भी ये व्यर्थ का शोक क्यों कर रहे हैं?

अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः।
अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥३८॥

इनसे तो हम ही अच्छे हैं। हमारे माता-पिता हमें छोड़कर चले गये, फिर भी हमें उनकी कोई चिन्ता नहीं। हम जङ्गल में पड़े रहते हैं। वहाँ हमें कोई जङ्गली जन्तु खाता भी नहीं। हमें विश्वास है कि जिसने गर्भ में रक्षा की वही अब भी हमारी रक्षा करेगा। ईश्वर का विधान तो कोई टाल सकता नहीं।

हे देवियों! जो अविनाशी परमात्मा है, वह इस जगत् को बनाता और बिगाड़ता रहता है। उसका यह खिलौना है। वही इस चराचर जगत् को मारने और बचाने में समर्थ है, इसमें अन्य किसी का वश नहीं चलता।

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥४०॥

देखा जाता है कि यदि भाग्य अनुकूल हो तो मार्ग में गिरी हुई भी अपनी कीमती वस्तु मिल जाती है, परन्तु भाग्य के प्रतिकूल होने पर तिजोरी के अन्दर रखी सुरक्षित वस्तु भी नष्ट हो जाती है। जंगल में पड़ा अनाथ प्राणी दैव की कृपादृष्टि से बच जाता है, किन्तु दैव की प्रतिकूलता से घर में सुरक्षित रहने पर भी मर जाता है। जैसे मनुष्य अपने मकान को अपने से पृथक् और मिट्टी का समझता है, वैसे ही यह शरीर भी मिट्टी का है। जीवात्मा इससे पृथक् है। वह रज्जु में सर्प-बुद्धि के समान मोहवश इसे अपना समझ बैठा है। जैसे जल के विकार बुद्बुद्-मिट्टी के विकार घट, शराब, सुवर्ण के विकार, कटक, कुण्डल आदि बनते-बिगड़ते रहते हैं वैसे ही रस, रक्त आदि सात धातुओं से रचित यह शरीर भी उत्पन्न और नष्ट होता है। इसके अन्दर रहने वाला अविनाशी जीवात्मा नित्य है, उसका विनाश नहीं होता। तुम्हीं बताओ रस, रक्त आदि सात धातुओं से रचित इस शरीर में तुम कौन-सी धातु हो? जैसे अग्नि काष्ठ में रहते हुए भी काष्ठ से पृथक् है, जैसे वायु शरीर में रहते हुए भी शरीर से पृथक् है और जैसे आकाश सर्वत्र रहते हुए भी सबसे पृथक् एवं निर्लिप्त है वैसे ही जीवात्मा सब योनियों में रहते हुए भी सबसे पृथक् एवं निर्लिप्त है। अरे मूर्खों! जिस राजा के लिए तुम शोक कर रहे हो वह तो तुम्हारे सामने ही पड़ा है। फिर शोक क्यों? इसके अन्दर सुनने और बोलने वाला जो जीवात्मा है, उसे तो तुमने पहले भी कभी नहीं देखा था। जो नहीं देखा था उसे अब कैसे देख सकोगे। विवेकी पुरुष नाशवान् शरीर का शोक नहीं करते। सुनो, किसी वन में पक्षियों का कालरूप एक व्याध रहता था। एक दिन उसने पक्षियों के एक जोड़े को इधर-उधर चारा चुगते देखा। उसने जाल लगाकर मादा को जाल में फँसा लिया। पक्षी उसे इस विपत्ति में पड़ा देखकर बड़ा दुःखी हुआ। वह बेचारा उसे छुड़ा तो न सका पर स्नेहवश तुम लोगों की तरह बड़ा ही करुण विलाप करने लगा, अन्त में उस व्याध ने एक बाण ऐसा तान कर मारा कि वह भी पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। अरी रानियों! तुम्हारी भी यही दशा होने वाली है। तुम्हें अपनी मृत्यु दिखाई नहीं देती? याद रक्खो तुम सब सौ वर्ष तक शोक करने पर भी उसे अब प्राप्त न कर सकोगी। हिरण्यकशिपु ने कहा—बन्धुओं! यह कहकर बालक-रूपधारी यमराज अन्तर्धान हो गये। उस बालक की ऐसी ज्ञानपूर्ण बातें सुनकर राजा का सारा परिवार चकित रह गया। उसने शोक का परित्याग कर राजा का दाह संस्कार किया। नारद जी ने कहा—राजन्! दिति ने अपने पुत्र के मुख से यह उपाख्यान सुनकर शोक का त्याग किया और स्वस्थचित्त से जगत् की नश्वरता का विचार कर शान्त हो गयी—

तत्त्वे चित्तमधारयत्।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तमस्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

❖

तीसरा अध्याय

हिरण्यकशिपु की कठोर तपस्या और ब्रह्मा से वर-प्राप्ति

नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर! मुझे कोई जीत न सके, मैं अजर और अमर रहूँ, मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो एवं मेरा एकछत्र राज्य हो, ऐसा संकल्प कर हिरण्यकशिपु मन्दराचल की कन्दरा में जाकर कठोर तप करने लगा। वह आकाश से दृष्टि लगाकर दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये पैर के अँगूठे के बल पृथ्वी पर खड़ा रहा—

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम्।
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥२॥

देवताओं ने जब यह सुना कि हिरण्यकशिपु तप कर रहा है तब वे पुनः अपने-अपने स्थानों पर लौट आये। इधर हिरण्यकशिपु के इस प्रकार करते-करते देवताओं के हजार वर्ष बीत गये। तप के प्रभाव से उसका जटामण्डल प्रलयकालीन सूर्य की किरणों के समान चमकने लगा था। उसके सिर से एक भीषण अग्निज्वाला निकल उठी, जिससे ऊपर, नीचे तथा चारों ओर के सब लोक तपने लगे। समुद्र में ज्वार-भाटा आ गया। द्वीप तथा पर्वतों के सहित पृथ्वी डगमगाने लगी। आकाश से तारे टूट-टूटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। दिशाओं में चारों ओर आग लग गयी। देवतागण उस ताप से व्याकुल हो स्वर्ग से ब्रह्मा जी के पास गये और हाथ जोड़ प्रार्थना करते हुए बोले—भगवन्! दैत्येन्द्र की तपस्या से हम सब लोग तप रहे हैं। उसकी लपटें स्वर्ग तक पहुँच गयी हैं। अब हम वहाँ रह नहीं सकते—

दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः ॥६॥

आप उस भीषण अग्नि को शान्त करने की कृपा करें। भगवन्! उसका संकल्प है कि मैं तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मा के समान ही पद प्राप्त करूँ। इसमें समय कितना ही क्यों न लगे, मुझे इसकी चिन्ता नहीं, क्योंकि काल और आत्मा दोनों नित्य हैं। मैं जगत् में उलट-फेरकर ऐसा परिवर्तन करूँगा जिससे सब दंग रह जायेंगे। मैं असुरों को यज्ञभाग दिलाऊँगा और देवताओं को अमृत के स्थान पर मद्य पिलाऊँगा। मेरे शासन-काल में पापी स्वर्ग सिधारेंगे और पुण्यात्मा नरक में जायेंगे। ऐसा निश्चयकर वह घोर तपकर रहा है। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं जैसा उचित समझें वैसा करें।

देवताओं के इस प्रकार प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने उन्हें आश्वासन दिया और भृगु तथा दक्ष आदि प्रजापतियों के साथ हिरण्यकशिपु के आश्रम पर गये। वहाँ जाने पर भी ब्रह्मा उसे देख न सके, क्योंकि घास, फूँस तथा दीमकों की मिट्टी से उसके शरीर पर बाँबी जम गयी थी। चीटियों ने उसका सारा शरीर खोखला कर डाला था। उसके प्राण केवल अस्थियों में अटके थे—

प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ।

यह देखकर ब्रह्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ और मुस्कराते हुए उससे बोले—बेटा हिरण्यकशिपु! उठो तुम्हारा कल्याण हो। कल्याण हो। तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गयी है। मैं तुम्हें वर देने आया हूँ, जो इच्छा हो मुझसे वर माँगों। यह कहकर ब्रह्मा ने उसके शरीर पर अपने कमण्डलु का दिव्य जल छिड़का जिससे वह काष्ठ के भीतर से अग्नि के समान तेजोमय रूप धारण कर बाँबी के बाहर निकल आंया। उसका यौवन चमक रहा था और उसके शरीर के अवयव वज्र के समान कठोर हो गये थे। उसने आकाश में हंस पर चढ़े हुए ब्रह्मा जी को देखकर दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर नौ श्लोकों से उनकी स्तुति की और कहा—हे भगवन्!

यदि दास्यस्यभिमतान् वरान्मे वरदोत्तम ।
भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ॥३५॥

यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो हे प्रभो! आपके द्वारा रचे गये किसी भी प्राणी से मेरी मृत्यु न हो। भीतर या बाहर, दिन या रात में, पृथ्वी पर या आकाश में, नरसे या मृग से, सुरसे या असुर से, शस्त्र से या अस्त्र से मेरी मृत्यु न हो। संसार में मेरा ही एकछत्र राज्य हो और सारी सिद्धियाँ मेरे समीप निवास करें। बस मैं यही अभीष्ट वर चाहता हूँ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तमस्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

चौथा अध्याय

(अध्याय ४ से १० तक भक्त प्रह्लाद का चरित्र)

हिरण्यकशिपु का अत्याचार और प्रह्लाद की भगवन्निष्ठा

नारद जी युधिष्ठिर से बोले—हे राजन्! हिरण्यकशिपु ने जब इस प्रकार के वर माँगे तब ब्रह्मा जी ने कहा—बेटा! पुरुषों के लिए यद्यपि ये वर दुर्लभ हैं फिर भी मैं तुम्हें देता हूँ। जाओ, तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। यह कहकर ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये और दैत्यराज अपने निवासस्थान पर लौट आया। वर पाकर उसका शरीर सुवर्ण के समान कान्तिमान् और हृष्ट-पुष्ट हो गया। वह इतना उन्मत्त था कि किसी को कुछ समझता न था। यहाँ तक कि अपने भाई के वध का स्मरण कर भगवान् से भी द्वेष करने लगा—

भगवत्यकरोद् द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥४॥

उसने सब लोकपालों को जीतकर उनके अधिकार छीन लिए। महेन्द्र के दिव्य भवनं तथा नन्दनवन पर भी उसका कब्जा हो गया। सम्पूर्ण ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ

उसके चरणों में लोटने लगीं। त्रिदेवों को छोड़कर सभी देवता हाथों में भेट ले लेकर उसकी सेवा में उपस्थित रहते थे। पृथ्वी के सातों द्वीपों में उसका अखण्ड राज्य था। पृथ्वी बिना जोते और बोये ही अन्न उत्पन्न करती थीं। स्वर्ग तथा अन्तरिक्ष के देवता उसे नाना वस्तुएँ प्रदान कर उसके मन को प्रसन्न करने की चेष्टा करते थे। समुद्र अपनी पत्नी नदियों के साथ अपनी लहरों के द्वारा उसे रत्नराशि भेंट करते थे। उसके शासन-काल में हर ऋतु में सब ऋतुओं के फल, पुष्प हुआ करते थे। वह सब लोकों का आधिपत्य अकेले ही किया करता था। सम्पूर्ण दिशाओं को जीतकर स्वच्छन्दता से विषयों का उपभोग करने पर भी उसकी तृप्ति नहीं हुयी। उस दुष्ट से देवता रात-दिन भयभीत रहा करते थे। उनके यज्ञभाग भी छीन कर वह स्वयं खा जाता था। उसके अत्याचारों से तीनों लोकों में त्राहि-त्राहि मच गयी थी। बेचारे देवता केवल वायु पी-पीकर रहा करते थे। उन्हें शान्ति से सोना भी कठिन हो गया था। ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त होकर वह शास्त्र-मर्यादा का भी उल्लंघन करता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। उसके उग्र शासन से पीड़ित होकर एक दिन सब देवताओं ने एकान्त में जाकर भगवान् की शरण ली। वहाँ अत्यन्त समाहित-चित्त से भगवान् को बारम्बार प्रणाम कर अपना दुःख निवेदन किया। उनका करुणक्रन्दन भगवान् के कानों तक पहुँच गया और देवगण के दुःख से भगवान् का हृदय द्रवीभूत हो गया। तत्काल देवताओं के समक्ष आकाशवाणी हुई—देवगण! मत डरो। हिरण्यकशिपु के अत्याचार से मैं भलीभाँति परिचित हूँ। मैं शीघ्र ही उसका प्रतीकार करूँगा। तुम लोग कुछ दिनों तक और प्रतीक्षा करो। घबड़ाओ नहीं। याद रक्खो—

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥२७॥

कोई भी प्राणी जब देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मुझसे द्वेष करने लगता है। तब उसका शीघ्र ही विनाश हो जाता है। जब हिरण्यकशिपु मेरे निर्वैर, शान्त, अनन्यभक्त प्रह्लाद से द्वेष करेगा तब मैं वरदान की शक्ति से परिपूर्ण होने पर भी उसे निश्चय ही मार डालूँगा।

हनिष्येऽपि वरोर्जितम्।

नारद जी कहते हैं—हे राजन्! यह कहकर आकाशवाणी बन्द हो गयी। देवतागण भगवान् को हृदय से प्रणाम कर अपने-अपने स्थानों को लौट आये एवं उन्होंने राक्षस को मरा ही समझा। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। उनमें प्रह्लाद सबसे छोटा था, पर गुणों में सबसे बड़ा था। वह बड़ा ही शीलसम्पन्न एवं भगवत्परायण था। सद्गुणों के भाजन उसको मान, प्रतिष्ठा अहंकार छू भी न पाया था।

नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ।
दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः सदा प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः ॥३३॥

आपत्तियों में भी उसका चित्त कभी उद्विग्न नहीं होता था। मिथ्या समझकर ऐहिक तथा पारलौकिक विषयों में भी उसकी स्पृहा नहीं थी। जितेन्द्रिय होने के कारण उसे कोई कामना भी न थी। उसमें असुर-भाव लेशमात्र भी न था। वह चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते हर समय, बड़ी लगन से भगवान् का ही चिन्तन किया करता। वह भगवान् के आवेश में कभी रोता, कभी हँसता, कभी नाचता, कभी गाता तो कभी समाधिस्थ हो जाता। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहा करती। उसे अपने शरीर की भी सुध-बुध नहीं रहती थी। दैत्यराज हिरण्यकशिपु अपने पुत्र की यह दशा देखकर बहुत चिन्तित हुआ और उसने उससे द्वेष करना आरम्भ कर दिया। युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्! पिता तो स्वभावतः पुत्रों से स्नेह करते हैं। यदि कदाचित् डाँटते-फटकारते भी हैं तो शिक्षा के लिए। शत्रु के समान विरोध नहीं करते। फिर ऐसे सुशील और ज्ञान-सम्पन्न पुत्र से पिता ने द्वेष क्यों किया? जो अन्त में उसकी मृत्यु का कारण हो गया—

पितुः पुत्राय यद् द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥४६॥

अतः कृपाकर आप इसका रहस्य बतावें।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

❖

पाँचवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लाद के वध का प्रयास

नारद जी बोले—हे राजन्! दैत्यों ने शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया था। उनके शण्ड और अमर्क नाम के दो पुत्र थे। वे राजभवन के समीप ही रहा करते थे। उनकी एक पाठशाला चलती थी। दैत्यराज ने अपने पुत्र प्रह्लाद को भी पढ़ने वहीं भेज दिया। अन्य राक्षसों के भी बालक वहीं पढ़ा करते थे। प्रह्लाद गुरु से जैसा पढ़ते वैसा ही गुरु को सुना देते थे, किन्तु गुरु की शिक्षा प्रह्लाद को भाती न थी। कारण वह शिक्षा भेदबुद्धि उत्पन्न करती थी। एक दिन दैत्यराज ने अपने पुत्र को गोद में बैठाकर पूछा—बेटा! संसार में तुम क्या अच्छा मानते हो उसे बताओ। प्रह्लाद जी बोले—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत् ॥५॥

पिताजी! संसार में स्त्री, पुत्रादि में अहन्ता-ममता कर जिनका चित्त सर्वदा उद्विग्न रहता है, ऐसे प्राणियों के लिए मैं यही अच्छा समझता हूँ कि वे अन्धकूप के समान

दु:ख देने वाले एवं जीवात्मा के पतन के कारणभूत गृहस्थाश्रम का परित्याग कर वन में चले जायँ और वहाँ प्रेम से भगवान् का भजन करें। पुत्र द्वारा अपने शत्रु की ऐसी प्रशंसा सुनकर दैत्यराज हँस पड़ा और बोला—मालूम पड़ता है कि किसी ने इसे बहका दिया है। दैत्यों! इसे गुरु के समीप पुनः ले जाओ उनसे कहो कि इसका पूरा ध्यान रखें जिससे कोई गुप्त शत्रु ब्राह्मणवेष में आकर इसे बहका न सके। दैत्यों ने उसकी आज्ञानुसार वैसा ही किया। गुरु-पुत्र प्रह्लाद को फिर पढ़ाने लगे। एक दिन उन्होंने पुचकार कर बड़ी मधुरवाणी से पूछा—बेटा प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो, सच-सच कहना, झूठ न बोलना। तुम्हारी बुद्धि में यह वैपरीत्य कैसे हुआ? तुम उत्तम कुल में जन्म लेकर शत्रु की स्तुति क्यों करते हो? क्या तुम्हें किसी ने बहकाया है? प्रह्लाद ने कहा—गुरुदेव सबकी बुद्धि के प्रेरक एकमात्र भगवान् ही हैं। जैसे चुम्बक के सामने लोहा खिच जाता है वैसे ही उन नीलमणि भगवान् के गुणों से मेरा चित्त आकृष्ट हो जाता है। मैं क्या करूँ? यह कहकर प्रह्लाद मौन हो गये। गुरु-पुत्र ने प्रह्लाद को डाँटते हुए अपने अन्य शिष्यों से कहा—अरे! कोई बेंत तो उठा लाओ। यह कुलाङ्गार अब बिना दण्ड के नहीं मानेगा। दैत्यवंशरूपी चन्दन वन में न जाने यह बबूर का वृक्ष कैसे पैदा हो गया? विष्णु दैत्यवंश का कुठाररूप है और यह उस कुठार में डण्डे का काम कर रहा है। इस प्रकार गुरु-पुत्र ने प्रह्लाद को डाँट-फटकार कर भयभीत किया और फिर वह उसे धर्म, अर्थ तथा कामसम्बन्धी शिक्षा देने लगे। कुछ दिनों के बाद राजनीति-सम्बन्धी ज्ञान होने पर प्रह्लाद को गुरु-पुत्र फिर दैत्यराज के समीप ले गये। प्रह्लाद ने पिता के चरणों पर सिर झुकाकर प्रणाम किया। दैत्यराज ने पुत्र को उठाकर गोद में बैठा लिया और उसका मस्तक सूँघकर प्यार से पूछा—बेटा प्रह्लाद! इतने दिनों में तुमने क्या उत्तम शिक्षा प्राप्त की? उसे सुनाओ। प्रह्लाद ने कहा—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥२३॥

पिताजी! भगवान् विष्णु की कथा का श्रवण, उनके मङ्गलमय नामों का कीर्तन, उनके स्वरूप का स्मरण, उनकी चरण-सेवा, उनके श्रीविग्रह का पूजन, उनको साष्टाङ्ग प्रणाम, उनके दासत्व की भावना, उनमें सखाभाव तथा आत्मसमर्पण यह नवधा भक्ति मनुष्यों द्वारा यदि भगवान् में की जाय तो मैं इसी को उत्तम अध्ययन मानता हूँ—

नवधा भक्ति में से किस किसने कौन-कौन भक्ति की? इसका उल्लेख इस प्रकार है—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां फलम् ॥

भगवान् की कथा के श्रवण में महाराज परीक्षित्, कीर्तन करने में श्रीशुकदेव जी, स्मरण करने में प्रह्लाद, चरणसेवा करने में लक्ष्मी, पूजन करने में महाराज पृथु, अभिवादन में अक्रूर, दासभाव में हनुमान्, सखाभाव में अर्जुन एवं त्रैलोक्य की सम्पत्ति तथा आत्मसमर्पण करने में राजा बलि प्रसिद्ध हुए। इन सबको भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्तिरूप परम फल प्राप्त हुआ। यह सुनते ही दैत्यराज क्रोध से आग-बबूला हो उठा उसके ओंठ फड़कने लगे और वह डाँटते हुए गुरु-पुत्र से बोला—अरे अधम ब्राह्मण! तूने मेरे वचनों की अवहेलना कर मेरे भोले-भाले बच्चे को यह क्या सिखा दिया है? तू अवश्य ही मेरे शत्रुओं से मिला जान पड़ता है। गुरु-पुत्र ने कहा—दैत्येन्द्र! मैंने इस बालक को यह कुछ भी नहीं सिखाया। इसकी यह बुद्धि स्वभाविक है। आप मुझे दोष न दें। दैत्यराज ने प्रह्लाद से पूछा—क्यों रे! तुझे यह विपरीत बुद्धि गुरु से नहीं मिली तो बता कहाँ से प्राप्त हुई? प्रह्लाद ने कहा—पिता जी! गुरु से, अपने प्रयत्न से या परस्पर एक दूसरे से श्रीकृष्ण में मति नहीं हो सकती, जब तक कि महात्माओं की श्रद्धा से सेवा न की जाय। मेरी तो गर्भावस्था में ही देवर्षि नारद की कृपा से भगवान् के चरणों में स्थिर मति हो गयी थी। प्रह्लाद यह कहकर मौन हो गये। इस पर दैत्यराज के क्रोध की सीमा न रही, उसने मारे क्रोध के प्रह्लाद को अपनी गोद से उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया और बोला—अरे दैत्यों! इसे बाहर ले जाकर जैसे भी हो शीघ्र मार डालो। अभी यह पाँच वर्ष का ही है। मेरा स्नेह त्यागकर मेरे शत्रु का गुणगान करता है। यह क्षमा के योग्य नहीं हैं। दैत्येन्द्र का आदेश पाते ही सब राक्षस मिलकर प्रह्लाद को शूल से, खड्ग से, भाले से, गड़ाँसे से और भी नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से मारने लगे, किन्तु आश्चर्य! प्रह्लाद के शरीर की तनिक भी त्वचा न कट सकी। इस घटना पर चकित दैत्यों से प्रह्लाद ने कहा—

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः।
दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्यायुधानि मे॥

(विष्णुपुराण १/१७/३३)

अरे दैत्यों! भगवान् विष्णु तुम्हारे शस्त्रों में, तुममें और मुझमें सर्वत्र स्थित हैं। इस सत्य के प्रभाव से तुम्हारे शस्त्रास्त्र मुझपर असर नहीं करते हैं। जब दैत्यराज ने उसे मारने के लिए उन्मत्त गजों को भेजा, जिन्होंने प्रह्लाद के वक्षस्थल पर अपने तीक्ष्ण दाँतों से प्रहार किया किन्तु भगवद्-ध्यान में निमग्न प्रह्लाद का स्पर्श करते ही उनके दाँत टूट-टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़े और वे सबके सब भयभीत होकर भाग खड़े हुए। पूछने पर प्रह्लाद ने कहा—

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः शीर्णा यदेते न बलं ममैतत्।
महाविपत्तापविनाशनोऽयं जनार्दनानुस्मरणानुभावः॥

(विष्णुपुराण १/१७/४४)

पिता जी! ये जो वज्र के समान कठोर गजों के दाँत टूट गये, यह मेरा बल नहीं है। बड़ी-बड़ी विपत्तियों का नाश करने वाला यह भगवान् के स्मरण का ही प्रभाव है। यह सुनकर अत्यन्त क्षुब्ध हो दैत्यराज ने सैकड़ों मन लकड़ी के ढेर में आग लगवाकर प्रह्लाद को उसी में फेंकवा दिया, किन्तु प्रह्लाद के गिरते ही अग्नि की ज्वाला शीतल हो गयी और प्रह्लाद उसमें बैठे अग्निरूप भगवान् का ध्यान करते रहे। तब पुनः प्रह्लाद ने कहा—

तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम्।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृनि शीतानि सर्वाणि दिशां मुखानि॥

(विष्णुपुराण १/१७/४७)

पिता जी! पवन से प्रेरित हुआ भी यह अग्नि मुझे जला नहीं रहा है, मुझको तो सभी दिशाएँ शीतल-सी मालूम हो रही हैं। मानों मेरे चारों ओर ठण्डे-ठण्डे कमल के पत्ते बिछें हों। इन घटनाओं पर दैत्यराज के कोप की सीमा न रही। उसने प्रह्लाद के वध के लिए अन्य भी बहुतेरे उपाय किये—पर्वत से गिराया, जल में डुबाया, विष खिलाया एवं मारण-प्रयोग कराया, किन्तु वे सबके सब प्रयोग विफल ही रहे। सौ योजन ऊँचे प्रासाद से तथा पर्वत से गिराने पर पृथ्वी ने प्रह्लाद को गोद में उठा लिया, जल में डुबाने पर जल स्थल हो गया। विष खिलाने पर विष अमृत हो गया एवं शस्त्रों से प्रहार करने पर वे पुष्पतुल्य हो गये। सचमुच यह ठीक कहा गया है।

अग्निश्च शीततां याति जलञ्च स्थलतां गतम्।
अस्त्राणि पुष्पभावं च हरेर्नामानुकीर्तनात्॥

अनन्तर दैत्यराज के पुरोहितों ने प्रह्लाद पर कृत्या का प्रयोग किया। अग्नि के समान प्रज्वलित त्रिशूल हाथ में लेकर वह प्रह्लाद की ओर दौड़ी और उनके वक्षःस्थल पर प्रहार किया। वक्षःस्थल के स्पर्शमात्र से त्रिशूल के सैकड़ों टुकड़े हो गये। जिस हृदय में भगवान् हरि विराजमान हों उसके स्पर्श से वज्र तक टूट सकता है; त्रिशूल की तो बात ही क्या? निरपराध बालक पर कृत्या का प्रयोग तनिक भी सफल नहीं हुआ।

बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वद् राजन् नृणां सन्नहनैर्युतानाम्।
दैवोपघाता न भवन्ति तद्वद् धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम्॥

(मत्स्यपुराण २/७/२९)

हे राजन्! कवच पहने हुए मनुष्यों पर जैसे बाणों के प्रहार असर नहीं करते वैसे ही शान्तिप्रिय धर्मात्मा पुरुष के शरीर पर दैहिक, दैविक तथा भौतिक किसी प्रकार का आघात असर नहीं करता। अनन्तर उस कृत्या ने उन पुरोहितों को जला डाला और स्वयं भी नष्ट हो गयी। पुरोहितों को जलते देखकर प्रह्लाद ने बड़े भक्ति-भाव से कहा—भगवन्! रक्षा कीजिए, बचाइये, बचाइये इस प्रकार भगवान् से प्रार्थना की और कहा—भगवन्! जो मुझे मारने आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने मुझे अग्नि में

जलाया, दिग्गजों से कुचलवाया, सर्पों से डँसाया, जल में डुबाया तथा पर्वतों से गिराया, उन सबके प्रति यदि मेरा प्रेमभाव रहा हो, समदृष्टि रही हो, कभी पापबुद्धि न हुई हो तो उस सत्य के प्रभाव से वे पुरोहिंत जीवित हो उठें ऐसा कहकर प्रह्लाद ने उनके शरीर का स्पर्श किया। स्पर्श करते ही वे सब ब्राह्मण जी उठे और सामने हाथ जोड़े प्रह्लाद को आशीर्वाद देते नेत्रों से अश्रु बहाते हुए बोले—

दीर्घायुरप्रतिहतो बलवीर्यसमन्वितः ।
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यैर्युक्तो वत्स भवोत्तमः ॥

(विष्णुपुराण १/१८/४५)

बेटा! तू बड़ा दयालु है, हमने तुझे मारने की पूर्ण चेष्टाएँ कीं, किन्तु तूने हमें प्राणदान दिया। धन्य तेरी सहिष्णुता। तू संसार में चिरायु होकर बल, वीर्य, पुत्र, पौत्र तथा धन ऐश्वर्य से युक्त हो जा। पुरोहितों ने यह समाचार दैत्यराज के समीप जाकर कहा। वह सुनते ही किंकर्तव्यविमूढ़ हो आश्चर्य-सागर में डूब गया। पुनः उसने प्रह्लाद को मारने के लिए कोई उपाय शेष न रखा। इतना सब होने पर भी प्रह्लाद को अपने पिता के प्रति पूर्ण भक्ति बनी रही। कारण वे उनमें भी भगवान् की हँसमुखी मूर्ति को देखते थे। भगवान् की लीलाओं में उन्हें बड़ा ही आनन्द मिलता था। वे मन में विचारते थे कि भगवान् एक रूप से मुझे कष्ट राशियों की ओर ले जाते हैं तो अन्य रूप से मेरी रक्षा कर एक अद्भुत क्रीड़ा-कौतूहल उपस्थित कर रहे हैं। दैत्यराज अपने पुत्र की इन चमत्कृतियों से घबरा गया। उसने विचारा कहीं इस निरपराध पुत्र को सताने से मेरी मृत्यु न हो जाय।

नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥४७॥

इस प्रकार वह घोर चिन्ता में मग्न हो गया। उसी समय गुरुपुत्रों ने आकर उसे समझाते हुए कहा—राजन्! आप चिन्ता न करें। आपने अकेले ही तीनों लोक जीत लिए हैं। आपके लिए यह चिन्ता का कारण नहीं होना चाहिए। बालकों के गुण-दोष पर इतना विचार करना उचित न होगा। जब तक हमारे गुरुदेव शुक्राचार्य नहीं आते, तब तक इसे वरुणपाश से बाँधे रखिये। हम एक बार फिर यत्न कर इसे राजोचित धर्मों का उपदेश करते हैं। हो सकता है कि समय से इसकी बुद्धि में कुछ परिवर्तन हो जाय। दैत्यराज ने गुरुपुत्रों की बात मान ली और पुनः प्रह्लाद को गुरुपुत्रों के समीप भेजने की आज्ञा दे दी। गुरुपुत्र घर के काम-काज से कहीं बाहर चले गये थे और लड़कों को खेलने का अवसर मिल गया था। वे प्रह्लाद को भी उसमें सम्मिलित करना चाहते थे। तब प्रह्लाद ने उन सबके बीच कुछ ज्ञानचर्चा आरम्भ कर दी, जिसमें वे सब भी क्रीड़ासामग्री का त्यागकर प्रह्लाद के चारों ओर आकर बैठ गये। अनन्तर परमभक्त दयालु प्रह्लाद ने उन बालकों को उपदेश देना आरम्भ किया—

तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥५७॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का तेरहवाँ विश्राम)

छठा अध्याय

प्रह्लाद द्वारा दैत्य-बालकों को भागवतधर्म का उपदेश

प्रह्लाद ने कहा—मेरे प्यारे मित्रों!

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥१॥

यह मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। भगवत्कृपा से ही यह तुम्हें मिला है। एक दिन यह नष्ट हो जायेगा। इसलिए कुमारावस्था से ही भागवत धर्मों का आचरण करना चाहिए, जिससे तुम्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो सके। विषयसम्बन्धी सुख तो सभी योनियों में प्राप्त होता है। उसके लिए यत्न करना उचित नहीं, क्योंकि उससे आयु व्यर्थ नष्ट होती है। जब तक शरीर स्वस्थ रहे तब तक भगवत्प्राप्ति के साधनों में ही लगा रहना चाहिए। शास्त्रों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष की कही गयी है। जिसमें आधी तो रात्रि में निद्रा के कारण बीत जाती है। बीस वर्ष खेलकूद में और बीस वर्ष वृद्धावस्था की अशक्तता के कारण व्यर्थ चले जाते हैं। शेष आयु कामवासना और मोहवश गृहस्थाश्रम में फँसकर नष्ट हो जाती है। जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं ऐसा कौन पुरुष है जो स्त्री-पुत्रादि के स्नेह-पाश से बद्ध अपने आत्मा को छुड़ाने में समर्थ हो सके। लोह तथा काष्ठ के बने पाशों से बद्ध पुरुष कथञ्चित् उनसे मुक्त हो सकता है, किन्तु स्त्री-पुरुषों के स्नेहरूपी पाशों से बद्ध पुरुष कभी भी मुक्त नहीं हो सकता—

लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते ।
पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन ॥

(गरुडपुराण /१६/४८)

अर्था ह्येते बहिश्चराः प्राणाः ।

इस श्रुति के अनुसार धन मनुष्य का बाहर विचरने वाला प्राण कहा गया है। इस धन की तृष्णा का त्याग भला कौन कर सकता है; जिसका संग्रह चोर, सैनिक तथा व्यापारी प्राणों की बाजी लगाकर करते हैं। कामी कभी कामवासना से स्त्रियों के मोह में फँसकर एकान्त में उनके साथ बैठकर हास-परिहास के मधुर वार्तालापों में रमा रहता है। कभी पुत्र-पुत्रियों के हो जाने पर उनके स्नेह में बँधकर उनकी मधुर तोतली वाणी में सदा उसका मन लुभाया रहता है। हर समय उसका ध्यान स्त्री और बालबच्चों में ही लगा रहता है। विषयवासना और जिह्वासुख की लालसा ही सदा बनी रहती है। उसके मोह का कभी भी अन्त नहीं होता, तब वह कैसे उनसे विरक्त होकर उनका त्याग कर सकेगा—

औपस्थ्यजैह्वयं बहु मन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ।।१३।।

कुटुम्बपोषण में ही उसकी सारी आयु बीत जाती है। दुःख पर दुःख सदा ही आते रहते हैं। उसे सुख-शान्ति का लेश भी कभी नहीं मिलता। फिर भी उसे वैराग्य नहीं होता। इस मार्ग में मूर्खों की तो बात ही क्या जो विद्वान् कहे जाते हैं उनकी भी यही दशा है।

विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन् स्वलोकाय न कल्पते वै ।
यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ।।१६।।

कुटुम्ब-पोषण के चक्र में फँसे हुए उनको भी आत्मज्ञान नहीं होता। क्योंकि उनका स्वकीय और परकीय भाव बना रहता है और वे मूर्खों के समान जन्म-जन्मान्तर में दुःख ही भोगते रहते हैं मुक्त नहीं होते। यह निश्चित है कि कुटुम्बासक्त कोई भी प्राणी कहीं भी किसी समय अपने आत्मा का इस विषयवासनारूपी दल-दल से उद्धार नहीं कर सकता, क्योंकि वह स्त्री का क्रीड़ामृग बन जाता है और उसके पैर पुत्र-पौत्र आदि बेड़ियों से जकड़े रहते हैं। इसलिए हे बन्धुओं! इन विषयी दैत्यों का संग दूर से छोड़कर तुम सब आनन्दकन्द भगवान् की शरण में जाओ, जहाँ तुम्हें पूर्ण शान्ति एवं परम आनन्द की प्राप्ति होगी। क्योंकि दुःखमय संसार से मोक्ष देने वाले एकमात्र नारायण ही हैं। भगवान् को प्रसन्न करने में अधिक परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं है। वे सर्वत्र सदा वर्तमान होते हुए भी भक्तों की पुकार सुनने के लिए उनकी अन्तरात्मा में सदा विराजमान हैं। अभागा मनुष्य बाहर उनके बगीचे को देखता है, उनको नहीं देखता।

आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन ।

बाल्यावस्था में विद्या का अभ्यास, युवावस्था में गार्हस्थ्य-सेवन तथा वृद्धावस्था में मोक्ष का उपाय करें, किन्तु धर्म का आचरण सर्वदा ही करना चाहिए—

बाल्ये विद्यां निषेवेत यौवने दारसंग्रहम् ।
स्थविरे मोक्षमातिष्ठेत् सर्वदा धर्ममाचरेत् ।।

मेरी कभी वृद्धावस्था न होगी, मैं कभी मरूँगा ही नहीं ऐसा विचार कर मनुष्य को विद्या तथा धन का उपार्जन करना चाहिए। किन्तु मृत्यु हर समय हमारी चोटी पकड़े खड़ी है, वह छोड़ेगी नहीं—इस भय से मनुष्य को सदा धर्म का आचरण करना चाहिए—

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।।

शरीर नश्वर है, धन तथा आयु भी स्थिर नहीं है और मृत्यु सिरपर सवार है ऐसा समझकर मनुष्य को धर्म का संग्रह करना चाहिए। हे बन्धुओं! इसलिए अब तुम असुर-भाव का त्याग कर सबके प्रति दया एवं मैत्री की भावना करो। इससे तुम लोगों पर

भगवान् की सहज ही अनुकम्पा एवं प्रसन्नता हो जायेगी। उनके प्रसन्न होने पर फिर संसार में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहेगा। हे मित्रों! यह ज्ञान मैंने पहले देवर्षि नारद से सुना था। उसे ही मैंने ज्यों का त्यों तुम लोगों को सुना दिया है। इस पर दैत्यबालकों ने कहा भैया प्रह्लाद! हमारे और तुम्हारे गुरु तो एक ही हैं। इनके अतिरिक्त हम लोग तो अन्य गुरु को जानते भी नहीं, फिर तुम्हारा निवास भी तो अन्तःपुर में हैं। ऐस दशा में देवर्षि नारदजी से तुम्हारा समागम कैसे हुआ? तुम ऐसी बात कहो—जिससे हमें विश्वास हो और हमारे संशय की निवृत्ति हो—

छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद् विश्रम्भकारणम् ॥३०॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तमस्कन्ध का छठा अध्याय समाप्त ।।

◆

सातवाँ अध्याय

मातृगर्भ में प्राप्त नारदोपदेश का प्रह्लाद द्वारा वर्णन

नारद जी कहते हैं—हे युधिष्ठिर! जब इस प्रकार दैत्य-बालकों ने प्रह्लाद से पूछा—तब वह मेरे उपदेश का स्मरण कर मुस्कराते हुए उनसे बोले—

एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ।
उवाच स्मयमानस्तान् स्मरन् मदनुभाषितम् ॥१॥

मित्रों! मेरे पिता हिरण्यकशिपु जब तपस्या करने मन्दराचल पर चले गये थे तब वहाँ कठोर तपस्या से उनके शरीर पर बाँबी जम गयी थी और उनका सारा शरीर चीटियों ने खोखला कर डाला था। इन्द्र आदि देवताओं ने यह देखकर बड़े उल्लास से दैत्यों पर चढ़ाई कर दी। दैत्यगण मारे भय के अपने प्राण लेकर इधर-उधर भाग गये। इन्द्र ने राजप्रासाद पर भी आक्रमण कर मेरी माता कयाधू को पकड़ लिया और उसे अपने स्थान पर बलात् ले चले। वह भयभीत हो कुररी पक्षी की भाँति विलाप करती इन्द्र के साथ जा रही थी। दैवयोग से मार्ग में देवर्षि नारद से उनकी भेंट हो गयी। नारद ने कहा—देवराज! तुम यह क्या कर रहे हो। इस निरपराध परायी पत्नी को कहाँ ले जा रहे हो? इसे तुरन्त छोड़ दो। इन्द्र ने कहा—भगवन्! इसके उदर में बड़ा प्रभावशाली गर्भ है। प्रसव होने पर उसे मार कर मैं छोड़ दूँगा। नारद ने कहा—देवराज! यह तुम क्या सोच रहे हो? इसके गर्भ में तो भगवान् का अनन्य भक्त है जो बड़ा बलवान् होगा। उसे तुम कदापि मार नहीं सकोगे—

त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥१०॥

यह सुनकर इन्द्र ने मेरी माता को छोड़ दिया और भक्ति से उसकी परिक्रमा कर स्वर्ग में चले गये। अनन्तर नारदजी मेरी माता को अपने आश्रम में ले आये और सान्त्वना देते हुए उन्होंने उससे कहा—पुत्रि! जब तक तेरे पति तपस्या से नहीं लौटते तब तक तुम यहीं आनन्द से निवास करो। मेरी माता उनके आज्ञानुसार निर्भर होकर

वहीं रहने लगी। वह बड़े भक्तिभाव से देवर्षि की सेवा करती थी। उसकी इच्छा थी कि पतिदेव के आने पर ही मेरा जन्म हो। परम दयालु देवर्षि नारद की कृपा से ऐसा ही हुआ। नारद जी ने मेरे ही उद्देश्य से उस समय मेरी माता को ज्ञान और भक्ति का जो उपदेश किया वह काल की अधिकता तथा स्त्रीस्वभाव के कारण उसे तो विस्मृत हो गया, किन्तु मुझे ज्यों का त्यों उसका स्मरण है। यदि तुम लोगों को मेरे वचनों पर श्रद्धा हो तो वह ज्ञान तुम्हें भी प्राप्त हो सकता है। सुनो, जन्म, स्थिति, वृद्धि, परिवर्तन, अपचय और विनाश ये छः विकार देह के ही माने गये हैं। आत्मा के नहीं। आत्मा तो नित्य, शुद्ध-बुद्ध और निर्विकार हैं, इसलिए नश्वर देह और स्त्रीपुत्रादि में अहन्ता और ममता का त्याग करना चाहिए। जैसे सुवर्णकार सुवर्ण की खान के पत्थरों में मिले सुवर्ण को कौशल से पृथक् कर लेता है वैसे ही विवेकी पुरुष योग द्वारा इस शरीर से आत्मा को पृथक् कर उसका बोध कर लेते हैं। यह शरीर २४ तत्त्वों का बना है। इसमें जीव और ईश्वर दोनों ही निवास करते हैं। जब गुरुकृपा से जीव को अन्तर्दीक्षा मिल जाती है तब वह अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को खोजने लगता है और साधना से धीरे-धीरे नेति-नेति द्वारा जड़वर्ग का त्यागकर चेतन आत्मा को प्राप्त कर लेता है—

अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥२३॥

मणियों में सूत्र की तरह वह इस शरीर में समन्वित है। एक-एक मणि से सूत्र की तरह वह इस शरीर से पृथक् भी है, आत्मा इस शरीर का अध्यक्ष है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये बुद्धि की तीन वृत्तियाँ हैं। इन वृत्तियों का जिसके द्वारा अनुभव होता है वही सबका साक्षी परमात्मा है। जब तक जीव को इस परमात्मा का ज्ञान नहीं होता तब तक उसका संसार निवृत्त नहीं हो सकता। यह संसार प्रकृति से होता है एवं गुण और कर्मों के द्वारा जीव का बन्धन करता है। यह अज्ञानमूलक होने से स्वप्न के समान मिथ्या है—

अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥२७॥

अतएव तुमको इस अज्ञान के नाश का उपाय करना चाहिए। उसका सबसे उत्तम उपाय भगवान् की भक्ति कही गयी है, जो गुरुशुश्रूषा, कथाश्रवण और भगवन्नाम-कीर्तन आदि से प्राप्त होती है। निरन्तर भगवच्चरित्र के श्रवण से भक्त के अन्तःकरण का मल धुल जाता है, नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है एवं भक्त आवेश में आकर कभी गाता है, कभी नाचता है और कभी रोता है। ऐसा अवस्था में उसका बन्धनभूत अज्ञान नष्ट हो जाता है और वह शीघ्र ही भगवान् को प्राप्त कर लेता है।

अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ।
तद् ब्रह्म निर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥३७॥

बन्धुओं! विद्वान् पुरुष भगवत्प्राप्ति को ही मोक्षसुख कहते हैं, जिससे बद्धजीव का आवागमन मिट जाता है। इसलिए तुम लोग हृदय से उस अन्तर्यामी भगवान् का भजन करो। किसी को भी शरीर, मन और वाणी से कष्ट न पहुँचाओ।

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः ।
सर्वेऽर्थकामाः क्षणभंगुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत्प्रियं चलाः ॥३९॥

भाइयों! धन, स्त्री, पशु, पुत्र, पुत्रियाँ, भवन, भूमि, हाथी आदि खजाना तथा और भी नाना प्रकार की विभूतियाँ कहाँ तक कहें संसार के सभी अभिलषित पदार्थ नश्वर हैं। ये भला क्षणभङ्गुर आयुवाले मनुष्यों को क्या सुख दे सकते हैं। भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण, देवता ऋषि या बहुज्ञ होना आवश्यक नहीं। वह तो केवल भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं और सब विडम्बनामात्र है। सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य जिसने भगवान् के चरणकमल का सेवन किया, वह परम कल्याण का भाजन बन गया।

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥५५॥

इस संसार में मनुष्य जीवन का यही परम पुरुषार्थ है कि वह गोविन्द भगवान् की अनन्यभाव से भक्ति और सब अवस्थाओं में उन्हीं का चिन्तन करता रहे। भगवान् गोविन्द की भक्ति से क्या-क्या अलभ्य लाभ होते हैं, उनका तीन श्लोकों से वर्णन किया जाता है, उसे ध्यान से सुने—

कुर्वन्ति शान्तिं विबुधाः प्रहृष्टाः क्षेमं प्रकुर्वन्ति पितामहाद्याः ।
स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्रमुख्या गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ॥
शुभा ग्रहा भूतपिशाचयुक्ता ब्रह्मादयो देवगणाः प्रसन्नाः ।
लक्ष्मीः स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ॥
गङ्गागयानैमिषपुष्कराणि काशी प्रयागः कुरुजाङ्गलानि ।
तिष्ठन्ति देहे कृतभक्तिपूर्वं गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड १२९/१५-१७)

गोविन्द भगवान् की भक्ति करने वाले मनुष्यों पर देवता प्रसन्न होकर शान्ति प्रदान करते हैं, पितामह आदि उनके योगक्षेम की व्यवस्था करते हैं, ऋषि, मुनि और महात्मा स्वस्ति कहकर उन्हें आशीर्वाद देते हैं।

अशुभ ग्रह शुभ फल देते हैं, भूत, प्रेत, पिशाच किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाते एवं ब्रह्मा आदि समस्त देवता उनपर प्रसन्न रहते हैं। चला लक्ष्मी उनके घर में अचल होकर निवास करती है। गङ्गा, गया, नैमिष, पुष्कर, काशी, प्रयाग आदि तीर्थ उनके शरीर में निवास करते हैं, एवं संसार में उन्हें कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। अतः तुम्हें गोविन्द भगवान् की भक्ति करनी चाहिए।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

❖

आठवाँ अध्याय

भक्तरक्षार्थ नृसिंह भगवान् का प्रादुर्भाव तथा हिरण्यकशिपु का वध

नारद जी ने कहा—हे युधिष्ठिर!

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम्।
जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥१॥

दैत्य-बालकों ने प्रह्लाद का उपदेश निर्दोष समझकर बड़े प्रेम से स्वीकार किया और गुरु की शिक्षा को सदोष जानकर ग्रहण नहीं किया। गुरुपुत्र जब बाहर से लौटकर पाठशाला में आये तो उन्होंने शिष्यों की बुद्धि में बड़ा परिवर्तन देखा। वे सबके सब नेत्र बन्दकर भगवान् के ध्यान में निमग्न थे। यह देख गुरु-पुत्र घबड़ा उठे। उन्होंने तुरन्त दैत्यराज के समीप जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। दैत्यराज यह सुनकर मारे क्रोध के आगबबूला हो उठा और उसका शरीर थर-थर काँपने लगा। उसने स्वयं पुत्र को मार डालने का दृढ़ संकल्प किया। उसी समय प्रह्लाद वहाँ आ पहुँचा। सामने हाथ जोड़कर विनीत भाव से खड़े उसे देखकर हिरण्यकशिपु ने कहा—

हे दुर्विनीत मन्दात्मन् कुलभेदकराधम।
स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाद्य यमक्षयम् ॥६॥

अरे नीच! मन्दबुद्धि! तूने मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर सारा कुल ही दूषित कर दिया। सीधे-साधे बालकों की भी बुद्धि बिगाड़ दी। आज मैं अभी तुझे यमलोक भेजता हूँ। मेरे साधारण से कोप पर सारे लोकपाल तो थर्रा जाते हैं, पर न मालूम तू किसके बल पर मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है? प्रह्लाद ने कहा—पिताजी! मुझे तो एकमात्र भगवान् विष्णु का बल है। वह केवल मेरे ही बल नहीं हैं, बड़े-बड़े बलवानों के भी वही बल हैं। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सभी चराचर प्राणी उन्हीं के वशवर्ती हैं। काल रूप से वही अपनी विविध शक्तियों से सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। आप ये दूषित असुरभावनाएँ त्याग कर समदृष्टि करें, तो फिर आपका संसार में कहीं भी कोई शत्रु न रहेगा। काम, क्रोध आदि छः शत्रुओं पर विजय किये बिना दिग्विजय नहीं होता। जो जगत् के अधीश्वर हैं, सर्वशक्तिमान् हैं एवं सर्वत्र विद्यमान हैं, उन्हीं का मुझे बल है। यह सुनकर दैत्यराज ने कहा—अरे नीच! तेरा काल अब सिर पर नाच रहा है। क्या कहूँ मेरे सामने भी तू ऊटपटांग बातें बकता है,

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥१३॥

अरे अभागे! मुझसे अन्य को जगत् का ईश्वर तूने बताया है वह कहाँ है? प्रह्लाद ने कहा—पिता जी, वह सर्वत्र है। दैत्यराज ने कहा—दिखा दे तू उसे इसी खम्भे में नहीं तो मैं अभी, तेरा सिर तलवार से अलग किये देता हूँ और देखूँगा कि किस प्रकार विष्णु तेरी रक्षा करता है। प्रह्लाद खम्भे में भगवान् की उग्र मूर्ति का दर्शन कर प्रणाम करते हुए बोले—मया तु दृश्यते।

पिताजी! मुझे तो इस खम्भे में भगवान् दिखाई पड़ रहे हैं। प्रह्लाद के ऐसा कहते ही हिरण्यकशिपु हाथ में खड्ग लेकर सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और उसने बड़े वेग से उस खम्भे पर एक घूसा मारा।

स्तम्भं तताडातिबलः स्वमुष्टिना ।

किन्तु, घूँसा मारते ही उस खम्भे से ऐसा भयानक शब्द हुआ मानो ब्रह्माण्ड ही फट पड़ा हो। सम्पूर्ण असुरसमुदाय इस ध्वनि पर भय से कम्पित हो उठा और वहाँ प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित हो गया। हिरण्यकशिपु शब्द करने वाले को खोजने लगा, किन्तु उसे कुछ दिखाई न पड़ा। थोड़ी ही देर में भगवान् अपने भक्त प्रह्लाद की वाणी तथा सर्वत्र अपनी व्यापकता सत्य करने के लिए उस खम्भे से अद्‌भुत रूप धारण कर प्रकट हुए। उनका रूप न पूरा सिंह का था एवं और न नर का। उनकी भृकुटी चढ़ी थी। नेत्र क्रोध से लाल थे। जिह्वा लपलपा रही थी। कान खड़े थे। मुख गुफा के समान फैला हुआ था। शरीर आकाश को छू रहा था चारों ओर सैकड़ों भुजाएँ फैली थीं। उनमें बड़े-बड़े नख आयुध से प्रतीत हो रहे थे। दैत्यराज ऐसी विकराल आकृति देखकर घबड़ा उठा और सोचने लगा अरे न तो यह सिंह है न नर ही। यह विलक्षण मिला-जुला रूप क्या है?

नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥१९॥

कहीं मायावी विष्णु ने मेरे वध के लिए तो यह ढंग नहीं रचा है—

वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥

मेरा यह क्या कर सकता है? इस प्रकार साहस कर सिंहगर्जना करता हुआ वह गदा लेकर बड़े वेग से नृसिंह पर झपटा। भगवान् ने भी जैसे लपट कर उसे पकड़ना चाहा पर वह तुरन्त हाथ से निकल भागा। देवताओं को यह अच्छा न लगा। पुनः वह हाथ में ढाल-तलवार लेकर ज्यों ही सामने आया भगवान् ने गर्जना कर उसे दबोच लिया और अपनी जाँघों पर गिराकर नखों से उसका उदर विदीर्ण कर डाला। अनन्तर उसके पेट की अँतड़ियाँ निकालकर माला की तरह गले में पहन लीं। इधर हजारों की संख्या में हिरण्यकशिपु के जो अनुचर शस्त्र लेकर प्रहारार्थ दौड़े थे, उन्हें भगवान् ने अपनी भुजाओं से, लातों से तथा नखरूपी शस्त्रों से मार काटकर पृथ्वी पर सुला दिया। भगवान् नृसिंह का कोप देखकर सभी थर्राकर भाग गये। कोई लड़ने वाला वहाँ शेष

नहीं रहा। उस समय भगवान् के नेत्रों की दीप्ति से सूर्य की कान्ति फीकी पड़ गयी। श्वास से समुद्र में ज्वार-भाटा आ गया। उनके सिंहनाद से भयभीत हुए दिग्गज चिंघाड़ने लगे। उनकी विकराल आकृति देखकर किसी को उनके समीप जाने का साहस नहीं हुआ। अनन्तर भगवान् एक सिंहासन पर जाकर विराजमान हुए और देवतागण आकाश से पुष्पवृष्टि करने लगे दुन्दुभियों की ध्वनि से आकाशमण्डल गूँज उठा और ब्रह्मा आदि देवताओं ने नृसिंह के क्रोध से घबड़ा कर कुछ दूर खड़े हो सुन्दर सत्रह पद्यों से पृथक्-पृथक् उनकी स्तुति की—

ब्रह्मादयो नृसिंहस्य शङ्कयाकुलचेतसः ।
आरादेवास्तुवन् सप्तदशश्लोकैः पृथक्-पृथक् ॥

(श्रीधरी)

फिर भी नृसिंह भगवान् का क्रोध शान्त नहीं हुआ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

नवाँ अध्याय

प्रह्लादद्वारा नृसिंह भगवान् की स्तुति

नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर! भगवान् नृसिंह उस समय इतने क्रुद्ध थे कि उनके समीप जाने का किसी देवता को साहस नहीं हुआ। अनन्तर सबने प्रार्थना कर लक्ष्मी जी को ही आगे भेजा, पर वे भी भगवान् का अद्भुत विकराल रूप देखकर बीच से ही लौट पड़ीं, उनके समीप न जा सकीं। क्योंकि उन्होंने ऐसा रूप न तो कभी देखा था और न सुना ही था[१]। तब ब्रह्मा ने अपने समीप खड़े प्रह्लाद से कहा—वत्स! तुम्हारे ही कारण भगवान् तुम्हारे पिता पर ऐसे कुपित हुए हैं। इसलिए अब तुम्हीं उनके समीप जाकर उनका क्रोध शान्त करो। प्रह्लाद ब्रह्मा जी की आज्ञा शिरोधार्य कर तुरन्त भगवान् के निकट जाकर उनके चरणों पर गिर पड़ा। चरणों पर पड़े अपने भक्त को देखकर भगवान् का हृदय द्रवीभूत हो उठा और उनका क्रोध जाता रहा। उन्होंने तुरन्त भक्त प्रह्लाद को उठाकर अपनी गोद में बैठा लिया और उसके मस्तक पर अपना वरदहस्त रखकर कहा—

---

[१] यद्यपि यह रूप पूर्वकल्प में लक्ष्मी जी ने देखा भी था और सुना भी था एवं वैकुण्ठ में तो सर्वदा ही उन्हें इस रूप का दर्शन होता है फिर भी भगवान् की लीलाशक्ति ने अदृष्ट और अश्रुत जैसी प्रतीति करा दी, जिससे जीवों को एक अद्भुत रसास्वाद की प्रतीति हो।

क्वेदं वपुः क्व च वयः सुकुमारमेतत्
क्वैताः प्रमत्तकृतदारुणयातनास्ते ।
आलोचितो हि विषयोऽयमभूतपूर्वः
क्षन्तव्यमङ्ग! यदि मे समये विलम्बः ॥

बेटा! कहाँ तेरा यह कोमल शरीर और सुकुमार अवस्था और कहाँ तेरे ऊपर इस क्रूर दैत्य द्वारा की गयी यातनाएँ? अहो ऐसा करुण दृश्य पहले मैंने कभी नहीं देखा। वत्स प्रह्लाद! यदि मेरे आने में कुछ विलम्ब हुआ हो, तो मुझे क्षमा करना। यह कहकर भगवान् ने प्रह्लाद को हृदय से लगा लिया और उसको प्यार करने लगे। भगवान् का ऐसा अनुपम प्यार देखकर प्रह्लाद का हृदय आनन्द से भर गया। नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी और सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया—

स्वस्मिन्निव समस्तेषु तत्कृपामृतदृष्टये ।
प्रह्लादः स्तौति सत्पद्यैर्द्विचत्वारिंशता हरिम् ॥
(श्रीधरी)

मेरी तरह सभी जीवों पर भगवान् की अमृतमयी कृपादृष्टि हो, इसलिए भक्त-प्रवर प्रह्लाद भावपूर्ण सुन्दर ४२ वसन्ततिलका पद्यों से भगवान् की स्तुति करते हैं—

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः
सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः
किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥८॥

परम सात्त्विक ब्रह्मा आदि देवता, मुनिगण तथा सिद्धेश्वर नाना स्तोत्र तथा नाना गुणों से जिनको प्रसन्न करने में समर्थ न हो सके, उन भगवान् को असुरजाति में उत्पन्न मैं कैसे प्रसन्न कर सकता हूँ। धन, रूप, तप, विद्या, बल, पौरुष आदि गुण परमपुरुष आपको प्रसन्न करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं; आप तो केवल भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। इसके उदाहरण व्याध, ध्रुव, गजेन्द्र, कुब्जा आदि बहुत से विद्यमान हैं।

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम् ।
कुब्जायाः किमु तत्र रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं परमया भक्तिप्रियो माधवः ॥

व्याध का आचरण, ध्रुव की अवस्था, गजेन्द्र की विद्या क्या थी? कुछ नहीं। विदुर की जाति, उग्रसेन का पुरुषार्थ, कुब्जा का रूप, सुदामा का धन क्या था? कुछ नहीं। फिर भी आप केवल उनकी परमभक्ति से प्रसन्न हुए, आपको भक्ति ही प्रिय है।

श्री शङ्कराचार्य ने भी इस भाव को व्यक्त करते हुए कहा—

शरीरं सुरूपं सुमित्रं कलत्रं धनं मेरुतुल्यं वचश्चारु चित्रम्।
हरेरङ्घ्रियुग्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

यदि सुन्दर शरीर हो, सुशील पत्नी हो, मेरुतुल्य विपुल धन हो एवं वचन भी श्लेष आदि अलङ्कारों से विभूषित हो, किन्तु भगवान् के चरणकमलों में यदि चित्त संलग्न नहीं हुआ तो सब व्यर्थ है।

हे नाथ! आप सर्वानन्द परिपूर्ण तथा निरपेक्ष हैं। किसी से कुछ चाहते नहीं। फिर भी भक्तजन श्रद्धा-भक्ति से जो भी पत्र, पुष्प, फल, जल आपको समर्पण करते हैं उसे आप प्रेम से ग्रहण करते हैं और कई गुना अधिक कर प्रसादरूप से पुनः भक्तों को लौटा देते हैं।

हे विभो! मृगतृष्णा के समान मिथ्या, केवल इन्द्रियों को सुख देने वाले कहाँ ये विषयभोग और कहाँ नाना रोगों का उत्पत्तिस्थान यह शरीर? यह जानते हुए भी मनुष्य को वैराग्य नहीं होता और वह धधकती हुई कामाग्नि को घृतबिन्दु तुल्य सुखलेशों से शान्त करना चाहता है, किन्तु हे नाथ! इससे उसका शान्त होना असंभव है।

हे वैकुण्ठनाथ! यह मन आपकी कथा में नहीं लगता, निरन्तर पाप कर्म में निरत रहता है, कामवासना से जकड़ा हुआ है एवं शोक, मोह भय तथा तृष्णाओं से व्याकुल है। ऐसे मन से मैं आपके स्वरूप का चिन्तन कैसे करूँ?

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥४०॥

हे अच्युत! मैं अपनी दशा का क्या वर्णन करूँ? तृप्त न होने वाली यह जिह्वा स्वादिष्ट रसों की ओर मुझे खींचती है। जननेन्द्रिय मैथुन की ओर, त्वचा सुकोमल स्पर्श की ओर, उदर भोजन की ओर, कर्ण सुमधुर संगीत की ओर, नासिका सुगन्ध की ओर और नेत्र सुन्दर रूप की ओर मुझे खींचते हैं। कर्मेन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयों की ओर ले जाती हैं जैसे किसी एक पुरुष की बहुत सी पत्नियाँ रात्रि में उसे अपने-अपने यहाँ ले जाने के लिए चारों ओर से घसीटती हैं।

हे भगवन्! आपके इस विकराल रूप से सब लोग भयभीत हो रहे हैं। जिसके लिए आपने यह रूप धारण किया है वह दैत्येन्द्र तो मारा जा चुका है। अतः अब आप क्रोध को शान्त करें। मनुष्यों की भय निवृत्ति के लिए आपके इस रूप का स्मरण ही पर्याप्त होगा।

हे भगवन्! नमस्कार, स्तुतिरूपी कर्म, पूजन, सेवा, स्मरण तथा कथाश्रवण इस षडङ्ग सेवा के बिना मनुष्य भक्तियोग प्राप्त नहीं कर सकता अतः आप कृपा कर उसे अपना दास्यभाव प्रदान करें। यही मेरी आप से अन्तिम प्रार्थना है। मैं आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार भगवान् अपने भक्त की स्तुति से बड़े प्रसन्न हुए और उनका क्रोध शान्त हो गया। वे बोले—प्रिय वत्स! तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे वर माँग लो, मुझे प्रसन्न कर लेने पर फिर कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। भगवान् ने प्रह्लाद को नाना प्रकार की वस्तुओं का प्रलोभन दिया, किन्तु निष्काम भक्त होने के कारण वह भगवान् का मुख ही देखता रहा। उन्होंने किसी वस्तु की इच्छा प्रकट नहीं की।

नैच्छत्तानसुरोत्तमः ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

दसवाँ अध्याय

प्रह्लाद का राज्याभिषेक, भगवान् नृसिंह का अन्तर्धान और त्रिपुर-दहन

नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर! प्रह्लाद ने वरदानों को भक्ति में बाधक समझकर भगवान् से हँसते हुए कहा—हे भगवन्! आप वरों के प्रलोभन में मुझे न डाले। मैं सांसारिक भोगों से डर कर उनका त्याग करने की इच्छा से आपकी शरण में आया हूँ। मैं आपका निष्काम भक्त हूँ। आप मेरे अनन्य स्वामी हैं। स्वामी से किसी वस्तु की आशा रखकर जो स्वामी की सेवा करता है वह भृत्य नहीं, वणिक् व्यापारी है एवं जो स्वामी भृत्य से सेवा की इच्छा रखकर उसे कुछ देता है वह वस्तुतः स्वामी भी नहीं है, इसलिये यहाँ परस्पर लेन-देन का व्यवहार उचित नहीं, फिर भी यदि आप वर देना ही चाहते हों, तो मैं यही वर चाहता हूँ कि मेरे हृदय में सांसारिक भोगवासनाओं के अंकुर कभी न जमें—

कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥७॥

दूसरा वर मुझे यह दें कि मेरे पिता ने जो आपकी निन्दा की है, बहुत से दुर्वचन कहे हैं तथा मेरे ऊपर भी जो नाना प्रकार के अत्याचार किये गये हैं इन सब पापों से वे मुक्त हो जायँ। भगवान् ने कहा—वत्स प्रह्लाद! तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है। मेरे भक्त ऐहिक पारलौकिक कोई पदार्थ नहीं चाहते, क्योंकि वे निष्काम हैं। फिर भी तुम मेरी इच्छा से मन्वन्तरपर्यन्त अपने पिता के राज्य का उपभोग करो इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। राज्य करते हुए मेरी मङ्गलमयी कथा का श्रवण करना, हृदय में मेरा ध्यान करना एवं समस्त कर्म मेरे निमित्त करते हुए प्रारब्धकर्म का क्षय करना।

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा।
कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां विताय मामेस्यसि मुक्तबन्धः ॥१३॥

इस प्रकार भोग से पुण्य का और धर्माचरण से पाप का बन्धन त्याग कर यथा समय दिव्य शरीर प्राप्त कर सर्वदा के लिए तुम मेरे समीप आ जाओगे इससे संसार में मनुष्य ही क्या देवता भी तुम्हारी निर्मलकीर्ति का गान करेंगे। हे वत्स! तुम अपने पिता की चिन्ता न करो। वे तो अपनी तीन पीढ़ियों ब्रह्मा, मरीचि और कश्यप के साथ पवित्र हो गये हैं। यदि उनकी २१ पीढ़ियाँ भी होती तो वे भी सब मुक्त हो जातीं, क्योंकि उनके गृह में कुल को पवित्र करने वाला तुम्हारा जन्म हुआ है—

यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥१८॥

जहाँ-जहाँ मेरे समदर्शी भक्त निवास करते हैं, वे निकृष्ट कीकट आदि देश भी यदि हों तो पवित्र हो जाते हैं। यद्यपि तुम्हारे पिता सर्वांश में पवित्र हैं फिर भी लोकसंग्रहार्थ तुम अपने पिता की प्रेतक्रिया सम्पन्न करो। नारद जी ने कहा—हे राजन्! प्रह्लाद ने भगवान् की आज्ञा से अपने पिता की अन्त्येष्टिक्रिया सम्पन्न की। बाद में ब्राह्मणों ने उनका राज्याभिषेक किया। ब्रह्मा आदि देवताओं ने भगवान् नृसिंह को प्रसन्न जानकर पृथक-पृथक उनकी स्तुति की। अनन्तर भगवान् ने ब्रह्मा से कहा—ब्रह्मन्! स्वभावतः क्रूर दैत्यों को ऐसे वर देना सर्पों को दूध पिलाने के समान है। इससे स्वयं संकट में फँस जाना पड़ता है।

इस प्रकार भगवान् सबको आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गये। शुकदेव जी ने कहा—हे राजन्! तुमने जो यह पूछा था कि दानवों का लय भगवान् में कैसे हुआ? उसका कारण मैंने बताया। इस प्रकार भगवान् के पार्षद जय और विजय तीन जन्मों में शाप से मुक्त हो पुनः भगवद्धाम वैकुण्ठ में चले गये।

एतद् य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां
दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेत।
दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं
श्रुत्वानुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥४७॥

जो मनुष्य सावधान होकर आदिपुरुष भगवान् नृसिंह की यह अद्भुत लीला, हिरण्यकशिपु का वध तथा भक्तशिरोमणि प्रह्लाद का प्रभावशाली परमपावन चरित्र सुनता है या सुनाता है वह भगवान् के निर्भय लोक को प्राप्त करता है।

हे राजन्! प्राचीनकाल की बात है एक बार मय दानव ने भगवान् रुद्र की निर्मल कीर्ति नष्ट करने का प्रयत्न किया था, किन्तु भगवान् विष्णु ने उनके यश की रक्षा कर उसका विस्तार किया। युधिष्ठिर ने नारद जी से कहा—भगवन्! कृपाकर यह प्रसङ्ग भी हमें सुनायें।

नारद जी ने कहा—हे राजन्! एक समय युद्ध में देवताओं ने असुरों को जीत लिया। पराजित सब असुर मय दानव के समीप गये। उसने उन्हें सोने, चाँदी और लोहे के तीन पुर (विमान) बनाकर दिये जो युद्ध की सामग्री से परिपूर्ण थे। आकाश में उनका संचार कोई देख नहीं पाता था। असुरों के सेनापति उन्हीं में बैठकर तीनों लोकों का नाश करने लगे। इससे व्याकुल एवं भयभीत होकर देवतागण भगवान् रुद्र के समीप गये और सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। रुद्र ने एक भयंकर बाण उन पुरों पर छोड़ा जिससे असंख्य बाण पैदा हो गये और उनसे सब असुर मर-मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। मय दानव ने उन सब मृत असुरों को त्रिपुर के भीतर अपने बनाये अमृत के कुण्ड में डालकर जीवित कर लिया। इतना ही नहीं, इस नवजीवन में उन असुरों में विपुल बल का संचार हो गया और वे विमानों में चढ़कर पुनः युद्ध करने आ डटे। तब भगवान् विष्णु ने एक उपाय सोचा। ब्रह्मा को बछड़ा बनाकर स्वयं गौ बन गये। अवसर पाकर वह त्रिपुर के भीतर भी जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अमृतकुण्ड का सारा रस पी लिया। माया से मोहित असुर खड़े-खड़े देखते ही रह गये कोई निषेध न कर सका। मय दानव इस घटना पर किंकर्तव्यमूढ़ हो गया और उसने भयङ्कर युद्ध छेड़ दिया तब भगवान् रुद्र ने एक ऐसा दिव्य बाण छोड़ा जिससे त्रिपुर में आग लग गयी और सब असुर जल कर भस्म हो गये। इस पर आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी, गन्धर्व गान करने लगे। अप्सरायें नाचने लगीं, चारों ओर आनन्द छा गया और सब देवता भगवान् रुद्र की स्तुति करने लगे। हे राजन्! भगवान् विष्णु के ऐसे मङ्गलमय चरित्र असंख्य हैं। बताइये अब आप आगे क्या सुनना चाहते हैं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(प्रह्लाद-चरित्र समाप्त)

❖

(गत दस अध्यायों में ज्ञानयोग तथा भक्तियोग का वर्णन कर अब शेष पाँच अध्यायों में कर्मयोग का वर्णन करते हैं।)

ग्यारहवाँ अध्याय

वर्णधर्म और स्त्रीधर्म का वर्णन

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! सत्पुरुषों के समाज में प्रशंसित भक्तशिरोमणि प्रह्लाद का परम पावन चरित्र सुनकर युधिष्ठिर को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने पुनः नारद जी से पूंछा—भगवन्!

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ।
वर्णाश्रमाचारयुतं यत् पुमान् विन्दते परम् ।।२।।

अब मैं आपसे सनातनधर्म का स्वरूप जानना चाहता हूँ जिसमें वर्ण आश्रम और सदाचार का वर्णन है एवं जिसका पालन करने से मनुष्य सरलता से ज्ञान तथा भक्ति द्वारा परमपद प्राप्त करता है। आप साक्षात् ब्रह्मा जी के पुत्र हैं एवं तपस्या आदि में सबसे श्रेष्ठ हैं। आप सरीखे भगवत्परायण धर्म के गुप्त रहस्य को जैसा जानते हैं, वैसा दूसरा नहीं। नारद जी ने कहा—हे राजन्! धर्म के मूल साक्षात् नारायण हैं जो दक्षपुत्री मूर्ति में अपने अंश से अवतीर्ण होकर जगत् के कल्याणार्थं बदरिकाश्रम में तप कर रहे हैं, उन्हीं भगवान् को नमस्कार कर उनके मुख से सुने हुए सनातन धर्म का मैं वर्णन करता हूँ। भगवान् के निःश्वासभूत वेद धर्म के सर्वोपरि मूल हैं। वेद के बाद स्मृति, शील, सत्पुरुषों का आचार और मन की तुष्टि भी धर्म के मूल बताये गये हैं। मनुष्यमात्र के निम्नलिखित ३० साधारण धर्म हैं, जिनमें नवधाभक्ति भी सम्मिलित हैं—१. सत्य, २. दया, ३. एकादशीव्रत, ४. शौच, ५. तितिक्षा, ६. युक्तायुक्त-विचार, ७. शम, ८. दम, ९. अहिंसा, १०. ब्रह्मचर्य, ११. दान, १२. स्वाध्याय, १३. सरलता, १४. सन्तोष, १५. सत्सेवा, १६. सकाम कर्म से निवृत्ति, १७. निषिद्ध कर्मों का त्याग, १८. मौन, १९. आत्मविचार, २०. प्राणियों को अन्नदान और २१. उनमें भगवत्स्वरूप की भावना। ये मनुष्यमात्र के धर्म हैं। द्विज उन्हें कहते हैं जिनके गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त सम्पूर्ण वैदिक संस्कार होते हैं। ब्रह्मा ने गायत्री छन्द से ब्राह्मण त्रिष्टुप् से क्षत्रिय और जगती छन्द से वैश्य की सृष्टि हैं। शूद्र की सृष्टि किसी छन्द से नहीं की—

गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत् त्रिष्टुभा राजन्यं।
जगत्या वैश्यं न केनचिच्छूद्रम्॥

इसलिए उनके उपनयनसंस्कार का निषेध है।

विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा।
न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः॥

उसका केवल अमन्त्र विवाहमात्र संस्कार हो सकता है। संस्कार न होने के कारण ही वह द्विज नहीं कहा जाता। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन ही द्विज कहे जाते हैं। ब्राह्मण के छः कर्म हैं—यज्ञ, अध्ययन, दान, अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह। अन्त में तीन कर्म जीविकारूप हैं। प्रतिग्रह को छोड़कर क्षत्रिय के पाँच कर्म हैं। अध्यापन और याजन के दो उसके लिए आपत्कालीन कर्म कहे गये हैं। प्रजा के रक्षणार्थ ब्राह्मणातिरिक्त से कर लेना इसकी जीविका है। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, कुशीद आदि वैश्य की जीविका है। तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र का धर्म एवं जीविका है। ब्राह्मण की चार प्रकार की जीविकाएँ और भी हैं। कृषि आदि, अयाचित, यायावर (दैनिक धान्य की याचना) और शिलोञ्छवृत्ति। इन वृत्तियों में क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानी गयी है। पति की सेवा, पति के अनुकूल आचरण, पति के भाई-बन्धुओं का उचित सम्मान

और पति के नियमों का पालन—ये पतिव्रताओं के चार लक्षण एवं धर्म हैं। घर की सफाई, अनालस्य, सास-ससुर की सेवा, अन्य पुरुषों से बात न करना, पति की आज्ञा बिना कोई धार्मिक कार्य न करना और न किसी महात्मा के समीप जाना उनके कर्तव्य हैं।

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते॥२९॥

जो स्त्री हरि की भावना से अपने पति की सेवा करती है वह वैकुण्ठ में अपने पति के साथ लक्ष्मी के समान आनन्द प्राप्त करती है।

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्॥३५॥

ब्राह्मणत्वादि वर्ण के बोधक जो शम, दम आदि लक्षण बताये गये हैं, वे यदि दूसरे वर्ण में पाये जायँ तो उसका भी ब्राह्मणादि शब्द से व्यवहार किया जा सकता है। यह वाक्य प्रशंसापरक है। वह व्यक्ति ब्राह्मण के समान अपनी जाति में श्रेष्ठ माना जा सकता है। वह अपना पूजन आदि कराने का अधिकारी कथमपि नहीं हो सकता।

दूसरे शरीर की प्राप्ति के बिना धर्म सादृश्य से जो वर्णता कही गयी हैं वह केवल आदरपूर्वक है। उसका पूजन तथा विवादादि में उपयोग नहीं हो सकता।

देहान्तरं विना धर्मसादृश्येनापि वर्णता।
योच्यते सा न तद्वर्णपूजोद्वाहादिषु स्थिता॥

क्षत्रियादि वर्ण यदि ज्ञानवान्, गुणवान् कर्मनिष्ठ तथा बहुश्रुत भी हों तो भी वे ब्राह्मण के द्वारा प्रणाम के योग्य नहीं हैं—

नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन।
ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः॥

(शातातपस्मृति)

वस्तुतः जिसमें निम्नलिखित पाँच लक्षण हों वह यथार्थ ब्राह्मण है—

ब्रह्मवीर्यं ब्रह्मक्षेत्रं संस्कारा ब्रह्मसम्भवाः।
ब्राह्मणाचरणाद् ब्रह्मविद्याभिर्ब्राह्मणो भवेत्॥

ब्राह्मण पिता, ब्राह्मणी माता, वैदिक संस्कार और ब्राह्मणों का आचार जिसका हो तथा जो ब्रह्मविद्या का ज्ञाता हो वही ब्राह्मण है। इस मेरुतन्त्र तथा 'ब्राह्मण्यां ब्राह्मणः' इस श्रुति के अनुसार जन्म से ही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है, कर्म से कथमपि नहीं हो सकती। यदि कोई क्षत्रिय अपने को ब्राह्मण कहलाने का दावा रखता हो तो भी उसकी क्षत्रियत्व जाति नष्ट नहीं हो सकती।

इसके ज्वलन्त उदाहरण महातपस्वी विश्वामित्र हैं जो कठोर तपस्या से ब्राह्मण हुए। वशिष्ठ तथा ब्रह्मा जी ने भी उनके ब्राह्मणत्व का स्वीकृति दे दी, फिर भी वे उनके जन्मजात क्षत्रियत्व की निवृत्ति न कर सके। तब साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या? सब यही कहते हैं कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए। इसके यह सिद्ध हुआ कि जाति जन्म से होती है कर्म से नहीं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ के धर्म

नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर! मैंने तुम्हें सनातन धर्म के अन्तर्गत चार वर्णों में धर्म बताये। अब आश्रम-धर्म सुनो। आश्रम भी चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। प्रथम ब्रह्मचारी के धर्म सुनो—

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम्।
आचरन् दासवन्नीचो गुरौ सुदृढ़सौहृदः ॥१॥

ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होकर गुरु का हित करता हुआ नम्रतापूर्वक प्रेम से गुरुकुल में निवास करें। ब्रह्मचारी के दो भेद हैं—उपकुर्वाण और नैष्ठिक जिसका सावधिक ब्रह्मचर्य हो वह उपकुर्वाणत तथा जिसका निरवधिक अर्थात् आजन्म ब्रह्मचर्य हो वह नैष्ठिक कहलाता है। ब्रह्मचारी श्रद्धा भक्ति से गुरु की सेवा कर षडङ्ग वेद का अध्ययन करें, एदं त्रिकाल सन्ध्या कर गायत्री का यथा-शक्ति जप करें। जो नियमपूर्वक सन्ध्योपासना करते हैं वे निष्पाप होकर सीधे ब्रह्मलोक चले जाते हैं—

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥

गुरु जब पढ़ने को बुलायें तब सावधान होकर वेदाध्ययन करें। चञ्चलता न करें एवं पाठ के आदि और अन्त में सिर झुकाकर गुरु के चरणों में प्रणाम करें। मेखला, मृगचर्म, जटा दण्ड और कमण्डलु धारण करें। प्रातःकाल एवं सायंकाल भिक्षा लाकर गुरु को अर्पण करें। यदि वे आज्ञा दें तो भोजन करें अन्यथा उपवास करें। भिक्षार्थ गृहस्थों के घर में जाकर स्त्रियों से अधिक व्यवहार न करें। ब्रह्मचारी स्त्रियों की चर्चा न कभी सुने और न स्त्रियों के चित्र ही देखें। युवती गुरुपत्नी भी यदि वात्सल्य से तेल उबटन आदि लगाने को कहें तो उनसे न करायें।

नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान्।
सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥९॥

स्त्री अग्नि-स्वरूप और पुरुष घृत भरे घट के समान है, दोनों का संयोग होने पर पिघलना निश्चित है, इसलिए पिता भी पुत्री के साथ एकान्त में न बैठे। ब्रह्मचारी अपने शरीर का शृङ्गार कभी न करें। इस प्रकार ब्रह्मचारी गुरुकुल में निवास कर षडङ्ग वेद का अध्ययन समाप्त करें। अनन्तर गुरु को दक्षिणा देकर गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासाश्रम में प्रवेश करें अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर वहीं आश्रम में निवास करें। अब वानप्रस्थ के नियम सुनो। वानप्रस्थ आश्रम में अग्नि से पकाया, कच्चा अन्न अथवा कन्द-मूल, फल आदि भोजन करें। अग्नि की रक्षा के लिए पर्णकुटी या कन्दरा का आश्रय लें। हिम, वायु, अग्नि और वर्षा सहन करें। १२, ८, ४, २, या १ वर्ष जैसी शक्ति हो वन में निवास करें। जब वृद्धावस्थावश अथवा रोग से शरीर असमर्थ हो जाय तब खेचरीमुद्रा के द्वारा चन्द्रमण्डल से निःसृत अमृत का पान करता हुआ अनशन आदि करें। योगसूत्र में लिखा है—

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ।

इस क्रिया के अभ्यास से भूख-प्यास जनित व्याकुलता नहीं होती एवं बड़ी शान्ति मिलती है। अनन्तर योग द्वारा ही आकाश आदि कार्यों का करणों में लय करते हुए षट्चक्रों का भेदन करें। पृथ्वी का जल में, जल का तेज में, तेज का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का अहंकार में, अहंकार का महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व का प्रकृति में और प्रकृति का ब्रह्म में लय कर दें। इस प्रकार चक्रों का भेदन कर जब इच्छा हो शरीर का परित्याग कर ब्रह्मलोक में चला जाय। यह शास्त्रीय विधि है। कुछ लोग वृद्धावस्था में शरीर की असमर्थता या किसी दुःख के कारण जीवित अवस्था में जल समाधि का बहाना बनाकर जल में डूबकर प्राणत्याग करते हैं वे आत्महत्याजनित दोष के भागी होते हैं, अतः ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। जलसमाधि का तात्पर्य है नाभिपर्यन्त जल में बैठकर योगद्वारा प्राण और अपान को सम कर ऊर्ध्व गति द्वारा सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा' इसके अनुसार सुषुम्ना मार्ग से प्राणत्याग करें। यदि यह सामर्थ्य न हो तो मन्त्रजपपूर्वक भगवान् के स्वरूप का चिन्तन करता हुआ प्राणत्याग करें।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

तेरहवाँ अध्याय

संन्यासधर्म का वर्णन तथा अवधूत और प्रह्लाद का संवाद

नारद जी बोले—हे राजन्!

कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ।
ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ।।१।।

यदि मुनि वानप्रस्थ-नियमों के पालन तथा आत्मविद्या के अभ्यास में समर्थ हो तो पचहत्तर वर्ष पर्यन्त वन में निवास करें। बाद में संन्यास लेकर अकेला ही पृथ्वी पर भ्रमण करें। किसी ग्राम या नगर में एक रात्रि से अधिक निवास न करें। यदि शरीर रुग्ण न हो तो कौपीन से अतिरिक्त कोई वस्त्र धारण न करें। पहले से अनिश्चित सात घरों में भिक्षा करें और जो कुछ मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहें। प्रतिक्षण आत्मा और परमात्मा का विचार करें। बन्ध और मोक्ष को अज्ञानकल्पित जानकर सर्वत्र ब्रह्म की सत्ता देखें। साहित्य, ज्योतिष आदि ज्ञानानुपयोगी शास्त्रों का अध्ययन न करें। व्यर्थ के तर्क-वितर्क में समय न बितावें। शास्त्रार्थ में कोई पक्ष न लें।

न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान् नैवाभ्यसेद् बहून्।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित ॥८॥

शिष्य न बनायें, अधिक ग्रन्थोंका अभ्यास न करें और न उनकी व्याख्या करें। मठ बनाकर न रहे। संन्यासी काठ की बनी भी स्त्री का पैर से भी स्पर्श न करें। यदि स्पर्श ही करना हो तो संन्यास को व्यर्थ कलंकित न करें। हे राजन्! संन्यासधर्म का पालन इस युग में अत्यन्त कठिन है। इसलिए गृहास्थाश्रम में रहकर ही सुगम मार्ग से संन्यासियों की गति प्राप्त करने की चेष्टा करें। कलियुग में अनधिकारी कदापि संन्यास न लें। अन्यथा दोनों लोकों से भ्रष्ट होकर स्थावर योनि में उनका पतन सम्भव है। कारण कलियुग में अत्यन्त विरक्त के सिवा संन्यास का निषेध है।

याददूर्णविभागोऽस्ति यावद् गङ्गा महीतले।
अग्निहोत्रं च संन्यासं तावत्कुर्यात्कलौ युगे॥

जब तक वर्ण-विभाग है और पृथ्वी पर गंगा है तब तक अग्निहोत्र और संन्यास लिया जा सकता है। इस पर पूर्वाचार्यों ने बड़ा गम्भीर विचार कर यही निश्चित किया है कि यह वाक्य अत्यन्त विरक्तिपरक है। इसलिए अविरक्त इस कण्टकाकीर्ण मार्ग पर चलने का साहस न करें। क्योंकि इसमें उसके पतन की अधिक सम्भावना है। यह व्यास जी का डिण्डिम-घोष है। संन्यास की ही एक अवस्था और है जिसका नाम परमहंस है। यह उससे भी अधिक कठिन है। यह योगियों की सिद्धावस्था कही जाती है। इसमें उसे शरीर का भी भान न रहने से दण्ड आदि का त्याग स्वयं हो जाता है। इसमें योगी उन्मत्तवत् विचरा करता है। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास सुना है, जिसमें प्रह्लाद और अजगर मुनि का संवाद है। एक समय भक्तवर प्रह्लाद लोकतत्त्व की जिज्ञासा से कुछ मन्त्रियों के साथ भ्रमण कर रहे थे। एक स्थान पर उन्हें एक विलक्षण अवधूत दिखायी दिया। वह बड़ा हृष्ट-पुष्ट था और अजगर वृत्ति धारण कर प्रसन्नमुद्रा में पृथ्वी पर पड़ा था। उसके शरीर पर वर्ण या आश्रम का कोई चिह्न नहीं था। प्रह्लाद ने उसके चरणों में प्रणाम कर पूछा—भगवन्! संसार में उद्योगी और धनी पुरुष ही प्रायः हृष्ट-पुष्ट देखे जाते हैं। आपके पास न तो धन है और न आप कोई उद्योग ही करते हैं, फिर

भी आप तगड़े और प्रसन्न हैं। इसका कारण बताने की कृपा करें। अवधूत ने हँसकर कहा—राजन्! संसार में मनुष्य तृष्णावश ही नाना योनियों में भ्रमण करता है। वह सुख प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के कर्म करता है, किन्तु उनका फल दुःख होता है। वास्तविक सुख जीव को नहीं मिलता।

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ।
भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ।।३१।।

धनी पुरुषों को रात में निद्रा नहीं आती। उन्हें धन की चिन्ता रात-दिन सताती रहती हैं। वे सभी से शंकित रहा करते हैं। उन्हें राजा, चोर, शत्रु, पशु-पक्षी आदि सभी से भय बना रहता है, किन्तु मैं प्रारब्ध के बल पर मस्त पड़ा रहता हूँ। मुझे खाने-पीने की कुछ चिन्ता नहीं। मनुष्य चिन्ता से ही दुर्बल होता है। मैं कभी बहुत कभी थोड़ा कभी स्वादिष्ट, कभी नीरस जैसा भी अन्न मिल जाता है बड़े प्रेम से खा लेता हूँ। कभी श्रद्धा से, कभी अपमान से, कभी दिन में, कभी रात में जो कुछ मिल जाता है उसी में सन्तुष्ट रहता हूँ। रेशमी, सूती, चीर, वल्कल, मृगचर्म आदि जो भी मिल जाता है उसे पहन लेता हूँ। कभी मैं पृथ्वी, घास, फूस, पत्ते या भस्म की ढेरी पर रहता हूँ तो कभी दूसरों की इच्छा से राजमहल में बड़े-बड़े मसहरीदार पलङ्गों पर गद्दों और गलीचों में सोता हूँ। कभी स्नान कर तेल-फुलेल लगाकर सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा फूल मालाओं से सुसज्जित हो रथ, हाथी और घोड़े पर चढ़कर विचरता हूँ तो कभी बिलकुल नंग-धड़ंग होकर पिशाच के समान इधर-उधर घूमा करता हूँ। प्रत्येक प्राणी का स्वभाव भिन्न है, यह जानकर मैं किसी की निन्दा या स्तुति नहीं करता। केवल परमपिता परमेश्वर से सबका कल्याण मनाया करता हूँ। प्रकृति ही मेरे शरीर की रक्षा करती है। मैं सर्वत्र ही भगवान् की लीला का अनुभव करता हुआ परमानन्द में निमग्न रहता हूँ। मेरे शरीर में जो कोई चन्दन या इत्र लगाता है अथवा उस पर मिट्टी, धूल या गोबर फेंकता है; तो मैं दोनों को ही समानदृष्टि से देखता हूँ। कारण, भगवान् दोनों में विराजमान हैं। मैं संसार में भगवान् के अतिरिक्त किसी दूसरे को नहीं देखता और उसी आनन्दनिधि को प्राप्त कर परमानन्द में निमग्न रहता हूँ। हे राजन्!

स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ।
व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्परः ।।४५।।

मेरी यह आत्मगाथा अत्यन्त गुप्त है। यह लोक और शास्त्र से परे की वस्तु है। तुम भगवान् के कृपापात्र हो इसलिए मैंने तुमसे इसका वर्णन किया। नारदजी कहते हैं—हे राजन्! भक्तवर प्रह्लाद इस प्रकार परमहंस का उत्तम धर्म सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और अवधूत को प्रणाम कर अपने राजप्रासाद को लौट आये।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

चौदहवाँ अध्याय

चारों आश्रम-धर्मों में गृहस्थधर्म की महत्ता

युधिष्ठिर ने नारद जी से कहा—देवर्षे!

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा।
याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥१॥

आपने तीन ही आश्रमों के धर्मों का वर्णन किया। गृहस्थाश्रम के धर्मों का वर्णन नहीं किया। इससे मेरे मन में यह सन्देह हो रहा है क्या गृहस्थाश्रमी मोक्ष का अधिकारी नहीं है? कृपया ऐसा उपाय बतायें जिससे मुझ सरीखा गृहासक्त गृहस्थाश्रमी भी सरलता से संन्यासियों के समान मोक्ष का अधिकारी हो सके। नारद जी ने कहा—हे राजन्! गृहस्थाश्रम से बढ़कर संसार में कोई अन्य आश्रम नहीं है। अन्य सब आश्रम इसी के आश्रित हैं, क्योंकि यही सब आश्रमों का मूलस्तम्भ और जन्मदाता है। काम आदि शत्रुओं पर विजय पाने के लिए यही दुर्ग (किला) है। इसकी तुलना किसी अन्य आश्रम से नहीं की जा सकती। अन्य आश्रमों में तो मोक्ष का मार्ग अत्यन्त कण्टकाकीर्ण है। गृहस्थाश्रम में तो मोक्ष के मार्ग में मखमल के गलीचे बिछे हुए हैं। अब हम इस आश्रम की विशेषताओं का वर्णन करते हैं उन पर ध्यान दें। गृहस्थ पुरुष को चाहिए कि वह जो भी गृहसम्बन्धी धार्मिक क्रियाएँ करें—उन्हें भगवान् के प्रति अर्पण कर दें। भोजनसम्बन्धी जो भी क्रियायें हों वे भी भगवान् के ही निमित्त हों। ऐसा करने से कर्म बन्धन का हेतु नहीं होता। दैनिककृत्यों में से कुछ समय निकालकर ज्ञानी भक्तों का नित्य संग करें। प्रतिदिन उनके मुख से निःसृत पुराणसम्बन्धी कथाओं का श्रवण करें, जिससे हृदय में भगवान् के प्रति प्रेम का अंकुर पनपता रहे और स्त्री-पुत्रादि में वैराग्य की भावना जागृत हो जाय। जितने धन से अपने उदर की पूर्ति या परिवार का पोषण सुख से हो सके उतने ही धन की आकांक्षा करें। जो अधिक चाहता है वह दूसरे के अंश का अपहरण करता है। उसे यमलोक में चोर की सजा मिलती है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्त्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

प्रतिदिन नियमतः बलिवैश्वदेव करें। यदि बलिवैश्वदेव न कर सके तो भोजन के पहले ग्रो-ग्रास अवश्य निकाल दें। कभी भूलकर भी अतिथि का तिरस्कार न करें। उसे यथाशक्ति अवश्य कुछ दें। जो नहीं देता तो अतिथि उसका केवल पुण्य ही लेकर नहीं जाता वरन् अपना पाप भी उसे दे जाता है। याचक लोग माँगने नहीं आते बल्कि वे गृहस्थों को यह शिक्षा दिलाने आते हैं कि कुछ न कुछ अवश्य देते रहो जो नहीं देते उनकी ऐसी दुर्गति हुआ करती है। हमारी तरह उन्हें दर-दर सबके सामने हाथ फैलाना

पड़ता है। पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि जीवों पर पुत्र के समान दृष्टि रखकर उनका भी यथाशक्ति पालन करें। यथासमय अग्निहोत्र भी किया करें। विशेषतः ब्राह्मणों के मुख में समय-समय पर क्षीरान्न की आहुति देते रहें जिससे भगवान् को विशेष तृप्ति होती है। हे राजन्! वैशाख, कार्तिक तथा माघ की पूर्णिमा ये तीन तिथियाँ अनन्त पुण्य देनेवाली हैं, उन्हें स्नान तथा दान के बिना बिताना नहीं चाहिए।

वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽनन्तपुण्यदाः ।
स्नानदानविहीनास्ता न नेया पाण्डुनन्दन ।।

व्यतीपाद में यथाशक्ति कुछ दान तथा ब्राह्मण-भोजन करावें। हेमाद्रि में व्यतीपात योग का स्वरूप इस प्रकार वर्णित हैं—

पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद् यदि शुक्लपक्षे ।
मासाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ।।

सिंहराशि पर बृहस्पति और मङ्गल हों, मेष राशि पर सूर्य हों, शुक्लपक्ष में हस्त नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि हो तो व्यतीपात योग होता है।

अस्मिँस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः ।।

व्यतीपात योग में जो मनुष्य श्रद्धा भक्ति से गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र आदि का दान करता है उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। वह देवत्व को प्राप्त करता है, इन्द्र पद प्राप्त करता है फिर जन्म लेने पर राजा होता है और सदा निरोग बना रहता है। माता-पिता की तिथि पर विधिपूर्वक श्राद्ध करें। उसकी उपेक्षा कदापि न करें। आगे कही गयी तिथियों एवं पुण्यकाल का विशेष ध्यान रक्खे।

वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।
नभस्य मासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ।।
एता युगाद्याः कथिताः पुराणेष्वनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्रः ।
उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च त्रिस्वष्टकास्वप्ययनद्वये च ।।
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ।।

(विष्णुपुराण ३/१४/१२/१४)

अक्षयतृतीया, अक्षयनवमी, भाद्रकृष्णत्रयोदशी, मौनी अमावस्या, चन्द्र और सूर्य ग्रहण तीन अष्टका और दोनों अयनसंक्रान्तियों में जो मनुष्य केवल तिलमिश्रित जल पितरों के निमित्त दे देता है। उससे उसके पितरों का एक हजार वर्ष एक श्राद्ध हो जाता है। यह रहस्य स्वयं पितरों ने ही बतलाया है। एकादशी पर श्राद्ध न करें। उस दिन

श्राद्ध करने से दाता, भोक्ता और अनुमोदन करनेवाला ये तीनों नरकगामी होते हैं। इसलिए श्राद्ध द्वादशी के दिन करें अथवा वैसी (विद्धा) एकादशी को करें जो उपवास योग्य न हो, ऐसा ब्रह्मवैवर्त में लिखा है। पद्मपुराण और पुष्करखण्ड में भी यही व्यवस्था दी है—

ये कुर्वन्ति महीपाल श्राद्धमेकादशीदिने।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दाता भोक्ताऽनुमोदकः॥
(ब्रह्मवैवर्त)

एकादश्यां तु सम्प्राप्ते मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
द्वादश्यां तु प्रकर्तव्यं श्राद्धं नैकादशीदिने॥
(पद्मपुराण)

एकादश्यां यदा राम श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत्॥
(पुष्करखण्ड)

यह वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार कहा गया है। स्मार्तमत के अनुसार यदि उसी दिन करने का आग्रह हो तो श्राद्ध करते पितृशेष अन्न का अवघ्राणकर उसे गौ को खिला दें और स्वयं व्रत करें। उस दिनभोजन करने क़ा विधान नहीं है, ऐसा करने का यदि सामर्थ्य हो तो उस दिन श्राद्ध करें अन्यथा द्वादशी को करें।

एकादश्यामपि श्राद्धं प्राप्तं कुर्यान्न तत्त्यजेत्।
पितृशेषं समाघ्राय गवे दत्त्वा व्रतं चरेत्॥

श्राद्ध के सम्बन्ध में कुछ शङ्काएँ, उनका समाधान तथा तात्त्विक विचार

मृत प्राणियों के निमित्त श्राद्ध में जो ब्राह्मण-भोजन कराया जाता है अथवा उसके निमित्त अग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं वे दिये हुए पदार्थ उन्हें कैसे प्राप्त होते हैं और वे कैसे उनका उपभोग करते हैं? मत्स्यपुराण में इस शङ्का का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

यदि मर्त्यो द्विजो भुङ्क्ते हूयते यदि वाऽनले।
शुभाशुभात्मकैः प्रेतैर्दत्तं तद् भुज्यते कथम्॥
(मत्स्यपुराण १९/२)

समाधान—

पितर वसु, पितामह रुद्र तथा प्रपितामह आदित्य कहे गये हैं। जैसे पत्र पर नाम, पता लिखने से पत्र पानेवाले के पास पहुँच जाता है वैसे ही ठीक हव्य-कव्य को पहुँचाने वाला पितरों का नाम और गोत्र है—

नाम गोत्रं पितृणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः ।

(मत्स्यपुराण १९/४)

श्रद्धा तथा श्राद्धमन्त्र इस कार्य में सहायता देते हैं, श्राद्धकर्ता का पिता अपने पुण्य कर्मों के अनुसार यदि देवयोनि को प्राप्त है तो उसे श्राद्धान्न अमृतरूप से प्राप्त होता है, गन्धर्व योनि में सम्भोगरूप से, पशु योनि में घास-भूसा रूप से, सर्पयोनि में वायुरूप से, यक्ष योनि में पेय रूप से, गृध्रयोनि में मांसरूप से, दानवयोनि में मायारूप से, प्रेतयोनि में रुधिर रूप से तथा मनुष्य योनि में श्राद्धान्न विविध भक्ष्य भोज्य रूप से प्राप्त होता है—

देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः ।
तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥
गन्धर्वे भोगरूपेण पशुत्वेऽपि तृणं भवेत् ।
श्राद्धान्नं वायुरूपेण सर्पत्वेऽप्यनुगच्छति ॥
पानं भवति यक्षत्वे गृध्रत्वेपि तथामिषम् ।
दानवत्वे तथा माया प्रेतत्वे रुधिरोदकम् ॥
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नानाभोगरसं भवेत् ।

(मत्स्यपुराण १९/६-९)

गया आदि तीर्थों में श्राद्ध करने से यद्यपि प्राणी मुक्त हो जाते हैं फिर भी उनके निमित्त श्राद्ध करने की शास्त्रीय विधि है। किसी भी अवस्था में श्राद्ध का त्याग करना उचित नहीं है। श्राद्ध का तात्पर्य यह है कि पितरों को श्रद्धाभक्ति से जो भी वस्तुएँ अर्पित की जाती हैं। वे अविकल रूप से पहले दिव्य पितरों को प्राप्त होती है। वे अपनी दिव्य दृष्टि से उस प्राणी को देखकर वह जिस योनि में गया हो वहीं श्राद्धीय वस्तुओं को कई गुना अधिक कर उसके समीप पहुँचा देते हैं। कहीं वह प्राणी मुक्त हो गया हो तो वे श्राद्धीय वस्तुएँ शतगुणित कर उसी के परिवार वालों को प्रसाद रूप से लौटा दी जाती है, जिससे उसके परिवार में पुत्र, पौत्र आदि सन्तानें धार्मिक होती हैं तथा नाना प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण समृद्धशाली होकर ऐहिक-पारलौकिक सभी सुखों का उपभोग करती हैं, इसलिए श्राद्ध का त्याग किसी भी अवस्था में नहीं करना चाहिए।

श्राद्ध में जौ, गेहूँ, चावल, तिल, मूँग, सरसों, कंगनी, मटर ये अन्न उत्तम कहे गये हैं। मकई, काले उड़द, मसूर ये वर्जित हैं—

यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा ।
सन्तर्पयेत् पितृन् मुद्‌गैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः ।
पयो दधि घृतञ्चैव गवां श्राद्धेषु पावनम् ।

कूष्माण्डं महिषीक्षीरमाढक्यो राजमाषकाः ॥
चणका राजमाषाश्च घ्नन्ति श्राद्धं न संशयः ।

यहाँ केवल चने का निषेध है घृत और शर्करा के मिश्रण से बने चने के मोदकों का निषेध नहीं है ऐसा सुमन्तु का वचन है।

श्राद्ध में गोदुग्ध तथा उसमें बनी खीर पितरों को अत्यन्त प्रिय है। भैंस तथा बकरी का दूध श्राद्ध में वर्जित है।

आजिकं माहिषं चैव हन्ति श्राद्धं न संशयः ।

लहसुन, गृञ्जन, प्याज, मूली, सत्तू, लौकी, खारा नमक, गोंद, भोजन के साथ पत्तलपर पृथक नमक तथा वाणी से अप्रशंसित वस्तुएँ श्राद्ध में वर्जित हैं।

आरक्ता ये च निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च ।
वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते ॥

(मार्कण्डेयपुराण ३२/४)

मुझे श्राद्ध के लिए दुग्ध चाहिए ऐसा कहकर लाया गया दुग्ध भी श्राद्ध में वर्जित है। श्राद्ध में तीन वस्तुएँ अत्यन्त पवित्र मानी गयी है। दौहित्र, कुतुप (मध्याह्नकाल और तिल) एवं तीन निषिद्ध बतायी गयी हैं कोप, यात्रा और त्वरा—

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिलाः ।
वर्ज्याणि चाहुर्विप्रेन्द्रैः कोपोऽध्वगमनं त्वरा ॥

(मार्कण्डेयपुराण ३९/६४)

श्राद्धकर्ता तथा श्राद्धभोजी के लिए आठ वस्तुएँ त्याज्य कही गयी हैं—दूबारा भोजन, यात्रा, सवारी, अधिक श्रम, मैथुन, स्वाध्याय, कलह तथा दिन में शयन—

पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् ।
स्वाध्यायं कलहं चैव दिवा स्वप्नं च सर्वदा ॥
श्राद्धकृत् श्राद्धभुक् चैव सर्वमेतद् विवर्जयेत् ।

(मत्स्यपुराण १६/५६, ५७)

जो मनुष्य श्राद्धकाल में पवित्र होकर श्रद्धा-भक्ति से भगवान् विष्णु का नैवेद्य पितर तथा देवताओं को अर्पण करता है तथा उसी तुलसीमिश्रित नैवेद्य के बने पिण्डों से पितरों का श्राद्ध करता है उसके पितर अनन्तकाल तक तृप्त हो जाते हैं—

यः श्राद्धकाले हरिभूक्तशेषं ददाति भक्त्या पितृदेवतानाम् ।
तेनैव पिण्डांस्तुलसीविर्मिश्रानाकल्पकोटिं पितरस्तु तृप्ताः ॥

देवकार्य में विशेष रूप से ब्राह्मणों की परीक्षा न करें। किन्तु पितृकर्म में विशेष रूप से परीक्षा कर आचारसम्पन्न, वैदिक तथा कर्मनिष्ठ सत्पात्र ब्राह्मणों को ही

विशेषरूप से भोजन करावें। हे राजन्! हमने संक्षेप में गृहस्थ धर्म का वर्णन किया, जिसका आचरण करने से मनुष्य निश्चय ही महात्माओं की पदवी मोक्ष को प्राप्त करता है—

पदवीं महतामियात्

।। श्रीमद्भागवत-कथा के सप्तम स्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

पन्द्रहवाँ अध्याय

गृहस्थ-धर्म से मोक्ष प्राप्ति और नारद जी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर! संसार के ब्राह्मणों में कोई धर्म में, कोई तप में कोई स्वाध्याय में और कोई ज्ञानयोग में निष्ठा रखते हैं। देव और पितृकार्यों में ज्ञानी पुरुषों को भोजन कराने से अनन्त फल प्राप्त होता है। ज्ञानी पुरुष के अभाव में आचार सम्पन्न कर्मनिष्ठ अन्य ब्राह्मणों को भी भोजन कराया जा सकता है, किन्तु श्राद्ध में अधिक विस्तार करना उचित नहीं है।

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ।।३।।

विश्वेदेवता दो हैं, इसलिए देवकार्य में दो-दो के हिसाब से चार ब्राह्मण हों। पितर छः हैं, इसलिए पितृकार्य में तीन-तीन के हिसाब से अठारह ब्राह्मण हों अर्थात् पार्वण-श्राद्ध में कुल बाईस ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। यदि इतना सामर्थ्य न हो तो 'एकैकमुभयत्र वा इस वचन के अनुसार दोनों कार्यों में एक-एक के हिसाब से कुल आठ ब्राह्मणों को भोजन करावें। शक्ति रहने पर इससे कम संख्या न करें। श्राद्ध का त्याग किसी भी अवस्था में न करें। मुक्त प्राणी के लिए भी श्राद्ध करने का विधान है। श्राद्ध में गोदुग्ध का ही विशेषरूप से व्यवहार करें।

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद् धर्मतत्त्ववित् ।
मुन्यन्नैः स्यात् परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ।।७।।

आमिषभोजी भी श्राद्ध में आमिषका प्रयोग न करें, न स्वयं खायें ही। कारण खीर, पूड़ी, हलुवा, मालपुआ आदि से जो तृप्ति होती है और जैसा सात्त्विक मन बनता है, वैसा पशुहिंसा करने से नहीं। आमिषभोजियों की तामसी वृत्ति हो जाती है, जिससे देश में अशान्ति और उपद्रव होते हैं। मनुष्य को सदा सात्त्विक बनने की चेष्टा करनी चाहिए। शास्त्रों में सर्वश्रेष्ठ मुख्य धर्म यही बताया गया है कि मन, वाणी और शरीर, से किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचायें—

न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥८॥
विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ।
अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत् ॥१२॥

अधर्म की ५ शाखाएँ हैं। धर्मभीरु पुरुष उनका अधर्म के समान त्याग करें। अधर्म की पहली शाखा—'विधर्म' है अर्थात् शास्त्रविरुद्ध धर्म जैसे अशक्तावस्था में स्नान—

अशक्तेन शरीरेण स्नानं कुर्वन्ति ये बलात् ।
ब्रह्महत्या कृता तैस्तु तया ते नरकाय वै ॥

(वंशीधरी)

दूसरी शाखा है—'परधर्म'। क्षत्रिय के लिए विहित युद्ध आदि ब्राह्मण के लिए परधर्म है, ब्राह्मण के लिए विहित भिक्षाटनादि क्षत्रियों के लिए परधर्म है इत्यादि। 'परधर्मो भयावहः' इस भगवद्वचन के अनुसार परधर्म का आचरण दुःखप्रद होने से अग्राह्य है। तीसरी शाखा है—'धर्माभास' अर्थात् वह धर्म जो इच्छा से स्वीकृत हो और वर्णाश्रम धर्म से पृथक् हो। चौथी शाखा है—उपमा, अर्थात् 'उपधर्म' **'धर्मस्य उपमा न तु धर्मः'** अर्थात् पाखण्ड अपनी धार्मिकता व्यापने के लिए दम्भ से जटा, भस्म आदि धारण करना। अधर्म की पाँचवीं शाखा है—'छलधर्म' अर्थात् दुराग्रह से मुख्यार्थ का बाँध कर वाक्य की मनमाने ढंग से अन्यथा व्याख्या करना। जैसे—**'दशावरान् विप्रान् भोजयेत्'** इस वाक्य का दश अवरा अधिका येषु शतेषु तान् इस बहुब्रीहिसमास से यहाँ एक सौ दस अर्थ अभिप्रेत है, किन्तु उसे न मानकर दशभ्योऽवरानन्यूनान् इस तत्पुरुषसमास से दस से कम नौ, आठ, इस विलोम रीति से एक तक अर्थ कर लेना।

जगत् की नश्वरता पर विचार करना। उत्पन्न होने वाले शरीरों के पहले जो कारणरूप से और अन्त में अवधिरूप से विद्यमान है वही सत्य है, मध्य में देहादिरूप से जो प्रपञ्च भासित हो रहा है वह सब मिथ्या है।

क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि ।
न संघातो विकारोऽपि न पृथङ् नान्वितो मृषा ॥५९॥

यही शरीर पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतों में से वस्तुतः कोई भी नहीं है। न तो यह पञ्चभूतों का संघात है, न पञ्चभूतों से आरब्ध अवयवी है और न पञ्चभूतों का परिणाम ही है, क्योंकि अवयवों से न यह पृथक् है और न उसमें अनुगत है। अतः विवर्तवाद के अनुसार सर्वथा मिथ्या है। नैयायिक इस शरीर को पञ्चभूतों से आरब्ध, चार्वाक पञ्चभूतों का संघात तथा सांख्यवादी पञ्चभूतों का परिणाम मानते हैं। वस्तुतः वेदान्तमत के अनुसार अतात्त्विक अन्यथाभावरूप यह विवर्त ही है। कहा भी है—

आरम्भवादः कणभक्षपक्षः संघातवादस्तु भदन्तपक्षः ।
सांख्यस्य पक्षः परिणामवादो वेदान्तपक्षस्तु विवर्तवादः ॥

यदि कोई जैसे मरुमरीचिका नदी का प्रमाण पूछे कि यह नदी कितनी लम्बी, चौड़ी तथा गहरी है तो इससे यह कहना उचित होगा कि यदि यह नदी हो तो इसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई बतायी जाय। वस्तुतः यह नदी है ही नहीं तब इसकी लम्बाई, चौड़ाई और गहराई कैसी? वैसे ही जब क्षिति आदि की सत्ता है ही नहीं तब इन तत्त्वों से शरीर का आरम्भ तथा इनका संघात और परिणाम शरीर कैसे हो सकता है? इसलिए यह सिद्ध है कि अद्वैत ही एक तत्त्व है और सब मिथ्या है। अब यहाँ पर यह शङ्का होती है कि जब सब मिथ्या ही है तब विधि-निषेध की व्यवस्था कैसे होगी? इसका समाधान यह है कि जैसे स्वप्न में जागृत तथा स्वप्नावस्था होती है वैसे ही इस मिथ्याभूत जगत् में विधि-निषेध की व्यवस्था हो सकती है। वास्तव में यह भी मिथ्या है।

निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः ।

इस अद्वैत तत्त्व का ज्ञान जाग्रत् आदि अवस्थाओं की निवृत्ति के बिना नहीं हो सकता है। इस अवस्थाओं की निंवृत्ति भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत के पर्यालोचन से ही होता है—

भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथात्मनः ।
वर्तयन् स्वानुभूत्येह त्रीन् स्वप्नान् धुनुते मुनिः ॥६२॥

भावाद्वैत का स्वरूप—

कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत् ।
अवस्तुत्वाद् विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥६३॥

पटकी सत्ता कारणभूत तन्तुओं से पृथक् नहीं है, तन्तु ही पट है। इस प्रकार पट और तन्तु के समान कार्यकारणरूप, जगत् और ब्रह्म की 'इदं हि विश्वं भगवान्' के अनुसार ऐक्यभावना करना भावाद्वैत कहा जाता है। क्योंकि कार्य और कारण का भेद अवास्तविक है।

क्रियाद्वैत—

यद् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्मसमर्पणम् ।
मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥६४॥

हे युधिष्ठिर! फल को आकांक्षा रहित होकर मन, वाणी और शरीर से किये गये सम्पूर्ण कर्मों का भगवान् में समर्पण करना क्रियाद्वैत कहा जाता है। क्रिया के भेद में हेतु है—फल की आकांक्षा। जहाँ फल की आकांक्षा नहीं वहाँ क्रियाओं का अद्वैत स्वतः सिद्ध है।

द्रव्याद्वैत—

आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् ।
यत्स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥६५॥

अर्थ-धनादि, काम्य-भोग्य वस्तुएँ इनकी जैसे अपने को आवश्यकता होती हैं वैसे ही स्त्री, पुत्रादि तथा अन्य प्राणियों को भी होती है। इस दृष्टि से अन्य प्राणियों के लिए भी अर्थ और काम का सम्पादन करना द्रव्याद्वैत कहा जाता है। इस प्रकार के पर्यालोचन से भेद-बुद्धि के नष्ट होने पर जीव को अद्वैत तत्त्व का ज्ञान बड़ी सरलता से हो जाता है और उसे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी भगवद्धाम मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। हे राजन्! मैं पूर्वजन्म में रूप-यौवन सम्पन्न उपवर्हण नामक एक गन्धर्व था। मुझमें स्त्री-लम्पटता अत्यधिक थी। एक समय प्रजापतियों ने देवसमाज में भगवच्चरित्र का गान करने के लिए गन्धर्व और अप्सराओं को बुलाया। मैं भी अप्सराओं के साथ गाता हुआ उन्मत्त दशा में वहाँ पहुँचा। प्रजापतियों ने मेरी यह दशा देखकर मुझे शाप दे दिया—जा, तू शूद्र हो जा। उनके शाप से मैं दासी का पुत्र हो गया। किन्तु महात्माओं की सेवा से दूसरे जन्म में ब्रह्मा का पुत्र हुआ।

धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ।
गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात् ॥७४॥

हे राजन्! मैंने तुमसे इस पापनाशक पवित्र गृहस्थधर्म का वर्णन किया। इसके आचरण से गृहस्थ पुरुष सुखपूर्वक संन्यासियों की गति 'मोक्ष' प्राप्त कर लेता है। हे राजन्! इस मनुष्य लोक में आप लोग बड़े ही भाग्यवान् हैं, जिन आपके यहाँ साक्षात् परमब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण गूढ़रूप से विराजमान हैं जिनके दर्शनार्थ बड़े-बड़े महात्मा, ऋषि, मुनि आपके यहाँ आया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण आपके सर्वस्व हैं, जिनके स्वरूप का साक्षात् ब्रह्मा आदि देवता भी वर्णन नहीं कर सकते। श्रद्धा-भक्ति से पूजित वह दयालु भगवान् हम लोगों पर प्रसन्न हों।

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा—हे राजन्! राजा युधिष्ठिर नारदजी का यह उपदेश सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रेम से श्रीकृष्ण और नारदजी का पूजन किया। अनन्तर नारदजी राजा युधिष्ठिर को आशीर्वाद देकर अपने स्थान को चले गये।

पूजितः प्रययौ मुनिः ।

हे राजन्! इस प्रकार हमने आपसे दक्ष की उन कन्याओं के वंश का पृथक्-पृथक् वर्णन किया, जिनमें देव, असुर, मनुष्य आदि सम्पूर्ण चराचर जीवों की उत्पत्ति हुई है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के सप्तम स्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

(सप्तम स्कन्ध समाप्त)

सप्ताह के तृतीय दिन की कथा समाप्त।

❖

श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक

सप्ताह के चतुर्थ दिन की कथा

कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थेऽहनि वाचयेत्

[अष्टम स्कन्ध के प्रथम अध्याय से दशम स्कन्ध के तृतीय अध्याय तक]

अष्टम-स्कन्ध प्रारम्भ

आठवें स्कन्ध में २४ अध्याय है एवं पुराण के छठे लक्षण मन्वन्तर का वर्णन है।

पहला अध्याय

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम और तामस चार मन्वन्तरों का वर्णन

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूछा—गुरुवर!

स्वायम्भुवस्येह गुरोः वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः।
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान् वदस्व नः॥१॥

स्वायम्भुव मनु के वंश का विस्तार तो मैंने आपसे सुना, जिसमें मरीचि आदि प्रजापतियों के द्वारा सृष्टि की वृद्धि हुई। अब आप अन्य मनुओं के वंश का वर्णन करने की कृपा करें। शुकदेवजी ने कहा—राजन्! इस श्वेतवाराह कल्प में छः मनु बीत चुके हैं। पहले मनु का नाम स्वायम्भुव था। उन्हीं की कन्या देवहूति से भगवान् कपिल का जन्म हुआ, जिसका वर्णन तृतीय स्कन्ध में हम कर चुके हैं। उनकी दूसरी कन्या आकूति से यज्ञ भगवान् का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने असुरों का बधकर इस मन्वन्तर की रक्षा की। एक समय स्वायम्भुव मनु विषयों से विरक्त होकर अपनी पत्नी शतरूपा के साथ वन में गये वहाँ सुनन्दा नदी के तट पर सौ वर्ष तक एक पैर से खड़े हो वे तपस्या करते हुए इस उपनिषद् का जप करते थे। इस उपनिषद् में आठ मन्त्र हैं। एक समय वे जप करते-करते भगवान् के ध्यान में इतने तन्मय हो गये कि उन्हें बाहर का कुछ भी ज्ञान न रहा। यह देखकर वे दुराचारी असुर उन्हें खाने के लिए दौड़े। तब यज्ञ भगवान् ने प्रकट होकर उन असुरों को मारा और मन्वन्तर की रक्षा की। मन्वन्तर षड्विध कहलाता है।

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते॥

यद्यपि उसकी रक्षा ये छः महापुरुष मिलकर किया करते हैं। किन्तु इस बार स्वयं भगवान् ही इन्द्र बने थे, इसलिए इस अवसर पर रक्षा-कार्य में (१) स्वायम्भुव मनु, (२) उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र, (३) याम आदि बारह देवता, (४) मरीचि आदि सप्तर्षि और (५) यज्ञ भगवान् रक्षक रहे। दूसरे मनु का नाम स्वारोचिष था, जो

अग्नि के पुत्र थे। इनके रक्षार्थ द्युमान् आदि पुत्र, तुषित नामक देवता, ऊर्जस्तम्भ आदि ऋषि, रोचन इन्द्र और विभु नामक अवतार हुआ। तीसरे मनु प्रियव्रत के पुत्र उत्तम हुए जिनके रक्षार्थ पवन आदि पुत्र, सत्य आदि देवता, प्रमद आदि सप्तर्षि सत्यजित् इन्द्र और सत्यसेन नामक भगवान् का अवतार हुआ। चौथे मनु उत्तम के भाई तामस हुए। इस मन्वन्तर में पृथु आदि पुत्र, सत्यक आदि देवता, ज्योतिर्धाम आदि सप्तर्षि, त्रिशिख इन्द्र और हरि का अवतार हुआ। जिन्होंने ग्राह से गजेन्द्र को छुड़ाया। राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूछा—हे भगवन्!

बादरायण एतत् ते श्रोतुमिच्छामहे वयम्।
हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥३१॥

इस अवतार में भगवान् हरि ने ग्राहग्रस्त गजेन्द्र को किस प्रकार छुड़ाया। यह प्रसङ्ग हम आपसे सुनना चाहते हैं। वह कथा बड़ी मनोरम तथा मङ्गलप्रद है, जिसमें उत्तमश्लोक भगवान् का गुणानुवाद किया गया है। उसे हमें सुनायें। नैमिषारण्य में सूतजी ने शौनकादि ८८ हजार ऋषियों से कहा—हे मुनियों! जब परीक्षित् ने शुकदेवजी से ऐसा प्रश्न किया, तब वे भरी सभा में राजा की प्रशंसा कर इस प्रकार कहने लगे।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त ।।
(मासिक पारायण का चौदहवाँ विश्राम)

❖

(गजेन्द्रोपाख्यान दूसरे से चौथे अध्याय तक)

दूसरा अध्याय

गज और ग्राह का युद्ध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

आसीद् गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान् योजनायुतमुच्छ्रितः ॥१॥

क्षीरसागर के समीपस्थ द्वीप में त्रिकूट नाम का एक बड़ा विशाल सुन्दर पर्वत था, जो क्षीरसमुद्र से घिरा हुआ था। उसके लोहे, चाँदी तथा सोने के शिखरों से सब दिशाएँ और विदिशाएँ चमचमाती थी। नाना प्रकार के वृक्षों, लताओं, झरनों और गैरिकादि धातुओं से वह पर्वत सुशोभित था। उसी पर्वत की तलहटी में वरुण का ऋतुमान् नाम का एक बड़ा ही मनोरम बगीचा था, जहाँ देवता अप्सराओं के साथ सानन्द विहार किया करते थे। वसन्तादि सब ऋतुओं के पुष्प वहाँ सर्वदा खिले रहते थे। उस उद्यान में एक बड़ा विशाल सरोवर भी था। जिसमें सुनहले रंग के कमलों पर

मयूर, हंस, सारस, आदि दिव्य पक्षी कलरव करते थे। भ्रमरों की टोलियाँ चारों ओर गुञ्जार करती थीं। मन्दार, पारिजात, चम्पा, अशोक, चन्दन आदि वृक्षों की घनी छाया में नाना पशु-पक्षी विश्राम करते थे। उस पर्वत के घनघोर वन में बहुत से हाथी और हथिनियों के साथ एक बड़ा विशाल गजेन्द्र रहता था, जिसकी गन्ध पाकर सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जीव दूर भाग जाते थे। हरिण आदि क्षुद्रजीव उसके अनुग्रह से निर्भय हो विचरा करते थे। एक दिन वह गजेन्द्र भूख और प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के लिए हथिनियों एवं अन्य हाथियों के झुण्ड के साथ बड़ी शीघ्रता से उस सरोवर के समीप आया।

वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत् सरोवराभ्याशमथागमद् द्रुतम् ॥२४॥

वहाँ उसने उस सरोवर में घुसकर अपनी सूँड़ से जल उछाल-उछालकर अपने छोटे-छोटे बच्चों एवं हथिनियों को खूब स्नान कराया। और स्वयं भी खूब स्नानकर अपनी थकावट मिटायी। सभी ने यथेच्छ जल पिया। गृहस्थ पुरुषों की तरह वह भी उनके माया-मोह में फँसकर इतना उन्मत्त था कि अपने ऊपर आनेवाले आसन्न संकट का उसने कभी विचार ही नहीं किया। उसी समय—

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् ।
यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥२७॥

हे राजन्! दैव से प्रेरित किसी बलवान् ग्राह ने आकर बड़े क्रोध से गजेन्द्र का पैर पकड़ लिया जिससे वह सहसा भारी संकट में पड़ गया। पैर छुड़ाने के लिए उसने यथाशक्ति पूर्ण चेष्टा की। उसकी हथिनियों ने बलवान् ग्राह से गजेन्द्र को जल में खींचते देख बड़े जोर से चिंघाड़ना आरम्भ किया एवं उसके साथी यूथ के हाथियों ने भी सूड़ में सूँड़ मिलाकर उसे बाहर खींचने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु उसे जल से बाहर निकाल न सके। गजेन्द्र और ग्राह दोनों ही परस्पर एक दूसरे को एक हजार वर्ष तक बाहर-भीतर खींचते रहे। उनका यह तुमुल युद्ध देखकर देवताओं के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इतने लम्बे युद्ध में गजेन्द्र के शरीर का बल एवं इन्द्रियों की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती गयी, किन्तु जलचर होने के कारण ग्राह की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। इस प्रकार जब गजेन्द्र के ऊपर प्राणों का संकट आ पड़ा और वह अपने को उस संकट में छुड़ाने में किसी प्रकार समर्थ न हुआ, तब उसके मन में यह विचार आया—

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् ।
ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥३२॥

आज मैं इस भारी संकट में पड़ा हूँ। इस घोर संकट में पड़े हुए मुझको मेरे बराबर के साथी भी जब न छुड़ा सके तब ये बेचारी हथिनियाँ क्या छुड़ा सकेंगी? ब्रह्मा द्वारा निर्मित इस जाल में मैं फँस गया हूँ। अब तो मैं जो सबका आश्रय परमपिता परमेश्वर है उसकी शरण में जाता हूँ। इस जगत् का जो भी कोई ईश्वर है जो कालसर्प

से भी प्राणियों की रक्षा करता है, जिसके भय से मृत्यु भी भागती है, अब मैं उसी सर्वेश्वर की शरण में हूँ। वह मेरी रक्षा करें।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ।।

❖

तीसरा अध्याय

गजेन्द्र-ग्राहयुद्ध, गजेन्द्र-स्तवन तथा गजेन्द्र का मोक्ष

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥१॥

संस्कारवश गजेन्द्र ने ऐसा निश्चय कर प्रणाम पूर्वक स्थिर-चित्त से भगवान् का स्तवन किया। गजेन्द्र द्वारा किया गया यह स्तवन 'गजेन्द्रस्तव' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अट्ठाईस श्लोक हैं। गजेन्द्र ने आरम्भ में आदिपुरुष, भगवान् विष्णु को प्रणामं कर उनकी शरणागति दुर्ज्ञेयता, दयालुता, गुणगाथा गान की महत्ता आदि का सुन्दर वर्णन करते हुए अपने उद्धार की प्रार्थना की है—

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१९॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना से जो भगवान् का भजन करते हैं उन्हें सब अभीष्ट पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं भगवान् और भी नाना प्रकार के सुख उन्हें प्रदान करते हैं, यहाँ तक कि अपना पार्षद तक बना लेते हैं। वे दयालु भगवान् इस ग्राह से मेरा उद्धार करें। स्तवन करते-करते उसका मन भगवान् में इतना रम गया कि उसने अपना पुरुषार्थ करना भी छोड़ दिया। उसे अपने शरीर तक का भान न रहा। जब तक मनुष्य में अपने बल और बुद्धि का भरोसा रहता है तबतक भगवत्कृपा नहीं होती। गजेन्द्र द्वारा अपना बल लगाना छोड़ते ही तत्क्षण कृपाशक्ति प्रकट हो गयी। उससे गजेन्द्र की वह दशा देखी न गयी। हजार वर्ष के युद्ध से गजेन्द्र के अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल पड़ गये थे। अब एक ही झटका लगने पर उसकी मृत्यु निश्चित थी। कृपाशक्ति का ध्यान उसकी ओर गया ही था कि ग्राह ने गजेन्द्र को खींचने का प्रयास किया। बस, फिर क्या था कृपाशक्ति ने लाखों योजन दूर सिंहासनासीन भगवान् को आकृष्ट कर लिया, उनका आसन हिला और वे गरुड़ की प्रतीक्षा किये बिना ही बड़ी तेजी से दौड़ पड़े और पल भर में गजेन्द्र के निकट आ पहुँचे। गरुड़ पीछे पहुँचे। कृपाशक्ति ने गजेन्द्र को उद्‌बुद्ध कर कहा—गजेन्द्र! देख तुझे छुड़ाने भगवान् आ गये।

सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥३२॥

तब गजेन्द्र को होश हुआ। सरोवर के अन्दर बलवान ग्राह द्वारा निगृहीत होने के कारण वह अत्यन्त पीड़ित था और प्राय: पूरा ही जल के अन्दर खींचा जा चुका था। उसके प्राण जाने में अब देर न थी, गरुड़ पर आसीन चक्र लिये भगवान् को आकाश में देखकर कृपाशक्ति के सहारे उसने सूँड़ में कमल का एक फूल उठाकर बड़ी दीन वाणी में कहा—हे नारायण! हे अखिलगुरो! हे भगवन्! आपको नमस्कार है। इससे अधिक बोलने की उसमें सामर्थ्य भी न रह गयी थी। नारायण कहने का तात्पर्य है—नार जल में अयन निवास होने के कारण आप जल में मेरी रक्षा करें, गुरु कहने का तात्पर्य है—गु अन्धकार (अज्ञान) रू उसके निवर्तक होने के कारण आप अज्ञानरूपी अन्धकार से मेरी रक्षा करें तथा भगवान् कहने का तात्पर्य है—षडैश्वर्य सम्पन्न होने के कारण आप सब प्रकार से मेरी रक्षा करने में समर्थ हैं। भगवान् ने भी बड़े प्रेम से गजेन्द्र का कमल पुष्प ले लिया और बायें हाथ से उसकी सूड़ पकड़कर उसे ग्राह सहित जल से बाहर निकाल दिया।

सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ॥३३॥

चक्र द्वारा ग्राह का मुख विदीर्ण कर गजेन्द्र को शरीर एवं अज्ञान दोनों से ही विमुक्त कर दिया। इन्द्र आदि देवता यह दृश्य देखकर चकित रह गये। भगवान् प्रेम से दी हुई वस्तु इसी प्रकार ग्रहण करते हैं। उन्होंने द्रौपदी का पत्र, गजेन्द्र का पुष्प, शबरी के फल और राजा रन्तिदेव का जल सप्रेम ग्रहण किया था। भगवान् ने श्रीमुख से स्वयं कहा भी है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

❖

चौथा अध्याय

गज और ग्राह का पूर्व-वृत्तान्त और उनका उद्धार

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! ब्रह्मा आदि समस्त देवता भगवान् के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए आकाश से पुष्पवृष्टि करने लगे, नाना प्रकार के बाजे बजने लगे, गन्धर्व गान करने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और सिद्ध, चारण तथा मुनिगण स्तुति करने लगे। ग्राह भी शरीर त्यागकर दिव्य रूप को प्राप्त हो गया। वह भगवान् को प्रणाम कर अपने गन्धर्वलोक को चला गया। पहले वह हूहू नाम का गन्धर्व था। महर्षि देवल के शाप से ग्राह हो गया था। स्नानार्थ सरोवर में प्रविष्ट महर्षि देवल का पैर पकड़कर उसने उन्हें खींचा था। उससे कुपित होकर उन्होंने उसे ग्राह होने का शाप दिया था। भगवान् के स्पर्श से गजेन्द्र भी अज्ञान से मुक्त होकर भगवन् के स्वरूप को प्राप्त हो गया—

प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥६॥

पूर्व जन्म में यह गज द्रविड़ प्रान्त के पाण्ड्यदेश का राजा था। उसका नाम इन्द्रद्युम्न था। भगवान् के भजन-पूजन और व्रत में उसकी बड़ी निष्ठा थी। एक समय वह मलयाचल पर अपने आश्रम में मौन धारण कर भगवान् श्रीकृष्ण की पूजन कर रहा था। दैवयोग से उसी समय शिष्यों सहित अगस्त्य मुनि उसके आश्रम पर आ पहुँचे। उसने उन्हें आया देखकर भी न तो उनका अभ्युत्थान किया, न अर्घ्य-पाद्य से उनका पूजन किया और न बैठने को आसन ही दिया। इस पर मुनि कुपित हो उठे और बोले—यह दुरात्मा बड़ा ढोंगी जान पड़ता है। ब्राह्मणों का अपमान करनेवाला यह नीच गज के समान बैठा है किसी को नमता भी नहीं। इसलिए यह दुष्ट शीघ्र ही गजयोनि को प्राप्त हो जाय। यह कहकर अगस्त्य मुनि अपने शिष्यों सहित चले गये। राजा इसे दैव का विधान मानकर तत्क्षण गजयोनि को प्राप्त हुआ, किन्तु भगवत्पूजन के प्रभाव से गजयोनि में भी उसकी स्मृति नष्ट नहीं हुई।

इस प्रकार भगवान् गजेन्द्र का उद्धार कर उसे अपना पार्षद बनाकर बैकुण्ठ ले गये। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! मैंने आपसे गजेन्द्र मोक्ष का वर्णन किया। यह भगवान् की महिमा से ओत-प्रोत है। यह मङ्गलमय आख्यान समस्त पापों का नाशक, स्वर्ग और यश देनेवाला तथा कलिकाल के दोषों का शमन करने वाला है। दुःस्वप्न दिखाई देने पर प्रातःकाल उठकर जो इस स्तवन का पाठ करता है और मेरे रूपों का स्मरण करता है उसे दुःस्वप्नों का अनिष्ट फल प्राप्त नहीं होता। जो मनुष्य प्रेम से प्रतिदिन गजेन्द्र मोक्ष का पाठ करते हैं, उन्हें भगवान् मृत्यु के समय निर्मल बुद्धि प्रदान करते हैं—

तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥२५॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

पाँचवाँ अध्याय

रैवत तथा चाक्षुष मन्वन्तर का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

चौथे मन्वन्तर की कथा में गजेन्द्रमोक्ष का वर्णन किया गया। अब आगे के रैवत आदि मन्वन्तरों की कथा का श्रवण करो—

राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम्।
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥१॥

पाँचवें मनु का नाम रैवत था। वे तामस मनु के सहोदर भाई थे। इस मन्वन्तर में विभु नाम के इन्द्र हुए और भगवान् स्वयं वैकुण्ठ नाम धारण कर अवतीर्ण हुए जिनका वर्णन तृतीय स्कन्ध में आ चुका है। छठे मनु का नाम चाक्षुष था वह चक्षु के पुत्र थे। इस मन्वन्तर में मन्त्रद्रुम इन्द्र हुए और अजित नाम से भगवान् का अवतार हुआ। उन्होंने कच्छप रूप से अपनी पीठ पर मन्दराचल धारण किया और दूसरे रूप से समुद्रमन्थन कर देवताओं के लिए अमृत का सम्पादन किया। राजा परीक्षित् ने पूछा—हे मुनिवर! समुद्र क्यों मथा गया और अमृत कैसे प्राप्त हुआ? यह प्रसंग आप विस्तारपूर्वक मुझे सुनाने की कृपा करें। भगवान् के निर्मल चरित्रों के श्रवण से मेरी तृप्ति नहीं हो रही है।

सूतजी नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों से कह रहे हैं—हे ऋषिगण! राजा परीक्षित् के इस प्रश्न पर शुकदेवजी ने कहा—राजन्! एक समय महर्षि दुर्वासा कहीं जा रहे थे। मार्ग में इन्द्र से उनकी भेंट हो गयी। उन्होंने इन्द्र के कल्याणार्थ अपने गले की माला उतारकर इन्द्र को दी। लक्ष्मी के मद से मत्त इन्द्र ने वह माला ऐरावत के मस्तक पर डाल दी। ऐरावत ने उसे सूँड़ से नीचे खींचकर अपने पैरों तले कुचल डाला। दुर्वासा से यह दृश्य देखा न गया। उन्होंने कुपित होकर इन्द्र को शाप दिया—हे इन्द्र! तूने मेरा अनादर किया। इसके परिणामस्वरूप तू तीनों लोकों की लक्ष्मी से हीन हो जायेगा। मुनि के इस शाप से देवता श्रीविहीन हो गये। असुरों ने यह वृत्तान्त सुनकर तुरन्त देवताओं पर चढ़ाई कर दी। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। असुरों के तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों से देवताओं के अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये। हजारों देवता पृथ्वी पर गिर पड़े। जो लोग बच गये उन्होंने ब्रह्मलोक में जाकर सारा समाचार ब्रह्माजी को सुनाया। ब्रह्मा बोले—हे देवगण! तुम घबराओं नहीं। हम सब मिलकर भगवान् के समीप चलें। वे ही हमलोगों का कष्ट दूर करेंगे। यह कहकर ब्रह्मा सबको साथ ले क्षीरसमुद्र पर पहुँचे। वहाँ शेषशायी भगवान् को प्रणाम कर उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम्।
मनोग्रयानं वचसा . निरुक्तं नमाम हे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥

हे भगवन्! असुरों के द्वारा हमारा नाश हो रहा है। आप अनादि अनन्त, विकारशून्य, मनवाणी के अगोचर एवं सत्य हैं। आप हमारी रक्षा करें और हम पर प्रसन्न हों। हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं। देवताओं ने ऐसे ही भावपूर्ण २५ श्लोकों से भगवान् की स्तुति की।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

छठा अध्याय

देवताओं की असुरों से सन्धि और अमृत के लिए उद्योग

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए। भगवान् का प्रखर तेज देवता सह न सके, चारों ओर प्रकाश छा गया। उनके नेत्र चकाचौंध हो गये। भगवान् का तेजोमय दिव्य विग्रह देख ब्रह्मा और शिव आनन्दमग्न होकर देवताओं सहित उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने आठ श्लोकों से भगवान् के अष्टविध ऐश्वर्य का वर्णन किया। भगवान् देवताओं का अभिप्राय जानकर कुछ अद्‌भुत लीला करने की इच्छा से गम्भीर वाणी में बोले—हे देवगण! सावधान होकर मेरा कथन सुनो। जब तक तुम्हारी वृद्धि का समय न आये तब तक तुम सब दैत्यों से सन्धि कर लो, अन्यथा विजय पाना कठिन है। यही नीति है।

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे।
अहिमूषकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥२०॥

हे देवताओं! कार्य की कठिन स्थिति आने पर शत्रुओं से भी सर्प और मूषक के समान सन्धिकर लेनी चाहिए। दैवयोग से एक मदारी की उस पेटी में एक चूहा बन्द हो गया, जिसमें एक सर्प भी था। सर्प ने अपना मतलब निकालने के लिए चूहे से कहा—भाई! तुम पेटी काट डालो जिससे हम और तुम दोनों निकल भागें। चूहे ने पहले तो उसका विश्वास नहीं किया किन्तु बहुत कहने पर उसने सर्प की बात मान ली और पेटी काट डाली पेटी कटते ही सर्प पहले चूहे को मारकर खा गया, फिर पेटी से निकल भागा समुन्द्रमन्थन द्वारा अमृत प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए। मन्दराचल को मथानी और सर्पराज वासुकि को रस्सी बनाकर समुद्रमन्थन किया जाय। तुमलोग अमृत पीकर शक्तिसम्पन्न हो सकोगे और असुर केवल क्लेशभोगी ही रहेंगे। दैत्य जो कुछ चाहें, तुम उसे स्वीकार कर लेना। विवाद न करना। समुद्र से पहले विष निकलेगा उससे भयभीत न होना। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी अपने-अपने स्थानों को चले गये। इन्द्र ने भगवान् के आदेश से राजा बलि के निकट जाकर भी मधुरवाणी से सन्धि का प्रस्ताव रक्खा और अमृतप्राप्ति के लिए समुद्रमन्थन का सुझाव दिया। बलि प्रभृति सभी

दैत्यों ने दोनों ही प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिये और सबकी आपस में सन्धि हो गयी। सभी ने मिलकर मथानी के लिए मन्दराचल को उखाड़ा और उसे समुद्र-तट पर ले जाने लगे। मार्ग में उसके भार से सब श्रान्त हो गये और उनके कन्धों से पर्वत बीच में ही गिर पड़ा, जिससे बहुत से सुर-असुर विचूर्ण हो गये। यह देखकर भगवान् ने तत्क्षण वहाँ प्रकट हो अपनी अमृतमयी दृष्टि से सबको जीवित कर दिया। अनन्तर भगवान् ने एक हाथ से पर्वत को उठाकर गरुड पर रक्खा और समुद्र तट पर ले गये। वहाँ पहुँचने पर गरुड जी को अन्यत्र भेज दिया, क्योंकि वहाँ उनके अस्तित्व में वासुकि का आना सम्भव न था।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का छठा अध्याय समाप्त ।

❖

सातवाँ अध्याय

समुद्रमन्थन तथा रुद्र द्वारा विष-पान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तदनन्तर सुर और असुरों ने वासुकि के पास जाकर कहा—हे नागराज! हम लोग अमृतप्राप्ति के लिए समुद्रमन्थन का विचार कर रहे हैं। आप मथानी की रस्सी बनकर हमारी सहायता करें। अमृतप्राप्ति होने पर उसमें आपको भी भाग दिया जाएगा। वासुकि ने उनकी बात स्वीकार कर ली और आकर मन्दराचल के बीच में लिपट गये। भगवान् श्रीहरि ने देवताओं के साथ वासुकि के मुख की ओर का भाग पकड़ लिया। यह बात दैत्यों को अच्छी न लगी। वे बोले—

न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ।।३।।

हम सब उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हैं, वेद का स्वाध्याय करने वाले हैं एवं वीरता में विख्यात हैं। हम सर्प के अमङ्गल अङ्ग पूँछ को नहीं पकड़ेंगे। यह कहकर वे चुपचाप एक ओर खड़े हो गये। यह देख भगवान् ने मुस्कराकर देवताओं के साथ वासुकि का मुखभाग छोड़ दिया और पूँछ पकड़ ली। असुरों ने प्रसन्न होकर उसका मुख पकड़ लिया। इस प्रकार दोनों दलों ने मिलकर समुद्र का मन्थन आरम्भ किया। नीचे आधार न होने के कारण मथते समय वह पर्वत जल में धँसने लगा। यह देखकर सबके मुख पर उदासी छा गयी। भगवान् ने उसे गणेशजी का विघ्न जानकर मन से उनका स्मरण किया और तत्क्षण कच्छपरूप धारण कर अपनी पीठ पर पर्वत रख लिया। कच्छप भगवान् की एक लक्ष योजन चौड़ी पीठ एक दूसरे द्वीप के सदृश मालूम पड़ती थी। पर्वत को उठा हुआ देखकर वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुनः बड़े उत्साह से समुद्र का मन्थन करने लगे। भगवान् गुप्त रूप से सुर, असुर तथा नागराज का बल बढ़ा रहे थे एवं हजार बाहु धारण कर अन्य रूप से पर्वत को ऊपर खींच रहे थे। समुद्र के मन्थन से नक्र आदि सभी जलजीव व्यग्र हो उठे थे। सर्पराज वासुकि के श्वास के गरम-गरम

फूत्कारों से असुरों के शरीर झुलसकर काले पड़ गये। उसकी झार से कुछ देवताओं की भी कान्ति मलिन सी हो गयी। भगवदिच्छा से उसी समय देवताओं की ओर मेघमण्डल से छोटी-छोटी बूँदें झरने लगीं और शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी बहने लगी। इससे देवताओं को उतना कष्ट नहीं हुआ जितना कि असुरों को, मथते-मथते जब सब थक गये अमृत नहीं निलका तब स्वयं भगवान् कमर कसकर समुद्र को मथने उतरे।

यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम् ।।१६।।

भगवान् के मथते ही समुद्र से ऐसा भयङ्कर विष निकला जिसकी ज्वालाएँ चारों ओर फैल गयी और सब लोग त्राहि-त्राहि कर चिल्ला उठे। इन्द्र आदि देवताओं ने भागकर कैलास में भगवान् शिव की शरण ली और स्तुति करते हुए कहा—हे भगवन्! इस भयंकर विष से हमारी रक्षा करें, हम आपकी शरण में हैं।

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान् सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ।
परावरात्माश्रयणं तवात्मा सोमो मनो द्यौर्भगवञ्छिरस्ते ।।२७।।

हे भगवन्! आप विराट पुरुष हैं। आकाश आपकी नाभि, वायु, श्वास, चन्द्र, सूर्य और अग्नि नेत्र तथा जल रेत हैं। आप सभी जीवों की आत्मा हैं। आपका स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी नहीं जानते। आप हमारा कष्ट दूर करें। आपको बारम्बार नमस्कार है। शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! भगवान् शिव ने देवताओं का संकट देख, पार्वती जी की सम्मति से वह फैला हुआ विष योगद्वारा अपनी हथेली पर रखकर पी लिया—

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ।
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ।।४२।।

विषपान से भगवान् शंकर का कण्ठ नीला पड़ गया, जो उनका भूषण बन गया। भगवान् शिव की यह अद्भुत शक्ति देखकर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता उनकी प्रशंसा करने लगे। विष पीते हुए भगवान् के हाथ से जो कुछ बूँदे टपकीं, उन्हीं से साँप, बिच्छू, काँतर, विषैले वृक्ष एवं विषौषधियाँ पैदा हो गयी।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

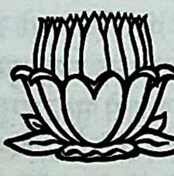

आठवाँ अध्याय

अमृत का कलश लिए भगवान् धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव, लक्ष्मी का स्वयंवर एवं मोहिनी अवतार

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ।
ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥१॥

शङ्करजी के विषपान करने पर प्रसन्न हुए सुर और असुरों ने बड़े वेग से पुनः समुद्र का मन्थन आरम्भ किया। समुद्र से सर्वप्रथम कामधेनु प्रकट हुई, जिसे याज्ञिक ब्राह्मणों ने हवि के लिए ग्रहण किया तदनन्तर चन्द्र के समान धवल उच्चैःश्रवा नामक अश्व निकला। इसी प्रकार क्रमशः चन्द्रमा, कौस्तुभमणि, कल्पवृक्ष, रम्भा आदि अप्सराएँ प्रादुर्भूत हुईं। फिर महालम्भी का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हें देखकर सभी विमोहित्त हो उठे। इन्द्र ने एक दिव्य आसन पर उन्हें बैठाया। गङ्गा आदि नदियों ने मूर्तिमती होकर उनका अभिषेक आरम्भ किया। देवताओं ने रंग-बिरंगे वस्त्र, आभूषण आदि उन्हें भेंट किये। नाना प्रकार के वाद्य बजने लगे। अप्सराएँ नृत्यगान करने लगीं। चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। अनन्तर स्वयंवर की व्यवस्था हुई। सभी अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। लक्ष्मी जी हाथ में जयमाला लिये अपनी सखियों के साथ वर का अन्वेषण करने चलीं। हे राजन्! उनके दिव्य सौन्दर्य का वर्णन तो सहस्रमुख शेषजी भी नहीं कर सकते, भला एक मुखवाला मैं उसका क्या वर्णन कर सकता हूँ? हाँ, इतना अवश्य कहता हूँ कि जिस पर उनका एक बार भी स्निग्ध दृष्टिपात हो जाता, वह तुरन्त विमुग्ध हो जाता था। उनके सौन्दर्य का भाजन भगवान् विष्णु के सिवा अन्य क़ोई भी न हो सका। लक्ष्मीजी को विष्णु के सिवा सुर, असुर, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि में कोई भी निर्दोष वर नहीं दिखायी दिया। दुर्वासा साक्षात् तप की मूर्ति थे, किन्तु वे महाक्रोधी थे। बृहस्पति और शुक्र में ज्ञान का आधिक्य अवश्य था, किन्तु शिष्यों की लालसा भरी थी। ब्रह्मा और चन्द्रमा महान् अवश्य थे, किन्तु वे काम के वशीभूत थे। इन्द्र थोड़ी-सी आपत्ति आने पर घबरा जाते और दूसरे का सहारा लेते थे। परशुराम आदि में धर्म था, किन्तु उनका प्राणियों के प्रति सौहार्द नहीं था, शिवि आदि में त्याग था। किन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं। कार्तवीर्य आदि में बल था, किन्तु वह कालचक्र पर विजयी नहीं, सनकादि विषयाशक्ति से रहित थे अतः वे भी वर होने योग्य नहीं। मार्कण्डेय आदि चिरंजीवी थे, किन्तु जितेन्द्रिय होने के कारण उनका शीलस्वभाव स्त्रियों को सुखप्रद नहीं। हिरण्यकशिपु में शीलस्वभाव तो था किन्तु उसकी आयु का ठिकाना नहीं। न जाने कब मर जाय। इस प्रकार सभी में कुछ न कुछ दोष वर्तमान थे।

शिव में सब गुण अवश्य थे, पूर्वोक्त कोई दोष भी न था किन्तु वे श्मशानवासी ठहरे। इस प्रकार लक्ष्मी ने सबका परित्याग कर सर्वगुण-सम्पन्न भगवान् विष्णु का वरण किया।

वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ।।२३।।

उन्होंने सबके समक्ष भगवान् विष्णु के गले में अपनी जयमाला डाल दी और भगवान् के नेत्रपत्र से उनके वक्षस्थल में जा विराजी। इस विषय में प्राचीन पौराणिकों की एक सुन्दर सूक्ति है—

एष ब्रह्मातिवृद्धस्तपति दिनपतिश्चञ्चलो मातरिश्वा
दिग्वासा नीलकण्ठस्त्रिदशपतिरसौ गर्वितः क्षीयतेऽब्जः ।
इत्थं देव्या विचिन्त्य भ्रमरकुलकलागीतशब्दप्रफुल्ला
दत्ता माला मुरारेः सुरतरुकुसुमालङ्कृता पातु युष्मान् ।।

इस पर चारों ओर से शङ्ख, मृदङ्ग आदि विविध वाद्यों के साथ जय-जयकार की ध्वनि होने लगी। महालक्ष्मी के कृपाकटाक्ष से सब देवता पूर्ववत् शक्तिसम्पन्न हो गये। दैत्यों के प्रति लक्ष्मी ने उपेक्षा की। इसमें वे तत्काल बल और श्री से विहीन हो गये। पुनः समुद्रमन्थन आरम्भ होने पर मदिरा देवी निकलीं। जिसे भगवान् के संकेत पर दैत्यों ने ग्रहण किया। इसके बाद फिर समुद्रमन्थन होने पर अमृत का कलश लिये भगवान् धनवन्तरि प्रकट हुए।

उनका रूप ऐसा दिव्य था कि उनके दृष्टिपात से ही सब रोग-शोक भाग जाते थे। दैत्य लोग उनके हाथों में अमृतघट देखते ही छटपटा उठे और उन्होंने बड़े वेग से झपटकर अमृतघट छीन लिया। समुद्र से निकले रत्नों को भी उन्होंने हड़प लेना चाहा। यह देख देवता बड़े दुःखी हुए। भगवान् ने सबको आश्वासन देकर स्वस्थ किया। उधर दैत्यों में आपस में ही छीना झपटी आरम्भ हो गयी। वे एक-दूसरे से कहने लगे—मैं पहले अमृतपान करूँगा, तुम नहीं। इस प्रकार बलवान दैत्य दुर्बलों को डाँटने लगे। भगवान् ने उसी समय मोहिनी का रूप, धारण किया। जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में अद्भुत लावण्य था, उसके द्वारा उन्होंने दैत्यों के चित्त में अत्यन्त कामवासना उत्पन्न कर दी—

दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन् मुहुः ।।४६।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

नवाँ अध्याय

मोहिनी द्वारा देवताओं को अमृत प्रदान तथा राहु का शिरच्छेदन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब असुरगण सौहार्द त्यागकर परस्पर एक-दूसरे से अमृत का कलश छीनने में व्यस्त थे। उसी समय उनके सामने आती एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री दिखलायी दी। उसका अनुपम रूप एवं विकसित तारुण्य को देखकर वे बरबस कामाकुल हो उठे और उसके समीप जाकर उससे पूछने लगे—सुन्दरी! तुम कौन हो? कहाँ से आयी हो? क्या चाहती हो? तुम्हें देखकर हमारा मन चंचल हो गया है। दयालु ब्रह्मा ने निश्चय ही तुम्हें हमारी इन्द्रियाँ एवं मन को प्रसन्न करने के लिए यहाँ भेजा है। हम सब कश्यपजी की सन्तान है। हम लोगों का एक वस्तु पर विवाद चल रहा है। तुम उचित न्यायकर उसे हम सब लोगों में बाँट दो जिससे हम लोगों का यह पारस्परिक विवाद मिट जाय। दैत्यों की ये बातें सुनकर मोहिनी रूप भगवान् ने मुस्कराते हुए उनसे कहा—आप लोग उत्तम कुल की सन्तान हैं। आपको पुंश्चली स्त्री का विश्वास नहीं करना चाहिए। उसकी मित्रता ठीक नहीं। वह नित्य नये-नये पुरुष खोजा करती है। हे राजन्!

इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ।
जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥११॥

मोहिनी के इस कपटपूर्ण वचनों से असुरों का उसके प्रति और भी अधिक विश्वास जम गया। कामान्धों ने हँसकर उसके हाथों में अमृत का कलश दे दिया। मोहिनी ने कहा—अच्छी बात है। मैं ही अमृत बाँट देती हूँ। किन्तु मैं जो कुछ भी करूँ उसे तुम्हें सहन करना होगा। असुरों ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तब मोहिनी के आदेश से ही देवता और असुरों ने शुद्ध जल से स्नान किया और सुन्दर नवीन वस्त्र एवं आभूषण पहनकर वे एक यज्ञशाला में दिव्य कुशासनों पर जा बैठे। मोहिनी भी अपने हाव-भाव एवं कटाक्षों से सबको मोहित करती हुई हाथ में कलश लिए आयी। उसने सुर एवं असुरों को पृथक्-पृथक् दो पंक्तियों में बैठा दिया और अपनी सुललित गति से दोनों पंक्तियों में आती-जाती रही। बीच-बीच में अपने स्तन आदि अङ्ग उघारकर असुरों को दिखा दिया करती। वे उसी से विमुग्ध रह जाते। मोहिनी ने आरम्भ में असुरों के समक्ष एक-आध बूँद अमृत टपकाकार यह भाव व्यक्त किया कि यह ऊपर का अमृत पतला है, इसे पहले देवताओं को पिला देना अच्छा होगा जिससे पीछे का गाढ़ा-गाढ़ा अमृत असुरों को सुलभ हो सके। इस प्रकार मोहिनी ने देवताओं को अमृत पिला दिया और असुरगण स्त्री से विवाद करना उचित न समझकर चुपचाप बैठे रह

गये, कुछ बोल तक न सके। स्त्रीविवाद के साथ पाँच बातें और भी त्याज्य बतायी गयी है।

बालसखित्वमकारणहास्यं स्त्रीजनवादसुदुर्जनसेवा।
गर्दभयानमसंस्कृतवाणी षट्सु नरो लघुतामुपयाति॥

बालकों के साथ मैत्री, अकारण हँसना, स्त्रियों से विवाद, दुर्जन की सेवा, गदहे की सवारी और गालीगलौज करना इन छः बातों से मनुष्य को नीचा देखना पड़ता है। राहु देवता का रूप धारणकर सुरपंक्ति में चन्द्र और सूर्य के बीच में जा बैठा। उसने जैसे ही अमृत पिया चन्द्र और सूर्य ने संकेत से बतला दिया कि यह असुर है। इस पर भगवान् ने चक्र से तुरन्त उसका सिर काट डाला। धड़ वही पृथ्वी पर गिर पड़ा। अमृत के प्रभाव से सिर अमरत्व को प्राप्त हो गया था जिसे ब्रह्मा ने अपने आदेश से ग्रह बना दिया। राहु की छाया ही केतु रूप में परिणत हो गई। कबन्ध को केतु नहीं समझना चाहिए। भुवनदीपक में लिखा है—

राहुच्छाया स्मृतः केतुः।

देवताओं को यों अमृत पिलाकर भगवान् ने पुनः अपना रूप धारण कर दिया—

स्वं रूपं जगृहे हरिः।

सर्पों को दूध पिलाने के समान ही असुरों को अमृत पिलाना व्यर्थ है यह जानकर भगवान् ने उन्हें अमृत नहीं पिलाया। हे राजन्! इस प्रकार समुद्र से १४ रत्न निकले। उनके नाम ये हैं—

लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा
धेनुः कामदुधा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधे
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम्॥

श्री मणि रम्भा वारुणी अमी शङ्ख गजराज
कल्पद्रुम शशि धेनु धनु धन्वन्तरि विष वाज॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

दसवाँ अध्याय

देवासुर-संग्राम

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ।
युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥१॥

समुद्रमन्थन में प्रयत्नपूर्वक परिश्रम करने पर भी भगवान से विमुख होने के कारण दैत्य-दानव अमृत न पा सके। देवताओं को अमृत पिलाकर भगवान् सबके देखते-देखते गरुड़ पर सवार हो वैकुण्ठ चल दिये। अमृत पीने से देवताओं का बलवैभव बहुत बढ़ गया। दैत्यगण देवताओं की यह उन्नति सहन न कर सके, फलतः दैत्यगण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर देवताओं पर टूट पड़े। समुद्रतट पर ही भीषण संग्राम छिड़ गया। शंख, भेरी आदि युद्ध के बाजाओं से आकाश गूँज उठा। उभय पक्ष के योद्धा नाना प्रकार के वाहनों पर चढ़कर उतर आये। रथी रथियों से, पैदल पैदलों से, घुड़सवार घुड़सवारों पर तथा गजारोही गजारोहियों से भिड़ गये। असुरों का सेनापति बलि, इच्छागामी रथ पर चढ़कर रणभूमि में आ डटा। उसके चारों ओर नमुचि, शंबर, बाण आदि बड़े-बड़े यूथपति दैत्य स्थित थे। उन्होंने सिंहनादपूर्वक शङ्खध्वनि करते हुए युद्ध के लिए देवताओं को ललकारा। शत्रुओं को मदोन्मत्त देखकर इन्द्र ऐरावत पर सवार हो लोकपालों के साथ समरांगण में उतर आये। वे परस्पर एक दूसरे को कटु वचन कहते हुए द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। बलि इन्द्र से अश्विनी कुमार वृषपर्वा से, शंबर त्वष्टा से, सूर्य बाणासुर से, बृहस्पति शुक्राचार्य से और शनि नरकासुर से युद्ध करने लगे। ये सब एक दूसरे पर बाण, तलवार, गड़ाँसा, बन्दुक, चक्र, गदा, शक्ति, फरसा, भाला, मुद्गर आदि से प्रहार करने लगे। योद्धाओं के हाथ, पैर, सिर और ग्रीवा कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। बहुत से वाहनों के छिन्न-भिन्न अङ्गों से सारी रणभूमि पट गयी। रक्त की नदियाँ बह चलीं। मस्तकहीन कबन्ध उठ-उठकर लड़ते थे। संग्राम में भयंकर हाहाकार मच गया। बलि ने क्रुद्ध होकर इन्द्र को १० और ऐरावत को ३ बाण मारे। इन्द्र ने हँसते-हँसते बीच में ही भाले से उन्हें काट दिया। बलि ने फिर और भी नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़े। इन्द्र ने क्षणमात्र में उन सबको काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। अस्त्र-शस्त्रों के विफल होने पर बलि युद्ध करते-करते अचानक अदृश्य हो गया और उसने आसुरी माया का प्रयोग आरम्भ कर दिया। फलतः आकाश में एक पर्वत खड़ा हो गया। उससे देवसेना पर बड़े-बड़े वृक्ष, पत्थर और अस्त्र-शस्त्र गिरने लगे। देवसेना विचूर्ण होने लगी। सिंह, व्याघ्र, शूकर, साँप, बिच्छू आदि कूद-कूदकर देवताओं को काटने लगे। नंगी राक्षसियाँ हाथों में त्रिशूल लेकर मारो काटो की ध्वनि करने लगीं। सहसा देवसेना में चारों ओर से आग लग गयी और देवता उसी में जलने लगे। थोड़ी देर में चारों दिशाओं से समुद्र भी उमड़ता हुआ

दिखायी दिया। जिसकी भीषण तरंगों से देवता घबरा उठे। जब देवता किसी प्रकार इस माया का निवारण न कर सके तब उन्होंने भगवान् का ध्यान किया। देवताओं के ध्यान करते ही भगवान् तत्क्षण वहाँ प्रकट हो गये—

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा माया विनेशुर्महिना महीयसः ।
स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ॥५५॥

उनके आते ही असुरों की सारी माया ठीक उसी प्रकार नष्ट हो गयी जैसे जागने पर स्वप्न नष्ट हो जाता है। हे राजन्! सचमुच भगवान् की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियों का नाश करनेवाली है; इसमें सन्देह नहीं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

ग्यारहवाँ अध्याय

संग्राम में देवताओं की विजय

शुकदेवजी ने आगे कहा—हे राजन्! भगवान् के प्रकट होते ही देवताओं में नया जीवन आ गया। वें स्वस्थ हो दैत्य-सेना को विध्वस्त करने लगे। इन्द्र ने क्रुद्ध होकर बलि को मारने के लिए अपना वज्र उठाया। यह देख दैत्य-सेना में हलचल मच गयी। इन्द्र ने बलि को ललकारते हुए कहा—अरे मूढ़! तू माया से हमें जीतना चाहता है। आज मैं वज्र से तेरा सिर काटकर पृथ्वी पर फेंक देता हूँ। देख अब किसकी विजय होती है। बलि ने कहा—अरे इन्द्र! तू मेरे सामने व्यर्थ की डींग क्यों मारता है? संग्राम में जय-पराजय तो काल के अधीन है और वह यथासमय सबकी हुआ करती है। इसलिए विद्वान् पुरुष इस पर हर्ष या शोक नहीं करते। तुम मुर्ख हो जो इस प्रकार बकवाद करते हो—

तदिदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः ।
न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥८॥

हे राजन्! इस प्रकार इन्द्र को डाँटकर बलि ने तीक्ष्ण बाणों से उस पर प्रहार किया जिससे क्रुद्ध होकर इन्द्र ने भी बलि पर वज्र छोड़ दिया। वज्र लगते ही बलि रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देख बलि का मित्र ज़म्भ नाम का दैत्य तुरन्त सिंह पर चढ़कर युद्धभूमि में आ डटा। उसने इन्द्र एवं ऐरावत पर एक ही साथ गदा से प्रहार किया। गदा लगते ही ऐरावत मूर्च्छित हो पैरों के बल पृथ्वी पर गिर पड़ा। ऐरावत को मूर्च्छित देखकर इन्द्र का सारथि मातलि तुरन्त रथ लेकर रणभूमि में आ पहुँचा। इन्द्र ने हाथी छोड़ रथ पर आरूढ़ हो वज्र से ज़म्भ का सिर काट डाला। उसके मरने पर सभी दैत्यों ने मिलकर इन्द्र पर बाणों की वर्षा की। इन्द्र ने हाथ की सफाई से उन सबके प्रहार विफल कर दिये। दैत्यों ने पुनः ऐसी बाणवर्षा की कि इन्द्र का रथ ही ढंक

गया। इन्द्र को न देख देवताओं में हाहाकार मच गया। किन्तु थोड़ी ही देर में इन्द्र ने सम्पूर्ण बाण-जाल काट डाला और सूर्य के समान वह पुनः प्रकट हो गये। इस बार इन्द्र ने क्रुद्ध हो बलि, पाक, नमुचि आदि सभी दैत्यों को मारकर पृथ्वी पर सुला दिया। असुरों का ऐसा घोर संहार देखकर ब्रह्माजी ने नारद को भेजकर युद्ध बन्द करा दिया। हे राजन्! नारदजी की अनुमति से दैत्यगण मृत बलि को शुक्राचार्य के समीप ले गये। शुक्राचार्य ने अपनी मृत-सञ्जीवनी विद्या के प्रभाव से बलि को जीवित कर दिया। अन्य दैत्यों को भी, जिनके अङ्ग नष्ट नहीं हुए थे, उन्हें जीवित कर दिया—

उशना जीवयामास सञ्जीविन्या स्वविद्यया ॥४७॥

राजा बलि बड़ा विवेकी था, इसीलिए पराजित होने पर भी उसे खेद नहीं हुआ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

बारहवाँ अध्याय

मोहिनी द्वारा भगवान् शिव का विमोहन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् !
मोहयित्वासुरगणान् हरिः सोममपाययत् ॥१॥

जब भगवान् शिव ने सुना कि भगवान् विष्णु ने मोहिनी रूप से दैत्यों को विमोहित कर देवताओं को अमृत पिलाया तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे पार्वती जी के साथ विष्णुलोक गये। भगवान् विष्णु ने यथोचित सत्कार कर दोनों को एक दिव्य आसन पर बैठाया। तब मुस्कराते हुए भगवान् शिव ने अपने परमप्रिय भगवान् विष्णु से कहा—भगवन्! आप साक्षात् आनन्दस्वरूप पूर्ण ब्रह्म हैं। संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के प्रधान कारण भी आप ही हैं। आपका वास्तविक स्वरूप कोई नहीं जान सकता। मैंने आपके सभी अवतार देखे हैं, किन्तु मोहिनी अवतार मैं नहीं देख सका, जिससे आपने दैत्यों को विमोहित कर देवताओं को अमृत पिलाया था। उसे देखने की मेरी बड़ी उत्कट इच्छा है। आप उस झाँकी का दर्शन करा देने की कृपा करें। शिवजी की प्रार्थना कर भगवान् विष्णु ने हँसकर कहा—हे देवाधिदेव! दैत्यों से अमृत का कलश लेने के लिए मैंने वह रूप धारण किया था। आपको मैं उसे अवश्य दिखाऊँगा। यह कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये और उमा सहित भगवान् शिव चारों ओर देखने लगे।

सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥१७॥

थोड़ी ही देर में सामने एक सुन्दर बगीचे में एक अतीव सुन्दरी युवती को उन्होंने गेंद खेलते देखा। आभूषणों से सुसज्जित उस युवती के तन पर अत्यन्त झीनी साड़ी

शोभा पा रही थी। उसकी चितवन में बड़ा ही आकर्षण था। वह कटितट से खिसकती साड़ी हाथ से सँभालती हुई दूसरे हाथ में गेंद उछाल रही थी। लज्जापूर्वक मुस्कराकर शिवजी की ओर उसने ऐसा कटाक्षपात किया कि उनका चित्त विचलित हो उठा। उमा, अपने शरीर एवं साथ के गणों का भी उन्हें कुछ ध्यान न रहा। कामावेश से वह उस युवती के पीछे हो लिए। वह जब गेंद के पीछे दौड़ी तो वायु ने शिवजी की आँखों के सामने ही उसके कटिभाग से साड़ी नीचे गिरा दी वह सर्वथा नग्न हो गयी। किन्तु अपने पीछे शङ्करजी को आते देख अति सलज्ज भाव से मुस्कराती हुई वृक्षों की आड़ में होकर भाग चली रुकी नहीं।

निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत ॥२६॥

काम से व्याकुल भगवान् शिव भी उसके पीछे दौड़े और बड़े वेग से झपटकर उन्होंने उसकी वेणी पकड़ ली। इस प्रकार भगवान् शिव ने उस युवती को पकड़कर प्रेमपूर्वक दोनों बाहुओं से हृदय में लगाकर उसका यथेच्छ आलिङ्गन किया। किन्तु वह युवती किसी प्रकार उनकी बाहुओं के बीच से निकल भागी। भगवान् शिव भी उसके पीछे दौड़ पड़े और उनका वीर्य स्खलित हो गया। जहाँ-जहाँ पृथ्वी में उनका अमोघ वीर्य गिरा वहीं सोने और चाँदी की खानें बन गयी। वीर्य स्खलित होने पर उन्हें स्मरण आया कि यह सब भगवान् की माया का खेल है। आज तो भगवान् की माया ने मुझे भी मोहित कर जड़ के समान ही बना दिया। मोह निवृत्त होने पर जब स्वस्थ हुए उसी क्षण भगवान् विष्णु हँसते हुए चतुर्भुज रूप में उनके सामने प्रकट हुए और बोले—

यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥३८॥

हे देवाधिदेव! आज तो आप अपनी ही इच्छा से मेरी माया से मोहित हुए हैं। आपके सिवा अन्य कौन मेरी माया का अतिक्रमण कर सकता है। आपने स्वयं मोहित होकर मेरे इस मोहिनी रूप का महत्त्व बढ़ा दिया है। अन्यथा काम को भस्म करने वाले आपका काम से व्याकुल होना आश्चर्य नहीं तो और क्या है? हे राजन्! इस प्रकार भगवान् विष्णु ने अपने सुमधुर बचनों द्वारा भगवान् शिव का बड़ा सत्कार किया। शिवजी भी भगवान् विष्णु की परिक्रमा कर उनकी अनुमति से गणों के साथ कैलास चले गये।

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुश्रृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ।
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥४६॥

हे राजन्! जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति से उत्तमश्लोक भगवान् के इस चरित्र का श्रवण या कीर्तन करता है, उसके समस्त सांसारिक क्लेश निवृत्त हो जाते हैं एवं उसका उद्योग कभी निष्फल नहीं जाता।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक परायण का पन्द्रहवाँ विश्राम)

❖

तेरहवाँ और चौदहवाँ अध्याय

शेष आठ मन्वन्तरों का वर्णन और उनके कार्य

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! स्वायम्भुव स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत इन पाँच मन्वन्तरों के अनन्तर छठे चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्र का मंथन हुआ। उसका वर्णन मैं आपको सुना चुका हूँ। अगले सातवें मनु का नाम श्राद्धदेव था। वह विवस्वान् के पुत्र थे। इसलिए इनका नाम वैवस्वत भी कहा जाता है। वर्तमान समय में यही मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तर में पुरन्दर नाम के इन्द्र हुए एवं वामन भगवान् ने अवतार लिया। भगवान् वामन ने याचक बनकर दैत्यराज बलि से तीन पैर पृथ्वी माँगी। फिर तीन पैरों से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नापकर उसका बन्धन भी कर डाला। अगले आठवें मनु का नाम सावर्णि होगा। उसमें बलि इन्द्र होंगे और सार्वभौम नाम से भगवान् का अवतार होगा। नवे मनु का नाम दक्षसावर्णि होगा। उसमें अद्भुत नाम के इन्द्र होंगे और ऋषभ भगवान् का अवतार होगा। दसवें मनु का नाम ब्रह्मसावर्णि होगा। उसमें शम्भु नाम के इन्द्र होंगे और विष्वक्सेन भगवान् का अवतार होगा। ग्याहरवें मनु का नाम धर्मसावर्णि होगा। उसमें वैधृत नाम के इन्द्र होंगे और धर्मसेतु नाम से भगवान् का अवतार होगा। बारहवें मनु का नाम रुद्रसावर्णि होगा। उसमें ऋतधामा नाम के इन्द्र होंगे और स्वधामा नाम से भगवान् का अवतार होगा। तेरहवें मनु का नाम देवसावर्णि होगा। उसमें दिवस्पति नाम के इन्द्र होंगे और योगेश्वर नाम से भगवान् का अवतार होगा। चौदहवें मनु का नाम इन्द्रसावर्णि होगा उसमें शुचिनाम के इन्द्र होंगे और वृहद्भानु नाम से भगवान् का अवतार होगा। हे राजन्! इस प्रकार चौदह मनु कहे गये हैं। मन्वन्तर षड्विध कहलाता है।

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।
ऋषयोऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥

(यहाँ केवल इन्द्र और अवतारों के ही नाम दिये गये हैं।) अब इन षड्विध मन्वन्तरों का कार्यविवरण भी सुनो। श्रीहरि की आज्ञा से (१) अंशावतार अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त होकर जगत् का निर्वाह करते हैं। प्रलय में जब वेद नष्ट हो जाते हैं तब (२) सप्तर्षिगण तपस्या से वेदों को प्राप्त करते हैं। (३) मनुगण वेदविहित धर्म का पृथ्वी में प्रचार करते हैं। (४) मनु के पुत्र (५) देवताओं के साथ मन्वन्तरपर्यन्त पुत्र, पौत्रादि क्रम से प्रजा का पालन करते हैं। (६) इन्द्र तीनों लोकों की लक्ष्मी प्राप्त कर उसका उपभोग करते हुए वृष्टि द्वारा लोकों की रक्षा करते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु बीत जाते हैं। इसी को कल्प कहते हैं। यह चार हजार युग का होता है।

चतुर्दशमनूनां च कथां यः कीर्तयेन्नरः।
शृणुयाद्वापि राजेन्द्र तस्य विष्णुः प्रसीदति ।।

हे राजन्! जो मनुष्य प्रेम से इन चौदह मनुओं की कथा सुनता या सुनाता है उस पर भगवन् विष्णु सर्वदा प्रसन्न रहते हैं।

।। श्रीमद्भागवत कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का १३वाँ और १४वाँ अध्याय समाप्त।।

❖

(१५वें अध्याय से २३वें अध्याय तक बलि-वामन का चरित्र)

पन्द्रहवाँ अध्याय

इन्द्रपुरी पर बलि का अधिकार और देवताओं का पलायन

राजा परीक्षित् ने पूछा—भगवन्!

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत।
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ।।१।।

सर्वानन्दपरिपूर्ण भगवान् वामन ने दीन की तरह बलि से तीन पैर पृथ्वी क्यों माँगी और पृथ्वी मिलने पर भी निरपराध बलि का बन्धन क्यों किया? मुझे भगवान् का यह चरित्र सुनने की बड़ी उत्कण्ठा है।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देवासुर-संग्राम में इन्द्र ने बलि को मारकर त्रिलोकी का राज्य प्राप्त कर लिया। तदनन्तर शुक्राचार्य ने अपनी सञ्जीविनी विद्या से उसको पुनः जीवित कर दिया। बलि ने जीवित होने पर भृगुवंशीय ब्राह्मणों को अपना तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण कर दिया और सर्वदा उन्हीं की सेवा में तत्पर रहने लगा। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर शुक्राचार्य ने स्वर्ग पर विजय प्राप्त करने के लक्ष्य से बलि द्वारा विश्वजित् नामक एक विशाल यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। उसकी पूर्णाहुति के दिन अग्निकुण्ड से अश्व सहित स्वर्णमण्डित एक दिव्य रथ निकला, जिसमें ध्वजा फहरा रही थी और धनुष, बाण, तरकस, कवच आदि सभी युद्ध-सामग्रियाँ विद्यमान थी। शुक्राचार्य ने राजा बलि को एक शंख दिया, एवं पितामह प्रह्लाद ने पौत्र को माला पहनायी। तदनन्तर ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचनपूर्वक बलि को दिव्य रथ पर बैठाया एवं उसने विशाल वाहिनी के साथ बड़ी तेजी से इन्द्रपुरी पर चढ़ाई कर दी।

ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन्निव रोदसी ।।११।।

इन्द्रपुरी की शोभा उस समय अद्भुत थी। सारी ऋद्धि-सिद्धियाँ वहाँ विराजमान थीं। ऐसी समृद्ध इन्द्रपुरी को बलि ने चारों तरफ से घेर लिया और भीषण शंख-ध्वनि की जिससे इन्द्राणी प्रभृति सभी देवांगनायें भयभीत हो उठीं। इन्द्र ने गुरु बृहस्पति से पूछा भगवन्! बलि के इस प्रकार उत्कर्षशाली होने का कारण क्या है? यह किस तेज

से इतना शक्तिसम्पन्न हो गया। गुरु बृहस्पति ने कहा—हे देवेन्द्र! भृगुवंशीय ब्राह्मणों नें उसे अपनी सारी शक्ति प्रदान कर दी है। अब उसके सामने भगवान् के सिवा दूसरा कोई टिक नहीं सकता। इसलिए जब तक तुम्हारे उत्कर्ष का समय न आये तब तक तुम लोग स्वर्ग का परित्याग कर अन्यत्र चले जाओ। जब बलि अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कर उन्हें असन्तुष्ट करेगा तब उनके कोप से उसका पतन निश्चित हो जायेगा। बृहस्पति की इस सलाह पर देवराज इन्द्र देवगण सहित इधर-उधर जाकर छिप गये और बलि ने इन्द्रपुरी पर अधिकार जमाकर तीनों लोक अपने वश में कर लिए। तदनन्तर शुक्राचार्य ने बलि के इन्द्रपद की स्थिरता के लिए उससे सौ अश्वमेध यज्ञ कराये। स्वर्ग की दिव्य सम्पदाओं के उपभोग से उसकी कीर्ति चारों दिशाओं में फैल गई और वह चन्द्रमा के समान सुशोभित होने लगा।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

सोलहवाँ अध्याय

कश्यप द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब दैत्यों ने इन्द्रपुरी पर अपना अधिकार जमा लिया और देवता भयभीत होकर वहाँ से भाग गये तब देवमाता अदिति अनाथ की तरह शोकाक्रान्त हो उठी। एक समय कश्यपजी समाधि से निवृति होकर उसके आश्रम में गये। उसमें न उत्सव था और न आनन्द। अदिति ने कश्यपजी को देखते ही उठकर उनका स्वागत किया और अर्घ्यपाद्य से पूजन कर उन्हें एक आसन पर बैठाया। कश्यपजी ने पत्नी को चिन्ताग्रस्त देखकर पूछा—प्रिये! मेरे यहाँ न रहने पर तुम्हारा चित्त उद्विग्न रहा होगा, इसलिए क्या किसी ब्राह्मण या अतिथि का तुमसे अनादर तो नहीं हुआ? क्योंकि तुम बड़ी चिन्तित और अस्वस्थ जान पड़ती हो।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स्वकीयं दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।

जिस गृहस्थ के घर में अतिथि निराश होकर लौटता है वह उसे अपना पाप दे और उसका पुण्य लेकर चला जाता है। क्या तुम्हारे अतिथिसत्कार आदि धार्मिक कार्यों में कोई बाधा तो उपस्थित नहीं हुई? तुम्हारे पुत्र तो कुशलपूर्वक हैं? उन्हें कोई कष्ट तो नहीं है? तुम इतनी उदास क्यों हो? तुम्हारी इस दशा से मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। यह सुनकर अदिति की आँखों में आँसू भर आये। उसने अपने पतिदेव से कहा—नाथ! क्या बताऊँ, दैत्यों ने मेरे पुत्रों का यश, ऐश्वर्य स्थान आदि सब कुछ छीन लिया है और मुझे भी वहाँ से निकाल दिया है। दु:ख के अथाह समुद्र में मैं डूब रही हूँ। आप

मेरा उद्धार करें। शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! अदिति का कथन सुनकर कश्यपजी मुस्कराते हुए पत्नी से बोले—अहो, भगवान् की माया बड़ी प्रबल है। सारे जगत् को उसने स्नेहपाश से बाँध रक्खा है।

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः।
कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम्॥१९॥

कहाँ यह भौतिक शरीर और कहाँ प्रकृति से परे आत्मा। संसार में कौन किसका पति, पुत्र, भाई और बन्धु है? इनमें आसक्ति का कारण मोह ही है। फिर भी प्रिये! तुम घबराओ नहीं। मैं तुम्हें एक व्रत बताता हूँ जिसके अनुष्ठान से प्रसन्न होकर दीनदयालु भगवान् तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से १२ दिन तक इस व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। प्रातःकाल मृत्तिकालेपनपूर्वक स्नान आदि कृत्यों से निवृत्त होकर भगवान् का 'नमस्तुभ्यम्' इत्यादि नौ मन्त्रों से षोडशोपचार पूजन करना चाहिए। सुन्दर चावलों की खीर बनाकर उसमें घी और चीनी मिलाकर व्रती 'द्वादशाक्षर' मन्त्र से यथाशक्ति अग्नि में हवन करें और मन्त्र का १०८ बार जप करें। तदनन्तर ब्राह्मणों को पायसान्न भोजन कराकर उनकी आज्ञा से स्वयं प्रसाद ग्रहण करें। प्रतिदिन इस नियम का पालन करता हुआ ब्रह्मचर्य से रहे, पृथ्वी पर शयन करे और त्रिकाल स्नान करें। त्रयोदशी के दिन उद्यापन करें। पहले भगवान् को पञ्चामृत से स्नान आदि कराकर उनका षोडशोपचार पूजन करें। तदनन्तर पूर्ववत् ब्राह्मणों को भोजन करावें और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करें। हे प्रिये! तुम इस व्रत का अनुष्ठान करो। इस व्रत के प्रभाव से भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

सत्रहवाँ और अठारहवाँ अध्याय

भगवान् वामन का प्रादुर्भाव और बलि के यज्ञ में गमन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! कश्यपजी के उपदेश से अदिति ने १२ दिनों तक बड़ी सावधानी से संयतचित्त होकर भगवान् का ध्यान और जप करते हुए पयोव्रत का अनुष्ठान किया। फलतः व्रत-समाप्ति के दिन भगवान् अपने दिव्य रूप से उसके समक्ष प्रकट हुए। उन्हें देखते ही अदिति प्रेम से विह्वल हो उनके चरणों में लोट गयीं। उसके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च छा गया एवं नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। आनन्दोद्रेक से कुछ देर तक तो उसके मुँह से वाणी ही नहीं निकली। किसी तरह हाथ जोड़कर गद्गद वाणी में वह भगवान् से बोली—प्रभो! आप दीनों के नाथ शरणागत प्राणियों की रक्षा करनेवाले हैं। जीवों को सुख और ज्ञान की प्राप्ति आपकी ही कृपा से होती है। शत्रुओं

पर विजय प्राप्त करा देना तो आपके लिए कोई असम्भव कार्य नहीं है। मैं इस समय बड़े कष्ट में हूँ, आप मेरी रक्षा करें। यह सुनकर उसके व्रत और भक्तिभाव से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा—देवि! मैं तेरा अभिप्राय समझ रहा हूँ। तू शत्रुओं का संहार एवं अपने पुत्रों को पूर्ववत् सुखी देखना चाहती है।

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः ।
यत्तेऽनुकुलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥१६॥

हे देवि! इस समय तुम्हारे शत्रुओं को परास्त करना कठिन है, क्योंकि दैव के अनुकूल होने के कारण ब्राह्मण उनकी रक्षा कर रहे हैं। ऐसे समय शत्रुओं पर पराक्रम करना सुखकारक न होगा। फिर भी तुम्हारे व्रत से सन्तुष्ट होकर मैंने इसका उपाय सोच लिया है। तू चिन्ता न कर। मैं पुत्ररूप से उत्पन्न होकर तेरे पुत्रों की रक्षा करूँगा। तू अपने पति में मेरी भावना रखकर उनकी सेवा आरम्भ कर दे और किसी के पूछने पर भी यह बात प्रकट न करना। तेरा सब कार्य गुप्त रीति से सुसम्पन्न हो जायेगा। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। अदिति भगवान् के आदेशानुसार बड़ी निष्ठा से पति की सेवा करने लगी। कश्यपजी ने समाधि द्वारा सारा रहस्य जान लिया और अपने में निहित भगवत्तेज अदिति में स्थापित कर दिया। समय आने पर भगवान् वामन भाद्रपद शुक्ल द्वादशी के दिन मध्याह्नकाल अभिजित् मुहूर्त में प्रकट हुए। उनका दिव्य विग्रह अनुपम सौन्दर्य से परिपूर्ण था। उनका जन्म होते ही स्थावर जङ्गम सभी जीव प्रसन्न हो उठे, आकाश में नगाड़े बजने लगे, गन्धर्व गान करने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और ब्रह्मा आदि देवता स्तुतिपूर्वक पुष्पवृष्टि करने लगे। कश्यपजी जी को आगे कर ऋषियों ने उनका उपनयन संस्कार किया। देवताओं और ऋषियों ने उन्हें छत्र, दण्ड कमण्डलु, जपमाला आदि नाना वस्तुएँ प्रदान कीं। साक्षात् भगवती उमा ने उन्हें भिक्षा दी।

भिक्षां भगवती साक्षादुमादादम्बिका सती ॥१७॥

वामनजी वहाँ से उठकर नर्मदा के उत्तर तट पर बलि की यज्ञशाला में चले गये। वहाँ शुक्राचार्य की अध्यक्षता में भृगुवंशीय ब्राह्मण शास्त्रीय विधि से बलि का यज्ञ करा रहे थे। जिस समय वामनजी यज्ञमण्डप में प्रविष्ट हुए, उनके तेज से सबकी कान्ति फीकी पड़ गयी और सभी ने उठकर उनका स्वागत-सत्कार किया। बलि ने एक दिव्य आसन पर उन्हें बैठाकर उनका चरणोदक लिया और हाथ जोड़कर कहा—

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्यवपुर्धरम् ॥२९॥

भगवन्! आपका स्वागत है। आपको नमस्कार है। आपके आगमन से मेरा कुल पवित्र एवं यज्ञ पूर्ण हो गया है। आपके चरणों से यह यज्ञभूमि भी पवित्र हो गयी है। हे वटो! आप हाथी, घोड़ा, सोना, चाँदी, धन, धान्य ग्रामादि जो भी वस्तु चाहें, मुझसे

ग्रहण करें। यदि चाहें तो मैं आपको ब्राह्मण की कन्या भी दे सकता हूँ। आप निःसंकोच जो इच्छा हो, माँग लें।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का १७वाँ और १८वाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

उन्नीसवाँ अध्याय

वामन द्वारा तीन पैर पृथ्वी की याचना और शुक्राचार्य का निषेध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! बलि के ऐसे सुमधुर वचन सुनकर वामन भगवान् ने प्रसन्न हो उससे कहा—दैत्येन्द्र! तुमने धर्म-युक्त एवं अपने कुल के अनुरूप ही वचन कहे हैं। इस कुल में आजतक ऐसा कोई नहीं हुआ जो कृपण हो या जिसने याचकों को विमुख किया हो। तुम्हारे काल में परम्परा से धर्म चला आ रहा है। इसके ज्वलन्त उदाहरण तुम्हारे पितामह प्रह्लाद हैं। इसी कुल में हिरण्याक्ष सरीखे वीर उत्पन्न हुए जिनका सामना कोई न कर सका। विष्णु ने भी बड़ी कठिनाई से उसका वध किया। वे भी उसके पराक्रम का स्मरण कर दहल जाते थे। उसके भाई हिरण्यकशिपु ने जब विष्णु का पीछा किया तब वे भागकर इधर-उधर छिपते फिरे। तुम्हारे पिता विरोचन की तो बात ही क्या? उन्होंने ब्राह्मणवेषधारी देवताओं को पहचान कर भी उन्हें अपनी आयु तक दे डाली। उसी कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है और संसार में तुम्हारे गृहस्थ धर्म की सर्वत्र प्रशंसा है।

तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात्।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥१६॥

इसलिए हे दैत्येन्द्र! मैं तुमसे केवल अपने पैर से तीन पैर पृथ्वी ही माँगता हूँ। बलि ने कहा—ब्राह्मण बालक तुम हो तो छोटे से, किन्तु तुम्हारी बातें वृद्धों की तरह हैं। मेरी इतनी प्रशंसा कर केवल तीन पैर पृथ्वी मांगते हो, यह उचित नहीं। इतना देने में तो मुझे स्वयं लज्जा आती है। एक द्वीप या जिससे सुखपूर्वक तुम्हारी जीविका चल सके, उतनी पृथ्वी तो कम से कम मुझसे माँगो। वामन ने कहा—राजन्! तुमने ठीक ही कहा है। किन्तु हम ब्राह्मण हैं। सन्तोष ही हमारा परम धन है।

सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ।

असन्तोषी ब्राह्मण की तृष्णा द्वीप देने पर भी शान्त नहीं हो सकती। हम छोटे से हैं। इतने से ही हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा। अधिक धन चाहनेवाला चोर है, यह दण्ड के योग्य होता है—

अधिकं योऽभिकाङ्क्षेत स स्तेनो दण्डमर्हति ।

इसलिए मुझे अधिक पृथ्वी की आवश्यकता नहीं है। शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! वामन की ऐसी बातें सुनकर बलि ने पृथ्वीदान का संकल्प छोड़ने के लिए जल

भरा कमण्डलु उठा लिया। शुक्राचार्य यह देख बलि से बोले—अरे मूर्ख! तू यह क्या कर रहा है? कुछ विचारता भी नहीं। बड़ा दानी बना है। सावधान! यह साक्षात् विष्णु हैं। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए कश्यप से अदिति में उत्पन्न होकर यहाँ आये हैं। ये दो ही पैर में सम्पूर्ण त्रिलोकी नाप लेंगे और तीसरा पैर पूरा भी न हो सकेगा। तब तु अपना निर्वाह कैसे करेगा? संसार में उस दान की प्रशंसा नहीं होती जिससे अपनी जीविका ही नष्ट हो जाय। हे दैत्येन्द्र! यदि तुम्हें प्रतिज्ञा टूट जाने का भय हो तो मैं इस विषय में तुम्हें ऋग्वेद की श्रुतियों का तात्पर्य बताता हूँ। ध्यान से सुनो, शरीर रूपी वृक्ष का पुष्प या फल सत्य कहा गया है। यदि शरीर नष्ट हो जाय तो वह सत्य रह नहीं सकता। इसलिए शरीर की रक्षा करना परमावश्यक है। शरीर की रक्षा अनृत से ही होगी, क्योंकि शरीर का मूल अनृत है—**अनृतं मूलमात्मन**।

जैसे वृक्ष जड़ से उखड़कर सूख जाता है वैसे ही अनृतरूपी मूल के सर्वथा अभाव में शरीर भी सूख जाता है अर्थात् सुख-सम्पत्ति से हीन हो जाता है। इसलिए तू शरीररक्षार्थ निषेध कर सकता है। धर्मशास्त्र का वचन भी है—

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥४३॥

स्त्रियों के मनाने में, हास-परिहास में, विवाह में, जीविका के विषय में, प्राणसंकट में, गौ-ब्राह्मण की रक्षा के लिए एवं किसी की हिंसा हो रही हो तो मिथ्या भाषण भी निन्दित नहीं माना जाता। याज्ञवल्क्य ने भी कहा है—

वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत्।

जहाँ सत्य बोलने से ब्राह्मण आदि वर्णों के वध की सम्भावना हो वहाँ साक्षी असत्य बोल सकता है।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

◆

बीसवाँ अध्याय

तीन पैर पृथ्वी दान में बलि को भगवान् के विराट् रूप का दर्शन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब शुक्राचार्य ने बलि से यह कहा तब वह थोड़ी देर तक तो वह चुप रहा। पुनः हाथ जोड़कर विचारपूर्वक वचन बोला—गुरुदेव! आपने गृहस्थ पुरुषों का धर्म उचित ही कहा, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु आप जानते हैं कि शरीर नश्वर है और लक्ष्मी चञ्चला है। एक दिन तो इन दोनों का नाश होना ही है। इसलिए ऐसे अवसर पर इनका सदुपयोग हो जाना मेरे विचार से अनुचित नहीं है।

शिवि, दधीचि प्रभृति महापुरुषों ने अपने प्राण देकर दूसरों का हित साधा है। मैं इस नश्वर धन के लोभ में इस छोटे से ब्राह्मण को विमुख कर दूँ, यह मुझसे न हो सकेगा, क्योंकि ऐसा करने से मेरे कुल में दाग लग जायेगा। गुरुदेव आप क्षमा करें। मैं आपकी सब बातें मानने को तैयार हूँ, किन्तु इस समय मैं झूठ नहीं बोल सकता जो मैं निश्चय कर चुका हूँ उसे होने दीजिये।

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः ।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥९॥

ब्रह्मर्षे! युद्ध में शरीर त्यागने वाले पुरुष बहुत मिल जायेंगे, किन्तु उत्तमपात्र मिलने पर श्रद्धा से दान देनेवाले पुरुष संसार में दुर्लभ हैं। इसलिए इस सुअवसर पर चूकना ठीक नहीं। धन कीर्ति से बढ़कर नहीं है, संसार में जिसकी कीर्ति है वह पुरुष मरने पर भी जीवित रहता है—

कीर्तिर्यस्य स जीवति।

अतएव मैं इस ब्राह्मण-बालक को इच्छानुसार पृथ्वी अवश्य दूँगा। बलि के ऐसा कहने पर गुरु ने कुपित होकर उसे शाप देते हुए कहा—रे दुष्ट! तू अपने को बड़ा पण्डित मानता है? मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर लम्बी-लम्बी बातें बघारता है—जा, तू शीघ्र ही राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट हो जा। बलि ने इस शाप को भी गुरु का अनुग्रह ही माना, पर अपने संकल्प से वह विचलित नहीं हुआ और पृथ्वीदान के लिए उद्यत हो गया। उसी समय उसकी पत्नी विन्ध्यावलि जल से पूर्ण सुवर्ण का कलश लेकर आई और बलि ने पहले विधिपूर्वक भगवान् वामन का पूजन किया। तत्पश्चात् सङ्कल्प के लिए जल भरा कमण्डलु उठाया। यह देखकर शुक्राचार्य अपने शिष्य की राज्यरक्षा के लिए कमण्डलु की टोटी में योग द्वारा घुस गये और उन्होंने टोटी का छिद्र ही बन्द कर दिया जिससे जल न निकल सका। तब वामन के संकेत पर बलि ने कुश से उसे खोद दिया। इस आघात से शुक्राचार्य का नेत्र फूट गया और वे वहाँ से निकल भागे। यह प्रसङ्ग बृहन्नारदीयपुराण में आया है। वहाँ लिखा है—

मायामाश्रित्य तस्तम्भ धारां दांनकमण्डलोः ।
भार्गवः शिष्यराज्यस्य स्थित्यै योगेन भूरिद ॥
तदेरितो वामनेन कुशेनाशोधयद्बलिः ।
कुशाग्रभिन्ननेत्रोऽसौ त्यक्त्वा पात्रमुखं मुनिः ॥
सम्प्रापाक्ष्णस्तु वैकल्यं सद्यो दानस्य वारणात् ॥

बलि ने वामन के चरण धोकर उन्हें तीन पैर पृथ्वी प्रदान की और उनका परम पवित्र चरणोदक अपने मस्तक पर धारण किया।

तदाऽसुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विताः ॥१९॥
नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो गन्धर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ।
मनस्विनानेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद् यद् रिपवे जगत्त्रयम् ॥२०॥

इस पर स्वर्ग से देवतागण बलि के कार्य की प्रशंसा कर पुष्पवृष्टि करने लगे, आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं एवं गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे। सभी लोग एक स्वर से बोल उठे कि बलि ने बड़ा ही दुष्कर कर्म किया। शत्रु को जानते हुए भी इसने तीनों लोक दे दिये। अनन्तर सबके देखते-देखते वामनजी का रूप बढ़ने लगा और वह धीरे-धीरे विराट् रूप में परिणत हो गया। यह देखकर सब लोग आश्चर्य से चकित रह गये। उस विराट् रूप में सातो लोक, नदी, पर्वत, द्वीप, समुद्र, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, तारा, इन्द्र आदि देवता, सिद्ध गन्धर्व, किन्नर, ऋषि महर्षि, चर, अचर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड था। यह देखकर सब असुर थर्राते हुए किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठे। सुनन्द, नन्दादि भगवान् के पार्षदगण इस विराट्स्वरूप में भगवान् की स्तुति कर रहे थे। उस समय विराट् भगवान् की शोभा अद्भुत थी। उन्होंने एक पैर से पृथ्वी और दूसरे पैर से ऊपर के सब लोक बलि के देखते-देखते नाप लिये। बाहुओं से दिशाएँ एवं शरीर से सम्पूर्ण आकाश भी नाप लिया। तीसरे पैर के लिए कोई स्थान शेष न बचा।

न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥३४॥

यह देखकर बलि आश्चर्य से चकित हो उठा।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

इक्कीसवाँ अध्याय

गरुड द्वारा बलि का वरुणपाश से बन्धन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पृथ्वी नापने के अनन्तर ऊपर के भी लोक नापने के लिए जब भगवान् का दूसरा चरण सत्यलोक पहुँचा तब उसके आघात से ब्रह्माण्ड का ऊपरी भाग फट गया और उस छिद्र द्वारा चिन्मयी जलधारा भगवान् के चरण प्रक्षालन करती हुई भीतर आ गयी। यह देख ब्रह्मा के आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने वहाँ पहुँचकर उसी जल से स्वयं भगवान् के दिव्य चरण धोये और वही जल अपने कमण्डलु में ले लिया। वे बड़े प्रेम से उस जल का पूजन कर उसकी स्तुति करने लगे। सनकादिक महर्षि एवं वेद, पुराण, इतिहास आदि शास्त्रों ने भी मूर्तिमान् होकर भगवान् के श्रीचरणों का पूजन किया। भगवच्चरण को प्रक्षालित करनेवाला वही जल गङ्गारूप से तीनों लोकों को पवित्र करता है।

मन्दाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो
गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम्।

स्वर्ग में मन्दाकिनी, पाताल में भोगवती और भूलोक में गङ्गा के रूप से वही साक्षात् ब्रह्मद्रव बह रहा है। सभी लोकों को नापकर भगवान् पुनः वामनरूप हो गये। तब ब्रह्मा आदि देवताओं ने यज्ञ में आकर पुनः विधिपूर्वक वामन भगवान् की पूजा की। ऋक्षराज जाम्बवान् ने उसी विराट स्वरूप की २१ बार प्रदक्षिणा कर चारों दिशाओं में विजय की घोषणा कर दी। बलि के अनुचरों ने जब वामन का इस प्रकार का छल देखा तब उनसे न रहा गया और वे सबके सब हाथों में शस्त्रास्त्र लेकर वामन पर टूट पड़े। यह देख भगवान् के पार्षद भी आसुरी सेना का बुरी तरह संहार करने में जुट गये। किन्तु बलि ने तुरन्त ही अपने अनुचरों को युद्ध से विरत किया और कहा—हे दैत्यो! अभी हमारा दैव प्रतिकूल हैं, अतः यह समय युद्ध करने का नहीं। जब दैव अनुकूल होगा तब हम भी विजय प्राप्त करेंगे। अपने स्वामी के ऐसे वचन सुनकर दैत्यसेना ने पाताल में प्रवेश किया और गरुड़ ने भगवान् की प्रेरणा से उसी समय वरुणपाश द्वारा बलि को बाँध लिया। इससे चारों ओर हाहाकार मच गया। अनन्तर भगवान् ने बलि से कहा—दैत्येन्द्र! तुमने मुझे तीन पैर पृथ्वी देने का संकल्प किया है। मैंने तुम्हारे सामने ही दो पैरों से सम्पूर्ण लोक नाप लिये हैं। तीसरा पैर अभी शेष है उसकी भी पूर्ति करो—

द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥२९॥

सङ्कल्पित वस्तु जो नहीं देता वह नरकगामी होता है, यह शास्त्र का सिद्धान्त है। इसलिए अब तुम नरक का भोग करो, कारण तुम्हारे पास देने को कुछ शेष नहीं है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

बाईसवाँ अध्याय

तीन पैर पृथ्वी के दान से भगवान् बलि के द्वारपाल

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् ने इस प्रकार तिरस्कृत कर बलि को सत्य से विचलित करना चाहा, किन्तु वह अपने वचन पर दृढ़ रहा, खिन्न नहीं हुआ और बड़ी उदारता से बोला—

यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते।
करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥२॥

हे भगवन्! मैंने जो आपसे कहा है उसे आप मिथ्या कदापि न समझें। मैं अपना संकल्प पूर्ण करता हूँ। आपको किसी प्रकार धोखा नहीं दे सकता। आप अपना तीसरा पैर मेरे सिर पर रखकर सहर्ष मेरा शरीर नाप लें। आप यह न समझें कि मेरा शरीर

छोटा होगा। धनसम्पत्ति की अपेक्षा धनवान् का शरीर स्वामी होने के कारण उससे बड़ा ही माना जाता है। मुझे नरकयातना या आपके द्वारा किये गये इस बन्धन का उतना भय नहीं जितना अपकीर्ति का है। आप गुप्तरूप से दैत्यों के परमगुरु हैं। इसीलिए समय-समय पर हम मदान्धों को अपनी विचित्र लीला द्वारा ज्ञान का उपदेश करते हैं। हमारे पूज्य पितामह प्रह्लादजी के साथ भी आपने विचित्र लीला की थी। एक ओर पिता द्वारा ही पुत्र का वध कराने लगे थे और दूसरी ओर स्वयं ही उसकी रक्षा भी करते रहे। आपने संसार में उनकी अखण्ड-कीर्ति फैला दी। मेरे भी आप शत्रु ही थे, किन्तु आपने कृपा कर बड़ी चतुराई से मेरी सम्पत्तियाँ छीनकर मुझे अपना लिया। इस नश्वर जीवन को सम्पत्तियों सहित एक दिन काल का कवल होना ही है। उन्मत्त जीव इसे समझ नहीं पाते। आपने तो मेरा जीवन एवं मेरी सम्पत्ति दोनों को सार्थक कर दिया, यह मेरा अहोभाग्य है। आप और भी जो दण्ड देना चाहें सहर्ष दे दें। आपकी लीलाओं में मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। बलि यह कह ही रहे थे कि प्रह्लादजी दिव्य विग्रह में वहाँ आ पहुँचे। बलि ने उन्हें देखकर नतमस्तक हो प्रणाम किया और आँखों में आँसू भर, मुख नीचे कर लिया। अपने पौत्र पर भगवान् की यह अनुपम अनुकम्पा देख प्रह्लादजी के शरीर पर पुलकावलि छा गयी और नेत्रों से आनन्द की अश्रुधारा बह चली। वे भगवान् के श्रीचरणों में सादर प्रणाम कर गद्‌गद् वाणी में बोले—भगवन्! आपने ही इसे इन्द्रपद दिया और आपने ही उसे ले लिया, यह आपका महान् अनुग्रह है। लक्ष्मी से ही जीव का अध:पतन एवं आत्मविस्मृति होती है। बड़े-बड़े विद्वान् इसी के चक्कर में फँसकर सन्मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं। आपने इसे अपना कर कृतार्थ किया, एतदर्थ आपको नमस्कार है।

शुकदेव जी बोले—हे राजन्! इसी समय बलि की पत्नी विन्ध्यावलि ने भी हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! आपने यह विश्व अपनी क्रीड़ा के लिए ही बनाया है। इसे जो लोग अपना समझ बैठते हैं उनकी बुद्धि पर मुझे तरस आता है। अन्त में ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर भगवान् से कहा हे नाथ! आपकी लीला बड़ी ही अद्भुत है।

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम्।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत्॥२३॥

जो मनुष्य प्रेम से आपके श्रीचरणों में थोड़ा-सा जल या दूर्वाङ्कुर ही चढ़ा देता है, उसे तो उत्तम गति प्राप्त हो जाती है। इसने तो उदारतापूर्वक त्रिलोकी सहित अपना शरीर तक आपको अर्पण कर दिया फिर भी इसका बन्धन हो, यह बड़ा आश्चर्य है। भगवान् ने कहा—ब्रह्मन्! तुम आश्चर्य न करो। मैं जिन पर अनुग्रह करता हूँ उसकी सम्पत्ति छीन लेता हूँ। सम्पत्ति से ही मनुष्य उन्मत्त होकर प्राय: मेरा एवं मेरे भक्तों का

अनादर करता है। जन्म, कर्म, वय, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और सम्पत्ति पाने पर भी जिसे अहङ्कार न हो उसपर मेरा पूर्ण अनुग्रह ही समझना चाहिए।

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥२६॥

यह दैत्यदानवों में शिरोमणि है, इसने मेरी माया जीत ली है। यह धन एवं स्थान से च्युत हुआ, शत्रुओं से बाँधा गया, गुरु ने इसे शाप दिया, मैंने इससे छल किया। इन समस्त आपत्तियों के आने पर भी इसने सत्य नहीं छोड़ा। यह मेरे दुर्लभ स्थान को प्राप्त करेगा। अब मैं इसके शरीर को भी नापकर तीन पैर पृथ्वी देने की इसकी प्रतिज्ञा को सफल बनाता हूँ। यह कह भगवान् ने बलि के मस्तक पर पैर रखकर उसका शरीर नापा और उनका पैर इसी में पूरा हो गया। भगवान् की लीलाशक्ति ने भगवान् का पैर बढ़ाने की चेष्टा की, किन्तु कृपाशक्ति ने उसे शरीर से आगे तिल भर भी बढ़ने न दिया। वह पैर पकड़कर बैठ गयी यह देखकर देवता आकाश से पुष्पवृष्टि करने लगे। भक्त और भगवान् के इस संघर्ष में हुई भक्त की विजय पर चारों ओर 'जय ज़यकार होने लगा। तब भगवान् ने बलि के सिर से अपना पैर हटाकर बलि को हृदय से लगा लिया और कहा—बेटा! मैं तुमसे हार गया, तुम सरीखा सर्वस्य देनेवाला मेरा दूसरा भक्त नहीं तुम इन्द्र होना चाहते हो, मैं तुम्हें आगामी सावर्णि-मन्वन्तर में इन्द्र बनाऊँगा। इस कल्प का जो विधान बन चुका है उसे यथावत् चलने दो। तुम इस समय सुतल लोक में चले जाओ। वह इन्द्रलोक से भी बढ़कर है। वहाँ किसी प्रकार का क्लेश नहीं। मैं वहाँ तुम्हारा द्वारपाल रहकर सपरिवार तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम वहाँ मुझे सर्वदा समीप में ही देखोगे—

सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥३५॥

धन्य है भगवान् की यह भक्तवत्सलता।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

तेईसवाँ अध्याय

बलि को सुतल का और इन्द्र को स्वर्ग का आधिपत्य प्रदान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् के स्नेहपूर्ण वचन सुनकर बलि के नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आए और वह हाथ जोड़कर गद्‌गद् वाणी में बोला—प्रभो! आपकी दया अपूर्व है। मुझ अधम असुर पर आपने जो अनुग्रह किया वह देवताओं को भी प्राप्त नहीं। आपकी आज्ञा से मैं सुतल लोक जा रहा हूँ। यह कहते ही बलि के बन्धन छूट गये। यह देखकर भक्तवर प्रह्लाद भगवान् से बोले—दयामय! सब देवताओं के प्रणम्य होने पर भी आप हम पामर असुरों के दुर्गपाल बन गए हैं। ऐसा अनुग्रह तो आजतक

ब्रह्मा, रुद्र एवं लक्ष्मी भी प्राप्त न कर सकीं। क्रूरयोनि में उत्पन्न हम लोगों पर आपकी ऐसी कृपादृष्टि हो, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। आप कल्पवृक्ष के समान भक्तों के मनोरथ पूर्ण करते हैं। आपकी दृष्टि में विषमता का लेश भी नहीं है। भगवान् ने कहा—वत्स प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो, तुम भी अपने पौत्र के साथ ही सुतल लोक चले जाओ और वहाँ अपने पारिवारिक सुख का उपभोग करो। मैं हाथ में गदा लेकर तुम्हारे दरवाजे पर खड़ा रहूँगा। मेरे दर्शन से तुम्हें कर्मबन्धन न होगा। प्रह्लाद ने भी भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर बलि के साथ भगवान् की परिक्रमा की और सुतल लोक में प्रवेश किया। अनन्तर भगवान् ने शुक्राचार्य से कहा—ब्रह्मन्! इस यज्ञ में जो कुछ त्रुटियाँ न्यूनता रह गई हो उसे आप पूर्ण कर दें। शुक्राचार्य ने कहा—हे भगवन्!

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसङ्कीर्तनं तव ॥१६॥

आपके नामोच्चारण से ही सारी न्यूनताएँ पूर्ण हो जाती हैं, यहाँ तो सर्वस्व अर्पण कर आपका सर्वतोभावेन पूजन किया गया है, फिर त्रुटि कैसे रह सकती है? तथापि मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ। यह कहकर शुक्राचार्य ने यज्ञ का अवशिष्ट कर्म पूर्ण किया। हे राजन्! इस प्रकार वामन ने बलि से त्रिलोकी का राज्य लेकर इन्द्र को दे दिया। अनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं ने कश्यप एवं अदिति के प्रीत्यर्थ वामन को उपेन्द्र पद पर अभिषिक्त किया जिससे इन्द्र पर आगे किसी प्रकार की आपत्ति न आए। ब्रह्मा की आज्ञा से वामन भगवान् को इन्द्र विमान द्वारा स्वर्ग में ले गये एवं वामन के साथ निर्भय हो स्वर्ग का पालन करने लगे। ब्रह्मा आदि देवता और ऋषि-महर्षि सभी भगवान् के इस अद्भुत कर्म की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थान को चले गये। हे राजन्! जो बलि वामन का यह दिव्य चरित्र श्रवण करता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और वह शरीर त्यागने पर परमगति प्राप्त करता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(बलिवामन-चरित्र समाप्त)

(मासिक पारायण का सोलहवाँ विश्राम)

❖

चौबीसवाँ अध्याय

वामनावतार के समान मत्स्यावतार की कथा

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे मुने! मैंने सुना है कि मत्स्य भगवान् भी वामन के समान ही बढ़े थे। कृपा कर आप विस्तार से इस कथा कां वर्णन करें। भगवान् ने ऐसा लोकगर्हित मत्स्यरूप क्यों ग्रहण किया? नैमिषारण्य में सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—हे ऋषिवृन्द! राजा परीक्षित् के इस प्रश्न पर शुकदेवजी ने कहा—राजन्! गौ, ब्राह्मण, साधु एवं धर्म की रक्षा के लिए भगवान् नाना प्रकार की ऊँच-नीच योनियों में अवतार ग्रहण करते हैं। जैसे बलि के अनुग्रहार्थ भगवान् ने वामनरूप ग्रहण किया, वैसे ही ग्रजर्षि सत्यव्रत के लिए उन्होंने प्रलयकाल में मस्त्यरूप भी धारण किया। यद्यपि इस मन्वन्तर में कोई वास्तविक प्रलय नहीं हुआ था। फिर भी भगवान् की इच्छा से मार्कण्डेय की तरह, इसमें भी आकस्मिक प्रलय का प्रदर्शन किया गया था। एक दिन ब्रह्मा को अकस्मात् निद्रा आने लगी जिससे उसी क्षण एक नैमित्तिक प्रलय हो गया। समुद्र ने तीनों लोक डुबा दिये। वेद ब्रह्मा के मुख से निकलकर जल में गिर पड़े और उन्हें हयग्रीव नामक दैत्य हरण करके ले गया।

ज्ञात्वा तद् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ।
दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः ॥९॥

दानव द्वारा इस प्रकार वेदों का अपहरण देखकर भगवान् ने तुरन्त मत्स्यरूप धारण किया और दैत्य को मारकर वेदों की रक्षा की। हे राजन्! यह घटना यों घटी थी, एक समय राजर्षि सत्यव्रत, जो इस कल्प के वैवस्वत मनु हुए हैं, केवल जल पीकर भगवान् नारायण के निमित्त तप कर रहे थे। एक दिन वह कृतमाला नाम की नदी में तर्पण कर रहे थे, उसी समय उनकी अंजलि में अकस्मात् एक मछली का बच्चा आ गया। उन्होंने उसे जल के साथ ही नदी में फेंक दिया। इस पर, मछली का यह बच्चा बड़ी दीनवाणी में राजा से बोला—मुझे नदी के बड़े-बड़े जलजन्तु खा जायेंगे आपने मुझे जल में क्यों फेंक दिया? उसके ऐसे दीन वचनों पर राजा को दया आ गयी, वे उसे अपने कमण्डलु में रखकर आश्रम में ले गये। वह मछली का बच्चा एक ही रात में इतना बढ़ा कि कमण्डलु में उसका रहना कठिन हो गया। तब उसने राजा से कहा—महाराज! मैं इस छोटे स्थान में रह नहीं पा रहा हूँ मुझे कोई बड़ा स्थल दें। राजा ने उसे उठाकर एक जलपूर्ण मटके में छोड़ दिया। वह मछली का बच्चा दो ही घड़ी में तीन हाथ बढ़ गया और फिर राजा ने उसके आग्रह पर उसे तालाब में छोड़ दिया। जब वह उस बड़े तालाब में भी न समा सका। तब राजा ने फिर उस विशाल मत्स्य को समुद्र में डाल दिया। इस पर उस मत्स्य ने फिर राजा से कहा—राजन्! यहाँ तो

मुझे मगर आदि बड़े-बड़े जल-जन्तु खा जायँगे, मुझे यहाँ न डालिये। राजा उसकी यह बात सुनकर चकित रह गया और बोला—हे भगवन्! आप है कौन? जो इस प्रकार मुझे मोहित कर रहे हैं। आजतक मैंने ऐसा विलक्षण मत्स्य नहीं देखा जो एक दिन में सौ योजन बढ़ जाय। आप निश्चय ही भगवान् जान पड़ते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। कृपा कर आप यह बतायें कि यह रूप आपने क्यों ग्रहण किया? इस पर भगवान् ने कहा—राजन्! आज से सातवें दिन प्रलयकालीन समुद्र में तीनों लोक डूब जायँगे। उस समय मेरी इच्छा से प्रेरित एक विशाल नौका यहाँ आयेगी—

उपस्थास्यति नौः काचिद् विशाला त्वां मयेरिता ।।३३।।

उस नौका में तुम आवश्यक औषधि एवं बीजों को रखकर सप्तर्षियों के साथ बैठ जाना। जब प्रलयकालीन वायु द्वारा नौका डगमगाने लगेगी तब मैं मत्स्यरूप धारण कर वहाँ आ जाऊँगा। मेरे एक सींग होगा, तुम उसी सींग में नौका बाँध देना। मैं ब्रह्मा की रात्रिपर्यन्त नौका खींचता हुआ प्रलयसागर में विहार करूँगा और वहीं तुम्हें आत्मतत्त्व का उपदेश भी दूँगा। यह कहकर भगवान् तुरन्त अन्तर्धान हो गये। राजर्षि सत्यव्रत कुशासन पर बैठकर भगवान् का ध्यान करते हुए उस प्रलयकाल की प्रतीक्षा करने लगे। ठीक सातवें दिन जब समुद्र में तीनों लोक डूबने लगे तब एक नौका वहाँ आ गयी। सप्तर्षियों के साथ राजा उसमें बैठ गये। उसी समय एक लाख योजन विस्तीर्ण मत्स्यरूपी भगवान् वहाँ प्रकट हुए। उन्हीं के एक सींग में राजा ने अपनी नौका बाँध दी और ८ श्लोकों से भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने समुद्र में विहार करते हुए राजा सत्यव्रत को मत्स्यपुराण का उपदेश किया और प्रलयलीला समाप्त होने पर जब ब्रह्मा निद्रा से जागे तब भगवान् ने हयग्रीव दैत्य का वध कर ब्रह्मा को वेद समर्पित किये। यही राजर्षि सत्यव्रत भगवान् के अनुग्रह से इस कल्प में वैवस्वत मनु हुए। जो मनुष्य श्रद्धाभक्ति से इस मत्स्यावतार का प्रतिदिन कीर्तन करता है उसके संकल्प सिद्ध होते हैं और वह परमगति को प्राप्त करता है।

अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ।
संकल्पास्तस्य सिद्ध्यन्ति स याति परमां गतिम् ।।६०।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के अष्टम स्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

अष्टम स्कन्ध समाप्त

❖

नवम-स्कन्ध प्रारम्भ

(नवें स्कन्ध में २४ अध्याय हैं। १३ अध्यायों में सूर्यवंश एवं ११ अध्याय से चन्द्रवंश की कथाओं द्वारा पुराण का सातवाँ लक्षण (ईशानुकथा) वर्णित है।)

पहला अध्याय

वैवस्वत मनु के पुत्र सुद्युम्न को स्त्रीत्व की प्राप्ति

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे ब्रह्मन्!

मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥१॥

आपने आठवें स्कन्ध में १४ मन्वन्तरों की कथाओं का वर्णन किया एवं उनमें अनेकानेक भगवान् के निर्मल चरित्र भी सुनायें। अब आप राजर्षि सत्यव्रत के वंश का विस्तार से वर्णन करने की कृपा करें; जिन्होंने मत्स्य भगवान् की कृपा से ज्ञान प्राप्त किया और जो इस कल्प में वैवस्वत मनु हुए थे। सूतजी ने कहा—हे शौनक! राजा परीक्षित् के इस प्रश्न पर शुकदेवजी ने कहा—राजन्! मनु के वंश का विस्तार से वर्णन करना तो सम्भव नहीं है। मैं उस वंश में उत्पन्न कतिपय प्रधान राजाओं का वर्णन करूँगा। कल्प के आदि में नारायण के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि के कश्यप हुए। कश्यप द्वारा अदिति में विवस्वान् का जन्म हुआ। विवस्वान् की संज्ञा नाम की पत्नी से राजर्षि सत्यव्रत श्राद्धदेव मनु के रूप में उत्पन्न हुए। इनका दूसरा नाम वैवस्वत था। इनके जब कोई सन्तान नहीं हुई तब गुरु वशिष्ठजी ने इनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया। मनु की पत्नी 'श्रद्धा' यज्ञ की दीक्षा ले केवल दूध पीकर रहा करती थीं। श्रद्धा ने चुपचाप होता के पास जाकर प्रार्थनापूर्वक कहा—भगवन्! आप ऐसे मन्त्रों से आहुति दें जिससे कन्या उत्पन्न हो। होता ने रानी की बात मान ली और अध्वर्युने जब आहुति देने के लिए होता से कहा तब उसने कन्या का ध्यान कर आहुति डाल दी। फलतः एक सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम इला रक्खा गया। यह देखकर मनु अत्यन्त प्रसन्न नहीं हुए और उन्होंने गुरु वशिष्ठ से कहा—ब्रह्मन्! मैंने संकल्प तो पुत्र का किया था, यह कन्या कैसे उत्पन्न हो गई? वशिष्ठ जी ने ध्यान द्वारा देखकर मनु से कहा—राजन्! यह कन्या होता के विपरीत सङ्कल्प से हुई पर तुम चिन्ता न करो। मैं अपने योगबल से इसे ही सुन्दर राजकुमार बना दूँगा। यह कहकर

वसिष्ठजी ने कन्या को कुमार बनाने की इच्छा से आदिपुरुष 'नारायण' की स्तुति की। भगवान् ने प्रसन्न होकर उस कन्या को सुन्दर राजकुमार बना दिया। जिसका नाम सुद्युम्न पड़ा। एक दिन राजकुमार सुद्युम्न घोडे पर चढ़कर कतिपय मन्त्रियों के साथ वन में शिकार खेलने गया। वहाँ मृगों का पीछा करता हुआ वह दैवयोग से इलावृतखण्ड में जा पहुँचा, जहाँ भगवान् शिव पार्वती जी के साथ विहार किया करते हैं। वहाँ प्रवेश करते ही वह स्त्री बन गया और उसका घोड़ा घोड़ी बन गया। सुद्युम्न के साथ जो मन्त्री आदि थे वे भी सब स्त्री बन गये। वे आपस में एक दूसरे को स्त्री रूप में देखकर हैरान हो उठे। इस पर परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूछा—हे मुनिवर! वह कैसा देश है? जहाँ जाने पर पुरुष स्त्री बन जाते हैं? शुकदेवजी बोले—राजन्! एक समय कुछ ऋषिगण भगवान् शिव के दर्शनार्थ इलावृतखण्ड में गये। वहाँ शिवजी पार्वतीजी के साथ विहारनिरत थे। ऋषि लोगों को वहाँ पहुँचे देखकर पार्वती अत्यन्त लज्जित हुई। उन्होंने स्वामी की गोद से उठकर तुरन्त वस्त्र पहन लिया। ऋषिगण यह देखकर उलटे पाँव लौट पड़े और बदरिकाश्रम चले गये। तभी से भगवान् शिव ने अपनी प्रिया के प्रीत्यर्थ वहाँ के लिए यह नियम बना दिया कि जो पुरुष इस स्थान पर प्रवेश करेगा; वह तुरन्त स्त्री बन जायेगा।

स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद्भवेदिति ।।३२।।

तभी से उस स्थान पर कोई पुरुष नहीं जाता। राजकुमार सुद्युम्न कन्या के रूप में अपनी सहेलियों के साथ वन में घूमता हुआ बुध के आश्रम पर जा पहुँचा। बुध ने इस सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या को देखकर उससे प्रेम करने की इच्छा की। कन्या ने भी इन्हें चाहा और दोनों का वही गान्धर्व विवाह हो गया। उन दोनों से पुरुरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कन्या वहाँ से फिर अपने राज्य में लौट आई और अपने गुरु वसिष्ठजी को बुलाकर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। गुरु वसिष्ठ उसकी यह दशा देखकर बड़े दुःखित हुए और उसके पुरुषत्व के लिए उन्होंने भगवान् शिव की आराधना की। शिवजी ने प्रसन्न हो अपने वचन के सत्यत्व की रक्षा करते हुए कहा—ब्रह्मन्! अच्छा जाओ, तुम्हारा शिष्य एक महीने पुरुष एवं एक महीने स्त्री रहा करेगा। सुद्युम्न इस व्यवस्था से पृथ्वी का पालन करने लगा, किन्तु प्रजा ऐसे राजा से प्रसन्न नहीं हुई।

पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन् स्म तं प्रजाः ।।४०।।

राजा सुद्युम्न के उत्कल, गय और विमल नामक तीन पुत्र हुए जो दक्षिण देश के राजा हुए। सुद्युम्न जब वृद्ध हुए तब वे अपने पुत्र पुरुरवा को राज्य देकर तप करने वन में चले गये।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का पहला अध्याय समाप्त ।।

❖

दूसरा अध्याय

वैवस्वत मनु के दस पुत्रों में पाँच के वंश का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब सुद्युम्न तप करने वन में चले गये तब वैवस्वत मनु ने पुत्र की कामना से सौ वर्ष तक यमुना तट पर भगवान् की आराधना की। उससे उनके अनुरूप दस पुत्र हुए।

इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ।
नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥१२॥

(आठवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में नभग के स्थान पर नाभाग एवं कवि के स्थान पर वसुमान् का जो उल्लेख है उसमें नभग और नाभाग में स्वार्थ में अण् प्रत्यय होने से कोई विशेष अन्तर नहीं है। कवि का अर्थ ज्ञानवान् है और वसति सर्वत्र वसुः आत्मा तद्वान् वसुमान् इस प्रकार अर्थसाम्य होने से कवि एवं वसुमान् में भी कोई विरोध नहीं है। अथवा कल्पभेद से भी नामों में अन्तर पड़ना सम्भव है।)

मनु-पुत्र पृषध्र गुरु की आज्ञा से गौओं का पालन किया करता था। एक समय रात्रि में वर्षा हो रही थी, कहीं से एक सिंह आकर गोशाला में घुस गया। गौएँ उसके भय से भाग खड़ी हुई। किन्तु सिंह ने झपटकर एक गाय को पकड़ लिया। गौ का चिल्लाना सुन पृषध्र तलवार लेकर दौड़ पड़ा। उसने वर्षा की रात के अंधेरे में सिंह के धोखे में कपिला गौ का सिर काट जाला—

अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥६॥

सिंह का भी कान कट गया था। वह भयभीत हो भाग निकला। प्रातःकाल जब पृषध्र ने मृत गौ पड़ी देखी तो उसे बड़ा दुःख हुआ। गुरु ने भी यह जानकर उसे शाप दे डाला—तू शूद्र हो जा पृषध्र ने हाथ जोड़कर शाप शिरोधार्थ किया। वह तभी से ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर वन में रहने लगा। भगवान् के ध्यान में निमग्न वह इधर-उधर वन में घूमा करता था। एक दिन दैवयोग से वन में आग लग गई। उससे उसका शरीर भस्म हो गया और वह ब्रह्म में लीन हो गया।

ब्रह्म प्राप परं मुनिः

मनु के छोटे पुत्र कवि बाल्यावस्था से ही विषयों से विरक्त एवं आत्मज्ञानी थे। वे १५ वर्ष की अवस्था में ही भाइयों सहित राज्य का त्याग कर वन में चले गये और वहाँ भगवान् में चित्त लगाकर परमपद को प्राप्त हुए। मनु पुत्र करूष से कारुष नाम की क्षत्रिय जाति हुई। धृष्ट से धार्ष्ट नामक क्षत्रियों का कुल उत्पन्न हुआ जो आचार-विचार से ब्राह्मण के सदृश ही प्रतीत होता था। नृग के सुमति और नरिष्यन्त के चित्रसेन पुत्र हुए। उनकी ही वंशपरम्परा में देवदत्त के साक्षात् 'अग्नि' पुत्र हुए। जिनका नाम

अग्निवेश्य था। इनका कुल ब्राह्मण ही रहा, कारण श्रुति कहती है—अग्निर्वै ब्राह्मणः। दिष्ट के पुत्र नाभाग हुए जो नभग के पुत्र नाभाग से अन्य थे। इन्हीं के वंश में चक्रवर्ती राजा मरुत्त हुए जिनके यज्ञ में घी पीने से अग्नि को अजीर्ण हो गया था। इनके वंश में तृणबिन्दु, विशाल और जनमेजय नाम के प्रतापी राजा हुए। हे राजन्! मनु के १० पुत्रों में दो विरक्त हे गए थे। पाँच पुत्रों के वंश का वर्णन ऊपर कर ही चुके हैं। अब शेष तीन पुत्रों के वंश का वर्णन सुनो।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त ।।

◆

तीसरा अध्याय

शर्याति के वंश में उत्पन्न सुकन्या और रेवती का उपाख्यान

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्!

शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह।
यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ।।१।।

मनु पुत्र शर्याति वैदिक कर्मों में बड़े प्रवीण थे। वे अंगिरा के वंशज ऋषियों के सत्र में दूसरे दिन का कृत्य बताने गये थे। उनकी सुकन्या नाम की एक सुन्दरी कन्या थी। एक दिन वे उसे साथ लेकर च्यवन ऋषि के आश्रम पर गये। उनके साथ थोड़ी-सी सेना भी थी। सुकन्या अपनी सखियों के साथ वन में इधर-उधर घूम रही थी। उसने एक स्थान पर बाँबी के अन्दर जुगनू-सी चमकती दो ज्योतियाँ देखीं। बालस्वभाववश उसने उन ज्योतियों को एक काँटे से छेद दिया। तत्काल उस त्योतिस्थान से रक्त बहने लगा। इससे शर्याति के सैनिकों का मलमूत्र उसी क्षण बन्द हो गया। शर्याति यह देखकर आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने अपने सैनिकों से पूछा—अरे वीरों! क्या तुम लोगों ने मुनि के आश्रम में कुछ उपद्रव तो नहीं किया? जान पड़ता है हम लोगों से कोई न कोई अपराध अवश्य हुआ है। इस पर सुकन्या भयभीत होकर बोल उठी—पिताजी! मैंने अज्ञानवश चमकती हुई दो ज्योतियों को काँटे से छेद दिया था शर्याति यह सुनकर मुनि के समीप गये और उन्होंने बड़ी मधुर वाणी से उनको प्रसन्नकर कन्या के अपराध के लिए क्षमा-याचना की। मुनि ने शर्याति से पूछा—राजन्! तुम्हारी कन्या की अवस्था क्या है? उसका विवाह हुआ है या नहीं? शर्याति ने इन प्रश्नों से मुनि का अभिप्राय जानकर वैवाहिक विधि से उन्हें अपनी कन्या समर्पित कर दी। इस प्रकार संकट से मुक्त होकर शर्याति मुनि की आज्ञा से अपने राज्य में लौट आये। सुकन्या अत्यन्त क्रोधी पति को प्राप्त कर नड़ी निष्ठा से उनकी सेवा करती रही। एक समय दैवयोग से च्यवन

के आश्रम पर देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार आये। च्यवन ऋषि ने विधिपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया और कहा मैं आपको यज्ञ में भाग दिलाऊँगा, आप मेरी अवस्था एवं रूप इतना सुन्दर बना दें जिसे देखते ही स्त्रियाँ मुझ पर मोहित हो जायँ।

क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥१२॥

अश्विनीकुमारों ने हँसकर कहा—अच्छा महाराज! ऐसा ही होगा। आप सिद्धों से निर्मित इस सरोवर में स्नान करें। आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। यह कहकर अश्विनीकुमारों ने जराजर्जरित वृद्ध मुनि को सहारा देकर सरोवर में प्रविष्ट कर दिया और स्वयं भी स्नान करने सरोवर में उतरे। स्नानकर सरोवर से सूर्य के समान तेजस्वी तीन पुरुष निकले। वे सुन्दर वस्त्र, आभूषण और मालाओं से सुसज्जित थे। सुकन्या उनमें अपने पति को पहचान न सकी। उसने अश्विनीकुमारों का ध्यानकर उनसे इस विषय में सहायता की प्रार्थना की। अश्विनीकुमारों ने सुकन्या के पातिव्रत्य से प्रसन्न होकर उसके पति को पृथक कर दिया जिससे वह बड़ी प्रसन्न हुई। आश्रम से विदा होते समय अश्विनीकुमार ऋषि को एक दिव्य औषध (च्यवनप्राश) देकर विमान द्वारा स्वर्ग चले गये। इस औषध के सेवन से ऋषि की अवस्था देवताओं के समान सर्वदा के लिए युवा हो गयी।

एक समय राजा शर्याति यज्ञ करने की इच्छा से च्यवन ऋषि के आश्रम पर गये। वहाँ अपनी कन्या के साथ एक सुन्दर तेजस्वी युवक को देखकर वे बहुत दुःखित हुए। उन्होंने प्रणाम करने पर भी पुत्री को हृदय से आशीर्वाद नहीं दिया और कहा—

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ।
यत् त्वं जराग्रस्तमसत्यसम्मतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥२०॥

अरी कुलक्षणे! तूने यह क्या किया? लोकपूजित वृद्ध मुनि का परित्यागकर इस पथिक जार से नाता क्यों जोड़ लिया? तेरी बुद्धि कैसे मारी गयी? तूने दोनों कुलों को कलंकित कर दिया। तेरे इस कुकर्म से पिता एवं पति दोनों कुल नरक में चले जाएँगे। यह सुनकर सुकन्या मुस्कराती हुई बोली—पिताजी! आपके लोकनमस्कृत जामाता यही हैं। अश्विनी कुमारों की कृपा से इनको यह रूप और तारुण्य प्राप्त हुआ है। आप अन्यथा न सोचें। पुत्री के वचन सुनकर शर्याति को बड़ा आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुत्री को स्नेहपूर्ण हृदय से लगा लिया। अनन्तर शर्याति ने अपने नगर में लौटकर महर्षि च्यवन के आचार्यत्व में सोमयाग आरम्भ कराया। महर्षि ने अपने तपोबल से यज्ञ का भाग अश्विनीकुमारों को दिला दिया। महर्षि के इस कार्य से रुष्ट होकर इन्द्र ने उन्हें मारने के लिए वज्र उठाया। किन्तु महर्षि च्यवन ने अपने तपोबल से वज्रसहित उनकी भुजा स्तम्भित कर दी। यह देखकर इन्द्र सहित समस्त देवता घबरा उठे और उन्होंने अश्विनीकुमारों को भाग देना स्वीकार कर लिया। शर्याति के पुत्र आनर्त और उनके पुत्र रेवत हुए, जिन्होंने समुद्र के बीच द्वारकापुरी का निर्माण कर

राज्य का पालन किया था। रेवत के सौ पुत्र हुए। उनमें ककुद्मी सबसे ज्येष्ठ थे। उनकी रेवती नाम की एक कन्या हुई ककुद्मी कन्या का वर पूछने ब्रह्माजी के समीप गये। ब्रह्मा के दरबार में उस समय गान हो रहा था। अवसर न मिलने से वहाँ एक क्षण ठहर गये। गान समाप्त होने पर उन्होंने ब्रह्मा से कन्या के लिए वर पूछा। ब्रह्मा ने हँसकर कहा—राजन्! अब तो पृथ्वी पर तुम्हारे समय के सब राजा मर चुके हैं। अब उनके वंश का भी वहाँ पता नहीं है, क्योंकि तुम्हें पृथ्वी छोड़े २७ चतुर्युग बीत चुके हैं। अच्छा, अब तुम जाओ। इस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने बलदेवजी के साथ अवतार लिया है। तुम अपनी कन्या बलदेवजी को अर्पण कर दो। ककुद्मी ब्रह्माजी को प्रणामकर अपनी राजधानी लौट आये और विधिपूर्वक बलदेवजी के साथ कन्या का विवाह कर तप करने बदरिकाश्रम चले गये।

बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥३६॥

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

❖

चौथा अध्याय

नभग और उनके पौत्र अम्बरीष का उपाख्यान

नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम्।
यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥१॥

वैवस्वत मनु के पुत्र नभग से नाभाग और नाभाग से अम्बरीष हुए। नभग छोटी अवस्था में गुरुकुल में चले गये थे। बहुत दिनों तक वे वहाँ से लौटे नहीं। भाइयों ने उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी समझकर उनका भाग भी आपस में बाँट लिया। जब वे गुरुकुल से लौटकर आये और उन्होंने अपना भाग माँगा तब भाइयों ने उन्हें पिता को ही भागरूप में दे दिया। नभग ने अपने पिता मनु को यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने पुत्र से कहा—वत्स! तुम्हारे भाइयों ने परिहास में तुमसे छल किया है। पिता कोई भोग्य वस्तु तो है नहीं। पर, तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारी आजीविका का कोई उपाय बताता हूँ। देखो, अङ्गिरा गोत्र के ये ऋषि यज्ञ कर रहे हैं। छठें दिन का कृत्य वे नहीं जानते। मैं तुम्हें विश्वेदेवों के दो सूक्त बतलाता हूँ जिनसे उस दिन का कृत्य पूर्ण होता है। तुम जाकर दोनों सूक्त उन्हें बता देना। वे यज्ञ की समाप्ति पर सारी सामग्री तुम्हें देकर स्वर्ग चले जायँगे। नभग ने ऐसा ही किया। फलतः यज्ञ की समाप्ति पर सम्पूर्ण सामग्री उन्हें मिल गयी। जब वे उसे लेने गये तब उत्तर दिशा से रुद्र ने आकर कहा—यज्ञ की सम्पूर्ण वस्तुएँ हमारी हैं तुम्हारी नहीं। यदि तुम्हें इस विषय में सन्देह हो तो तुम अपने पिता से जाकर पूछ लो। पूछने पर पिता ने भी सारी सम्पत्ति रुद्र की ही बतायी। नभग

ने भी आकर रुद्र से वैसा ही कह दिया। रुद्र उनकी एवं उनके पिता की सत्यता पर बड़े प्रसन्न हुए और यज्ञ की सम्पूर्ण सम्पत्ति नभग को ही देकर अन्तर्धान हो गये।

यह उपाख्यान बहवृच ब्राह्मण में आया है। इसके चिन्तन से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। शुकदेवजी ने कहा—राजन्! इन्हीं नभग के पुत्र नाभाग हुए जिनके पुत्र भगवद्भक्त अम्बरीष थे। उन्हीं अम्बरीष ने दुर्वासा ऋषि का शाप निष्फल कर दिया था। राजा परीक्षित् ने पूछा—भगवन्! इन राजर्षि का चरित्र कृपा कर आप मुझे सुनायें। जिन्होंने दुर्वासा ऋषि का शाप निष्फल कर दिया था। शुकदेवजी बोले—राजन्! अम्बरीष भगवान् श्रीहरि के अनन्य भक्त थे। उनकी आसक्ति राज्यलक्ष्मी में लेशमात्र भी न थी। वे उसे स्वप्न के समान नश्वर समझते और प्रतिक्षण भगवान् के ही ध्यान में निमग्न रहा करते थे।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥१८॥

उनकी मन, वाणी, श्रोत्र, हाथ, पैर आदि सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान् की ही सेवा में लगी रहती थीं। वे सभी कर्म भगवदर्पणबुद्धि से ही किया करते थे। उन्होंने अनेक अश्वमेध यज्ञ किये जिनमें देवता उन्हें प्रत्यक्ष होकर दर्शन देते थे। स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, राज्यकोष आदि सांसारिक किसी भी पदार्थ में उनकी ममता न थी। उनका चित्त सर्वदा भगवान् का ही चिन्तन किया करता था। भगवान् ने उनकी रक्षा के लिए अपना सुदर्शन चक्र नियुक्त कर दिया था। वह हर समय उनकी रक्षा में सन्नद्ध रहता था। एक समय उन्होंने अपनी रानी सहित भगवान् के प्रीत्यर्थ एक वर्षपर्यन्त शुद्ध एकादशी का व्रत किया—

युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥२९॥

यहाँ द्वादशी के निर्देश का तात्पर्य है—द्वादशीविद्धा ही एकादशी का व्रत करना चाहिए, दशमीविद्धा का नहीं। एकादशी के कालविषय निर्णय पर श्रीराधाजी का मत है—यदि दशमी पचपन घड़ी हो तो उस एकादशी का त्याग कर द्वादशी को व्रत करें। एक पल भी दशमी का वेध होने पर वह एकादशी त्याज्य बतलायी गई है जैसे गङ्गाजल से पूर्ण घट में मदिरा का एक बिन्दु भी पड़ जाने से वह त्याज्य हो जाता है। यदि कदाचित् एकादशी की वृद्धि हो और द्वादशी आ जाय तो व्रत में द्वादशी उपवासयोग्य बतायी है पूर्व नहीं—

दशमी पञ्चपञ्चाशद् घटिका चेत् प्रदृश्यते।
तर्हि चैकादशी त्याज्या द्वादशीं समुपोषयेत् ॥
दशमीपलमात्रेण त्याज्या चैकादशी तिथिः।
मदिराबिन्दुपातेन त्याज्यो गङ्गाघटो यथा ॥

एकादशी यदा वृद्धिं द्वादशी च यदागता।
तदा पराह्यु पोष्या स्यान्न पूर्वा द्वादशी व्रते॥

(गर्गसंहिता-माधुर्यखण्ड, ८/३२-३४)

व्रत की समाप्ति पर पारणा के दिन उन्होंने षोडशोपचार से भगवान् श्रीविष्णु का पूजन कर नाना प्रकार की वस्तुएँ एवं बहुत-सी गौएँ ब्राह्मणों को प्रदान कीं। वे पारणा का विचार कर ही रहे थे कि दैवयोग से उनके यहाँ अतिथि रूप से दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे। राजा ने अर्घ्यपाद्य आदि से ऋषि का पूजन कर उनसे भोजन की प्रार्थना की। ऋषि ने तथास्तु कहकर निमन्त्रण स्वीकार किया और मध्याह्नकृत्य के लिए यमुनातट पर चले गये। वहाँ स्नानकर दुर्वासा जी ब्रह्म का चिन्तन करने लगे। इधर द्वादशी समाप्त होने ही वाली थी। राजा बड़े धर्मसंकट में पड़े। उन्होंने धर्मशास्त्रियों से परामर्श कर भगवान् के चरणोदक से व्रत की पारणा कर ली।

प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत्॥४०॥

इतने में दुर्वासा ऋषि भी आ पहुँचे। राजा ने पारणा कर ली, यह जानकर उनके नेत्र क्रोध से लाल हो उठे और शरीर काँपने लगा। सामने हाथ जोड़कर खड़े अम्बरीष से वे बोले—अरे दुष्ट! तू तो बड़ा ही ढोंगी प्रतीत होता है। निर्लज्ज कहीं का भगवान् का भक्त बना है। मुझे निमन्त्रित कर पहले ही भोजन कर बैठा? अच्छा, अभी मैं तुझे इसका मजा चखाता हूँ यह कहकर ऋषि ने क्रोध से अपनी जटा पृथ्वी पर पटक दी जिससे एक भयंकर कृत्या उत्पन्न हुई। उसके शरीर से अग्नि की ज्वालायें निकल रही थीं। वह अपने हाथ में तलवार लेकर बड़ी तेजी से राजा पर झपटी। पर अम्बरीष भगवान् का स्मरण करते हुए वहाँ से एक पैर भी पीछे नहीं हटे।

भगवान् का सुदर्शन चक्र तो उनके रक्षार्थ पहले से ही नियुक्त था। उसने कृत्या को आते ही तुरन्त भस्म कर डाला। अनन्तर वह दुर्वासा ऋषि की ओर बढ़ा। यह देख ऋषि घबरा उठे और अपने प्राणों की रक्षा के लिए बड़ी तेजी से भागे। चक्र ने भी उनका पीछा किया। वे आकाश, पाताल, स्वर्ग मर्त्य आदि सभी लोकों में घूमते हुए ब्रह्मा तथा रुद्र के समीप गये, किन्तु कोई भी देवता चक्र से उनकी रक्षा न कर सका। विवश हो दुर्वासा भगवान् शिव के संकेत से श्रीविष्णु के ही चरणों में जा गिरे एवं उनसे रक्षा के लिए प्रार्थना की। भगवान् ने कहा—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥६३॥

महर्षे! मैं तो भक्तों के अधीन हूँ। तुमने मेरे निर्दोष भक्त का अपराध किया है। जो सब कुछ त्यागकर मेरा भजन करते हैं। उन्हें भला मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? महर्षे! निरपराध शान्त पुरुषों पर जो शक्ति का प्रयोग करता है वह शक्ति उलटे उसी का नाश कर देती है।

साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ।।६९।।

अच्छा, अब आप अम्बरीष के ही समीप जाकर इस अपराध के लिए क्षमा याचना करें। तभी आपकी रक्षा हो सकेगी अन्यथा नहीं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का चौथा अध्याय समाप्त ।।

❖

पाँचवाँ अध्याय

अम्बरीष की प्रार्थनापर सुदर्शन चक्र से दुर्वासा की प्राणरक्षा

शुकदेव जी ने आगे कहा—राजन्! सुदर्शन चक्र से परित्रस्त दुर्वासा ऋषि भगवान् के आदेशानुसार अम्बरीष के समीप पहुँचे और उनका पैर पकड़ने को उद्यत हुए। यह देखकर अम्बरीष अत्यन्त लज्जित हुए और संकोच में पड़ गये। वे उनकी प्राणरक्षा के लिए चक्र की प्रार्थना करने लगे—

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।
त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद् भुतकर्मणे गृणे ।।६।।

हे सुदर्शन, आप धर्म की रक्षा एवं अधर्मशील असुरों का संहार करनेवाले हैं। आप अपने दिव्य तेज से त्रिलोकी की रक्षा करते हैं। आपका वेग मन से भी तीव्र है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। दुष्टों के संहार के लिए ही भगवान् ने आपको नियुक्त किया है। आपकी महिमा अपार है। महात्माओं के हृदय में आप प्रकाश करनेवाले हैं। इन ब्राह्मण देवता की आप रक्षा करें मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। यदि मैंने कुछ भी यज्ञदान अथवा धर्मानुष्ठान आदि सत्कर्म किये हों और यदि ब्राह्मण ही हमारे कुल के इष्टदेवता रहे हों तो इन सबके प्रभाव से इन ब्राह्मण देवता का सन्ताप शीघ्र निवृत्त हो जाय—

कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः ।।१०।।

हे राजन्! अम्बरीष के यह कहते ही सुदर्शनचक्र शान्त हो गया और दुर्वासा ऋषि स्वस्थ हो अम्बरीष की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए बोले—राजन्! तुमने मुझपर बड़ा ही अनुग्रह किया। अपराध का कुछ भी विचार न कर मेरे प्राणों की रक्षा की। भगवान् के भक्तों का यह विलक्षण प्रभाव आज मैंने देखा। मैं तुम्हें अनन्तानन्त आशीर्वाद देता हूँ कि भगवान् में तुम्हारी दृढ़ भक्ति इसी प्रकार सदा बनी रहे। भगवान् की ऐसी भक्तवत्सलता देखकर दुर्वासा ऋषि के नेत्रों में अश्रु उमड़ आये और वे भक्त का गुणानुवाद करते-करते विह्वल हो गये। अम्बरीष ने भी दुर्वासा ऋषि के चरणों में गिरकर कहा—ऋषिराज! मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया। मेरे ही कारण आप पूरे एक वर्ष तक इधर-उधर भटकते फिरे। आपको भूख, प्यास सता रही होगी। मेरा अपराध क्षमा

कर आप पहले भोजन कर लें जिससे मेरे हृदय को शान्ति प्राप्त हो। राजा ने स्वयं भी अभी तक भोजन नहीं किया था केवल जल पी-पीकर उनके आगमन की प्रतीक्षा करते हुए दिन बिता रहे थे। अम्बरीष की प्रार्थना पर दुर्वासा ने तृप्तिपूर्वक भोजन किया। वे प्रसन्न होकर राजा अम्बरीष से बोले—बेटा! अब तुम भी भोजन करो। मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया। यह कहकर दुर्वासा ऋषि आशीर्वाद दे राजा की प्रशंसा करते हुए ब्रह्मलोक चले गये। ऋषि के जाने पर राजा ने परिवार सहित ऋषिराज का प्रसादरूप अन्न ग्रहण किया और ऋषि के कष्ट एवं उसकी निवृत्ति में भगवान् का ही प्रभाव माना। अपने कर्तृत्व का उनमें लेशमात्र भी अभिमान नहीं आया। हे राजन्! अम्बरीष के तीन पुत्र हुए विरूप, केतुमान् और शम्भु। भगवान् के अनन्यभक्त राजा अम्बरीष अपने पुत्रों को राज्य देकर तप करने वन में चले गये। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति से राजा अम्बरीष के इस परम पावन चरित्र का कीर्तन करता है, वह भगवान् का अनन्य भक्त हो जाता है।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

छठा अध्याय

इक्ष्वाकुवंशीय मान्धाता और सौभरि का उपाख्यान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वैवस्वत मनु के १० पुत्र थे, जिनका मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ। उनमें दो पृषध्र और कवि विरक्त हो गये। उनका वंश नहीं चला। करूष, धृष्ट, नृग, नरिष्यन्त और दिष्ट इन पाँच के वंश का वर्णन दूसरे अध्याय में, शर्यातिका तीसरे अध्याय में, नभग का चौथे अध्याय में हो चुका है। इस प्रकार नौ पुत्रों के वंश वर्णन के अनन्तर अब इस छठे अध्याय से १३वें अध्याय तक हम इक्ष्वाकुवंश का वर्णन करते हैं। इक्ष्वाकु के गर्भाधान के समय मनु को छींक आ गयी थी जिससे यह पुत्र घ्राण से उत्पन्न कहा जाता है। इक्ष्वाकु के १०० पुत्र हुए जिनमें विकुक्षि, निमि, दण्डक ये तीन ज्येष्ठ थे। २५ आर्यावर्त के पूर्व भाग के, २५ पश्चिम के, ३ मध्य के और शेष ४७ पुत्र दक्षिण तथा उत्तर प्रान्त के राजा हुए। एक दिन अष्टका-श्राद्ध में इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि से मांस लाने को कहा। उसने वन में जाकर श्राद्धोचित पशु मारे। थकावट और भूख से व्याकुल होने पर उनमें से एक शश (खरगोश) खा लिया। शेष लाकर पिता को दे दिया। इक्ष्वाकु ने गुरु वसिष्ठ से श्राद्ध के लिए उनका प्रोक्षण करने को कहा तो मुनि ने विकुक्षि का दुष्कृत्य जानकर राजा से कहा—राजन्! यह मांस उच्छिष्ट होने के कारण श्राद्ध के योग्य नहीं है। क्रुद्ध हो इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को तुरन्त देश से निकाल दिया। बाद में इक्ष्वाकु गुरु वसिष्ठ जी से ज्ञान प्राप्त कर दिव्य लोक चले गये। पिता के परलोक जाने पर विकुक्षि फिर राज्य में लौट आये और पृथ्वी का पालन करने लगे। शश खाने के कारण लोग

उन्हें शशाद भी कहते थे। एक समय देवासुर-संग्राम में उन्होंने इन्द्र को वृषभ बनाकर उसके ककुद पर बैठकर दैत्यों का पुर जीता था। इसलिए वे पुरञ्जय, इन्द्रवाह और ककुत्स्थ नाम से भी विख्यात थे। पुरञ्जय के पुत्र अनेना हुए, जिनकी वंशपरम्परा में राजा युवनाश्व उत्पन्न हुए। उनकी सौ रानियाँ थीं। किन्तु फिर भी राजा को पुत्रसुख प्राप्त नहीं हुआ। इसी कारण वे दुःखित हो वन में चले गये। ऋषियों ने दया कर उनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया। यज्ञशाला में रानी के लिए मन्त्रपूत पुंसवन-जल एक कलश में रक्खा था। दैवयोग से रात्रि में राजा को प्यास लगी और उन्होंने वही जल पी लिया। प्रातःकाल घट में जल न देखकर ऋषियों ने जब पूछा तो मालूम हुआ कि राजा ने पी लिया। इस घटना पर ऋषियों ने आश्चर्यचकित हो दैव को ही नमस्कार किया। समय आने पर राजा की कुक्षि फाड़कर एक पुत्र हुआ। पर उसने पीने के लिए दूध नहीं था, अतः वह बहुत रोता था। ऋषियों ने भी कहा—

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम्।
मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात्॥३१॥

अरे! यह बालक अत्यन्त रो रहा है। क्या पियेगा? इस पर यज्ञ में पूजित इन्द्रदेव ने कहा—यह मुझे पियेगा। यह कहकर इन्द्र ने अपनी अमृतस्राविणी तर्जनी अँगुली उस बालक के मुँह में दे दी। इसी कारण उस बालक का नाम मान्धाता पड़ा। ब्राह्मणों एवं देवताओं के प्रसाद से उसके पिता युवनाश्व मरे नहीं, पर लज्जावश वे राजधानी में नहीं लौटे। वही ऋषियों के आश्रम में साधना करते हुए मोक्ष को प्राप्त हुए। युवनाश्व के पुत्र मान्धाता चक्रवर्ती राजा हुए। उदयाचल से अस्ताचल तक उनका अखण्ड राज्य था। उन्होंने राजा शशबिन्दु की कन्या बिन्दुमती से विवाह किया जिससे उन्हें तीन पुत्र और ५० कन्याएँ हुईं। पचासों कन्याओं ने सौभरि ऋषि को ही अपना पति वरण किया। बात यह हुई कि सौभरि ऋषि यमुना के अन्दर तप करते थे। एक समय उन्होंने मछलियों के एक राजा को एक मछली से सम्भोग करते देखा, जिससे उनका मन चञ्चल हो उठा। उन्होंने मान्धाता के समीप जाकर उनसे एक कन्या माँगी। किन्तु राजा ने उन्हें वृद्ध जानकर परिहास में कह दिया कि आप स्वयंवर में अपनी इच्छानुसार कन्या ग्रहण करें। राजा का व्यंग्य समझकर ऋषि सौभरि अपने योगबल से कामदेव के समान दिव्य रूप धारण कर स्वयंवर में जा पहुँचे। उनका अनुपम सौन्दर्य देखकर सभी कन्याओं ने उन्हें ही पति वर लिया। वे उन सबको वहाँ से अपने आश्रम में ले गये। सौभरि ने उन सबके लिए दिव्य भवनों का निर्माण किया जिसमें गृहस्थी की सम्पूर्ण सामग्रियाँ भरी थीं। क्रीड़ा के लिए वन-उपवन, सुन्दर वापियाँ आदि भी उन भवनों के साथ बनी थीं। ऋषि ने राजकन्याओं के साथ बहुत दिनों तक विहार किया। उनमें प्रत्येक के सौ-सौ पुत्र हुए। एक दिन सौभरि के मन में अकस्मात् वैराग्य हो आया और वे विचार करने लगे—अरे, मेरी तो सारी तपस्या ही नष्ट हो गयी। मैंने यह क्या किया? अहो मेरे इस मोह का विस्तार तो देखो—

मनोरथानां न समाप्तिरस्ति वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथानामुत्पत्तयः सन्ति पुनर्नवानाम्॥
पद्भ्यां गता यौवनिनश्च जाता दारैश्च संयोगमिताः प्रसूताः।
दृष्टाः सुतास्तत्तनयप्रसूतिं द्रष्टुं पुनर्वाञ्छति मेऽन्तरात्मा॥
द्रक्ष्यामि तेषामिति चेत्प्रसूतिं मनोरथो मे भविता ततोऽन्यः।
पूर्णेऽपि तत्राप्यपरस्य जन्म निवार्यते केन मनोरथस्य॥
आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसङ्गि॥

(विष्णुपारण ४/२/११६-११९)

मनोरथों की समाप्ति तो हजारों-लाखों वर्षों में भी नहीं हो सकती है। मनोरथों की पूर्ति होने पर भी नये-नये मनोरथ उत्पन्न होते हैं। मेरे पुत्र हुए, वे पैरों से चलने लगे, युवा हुए, उनका विवाह हुआ, उनके पुत्र हुए। यह सब तो मैं देख चुका हूँ। अब मेरी अन्तरात्मा यह चाहती है कि मैं पौत्र देखूँ उसका भी पुत्र देखूँ। जब मैं वह भी देख लूँगा तब फिर दूसरा मनोरथ उठेगा। उसकी भी पूर्ति होने पर फिर आगे आनेवाली मनोरथों की शृंखला को कौन रोक सकता है। इसलिए मैंने भली-भाँति जान लिया है कि मृत्युपर्यन्त इन मनोरथों का अन्त नहीं हो सकता। जिस चित्त में मनोरथों की आसक्ति भरी हुई है वह कभी अपना मन परमार्थ-भगवान् में नहीं लगा सकता।

इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए वे तप करने वन में चले गए और उनकी स्त्रियाँ भी उन्हीं के पीछे चली गयीं। ऋषि सौभरि कठोर तपस्या द्वारा अपने देह का त्यागकर ब्रह्म में लीन हो गए और उनकी स्त्रियाँ भी चिता निर्माण कर उनके साथ सती हो गयीं।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का छठा अध्याय समाप्त ।।

◆

सातवाँ अध्याय

मान्धाता के वंशज त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र का उपाख्यान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मान्धाता के तीन पुत्र हुए अम्बरीष, पुरुकुत्स और मुचुकन्द। अम्बरीष के पुत्र यौवनाश्व हुए। पुरुकुत्स का विवाह नागों की बहन नर्मदा से हुआ था। पुरुत्स के पुत्र त्रसदस्यु हुए। इसी वंश परम्परा में राजा त्रिशंकु हुए, जो ब्राह्मण की कंन्या का अपहरण करने से क्रुद्ध हुए पिता के शाप से चाण्डाल हो गये थे। विश्वामित्र ने अपने तेज से उन्हें सशरीर स्वर्ग भेजना चाहा, परन्तु देवताओं ने वहाँ

से नीचे ढकेल दिया। विश्वामित्र ने उन्हें आकाश में ही रोक दिया और त्रिशंकु आजतक नीचे सर और ऊपर पैर किए लटके हैं।

सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते।
पातितोऽवाक् शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात्॥६॥

त्रिशंकु के पुत्र राजा हरिश्चन्द्र हुए। हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं हुआ। नारदजी के उपदेश से वरुणदेव की शरण में गए और उनसे प्रार्थना की—हे भगवन्! यदि मेरे पुत्र हो जायेगा तो मैं उसी से आपका यजन करूँगा। वरुणदेव की कृपा से उनके एक पुत्र हुआ, जिनका नाम रोहित था। वरुणदेव ने आकर हरिश्चन्द्र से यजन करने के लिए कहा। उन्होंने वरुण से प्रार्थना की—भगवन्! अभी तो यह बालक अपवित्र है। दस दिनों के बाद यजन करूँगा। दस दिन बीतने पर राजा ने वरुण से कहा—इसके दाँत निकलने पर यजन करूँगा। जब दाँत भी निकल आये तब कहा—इन दाँतों के गिर जाने पर यजन करुँगा। जब दाँत गिर भी गए, तब कहा—जब इसके फिर दाँत निकले तब यजन करूँगा। तब फिर दाँत निकल आए तब कहा—इसके संग्रामयोग्य होने पर अवश्य यजन करूँगा। इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र पुत्र के प्रेमवश वरुण को बराबर टालते ही रहे। पुत्र रोहित पिता का अभिप्राय जानकर प्राणरक्षा के लिए वन में चला गया। राजा की ऐसी वंचना से अन्ततः एक दिन वरुणदेव कुपित हो उठे। फलतः राजा को जलोदर हो गया। रोहित जब पिता को देखने नगर में आया तब इन्द्र ने कहा तुम तीर्थयात्रा करो। उस पुण्य से तुम्हारे पिता का रोग निवृत्त हो जायेगा। इन्द्र के यह कहने पर रोहित तीर्थयात्रा करने चले गये। इस तरह वे प्रतिवर्ष जब तीर्थ-यात्रा से लौटते तभी इन्द्र उन्हें पुनः तीर्थ-यात्रा का ही उपदेश देते थे। छठे वर्ष लौटते समय रोहित मार्ग में अजीगर्त के मध्यम पुत्र शुनः शेष को खरीदकर ले आये। उससे वरुण के यजन का विचार किया गया। वह बालक विश्वामित्र की कृपा से बच गया और वरुण भी प्रसन्न हो गये। इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र रोग से मुक्त हुए। एक समय विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा ली, जिसमें हरिश्चन्द्र स्त्री, पुत्र सहित बिक गये, किन्तु उन्होंने सत्य नहीं छोड़ा। इससे प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उन्हें आत्मज्ञान का उपदेश किया जिसके प्रभाव से सपरिवार ब्रह्मलोक चले गये।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का सातवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

आठवाँ अध्याय

रोहित के वंश में सगर का जन्म और कपिल जी के अनादर से उनके पुत्रों का नाश

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! रोहित के पुत्र हरित हुए जिनके वंश में राजा बाहुक का जन्म हुआ। बाहुक का राज्य शत्रुओं ने छीन लिया था। बाहुक अपनी रानियों सहित वन में चले गये और बार्धक्य के कारण वहीं उनका शरीरान्त हो गया। उनकी बड़ी रानी सती होना चाहती थी, किन्तु और्व ऋषि ने उसे गर्भवती जानकर रोक दिया।

आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह।
सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥४॥

बड़ी रानी की सौतों ने द्वेषवश उसे भोजन के साथ विष दे दिया था। उस विष के साथ ही बालक का जन्म होने से उसका नाम सगर हुआ। सगर चक्रवर्ती राजा हुए। इनकी सुमति और केशिनी नामक दो पटरानियाँ थीं। इन्होंने और्व ऋषि की आज्ञा से यवन कुल का संहार नहीं किया, बल्कि उन्हें मुण्डित, अर्द्धमुण्डित, मुक्तकच्छ आदि के द्वारा विरुप बनाकर छोड़ दिया। और्व ऋषि के आदेश से सगर ने निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ किये। सौवें यज्ञ में इनका अश्व इन्द्र चुरा ले गये। पिता सगर की आज्ञा से सुमति के साठ हजार पुत्र अश्व खोजने निकले। उसकी खोज में उन्होंने चारों ओर से पृथ्वी खोद डाली और कपिलजी के आश्रम तक जा पहुँचे। वहाँ अपना यज्ञीय अश्व बँधा देखकर उन्होंने कहा—'अरे! अश्व का अपहरण करनेवाला यह कैसे नेत्र बन्द किये बैठा है। यह बड़ा पापी है, इसे मारो यों हल्ला करते हुए वे शस्त्र उठाकर ज्योंही कपिलजी को मारने दौड़े त्योंही कपिलजी ने नेत्र खोले। उनकी नेत्रज्वाला से वे साठों हजार सगर-पुत्र तत्काल भस्म की ढेरी हो पृथ्वी पर गिर पड़े। **भस्मसादभवन् क्षणात्।**

सगर की दूसरी पत्नी केशिनी थी। उसके पुत्र का नाम असमञ्जस था। वह पूर्वजन्म का योगी था, किन्तु संगदोष से योगभ्रष्ट हो गया था। संगनिवृत्ति के लिए ही वह मनुष्यों को उद्विग्न किया करता था, खेलते बालकों को ले जाकर सरयू में डूबा देता था। सगर ने उसे दुश्चरित्र समझकर देश से निकाल दिया, किन्तु असमञ्जस ने अपने योगबल से उन डुबाये बालकों को पुनः सरयू से निकाल कर दे दिया और स्वयं पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर राज्य से निकल अन्यत्र चला गया। उसके चले जाने पर राजा सगर को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। असमञ्जस के पुत्र अंशुमान् हुए जो अपने पितामह सगर की आज्ञा से अश्वमेध के अश्व की खोज में निकले और साठ हजार सगर-पुत्रों द्वारा निर्मित पृथ्वी के मार्ग से कपिलाश्रम में जा पहुँचे जहाँ उनके पितर भस्मीभूत होकर पड़े थे। वहाँ समाधिस्थ कपिलजी को देख अंशुमान् ने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करते हुए कहा—

प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्गमनामरूपं सदसद्विमुक्तम्।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥२५॥

हे भगवन्! आप मायागुणों से परे हैं। आपमें मायारूप की कल्पना मिथ्या है। ज्ञानोपदेश के लिए ही आपने यह दिव्य विग्रह धारण किया है। मैं पुराणपुरुष आपको प्रणाम करता हूँ। इस पर भगवान् कपिल अंशुमान् से बोले—वत्स! तुम्हारे अश्वमेध का घोड़ा यह है, इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे ये पितर भस्म हो गये हैं। उनके उद्धारार्थ तुम गङ्गा लाने का प्रयत्न करो। अंशुमान् कपिलजी की परिक्रमा कर अश्व के साथ लौट आये। सगर ने उस यज्ञीय पशु से यज्ञ की शेष क्रिया पूर्ण की और अंशुमान् को राज्य देकर और्व ऋषि की कृपा से उत्तम गति को प्राप्त हुए।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

नवाँ अध्याय

अंशुमान् के वंशज भगीरथ, सौदास एवं खट्वाङ्ग का चरित्र

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ।
कालं महान्तं नाशक्नोत् ततः कालेन संस्थितः ॥१॥

अंशुमान् ने गङ्गा को पृथ्वी पर लाने के लिए बहुत काल तक तपस्या की। किन्तु गङ्गा को ला न सके और तप करते-करते ही परलोक सिधार गये। उनके पुत्र दिलीप हुए। वे भी गङ्गा को पृथ्वी पर लाने में समर्थ नहीं हुए और तप करते-करते उनका भी शरीरान्त हो गया। दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए जिन्होंने गङ्गा को पृथ्वी पर लाने के लिए एक पैर से खड़े हो अन्न-जल का त्यागकर कठोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर गङ्गा ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया और वर माँगने को कहा। भगीरथ माता गंगा के दर्शनों से ही कृतार्थ हो गये और उनके नेत्रों में आँसू भर आये, हाथ जोड़कर बोले—माता! मेरी कई पीढ़ियाँ समाप्त हो गयी हैं। मेरे पितर ब्रह्मतेज से दग्ध हो पड़े हैं। आपके बिना उनके उद्धार का कोई प्रायश्चित धर्मशास्त्रों में नहीं बताया गया है—

ब्रह्मावज्ञाहतानां च शुद्धिर्नेह कथञ्चन ।
विना गङ्गाम्भसो राजन् प्रायश्चित्तशतैरपि ॥

आप चलकर उनका उद्धार कर दें। यही मेरी अभिलाषा और वर है। गङ्गा ने कहा—राजन्! ठीक है, मैं अवश्य चलूँगी, किन्तु मेरा वेग कौन धारण करेगा? आकाश से अवतीर्ण होने पर तो मैं पृथ्वी का भेदन कर रसातल चली जाऊँगी। भगीरथ ने कहा—माता आपको भगवान् शिव धारण कर लेंगे, आप कृपाकर चलना स्वीकार करें। गङ्गा ने तथास्तु कहकर राजा की प्रार्थना स्वीकार की। बाद में भगीरथ ने भगवान् शिव की आराधना आरम्भ की। आशुतोष शिव जी ने भी प्रसन्न हो राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली। गङ्गा बड़े वेग से नीचे उतरीं और भगवान् शिव ने उन्हें अपने

जटामंडल में ही रमा लिया। अनन्तर भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर जटा की एक लट निचोंड़कर उन्हें दे दी जो विशालधारा के रूप में भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चली। गङ्गा की यह पावनधारा मार्ग में बहुत से देशों को पवित्र करती कपिलजी के आश्रम पर पहुँची, जहाँ गंगाजल का स्पर्श पाते ही भस्मीभूत सगर के साठों हजार पुत्र दिव्य विमानों में बैठकर स्वर्ग चले गये। हे राजन्? गंगा से बढ़कर संसार में कोई दूसरा तीर्थ नहीं। जो श्रद्धा-भक्ति से गंगा का सेवन करते हैं उनके पुण्य का वर्णन मैं नहीं कर सकता। भगीरथ के पुत्र श्रुत हुए, जिनके वंश में मदयन्ती के पति राजा सौदास वसिष्ठ के शाप से राक्षस हो गये थे। कारण एक समय वे शिकार खेलने वन में गये। वहाँ दो राक्षस रहते थे। वे दोनों सगे भाई थे। राजा ने उनमें से एक को मार डाला और दूसरा भाग निकला। वह दूसरा भाई बदला लेने के लिए राजा का रसोइया बन गया। एक दिन उसने विसष्ठजी की थाली में सुन्दर व्यञ्जनों के साथ मनुष्य का पका मांस परोस दिया जिस पर क्रुद्ध होकर वसिष्ठजी ने राजा को शाप दिया कि ब्राह्मण को अभक्ष्य वस्तु देने के अपराध में तू राक्षस हो जा। जब पता लगा कि यह कर्म राक्षस का है राजा का नहीं तब उन्होंने सौदास के राक्षसत्व की अवधि १२ वर्ष कर दी। सौदास ने गुरु के शाप को पूर्णतः अन्याय माना और स्वयं भी हाथ में जल लेकर गुरु को शाप देने के लिए उद्यत हुआ, किन्तु सौदास की पत्नी मदयन्ती ने तुरन्त आकर अपने पति से प्रार्थना की, कि आप ऐसा न करें। सौदास ने पत्नी की बात मानकर अपने हाथ का वह तीक्ष्ण जल अपने पैरों पर ही छोड़ लिया जिससे उसके पैर झुलस गये और तबसे उसका नाम कल्माषपाद पड़ गया।

राक्षसं भावमापन्नःपादे कल्माषतां गतः ॥२५॥

बाद में एक दिन राक्षस होकर सौदास वन में घूम रहा था कि उसने वहाँ विहार करते दम्पत्ति में से ब्राह्मण को खा लिया। इस पर ब्रह्माणी ने उसे शाप दिया—'दुष्ट! तेरी मृत्यु भी सहवास वेला में ही हो जाय।' इसके बाद ब्राह्मणी पति की हड्डियाँ बटोरकर वहीं सती हो गयी। जब सौदास १२ वर्ष बाद शाप से मुक्त हुआ तब उसने स्त्री से सहवास करना चाहा, किन्तु पत्नी ने ब्राह्मणी के शाप से भयभीत होकर पति को मना किया। तभी से राजा का स्त्रीसुख जाता रहा। एक दिन राजा ने वसिष्ठजी से पुत्र की प्रार्थना की उन्होंने अपने योगबल से रानी मदयन्ती में गर्भाधान कर दिया। किन्तु बालक सात वर्ष तक पैदा नहीं हुआ। वसिष्ठ ने मदयन्ती का पेट एक लोढ़े से ठोका जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो अश्मक कहलाया। इसी के वंश में राजा खट्वांग हुए जिन्होंने दैत्यों को मारकर देवताओं की सहायता की थी। देवताओं ने प्रसन्न होकर राजा खटवाङ्ग से वर माँगने को कहा। खटवाङ्ग ने कहा—हे देवगण! मेरी आयु कितनी शेष है, कृपाकर यह मुझे बताएँ। देवताओं ने कहा—हे राजन्! तुम्हारी आयु केवल एक मुहूर्त शेष है। खट्वाङ्ग ने अपने जीवन की शेष एक मुहूर्त आयु में सब कुछ भगवान् को अर्पण कर उनका परम धाम प्राप्त किया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का नवाँ अध्याय समाप्त ।।

दसवाँ अध्याय

खट्वाङ्ग की वंश परम्परा में भगवान् श्रीराम का जन्म और चरित्र

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

खट्वाङ्गाद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः ।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत् ॥१॥

खट्वाङ्ग से दीर्घबाहु, उनसे रघु, रघु से अज और अज से महाराज दशरथ हुए, जिनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार पुत्रों के रूप में साक्षात् भगवान् विष्णु ही अपने अंशों सहित अवतीर्ण हुए। उनका निर्मल चरित्र तो तुमने प्रायः सुना ही होगा। पृथ्वी का भार उतारने को ही भगवान् अवतीर्ण हुए थे। विश्वामित्र यज्ञरक्षार्थ राम और लक्ष्मण को राजा दशरथ से माँगकर ले गये वहाँ राम ने ताड़का, सुबाहु प्रभृति राक्षसों का वध किया। इसी समय राजा जनक की पुत्री सीताजी का स्वयंवर हुआ। सीताजी के जन्मप्रसङ्ग की कथा इस प्रकार है—रावण ने सप्तर्षियों से करके रूप में रक्त माँगा था, जो उसे एक घड़े में प्राप्त हुआ। वह घड़ा रावण ने अपने भवन में रख दिया और मन्दोदरी से कहा—इसे खोलना नहीं, मैं अभी बाहर जाता हूँ। रावण के चले जाने पर मन्दोदरी ने स्त्रीस्वभाववश घड़ा खोलकर उसका रक्त पी लिया। इससे उसके गर्भ रह गया। वह बड़ी भयभीत हुई। राक्षसी माया से गर्भ को निकालकर वह राजा जनक के राज्य में गाड़ आयी। अवर्षण काल में खेत जोतते समय राजा जनक के समक्ष सीताजी का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हीं के स्वयंवर में विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण मिथिला पहुँचे। वहाँ राम ने सब राजाओं के समक्ष धनुष तोड़कर सीता से विवाह किया। मार्ग में परशुराम से भेंट हुई। वाद-विवाद में उनका समाधान कर वे अपने नगर लौटे। वहाँ सीता के साथ सानन्द विहार करने लगे। भगवान् राम को युवराज बनाने का प्रसङ्ग चलने पर विमाता कैकेयी ने अपने पूर्वसञ्चित दो वरदानों द्वारा एक से भरत के लिए राज्य और दूसरे से श्रीराम के लिए वनवास माँगा। पिता के वचन रक्षार्थ सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन में चले गये, वहाँ पञ्चवटी में निवास करते हुए राम ने दुश्चरित्र शूर्पणखा के नाक-कान कटवाकर उसके पक्ष के खर, दूषण आदि १४ हजार राक्षसों का संहार किया। यह समाचार सुन रावन ने मारीच को सोने का मृग बनाकर सीता का हरण किया। राम ने सीता के वियोग में कामी पुरुषों की दशा का अद्भुत चित्रण किया। मार्ग में पड़े मरणासन्न जटायु से सीता की सुधि प्राप्त कर जटायु का पुत्रवत् दाहसंस्कार किया। तदनन्तर हनुमान द्वारा सुग्रीव से मित्रता की और बालि को मारकर हनुमान द्वारा सीता का पता लगाया। शरण में आये विभीषण को अपनाकर समुद्र पर पुल बाँधा और बानरी सेना के साथ लङ्का पर चढ़ाई कर दीं। वहाँ कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि दैत्यों को मारकर अन्त में रावण का भी संहार किया और विभीषण को

लंका का राज्य देकर पुष्पक विमान द्वारा सीता आदि के सहित अयोध्या लौटे। राम के वियोग में भरतजी गोमूत्र में जौ पकाकर खाते घोर तपकर रहे थे। उनकी दशा देखकर भगवान् के नेत्रों में जल भर आया और उन्होंने भरत को उठाकर हृदय से लगा लिया। पुनः भाइयों के साथ राजभवन में प्रवेशकर कैकेयी आदि माताओं को प्रणाम किया। वशिष्ठ जी ने विधिपूर्वक भगवान् श्रीराम का राज्याभिषेक कराया। भगवान् राम के राज्य में त्रेतायुग सत्ययुग के समान हो गया था। आधि-व्याधि, दुःख शोक की तो बात ही क्या, मृत्यु भी बिना इच्छा के किसी की नहीं होती थी—

नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ।
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद् रामे राज्यन्यधोक्षजे ।।५४।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का दसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का सत्रहवाँ विश्राम)

◆

ग्यारहवाँ अध्याय

राम द्वारा सीता का परित्याग एवं चारों भाइयों के वंश का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् ने लोकशिक्षार्थ बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया जिनमें ब्राह्मणों को सम्पूर्ण पृथ्वी दानकर दी। भगवान् की ऐसी अनुपम उदारता देखकर ब्राह्मणों का हृदय गद्गद् हो गया। उन्होंने प्रसाद रूप में पुनः भगवान् को पृथ्वी अर्पण कर दी और बोले—भगवन्! हमसे इस पृथ्वी का पालन न हो सकेगा। आप हमारे हृदय का अन्धकार दूर कर रहे हैं। इसीसे हमने सब कुछ पा लिया। यह कह ब्राह्मण लोग भगवान् को आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान को चले गये और भगवान् अपने भाइयों के साथ गार्हस्थ्य सुख का अनुभव करने लगे। एक दिन भगवान् राम लोकमनोवृत्ति की जिज्ञासा से वेष बदलकर रात्रि में घूम रहे थे कि एक धोबी ने अपनी स्त्री से कहा—

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम्।
स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ।।९।।

'अरी व्यभिचारिणी! तू रातभर दूसरे के यहाँ रहकर मेरे पास आयी है। मैं राम की तरह स्त्रीलोलुप नहीं हूँ जो तुझे ग्रहण कर लूँ। यह कहकर उसने अपनी स्त्री को घर से निकाल दिया। भगवान् राम इस लोकापवाद से भयभीत हो उठे। उन्होंने सीता को बाल्मीकि ऋषि के आश्रम में छुड़वा दिया। सीता उस समय गर्भवती थीं। यथासमय उसके कुश और लव दो पुत्र हुए। मुनि ने विधिपूर्वक उनका संस्कार किया। लक्ष्मण के अंगद और चित्रकेतु, भरत के तक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्न के सुबाहु और श्रुतसेन दो-

दो पुत्र हुए। शत्रुघ्न ने मधु के पुत्र लवण राक्षस को मारकर मधुवन में मथुरापुरी का निर्माण कराया। सीता ने कुछ दिनों के बाद, अपने पुत्र मुनि के चरणों में सौंप दिये और स्वयं भगवान् का ध्यानकर पाताल में प्रवेश किया। भगवान् राम जनकनन्दिनी के गुणों का स्मरण कर अत्यन्त शोकाकुल हुए। वे तीव्र शोकावेश को रोक न सके। इसके बाद, ब्रह्मचर्य व्रतपूर्वक तेरह हजार वर्षों तक अखण्डित अग्निहोत्र किया। तदनन्तर भगवान् राम सशरीर अपने दिव्य धाम को चले गये।'

(रजक का पूर्वजन्म)

एक दिन सीताजी सखियों के साथ उद्यान में खेल रही थीं। वहाँ उन्हें एक वृक्ष की डाल पर दो तोते बैठे दिखाई दिये। तोते बड़े ही सुन्दर थे। वे दोनों आपस में सीता एवं राम के विवाह सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे। सीताजी कुछ देर तक ध्यान से सुनती रहीं। बाद में उन्होंने सखियों द्वारा उन दोनों को पकड़वा लिया। सीता ने उन्हें आश्वासन देकर उनसे अपनी सारी कथा सुन ली और उन पक्षियों से कहा—मैं तुम्हें तभी छोड़ूंगी जब राम मेरे साथ विवाह कर लेंगे। तुम मेरे घर में सुखपूर्वक रहो और मीठे-मीठे फल और पदार्थ खाओ। सुग्गी गर्भिणी थी। वह यह सुनकर काँप उठी। और बोली—राजकुमारी! मैं अपने स्थान पर बच्चे पैदाकर फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगी। हम वन के पक्षी हैं। तुम्हारे घर में हमें सुख न हो सकेगा। तोते ने भी बहुत कुछ प्रार्थना की, किन्तु बालोचित हठ से सीता ने सुग्गी को छोड़ा नहीं। तोता किसी प्रकार उड़ गया। सुग्गी को पति का वियोग असह्य हो गया। वह बोली—अरी! मुझ दु:खिनी को इस अवस्था में तू पति से अलग कर रही है, अत: तुझे भी गर्भिणी दशा में पति से विलग होना पड़ेगा। यह कहकर 'राम-राम' का उच्चारण कर सुग्गी ने प्राण त्याग दिये। उसे लेने के लिए एक सुन्दर विमान आया। वह उसमें बैठकर दिव्यरूप से भगवद्धाम को चली गयी। पत्नी के वियोग में तोते ने भी देह त्याग दिया। वही तोता इस बैर का बदला लेने के लिए अयोध्या में धोबी के रूप में प्रकट हुआ था।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

बारहवाँ अध्याय

कुश के वंश का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! कुश के पुत्र अतिथि हुए। इन्हीं की वंश परम्परा में राजा मरु हुए, जो इस समय कलापग्राम में निवास करते हैं। यह कलियुग के अन्त में सूर्यवंश का लोप होता देखकर पुन: उसका विस्तार करेंगे इनके वंश में बृहद्बल नाम के एक राजा हुए जिनको तुम्हारे पिता अभिमन्यु ने मारा था। यहाँ तक इस वंश के

राजा हो चुके हैं। इनका पुत्र बृहद्रण होगा और आगे इक्ष्वाकु राजा का यह वंश सुमित्र राजा तक चलकर नष्ट हो जायेगा।

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥१६॥

हे राजन्! इस प्रकार हमने तुमसे इक्ष्वाकु के पुत्र विकुक्षि के वंश का वर्णन किया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

तेरहवाँ अध्याय

निमि के वंश का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने यज्ञ करने की इच्छा से वसिष्ठ को ऋत्विक् बनाया, किन्तु वसिष्ठजी यज्ञ आरम्भ कर इन्द्र का यज्ञ कराने चले गये। जाते समय यह कह गये कि जब तक मैं लौटकर न आऊँ तब तक तुम मेरी प्रतीक्षा करना। गुरु के जाने पर निमि ने जीवन की अस्थिरता का विचारकर अन्य ऋत्विजों से यज्ञ कार्य पूर्ण करा लिया। जब गुरु वसिष्ठ लौटकर आये तो शिष्य द्वारा किया गया यह अन्यान्य उनसे सहन न हो सका। उन्होंने उसे शाप देते हुए कहा कि तेरा देहपात हो जाय। शिष्य ने भी लोभी गुरु को शाप दे डाला कि आपका भी देहपात हो जाय। इस प्रकार के परस्पर के शाप से दोनों का ही शरीरान्त हो गया। वसिष्ठजी मित्रावरुण के वीर्य से घट द्वारा उत्पन्न हुए। उधर राजा निमि का मृतक शरीर ऋत्विजों ने सुगन्धित तेल में रख दिया था। यज्ञ की समाप्ति पर ऋत्विजों ने देवताओं से राजा के जीवित होने की प्रार्थना की। देवताओं ने तथास्तु कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर राजा को जीवितकर दिया। किन्तु निमि ने कहा—

मा भून्मे देहबन्धनम्।

मैं देह बन्धन नहीं चाहता, कारण इससे ही संसार के नाना दुःख उठाने पड़ते हैं। यह सुन देवताओं ने कहा अच्छा, तुम विदेह ही रहकर मनुष्यों के नेत्रों में निवास करो और उनकी पलकों के उठने-गिरने के कार्य में प्रवर्तक बन जाओ जिससे लोगों को तुम्हारी प्रतीति होती रहे। निमि ने इसे स्वीकार कर लिया। अराजकता के भय से ऋषियों ने निमि के शरीर का मन्थन किया जिससे एक सुन्दर कुमार उत्पन्न हुआ।

जन्मना जनकः सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥१३॥

वह जन्म के कारण जनक, मृतक देह से उत्पन्न होने के कारण वैदेह एवं मन्थन के कारण मिथिल कहलाया, जिसने मिथिलापुरी का निर्माण किया। जनक के पुत्र

उदावसु हुए, जिनके वंश में सीरध्वज हुए थे। यह यज्ञ के लिए हल से पृथ्वी जोत रहे थे कि पृथ्वी से सीता का प्रादुर्भाव हुआ। इनके ही वंश में कुशध्वज, धर्मध्वज, कृतध्वज, भितध्वज चित्ररथ, समरथ, सत्यरथ, बहुलाश्व एवं अन्त में महावशी नाम के ज्ञानी राजा हुए। ये सब जनक नाम से कहे जाते थे। महर्षि याज्ञवल्क्य के प्रसाद से गृहस्थाश्रम में रहने पर भी ये सभी जीवन्मुक्त रहे।

योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥२७॥

इक्ष्वाकु के पुत्रों में सबसे छोटा पुत्र दण्डक था, उसका वंश नहीं चला। पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड का प्रसंग है—एक समय दण्डक भ्रमण करते हुए भार्गव मुनि के आश्रम में चला गया था। वहाँ उनकी परम सुन्दरी अरजा नाम की ज्येष्ठ पुत्री से उसने अनुचित व्यवहार किया जिससे क्रुद्ध होकर शुक्राचार्य ने शाप दिया। तदनुसार उसके राज्य में सात दिन तक लगातार अग्निकणों की धुँआधार भीषण वृष्टि हुई जिससे उसका सम्पूर्ण राज्य स्थावर जंगम प्राणियोंसहित जलकर भस्म हो गया। तभी से वह विशाल वन 'दण्डकारण्य' नाम से विख्यात हुआ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

चौदहवाँ अध्याय

चन्द्रवंश का वर्णन तथा पुरुरवा का उपाख्यान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः ।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥१॥

सूर्यवंश के वर्णन के अनन्तर अब यहाँ से २४वें अध्याय तक चन्द्रवंश का वर्णन है। चन्द्रवंश में ऐल (पुरुरवा) आदि बड़े प्रतापी राजा हुए हैं। भगवान् नारायण के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनके नेत्र से अत्रि और अत्रि के नेत्र से अमृतमय चन्द्रमा का जन्म हुआ। ब्रह्मा ने चन्द्रमा को समस्त नक्षत्र, औषधि एवं ब्राह्मणों का राजा बना दिया। एक समय चन्द्रमा ने त्रिभुवन को जीतकर राजसूय यज्ञ का आरम्भ किया। यज्ञ में वृहस्पति की अत्यन्त सुन्दरी पत्नी तारा भी आयी थी। चन्द्रमा ने बलपूर्वक उसे पकड़कर घर में रख लिया। वृहस्पति के बहुत याचना करने पर भी चन्द्रमा ने तारा को लौटाया नहीं। इस पर दोनों ने भीषण संग्राम छिड़ गया। महर्षि अङ्गिरा ने यह सारा वृत्तान्त ब्रह्मा से जाकर कहा। ब्रह्मा ने चन्द्रमा को डाँटकर वृहस्पति को पत्नी दिला दी। तारा उस समय गर्भवती थी, किन्तु वृहस्पति की डाँट पर उसने गर्भ त्याग दिया। उससे एक अत्यन्त सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। उस बालक के निमित्त वृहस्पति और चन्द्रमा

का गहरा विवाद चला, किन्तु तारा के संकेत पर वह पुत्र चन्द्रमा का ही माना गया। ब्रह्मा ने उसका नाम बुध रक्खा। बुध से मनु की इला नाम की कन्या में ऐल (पुरुरवा) का जन्म हुआ। एक समय इन्द्रलोक में नारदजी के मुख से ऐलके गुणों का श्रवण कर उर्वशी उन पर आसक्त हो उनके समीप चली आयी। ऐल ने भी बड़े प्रेम से उसका स्वागत-सत्कार कर उससे प्रेम करने की प्रार्थना की। उर्वशी ने तीन शर्तों के साथ ऐलकी प्रार्थना स्वीकार की। उर्वशी ने कहा—हे राजन्! मेरे इन दो भेड़ों की आपको रक्षा करनी होगी, मुझे घृत भोजन देना होगा और सहवास के अतिरिक्त मैं आपको कभी नग्न न देखूँ। ऐल ने तीनों शर्तें सहर्ष स्वीकार कर ली और वे दोनों दिव्य स्थानों में सानन्द विहार करने लगे। बहुत दिन बीत जाने पर इन्द्र ने उर्वशी को न देख उनके अन्वेषण के लिए गन्धर्वों को आदेश दिया। मित्रावरुण के शाप से उर्वशी मनुष्यलोक में आयी थी। ऐल अर्द्धरात्रि में नग्न हो उसके साथ विहारकर रहे थे कि इन्द्र के भेजे गन्धर्वों ने दोनों भेड़े हर लीं। भेड़ों का चिल्लाना सुनकर उर्वशी ने ऐल को बहुत फटकारा। इस पर ऐल क्रोध में तलवार उठाकर नग्न ही उन भेड़ों को छुड़ाने के लिए दौड़ पड़े। गन्धर्वों ने उन भेड़ों को छोड़ बिजली की एक चमक पैदाकर दी जिसमें उर्वशी ने भेड़ें लाते पति को नग्न देख लिया। इस प्रतिज्ञा-भङ्ग पर वह ऐल का परित्याग कर अपने लोक चली गयी। ऐल अपनी शय्या उर्वशी से शून्य देखकर शोक से व्याकुल हो पागल की तरह पृथ्वी पर घूमने लगा—

तच्चित्तो विह्वलः शोचन् बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥३२॥

एक दिन कुरुक्षेत्र में ऐल ने पाँच सखियों सहित उर्वशी को देखा और बड़ी विकलता से पृथ्वी पर ही रहने की उससे प्रार्थना की। उर्वशी ने कहा—अच्छा, साल भर बाद एक रात्रि मैं तुम्हारे समीप पुनः निवास करूँगी। मुझसे तुम्हारे और भी पुत्र होंगे। इस उत्तर से राजा उसे गर्भवती समझकर अपने नगर को लौट आये। सालभर बाद उर्वशी ने आकर राजा का मनोरथ पूर्ण किया। जब वह पुनः स्वर्ग जाने को उद्यत हुई तब राजा को विकल देख उसने कहा—राजन्! तुम गन्धर्वों की आराधना कर उनसे मुझे माँग लो। राजा ने वैसा ही किया। गन्धर्वों ने प्रसन्न होकर उन्हें अग्निस्थापना का एक चमकता हुआ पात्र दे दिया जिसे वे उर्वशी ही समझकर हृदय से लगा इधर-उधर घूमने लगे, जब उन्हें यह ज्ञान हुआ कि यह उर्वशी नहीं है तब वे उसे वन में रखकर घर आ गये। कुछ दिनों बाद, त्रेता के आरम्भ में, स्वर्गप्राप्ति के साधनभूत वेदोक्त कर्मों का उनके हृदय में प्रादुर्भाव हुआ। वे फिर वन में गये, जहाँ अग्निस्थली रख आये थे। उनकी दृष्टि शमी के मध्य में उत्पन्न अश्वत्थ वृक्ष पर पड़ी। उन्होंने उर्वशी को पाने की इच्छा से अश्वत्थ वृक्ष की दो लकड़ियाँ तोड़कर उनकी अरणि बनायी। नीचे की अरणि को उर्वशी एवं ऊपर की अरणि के रूप में स्वयं अपने को समझकर मन्थन

आरम्भ किया। उससे अग्निदेव प्रकट हुए।[१] ऐलने उन्हें पुत्र के रूप में माना। उर्वशी को प्राप्त करने की इच्छा से उन्होंने वहीं अग्नि लेकर यज्ञ द्वारा भगवान् विष्णु का यजन किया। जिसके प्रभाव से राजा ऐल गन्धर्वलोक प्राप्तकर उर्वशी के साथ आनन्द से विहार करने लगे—

अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ।।४९।।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

पन्द्रहवाँ अध्याय

ऐल वंश में गाधि का जन्म तथा उनके दौहित्र परशुराम द्वारा कार्तवीर्य का वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

ऐलस्य चोर्वशीगर्भात् षडासन्नात्मजा नृप।
आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ।।१।।

ऐल के उर्वशी से छः पुत्र उत्पन्न हुए—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय। श्रुतायु के वसुमान्, सत्यायु के श्रुतञ्जय, रय के एक, जय के अमित, विजय के भीम, भीम के काञ्चन, काञ्चन के होत्रक और होत्रक के पुत्र जह्नु हुए जिन्होंने गङ्गा को चुल्लू में रखकर पी लिया था। जह्नु के पुरु, पुरु के बलाक, बलाक के अजक, अजक के कुश, कुश के चार पुत्र हुए—कुशाम्बु, तनय[२], वसु और कुशनाभ। कुशाम्बु के पुत्र राजर्षि गाधि हुए। गाधि की सत्यवती नाम की एक सुन्दरी कन्या थी। भृगुवंशी ऋचीक ने आकर उनसे कन्या की याचना की। गाधि ने उन्हें कन्या के अनुरूप वर न देखकर कहा—महाराज! चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के एक हजार श्यामकर्ण घोड़े शुल्करूप में दें तो कन्या आपको प्राप्त हो सकेगी, कारण हम कुशिकवंश के बड़े कुलीन राजर्षि हैं और यह नियम केवल वर के परीक्षार्थ ही किया गया है, शुल्क के उद्देश्य से नहीं, क्योंकि स्मृति में शुल्क की निन्दा है।

कन्याशुल्कग्रहीतारः पतन्ति नरके ध्रुवम्।

राजा का अभिप्राय जानकर ऋचीक वरुण के समीप गये और वहाँ से वैसे ही घोड़े लाकर उन्हें दे दिए एवं कन्या से विवाह कर लिया। ऋचीक से उनकी पत्नी सत्यवती एवं सास (सत्यवती की माता) ने भी पुत्र के लिए प्रार्थना की। ऋषि ने पत्नी

---

[१] जिनके आहवनीयाग्नि, गार्हपत्याग्नि और दक्षिणाग्नि तीन रूप हैं।

[२] तनीति कुलमिति तनयः एतन्नामकः।

के लिए ब्रह्ममन्त्र से और सास के लिए क्षात्र मन्त्र से अभिमन्त्रित कर खीर पकायी और पृथक्-पृथक् दोनों में रखकर स्नान करने के लिए चले गये। सत्यवती की माता ने पुत्री की खीर अधिक उत्तम समझकर उससे माँगकर खा ली और पुत्री ने माता की खीर खायी। ऋषि को जब यह बात ज्ञात हुई तब उन्होंने पत्नी से कहा—भद्रे! तुमने अच्छा नहीं किया, इससे तुम्हारा पुत्र बड़ा ही उग्र क्षत्रिय स्वभाव का होगा और भाई ब्रह्मज्ञानी होगा।

घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥१०॥

इस पर पत्नी ने कहा—नाथ! अब कोई उपाय करें जिससे ऐसा न हो। तब ऋचीक ने कहा—अब हो सकता है कि तुम्हारा पौत्र क्रूर होगा। तदनन्तर सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि उत्पन्न हुए जिनका विवाह रेण की कन्या रेणुका से हुआ। उनके वसुमान् आदि कई पुत्र हुए जिनमें सबसे छोटे परशुराम थे। परशुराम भगवान् विष्णु के अंशावतार कहे जाते हैं। उन्होंने हैहयकुल का नाशकर २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया था। राजा परीक्षित् ने पूछा—हे मुने! क्षत्रियों ने ऐसा कौन सा अपराध किया था जिससे परशुराम ने उनके कुल का विनाश कर दिया? शुकदेवजी बोले—राजन्! हैहयकुल के अधिपति कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) ने दत्तात्रेयजी की आराधना कर एक हजार भुजाएँ प्राप्त की थीं। उसका तेज बल और ऐश्वर्य इतना बढ़ गया था कि शत्रु उससे घबराते थे। वह वायु की तरह सब लोकों में विचरता था। एक दिन उसने स्त्रियों के साथ नर्मदा के जल में क्रीड़ा करते भुजाएँ फैलाकर नदी का जल रोक दिया था। नर्मदा के ऊपरी भाग में, दिग्विजय के लिए डेरा डालें रावण शिव का पूजन कर रहा था। उसका सम्पूर्ण शिविर नर्मदा के अवरुद्ध प्रवाह की बाढ़ में निमग्न हो गया। यह देखकर वह तुरन्त सहस्रार्जुन से युद्ध करने आ पहुँचा कार्तवीर्य ने बन्दर के तुल्य ही उसे पकड़कर अपनी पुरी में कैदकर लिया। कुछ दिनों के बाद अपनी इच्छा से ही उसे छोड़ दिया। ऐसा प्रतापशाली वह सहस्रार्जुन एक दिन जमदग्नि के आश्रम में गया। मुनि ने कामधेनु के प्रताप से सेना सहित राजा का यथोचित भव्य सत्कार किया। मुनि का ऐश्वर्य अपने से अधिक देखकर सहस्रार्जुन उनकी कामधेनु को बलपूर्वक अपनी पुरी में ले गया। जब परशुराम आश्रम में आये और सहस्रार्जुन की इस प्रकार की धृष्टता सुनी तब क्रोध से उनका शरीर काँपने लगा। वे तुरन्त अपना परशु और धनुषबाण लेकर सहस्रार्जुन की पुरी की ओर चल दिये। सहस्रार्जुन ने उन्हें देंखते ही युद्ध के लिए १७ अक्षौहिणी सेना भेज दी। किन्तु परशुराम ने अकेले ही सम्पूर्ण सेना का संहार कर डाला।

अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥३०॥

वे मन के समान वेग से जहाँ-जहाँ परशुराम प्रहार करते वहीं हजारों की संख्या में वाहन सहित सैनिकों के अंग छिन्न-भिन्न होकर गिर जाते थे। इस संग्राम में रक्त की नदी बह चली। यह देख सहस्रार्जुन स्वयं युद्ध करने आ डटा। उसने परशुराम को

लक्ष्यकर अपनी एक हजार भुजाओं में से एक साथ पाँच सौ बाण चढ़ाये। किन्तु परशुराम ने अपने परशु के एक ही प्रहार में उन सबको काट डाला। फिर उसने परशुराम पर बड़े-बड़े शिखर और वृक्षों की वर्षा करना आरम्भ किया। परशुराम क्रुद्ध हो परशु से सिर सहित उसकी सभी भुजाएँ काट डालीं। जिससे वह तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। कार्तवीर्य के मरने पर उसके दस हजार पुत्र मारे भय के संग्राम छोड़कर भाग गये। परशुराम क़ामधेनु को लेकर अपने आश्रम में लौट आये और पिता से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सहस्रार्जुन के वध का वृत्तान्त सुनकर पिता ने कहा—बेटा! तुमने यह अच्छा नहीं किया जो राजा का वधकर डाला। राजा का वध ब्रह्महत्या से भी बढ़कर माना गया है।

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ।
यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात् पदम् ॥३९॥

हे वत्त! हम लोक ब्राह्मण हैं। क्षमा गुण से हम ब्रह्मा के समान जगत्पूज्य हुए हैं। क्षमा करनेवालों पर भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। अच्छा, अब तुम तीर्थयात्रा द्वारा इस पाप का प्रायश्चित्त कर डालो।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

सोलहवाँ अध्याय

परशुराम द्वारा इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार तथा विश्वामित्र का वंश

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! परशुरामजी पिता की आज्ञा से तीर्थयात्रा करने चले गये। एक वर्ष बाद अपने आश्रम में लौटे और पिता की सेवा में लग गये। एक दिन परशुराम की माता रेणुका जल लाने गङ्गाजी गयी थीं। वहाँ चित्ररथ नामक गन्धर्व अप्सराओं के साथ जलक्रिड़ा कर रहा था जिसे कौतुकवश वे देखने लगीं। इसी कारण उन्हें वहाँ कुछ विलम्ब हो गया। वे स्वामी के भय से शीघ्र लौट भी पड़ी। किन्तु मुनि विलम्ब का कारण पूछ ही बैठे। रेणुका ने सत्य-सत्य बात बतला दी। जमदग्नि ने पुत्रों से कहा—इस दुष्टा का वध कर डालो। परन्तु पुत्रों ने ऐसा नहीं किया। तब उन्होंने परशुराम को आदेश दिया। परशुराम ने माता के सहित पिता की अवज्ञा करने वाले भाइयों का भी वधकर डाला। इस कार्य से प्रसन्न होकर जमदग्नि ने परशुराम से वर माँगने को कहा।

वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥७॥

परशुराम दो वर माँगे—मारे गये माता आदि सभी का पुनर्जीवन हो जाय एवं उन्हें वध की स्मृति भी न रहे। पिता ने जैसे ही तथास्तु कहा वे सबके सब जी उठे। परशुराम ने अपने पिता के प्रभाव को जानकर ही उसका वध किया था। सहस्रार्जुन के मारे जाने के कारण उसके पुत्रों के हृदय में शान्ति न थी। एक दिन परशुराम अपने भाइयों सहित वन में गये थे। अवसर पाकर सहस्रार्जुन के पुत्र आश्रम में घुस आये और यज्ञशाला में समाधिस्थ जन्मदग्नि का सिर काटकर ले गये। रेणुका उनका यह दुष्कृत्य देखकर दुःख से व्याकुल हो 'हा राम हा राम' कहकर छाती कूटती हुई चिल्लाने लगी। परशुराम दूर से माता का करुण क्रन्दन सुनकर आश्रम में दौड़कर आये और पिता को मृत पड़ा देखा तो वे स्वयं मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। जब होश हुआ तब वे विलाप करते हुए बोले—हा पिताजी! आप हमें छोड़कर कहाँ चले गये? इसी शोक और क्रोध में उन्होंने पृथ्वी को क्षत्रियशून्य करने की प्रतिज्ञा कर डाली। वे पिता का शरीर सुरक्षित रखकर परशु उठा माहिष्मती पुरी की ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने क्षत्रियों के सिर काट-काटकर एक विशाल पहाड़ बना दिया। परशुराम की माता ने इक्कीस बार छाती कूटी थी, इसलिए उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार कर उनके रक्त से नौ बड़े-बड़े तालाब भर दिया। अनन्तर माहिष्मती से अपने पिता का सिर लाकर उनके धड़ पर रक्खा। भगवान् के यजन एवं सञ्जीविनी विद्या के प्रभाव से वे पुनः जीवित हो सप्तर्षि-मण्डल के सातवें ऋषि हो गये—

ऋषीणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः ॥२४॥

आगामी मन्वन्तर में परशुराम भी सप्तर्षियों में एक ऋषि होंगे। इस समय वे महेन्द्र पर्वत पर निवास कर रहे हैं। उन्होंने दुष्ट क्षत्रियों का इक्कीस बार संहारकर पृथ्वी का भार उतारा।

हे राजन्! इस प्रकार गाधिकी कन्या सत्यवती के वंश का वर्णन हमने किया। अब उनके पुत्र के वंश का वर्णन सुनो। गाधि के पुत्र महातेजस्वी विश्वामित्र हुए उनके १०० पुत्र थे। जिनमें विचले का नाम मधुच्छन्दा था, इसीलिए उनके सभी पुत्र मधुच्छन्दा नाम से विख्यात हुए। विश्वामित्र ने शुनःशेप नाम के एक बालक को भी अपना पुत्र मान लिया था जो हरिश्चन्द्र के यज्ञ में बलि के लिए बालक को भृगुवंशी अजीगर्त से खरीदा गया था। विश्वामित्र की कृपा से देवताओं ने उसकी स्तुति से प्रसन्न हो उसे प्राणदान दिया था। इसी कारण उसका नाम देवरात भी हुआ। विश्वामित्र ने अपने पुत्रों से कहा—तुम सब इसको अपना बड़ा भाई मानो। पचास बड़े पुत्रों ने यह स्वीकार नहीं किया, किन्तु छोटे पुत्रों ने स्वीकार कर लिया। इस पर विश्वामित्र ने बड़े पुत्रों को शाप देकर म्लेच्छ बना दिया एवं छोटों को पुत्रवान् होने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार विश्वामित्र ने शुनःशेप को अपना ज्येष्ठ पुत्र बनाकर शाप और अनुग्रह द्वारा अपने गोत्र को नाना रूप में विभक्त कर दिया और इसी कारण वह प्रवरान्तर को भी प्राप्त हो गया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।

सत्रहवाँ अध्याय

ऐल के ज्येष्ठ पुत्र आयु के वंश का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! हम ऐल (पुरुरवा) के पाँच पुत्रों का वर्णन पहले कर चुके हैं। अब उनके ज्येष्ठ पुत्र आयु के वंश का वर्णन सुनो। आयु के नहुष, क्षत्रवृद्ध रजि, रम्भ और अनेना ये पाँच पुत्र हुए। क्षत्रवृद्ध के पुत्र सुहोत्र हुए और सुहोत्र के काश्य, कुश और गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समद के शुनक हुए और शुनक के पुत्र सौनक हुए। इसी वंश में महातेजस्वी दिवोदास और ऋतध्वज हुए। ऋतध्वज (कुवलयाश्व) के पुत्र अलर्क हुए। वे बड़े प्रतापी राजा था। उनकी माता का नाम मदालसा था। वह बड़ी ही विदुषी थीं। उन्होंने अपने तीन पुत्रों को निवृत्ति-मार्ग का उपदेश देकर संसार से विरक्तकर दिया था। चौथे पुत्र अलर्क को जब ज्ञानका उपदेश देने लगीं तब राजा ने कहा—देवि! इसे निवृत्ति-मार्ग का उपदेश न दो, अन्यथा वंश का उच्छेद हो जायेगा, अतः इसे प्रवृत्ति-मार्ग में लगाकर गार्हस्थ्य धर्म का उपदेश करो। मदालसा ने अलर्क को राज्य सम्बन्धी नाना प्रकार की नीतियों का विस्तार से उपदेश दिया। अन्त में साररूप से कुछ व्यावहारिक धर्म भी बताये।

अलर्क को मदालसा के सदुपदेश

धरामरान् पर्वसु तर्पयेथाः समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा मनः परस्त्रीषु निवर्तयेथाः ।।
सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथास्तद्ध्यानतोऽन्ताःषडरीन् जयेथाः ।
मायां प्रबोधेन निवारयेथा ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः ।।
अर्थागमाय क्षितिपान् जयेथा यशोऽर्जनायार्थमपि व्ययेथाः ।
परापवादश्रवणाद् विभीथा विपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ।।
राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः ।।

(मार्कण्डेयपुराण २६/३६-३७, ३८/४१)

मदालसा ने कहा—बेटा! पर्वों में ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त करना, अपने बन्धु-बान्धवों की इच्छा पूर्ण करना, हृदय में दूसरे की भलाई का ध्यान रखना, मन को परायी स्त्रियों की ओर कभी न जाने देना, मन में सदा विष्णु भगवान् का चिन्तन करना, उनके ध्यान से अन्तःकरण के कामादि छः शत्रुओं को जीतना, ज्ञान से माया का निवारण करना, जगत् की अनित्यता पर विचार करना, धन के लिए राजाओं को जीतना, यश के लिए धन का सदुपयोग करना, परायी निन्दा सुनने से डरना, विपत्ति

के समुद्र से डूबते हुए मनुष्यों का उद्धार करना। बेटा! राज्य करते हुए सुहृदयों को प्रसन्न रखना, सत्पुरुषों की रक्षा करते हुए यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन करना एवं संग्राम में दुष्ट शत्रुओं का संहार करते हुए गौ ब्राह्मणों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की भी परवाह न करना।

आयु के तृतीय पुत्र रजिके पाँच सौ पुत्र हुए। रजि ने इन्द्र की प्रार्थना पर दैत्यों को मारकर स्वर्ग में इन्द्र का आधिपत्य सुस्थिर कर दिया। किन्तु इन्द्र ने दैत्यों से भयभीत होकर रजि को आत्म-समर्पणपूर्वक स्वर्ग का राज्य दे डाला। रजि ही पुत्रों के साथ स्वर्ग का पालन करने लगे। रजि के मरने पर पुत्रों ने स्वर्ग का राज्य इन्द्र को नहीं दिया। वृहस्पति ने मारण प्रयोग द्वारा उन सबका संहार कर दिया। उनमें एक भी शेष न बचा। रम्भ के पुत्र रभस और अनेना के पुत्र शुद्ध हुए इस प्रकार आयु के ४ पुत्रों का वर्णन हुआ।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

अठारहवाँ अध्याय

नहुष के पुत्र ययाति का चरित्र

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अब तुम आयु के ज्येष्ठ पुत्र नहुष के वंश का वर्णन सुनो।

यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ।
षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥१॥

नहुष के यति, ययाति, संयाति आयति, वियति और कृति के छः पुत्र हुए। उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र यति को राज्य देना चाहा, किन्तु उसने उसे अनर्थ का मूल जानकर स्वीकार नहीं किया। वृत्रासुर के मारने पर ब्रह्महत्या के भय से जब इन्द्र छिप गये तब स्वर्ग का पालन नहुष करने लगे थे। उन्होंने इन्द्राणी को अपनी पत्नी बनाना चाहा। इस अनाचार से वे अजगर योनि में चले गये। ययाति ने अपने भाइयों को चारों दिशाओं का राज्य दे दिया और स्वयं समस्त पृथ्वी का पालन करने लगे। उनका विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से हुआ। राजा परीक्षित् ने पूछा—हे मुने! क्षत्रिय और ब्राह्मण का यह विलोम विवाह कैसे हुआ? शुकदेवजी बोले—राजन्! एक दिन दानवेन्द्र वृषपर्वा की शर्मिष्ठा नाम की कन्या अपनी सखियों एवं गुरुपुत्री देवयानी के साथ बगीचे की सैर करने गयी। वहाँ एक सरोवर के तट पर कपड़े उतारकर वे सब उसमें जलक्रीड़ा करने लगीं। दैवयोग से पार्वती सहित भगवान् शिव उधर से निकले। उन्हें देखकर वे सब जल्दी में सरोवर से निकलकर वस्त्र पहनने लगीं। शर्मिष्ठा ने

अनजान में देवयानी की साड़ी पहन ली। गुरुपुत्री ने उसे डाँटते हुए कहा—कुत्ती कहीं की, तुझे लज्जा नहीं आती। हमारी साड़ी पहनती है। कहाँ मैं ब्राह्मणी और कहाँ तू राक्षसी? यह सुन शर्मिष्ठा नागिन की तरह फुफकारती हुई बोली—अरी भिखमंगिन! हमारा ही टुकड़ा खाकर पली है और बातें इतनी लम्बी चौड़ी बोलती है। खड़ी रह, अभी तुझे बताती हूँ। यह कहकर शर्मिष्ठा ने उसके वस्त्र छीनकर देवयानी को कुएँ में ढकेल दिया और अपने घर चली गयी। राजा ययाति दैवात् शिकार खेलने उसी मार्ग से निकले। जल की इच्छा से वे उसी कुएँ पर आये। उस कूप में पड़ी उस नग्न कन्या को देखकर उन्हें दया आ गयी। उन्होंने अपना दुपट्टा देकर उसका हाथ पकड़ उसे कुएँ से बाहर निकाल दिया।

गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥१९॥

तब देवयानी ने प्रेमभरी वाणी में कहा—राजन्! आपने तो मेरा पाणिग्रहण कर लिया है। अब मेरा दूसरे से सम्बन्ध नहीं हो सकता। यह दैव का विधान है इसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता। वृहस्पति के पुत्र कच के शाप से मुझे ब्राह्मण पति मिलना नहीं है।

यह घटना यों है—एक समय कच मृतसञ्जीवनी विद्या सीखने के लिए मेरे पिता के पास आये। उन्होंने शिष्यभाव से उन्हें अपना लिया। वे आश्रम में रहकर हम लोगों की बड़ी तत्परता से सेवा करने लगे। वे जंगल में गौएँ चराने भी जाया करते थे। वहीं दैत्यों ने उन्हें अपने शत्रु का पुत्र समझकर मार डाला। जब कच शाम को नहीं लौटे तब सभी को बड़ी चिन्ता हुई। मेरे आग्रह पर पिता जी ने कच को जीवित कर दिया और कच पुनः सेवा में लग गये। दैत्यों ने उसी प्रकार बहुत बार कच का वध किया एवं मेरे आग्रह से पिताजी ने बारम्बार उन्हें जीवित कर दिया। एक दिन दैत्यों ने सोचकर ऐसा उपाय निकाला जिससे कच पुनः जीवित हो ही न सकें। उन्होंने कच को मारकर जला दिया एवं उनकी राख मदिरा में घोलकर मेरे पिताजी को पिला दी। किसी को इस रहस्य का पता भी न चला। जब शाम को कच नहीं लौटे तब मैंने फिर पिताजी से जीवित करने का आग्रह किया। किन्तु पिताजी इस बार तैयार न हुए। मैंने कहा यदि आप उन्हें जीवित न करेंगे तो मैं भी उनके बिना जीवित न रह सकूँगी। वह सुनकर पिताजी ने पुनः उन्हें जीवित कर दिया। किन्तु इस बार यह आश्चर्य हुआ कि कच पिताजी के पेट के अन्दर से बोले—मैं तो यहाँ हूँ। यह सुनकर पिताजी चकित रह गये। कच ने उन्हें सारा रहस्य बतलाया। इसपर पिताजी ने कहा—बेटा! घबराना नहीं। मैं तुम्हें यहीं संजीवनी विद्या का उपदेश करता हूँ। तुम मेरा पेट फाड़कर बाहर निकल आना और मेरी मृत्यु होने पर गुरु दक्षिणा के रूप में मुझे उसी विद्या से जीवित कर देना। तदनुसार कच उनका पेट फाड़कर बाहर निकले और संजीविनी विद्या से उन्होंने मृत शुक्राचार्यजी को जीवित कर दिया। इस पर पिताजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। जब

कच पिताजी की अनुमति लेकर जाने को उद्यत हुए तब मैंने उनसे विवाह की इच्छा प्रकट की। किन्तु कच ने गुरु-पुत्री होने के कारण इसका बार-बार निषेध किया। जब कच किसी प्रकार राजी न हुए तब मैंने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हारी यह विद्या निष्फल हो जाय। इस पर कच ने भी मुझे शाप दिया कि तुझे ब्राह्मण पति न मिले इसलिए राजन्! आप मुझे ग्रहण करने में कोई संकोच न करें। देवयानी के आग्रह पर ययाति उसकी बात स्वीकारकर अपने राज्य में लौट गये। देवयानी ने घर जाकर पिता को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर दुःखित हो शुक्राचार्य वृषपर्वा का नगर त्याग कर अन्यत्र जाने को तुल गये। वृषपर्वा ने जब यह वृत्तान्त सुना तब अपनी कन्या शर्मिष्ठा की गलती के लिए वह शुक्राचार्य के चरणों में गिरकर क्षमा याचना करने लगा। इसपर शुक्राचार्य ने कहा—राजन्! क्षमा यही है जिससे मेरी पुत्री प्रसन्न हो, तुम वही व्यवस्था कर दो। देवयानी ने कहा—जहाँ मेरी शादी हो वहीं शर्मिष्ठा मेरी दासी बनकर मेरे साथ चले और कभी मेरे पति के साथ शय्या पर न बैठे। वृषपर्वा ने इसे स्वीकार कर लिया। शुक्राचार्य ने भी ययाति को अपनी कन्या दे दी और शर्मिष्ठा दासी बनकर देवयानी के संग चली गयी। कुछ दिन बाद देवयानी के यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्र हुए। इन पुत्रों को देखकर शर्मिष्ठा ने भी एक दिन ययाति से पुत्र के लिए एकान्त में प्रार्थना की। राजा ने धर्म समझकर इसे स्वीकार कर लिया और शर्मिष्ठा भी गर्भवती हो गयी। उसके द्रुह्यु, अनु और पूरु ये तीन पुत्र हुए। देवयानी यह देखकर बहुत कुपित हुई। ययाति ने पैरों पर गिरकर उसे बहुत मनाया, किन्तु वह प्रसन्न न हुई। उसने पिता के समीप जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर शुक्राचार्य ने क्रुद्ध हो ययाति को शाप दे दिया रे मूढ़। तुझमें वृद्धावस्था का प्रवेश हो जाय—

त्वां जरा विशतां मन्द विरुपकरणी नृणाम् ॥३६॥

ययाति ने कहा—भगवन्! विषयों से अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई, आप मुझे क्षमा करें। शुक्राचार्य ने उससे कहा यदि कोई अपनी युवा अवस्था तुम्हारी वृद्धावस्था के बदले तुम्हें दे दे तो तुम फिर युवा हो सकते हो। ययाति ने अपने पुत्रों से ही युवा अवस्था माँगी। किन्तु सभी ने निषेध कर दिया। केवल छोटे लड़के पुरू ने उन्हें अपनी युवावस्था दे दी। जिससे ययाति पुनः आनन्द से देवयानी के साथ विहार करने लगे। किन्तु फिर भी विषयों से उनकी तृप्ति नहीं हुई।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

उन्नीसवाँ अध्याय

ययाति और देवयानी की विषयभोग से विरक्ति

शुकदेवजी बोले—हे राजन्!

स इत्थमाचरन् कामान् स्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः ।
बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥१॥

एक दिन स्त्रीलम्पट ययाति विषय-भोग से आत्मा के बन्धन का विचार कर, विरक्त हो अपनी प्रिया से बोले—भृगुपुत्रि! मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ, जो हमसे तुमसे मिलती-जुलती है। इसे ध्यान से सुनो। वन में एक बकरा रहता था, जो अपनी प्रियवस्तु की खोज में लगा था। एक दिन उसने कुएँ में पड़ी एक बकरी देखी। उसने अपने सींगों से मिट्टी खोदकर उसके निकालने का मार्ग बना दिया। वह कुएँ से निकलकर बकरे पर आसक्त हो गयी और उसे अपना पति बना लिया। वह मस्त बकरा और बकरियों को भी रति से सन्तुष्ट किया करता था। कुएँ से निकली बकरी को यह सहन नहीं हुआ। वह क्रुद्ध हो अपने मालिक के पास चली गयी। बकरे ने बलबलाते हुए बकरी को रास्ते भर बहुत मनाया, किन्तु वह मानी नहीं। उसने अपने मालिक से सारा वृत्तान्त कह दिया। मालिक ने बकरे के लम्बे-लम्बे दोनों अण्डकोश ही काट डाले। जब बकरा बहुत गिड़गिड़ाया तब इसके मालिक ने पुनः युक्ति से उसके अण्डकोश जोड़ दिये। इस प्रकार बकरे ने कुएँ से निकली बकरी के साथ विषयभोग में बहुत समय बिता दिया। किन्तु विषयों से फिर भी उसकी तृप्ति नहीं हुई। हे प्रिये! मेरी भी ऐसी ही दशा है। तुम्हारे मोह में फँसकर मेरा आत्मज्ञान नष्ट हो गया।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥१४॥

विषयों के भोग से कामवासना कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृत डालने पर अग्नि की तरह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। मुझे विषयों का सेवन करते-करते पूरे एक सहस्र वर्ष बीत गये। किन्तु विषयों में मेरी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है, अब मैं इस तृष्णा का परित्याग कर भगवान् में चित्त स्थिर करूँगा एवं अभिमान से रहित होकर अकेला ही वन में मृगों के साथ विचरूँगा। यह कहकर ययाति ने युवावस्था अपने पुत्र पुरु को लौटा दी और उससे अपनी वृद्धावस्था ले ली। अनन्तर उन्होंने पूर्व में द्रुह्यु को, दक्षिण में यदु को, पश्चिम में तुर्वसुको और उत्तर में अनुको राजा बनाकर शेष सम्पूर्ण पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा पुरु को बना दिया। फिर वे अपनी पत्नी के साथ बन चले गये। वहाँ उन दोनों ने कठोर तपस्या से भगवान् श्रीकृष्ण में चित्त लगाकर शरीर त्याग दिया और भगवान् का परम धाम प्राप्त किया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

बीसवाँ अध्याय

पूरुवंशीय दुष्यन्त तथा भरत का चरित्र

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अब हम राजा पुरु के वंश का वर्णन करते हैं, उसे सुनो। इसी वंश में बड़े-बड़े प्रतापी राजा और तुम्हारा भी जन्म हुआ। पुरु के पुत्र जन्मेजय हुए। उनके पुत्र प्रचिन्वान् हुए। उन्हीं की वंश परम्परा में रौद्राश्व से घृताची अप्सरा में ऋतेयु, कुक्षेयु आदि १० पुत्र हुए। आगे चलकर इसी वंश में राजा रैभ्य हुए जिनके महाप्रतापी पुत्र दुष्यन्त हुए। राजा दुष्यन्त एक समय शिकार खेलते हुए कण्व ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ वे एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या देखकर उस पर मोहित हो गये। उसके दर्शन से उनकी सारी थकावट भी जाती रही। उन्होंने कामासक्त हो उससे पूछा—हे कमलनयनी! तुम कौन हो? इस वन में कैसे आयी हो? मेरा मन तुम पर आसक्त हो रहा है। इससे मालूम होता है तुम निश्चय ही क्षत्रिय की कन्या हो, क्योंकि पुरुवंशी राजाओं का मन अधर्म की ओर प्रवृत्त नहीं होता। सुन्दरि! सच बताओं तुम कौन हो? उसने कहा—वीरवर! मैं विश्वामित्र से मेनका अप्सरा में उत्पन्न हुई हूँ। मेरा नाम शकुन्तला है। मेरी माता मुझे छोड़कर स्वर्ग चली गयी। वह इन्द्र के आदेश से मुनि की तपस्या भङ्ग करने यहाँ आयी थी। कण्व ऋषि ने मेरा पालन किया। बताइए मैं आपका क्या सत्कार करूँ?

आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ।
भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥१४॥

हे कमललोचन! आप आसन पर बैठें और अर्घ्य-पाद्य ग्रहण करें। मुनियों का पवित्र अन्न तिन्नी के चावल हैं, जीमें। यदि इच्छा हो तो कुछ देर विश्राम करें। दुष्यन्त ने कहा—हे सुमुखि! तुम उत्तम कुल की कन्या हो। मेरा अनुमान ठीक सही निकला। राजकन्याएँ अपने अनुकूल वर पाकर स्वयं ही उसका वरण कर लेती हैं। यह कहकर राजा ने उससे वहीं गान्धर्व-विवाह कर लिया। प्रात:काल वे अपने नगर चले गये। कुछ काल बाद शकुन्तला के एक पुत्र हुआ जिसका नाम भरत पड़ा। यह बालक शैशव से ही इतना तेजस्वी और बलवान् था कि सिंहों के बच्चों को बाँधकर उनसे खेला करता था। जब शकुन्तला पुत्र को लेकर दुष्यन्त के समीप गयी तब दुष्यन्त ने दुर्वासा के शापवश उसे नहीं पहचाना। इसी समय आकाशवाणी हुई जिसका विश्वास कर दुष्यन्त ने स्त्री और पुत्र को स्वीकारकर लिया। पिता के परलोक जाने पर भरत चक्रवर्ती राजा हुए। वे बड़े ही प्रतापी थे। इन्होंने गंगातट पर ५५ एवं यमुना तट पर ७८ अश्वमेध यज्ञ किये। उनमें इन्होंने प्रत्येक ब्राह्मण को तेरह हजार चौरासी गौएँ प्रदान की थीं—

सहस्रं बद्वशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे ।
बद्वं चतुरशीत्यग्रसहस्राणि त्रयोदश ॥२६॥

एवं अनेक यवन तथा असुरों को जीतकर संसार में अपनी कीर्ति का विस्तार किया था। इनकी विदर्भ देश की तीन रानियाँ थीं। किन्तु राजा के अनुरूप पुत्र न होने

से वे उन्हें मार डालती थीं। इसलिए इनका वंश नष्ट हो गया। बाद में भरत ने पुत्र-कामना से मरुत्सोम नामक यज्ञ किया। मरुतों ने प्रसन्न होकर उन्हें भरद्वाज नामक पुत्र दिया जो उतथ्य की पत्नी ममता में वृहस्पति द्वारा उत्पन्न हुआ था। उतथ्य वृहस्पति के बड़े भाई थे, अतः वृहस्पति और ममता ने लज्जा से उस पुत्र का त्यागकर दिया था। मरुतों ने उसे ही ग्रहण कर भरत को दे दिया। वृहस्पतिजी शिव की माया से व्यामोहित होकर ही ऐसे निन्दित कर्म में प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि उन्हें जितेन्द्रियत्व का बड़ा गर्व था।

बृहस्पतिर्मुनिवरो मोहितः शिवमायया ।
भ्रातृपत्न्या वशी रेमे भरद्वाजस्ततोऽभवत् ॥

(शिवपुराण उमासंहिता ४/३८)

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

◆

इक्कीसवाँ अध्याय

भरद्वाज के वंश में रन्तिदेव आदि प्रतापी राजाओं का जन्म

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भरद्वाज भरत के दत्तक पुत्र थे। उनका नाम वितथ भी था। वितथ के पुत्र मन्यु हुए। मन्यु के पाँच पुत्र थे—वृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग। नर के पुत्र संस्कृति हुए। संस्कृति के गुरु और रन्तिदेव दो पुत्र हुए। रन्तिदेव की कीर्ति चारों दिशाओं में फैली। वे राज्य का परित्याग कर परिवारसहित वन में निवास करते थे। उन्होंने अपनी आकाशवृत्ति रक्खी थी। जो कुछ मिलता उसका भी दानकर कभी-कभी भूखे ही रह जाते थे। एक बार बिना खाये-पिये उन्हें ४८ दिन बीत गये। ४९वें दिन प्रातःकाल उनको खीर, पूड़ी, हलुआ और जल प्राप्त हुआ। वे उसे खाना ही चाहते थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। उसने भोजन माँगा। उन्होंने अपने हिस्से का भोजन उसे दे दिया। फिर वे पत्नी का भाग आपस में बाँटकर खाने बैठे। इस बार भी, ज्योंहि रन्दितेव भोजन करने को उद्यत हुए एक भूखा शूद्र आ गया। उन्होंने उसे भगवान् समझकर अपना भोजन दे दिया। अब केवल पुत्र का एक भाग शेष रह गया था। जब इसे भी बाँटकर रन्तिदेव खाने को बैठे तब कुत्तों सहित एक और अतिथि आ गया। राजा ने बड़े आदर से बचा हुआ सारा भोजन उसे दे दिया और कुत्तों सहित उस अतिथि को सिर झुकाकर प्रणाम किया। अब केवल थोड़ा सा जल ही शेष बचा था जिससे केवल एक मनुष्य की तृप्ति हो सकती थी। राजा ने उसे पीने का विचार किया ही था कि एक प्यासा चाण्डाल आकर बोला—राजन्! मैं बड़ा प्यासा हूँ, मेरे प्राण निकल रहे हैं। मुझे जल दे दो—**अपो देह्यशुभस्य मे।**

उसकी दीनवाणी सुनकर परिवार सहित प्यास से मरणासन्न दयालु राजा ने वह जल भी उठाकर उसे दे दिया और कहा—

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥१२॥

मैं भगवान् से अष्टसिद्धियों से युक्त उत्तम गति नहीं चाहता और न मुझे मोक्ष की इच्छा है, मैं केवल यही चाहता हूँ कि सब प्राणियों में अन्तर स्थित होकर उनका दुःख मैं ही भोगा करूँ जिससे कोई भी प्राणी दुःखी न रहे। अन्न और जल का दान करने से मेरी भूख, प्यास सारे क्लेश निवृत्त हो गये हैं। उनका धैर्य देखकर परीक्षा लेने आये तीनों देवता प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गये। रन्तिदेव ने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी कृपा से सपरिवार उन्होंने दिव्य लोक प्राप्त किया। भरद्वाज के प्रपौत्र गर्ग के शिनि हुए। महावीर्य के पुत्र दुरितक्षय हुए। वृहत्क्षत्र के पुत्र हस्ती हुए। जिन्होंने हस्तिनापुर बसाया। हस्ती के अजमीढ़ आदि तीन पुत्र हुए। अजमीढ़ के पुत्र वृहदिषु हुए जिनकी वंशपरम्परा में मुद्गलसंज्ञक ब्राह्मण कुल हुआ। मुद्गल से एक जोड़ा उत्पन्न हुआ जिसमें पुत्र का नाम दिवोदास और कन्या का नाम अहल्या था। गौतम से अहल्या में शतानन्द उत्पन्न हुए। उनके पुत्र सत्यधृति उनके पुत्र शरद्वान् जिनका वीर्य उर्वशी के दर्शन से सरकण्डों के झुण्ड पर गिर गया था जिससे युगल सन्तान कृपाचार्य और कृपी हुई। राजा शन्तनु उन्हें वन से उठा लाये और उनका पालन-पोषण किया। कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी हुई जिसके पुत्र महाबली अश्वत्थामा हुए।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

(मासिक पारायण का अठारहवाँ विश्राम)

❖

बाईसवाँ अध्याय

दिवोदास का वंशवर्णन तथा जरासन्ध, पाण्डव आदि की जन्मकथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पूर्व अध्याय में हम कह चुके हैं कि मुद्गल के दिवोदास और अहल्या नामक एक जोड़ा उत्पन्न हुआ था। उसमें अहल्या का वंशवर्णन हो चुका है। अब उसके भाई दिवोदास का वंशवर्णन सुनो।

मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप।
सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥१॥

दिवोदास के पुत्र मित्रेयु, मित्रेयु के च्यवन, च्यवन के सुदास, सुदास के सहदेव, सहदेव के सोमक और सोमक के सौ पुत्र हुए। उनमें बड़े का नाम जन्तु और छोटे का नाम पृषत था। पृषत के द्रुपद हुए। राजा द्रुपद के द्रौपदी नाम की कन्या और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए। धृष्टद्युम्न के पुत्र धृष्टकेतु हुए। इन राजाओं की संज्ञा 'पाञ्चाल' थी। हस्ती के पुत्र अजमीढ़ हुए जिनका वर्णन २१वें अध्याय में हो चुका है। उनके दूसरे पुत्र ऋक्ष थे। ऋक्ष के पुत्र संवरण का विवाह सूर्य की कन्या तपती से हुआ, जिनके गर्भ से राजा

कुरु का जन्म हुआ। उन्हीं के वंश में आगे चलकर राजा बृहद्रथ हुए। बृहद्रथ की दूसरी रानी के गर्भ से एक ही शरीर के निर्जीव दो खण्ड पैदा हुए। रानी ने उन्हें फेंकवा दिया। दैवयोग से जरा नाम की राक्षसी उधर से आ निकली। उसने क्रीड़ा में दोनों टुकड़ों को जोड़कर 'जीवित हो, जीवित हो' ऐसा कहा, जिससे वह तत्काल जीवित हो उठा। इसीलिए उसका नाम जरासन्ध पड़ा। जरासन्ध के पुत्र सहदेव हुए। आगे इन्हीं के वंश में राजा प्रतीप हुए। प्रतीप के देवापि, शन्तनु और बाह्लीक तीन पुत्र हुए। देवापि राज्य त्यागकर वन चले गये। अतः मझले पुत्र शन्तनु ही राजा हुए। पूर्वजन्म में इनका नाम महाभिष था। यह जिस वृद्ध हो हाथ से छू देते थे वह तुरन्त जवान हो जाता था और उसे बड़ी शान्ति मिलती थी। इसी से इनका नाम शन्तनु पड़ा था—

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ।
शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः ॥१३॥

एक बार उनके राज्य में लगातार १२ वर्षों तक वर्षा नहीं हुई ब्राह्मणों ने कहा— तुम अपने बड़े भाई देवापि को राज्य दे दो। उन्होंने देवापि से प्रार्थना की, किन्तु ऋषियों ने देवापि को पाखण्डी सिद्ध कर राज्य के अयोग्य ठहरा दिया। तत्पश्चात् शन्तनु के ही राजा रहते वर्षा हुई। देवापि उसी समय से योग का आश्रम लेकर कलापग्राम में निवास करते हैं। कलियुग में चन्द्रवंश का नाश होने पर वही पुनः चन्द्रवंश की स्थापना करेंगे। बाह्लीक के पुत्र सोमदत्त हुए। सोमदत्त के तीन पुत्र हुए भूरि, भूरिश्रवा और शल। शन्तनु की पत्नी गंगा के गर्भ से भीष्म हुए एवं उनकी दूसरी पत्नी मल्लाह द्वारा पालित उपरिचरवसु की कन्या सत्यवती से दो पुत्र चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य हुए। चित्राङ्गद को उसी नाम के गन्धर्व ने युद्ध में मार डाला। सत्यवती की कुमारी अवस्था में ही पराशर से व्यास जी उत्पन्न हुए थे।

पराशरो महायोगी मोहितः शिवमायया ।
मत्स्योदर्या च चिक्रीडे कुमार्या दाशकन्यया ॥

(शिवपुराण उमासंहिता ४/३४)

विचित्रवीर्य ने काशिराज की अम्बिका और अम्बालिका नामक कन्याओं से विवाह किया, जिन्हें भीष्म जी स्वयंवर से हर लाये थे। अपनी पत्नियों में अत्यन्त आसक्ति के कारण विचित्रवीर्य की यक्ष्मारोग से मृत्यु हो गयी। विचित्रवीर्य के सहोदर भाई व्यासजी ने माता सत्यवती की आज्ञा से उनकी दोनों रानियों में धृतराष्ट्र और पाण्डु तथा उनकी दासी में विदुर नामक सन्तान उत्पन्न की। इनमें शास्त्र की आज्ञा है—

अपतिरपत्यलित्सुर्देवराद् गुरुप्रयुक्ता ऋतुमतीयात् ।

(श्रीधरी)

कलियुग में इनका निषेध है। धृतराष्ट्र के गान्धारी से सौ पुत्र और एक दुःशला नाम की कन्या उत्पन्न हुई। पाण्डु की पत्नी कुन्ती द्वारा धर्म, वायु और इन्द्र के अंश

से युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन उत्पन्न हुए। कारण पाण्डु शापवश स्त्रीसहवास से वंचित हो गये थे। उन्हें शाप यों हुआ—एक दिन पाण्डु वन में शिकार खेलने गये थे। वहाँ मुनि और उनकी पत्नी मृग और मृगी का रूप धारण कर विहार कर रहे थे। पाण्डु ने अनजान में उनमें से मृग को मार दिया। इस पर मृगी ने शाप दे डाला कि जैसे स्त्रीसहवास के समय तुमने मृग का वध कर दिया। वैसे ही स्त्रीसहवास के समय तुम्हारी भी मृत्यु हो जायेगी। अश्विनी कुमारों के अंश से माद्री ने नकुल और सहदेव को जन्म दिया। इन पाँचों पाण्डवों के क्रम से प्रतिविन्ध्य, श्रुतसेन, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतकर्मा ये पाँच पुत्र हुए। पाण्डवों की अन्य पत्नियों से देवक, घटोत्कच, वभ्रुवाहन आदि और भी पुत्र हुए। अर्जुन के सुभद्रा से अभिमन्यु उनके उत्तरा से तुम्हारा (परीक्षित् का) जन्म हुआ। तुमसे इरावती में जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन ४ पुत्र हुए। तक्षक से तुम्हारा निधन हो जाने पर जनमेजय ने सर्पयाग करेंगे। जनमेजय के पुत्र शतनीक होंगे। आगे यह वंश कलियुग में राजा क्षेमक तक चलकर नष्ट हो जायेगा।

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥४५॥

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

तेईसवाँ अध्याय

ययाति के अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु और यदु नामक पुत्रों के वंश का वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! ययाति के पाँचवें पुत्र पुरु के वंशवर्णन के अनन्तर अब उनके शेष चार पुत्रों के वंश का वर्णन सुनो। अनु के सभानर, चक्षु और परोक्ष नाम के तीन पुत्र हुए। उन्हीं के वंश में रोमपाद भी हुए जिनकी मित्रता राजा दशरथ से थी। दशरथ ने पुत्रहीन अपने मित्र को अपनी शान्ता नामक कन्या दे दी। एक बार रोमपाद के राज्य में वर्षा नहीं हुई उन्होंने विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यशृङ्ग को अपने राज्य में बुला लिया था। उनके आते ही बड़े जोरों से वर्षा हो गई ऋष्यशृङ्ग ने यज्ञ द्वारा रोमपाद को भी पुत्र प्रदान किया। दशरथ के भी इन्हीं ऋष्यशृङ्ग की कृपा से चार पुत्र हुए। रोमपाद के पुत्र चतुरंग हुए। उनके वंश में वृहद्रथ का जन्म हुआ। वृहद्रथ के पुत्र बृहन्मना और वृहन्मना के पुत्र जयद्रथ हुए। आगे चलकर इसी वंश में अधिरथ हुए जिनके कोई पुत्र न था। उन्हें एक दिन गङ्गा में बहता हुआ एक सन्दूक मिला, जिसमें एक सुन्दर बालक था। उन्होंने उसे ही अपना पुत्र बना लिया। यह पुत्र सूर्य द्वारा कुमारी अवस्था में कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न कर्ण था, जिसे कुन्ती ने लज्जावश सन्दूक में रखकर गङ्गा में बहा दिया था। कर्ण के पुत्र वृषसेन हुए। ययाति के पुत्र द्रुह्यु के बभ्रु हुए। तुर्वसुके बह्नि हुए। इस वंश में करन्धम, मरुत आदि बड़े-बड़े महाप्रतापी राजा हुए। हे राजन्! अब ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश सुनो।

ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥१८॥
वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥१९॥

इस वंश में साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। यदु के सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु नामक चार पुत्र हुए। इनके वंश में हैहय, कार्यवीर्य, जयध्वज, तालजंघ, मधु आदि कई बड़े प्रतापी राजा हुए। मधु के सौ पुत्र थे जिनमें वृष्णि सबसे ज्येष्ठ थे। आगे इस वंश में ज्यामघ नाम के एक राजा हुए जिनकी पत्नी का नाम शैव्या था। उनके कोई पुत्र न था। पत्नी के भय से वे दूसरा विवाह भी न कर सके। एक दिन ज्यामघ शत्रु के घर से भोज्या नाम की एक कन्या हर लाये। रथ पर राजा के साथ बैठी हुई उस कन्या को देख शैव्या ने कुपित होकर कहा—अजी! यह कौन है? किसे साथ में ले आये हैं? राजा ने कहा—यह तुम्हारी पुत्रवधू है। शैव्या ने आश्चर्य से कहा—मेरे तो कोई पुत्र ही नहीं, फिर पुत्रवधू कैसे? राजा ने कहा—जब तेरे पुत्र होगा तब यह उसकी वधू बनेगी। विश्वेदेवता एवं पितरों ने राजा के उक्त वचन का अनुमोदन किया और शैव्या उन सबकी कृपा से तत्काल गर्भवती हो गयी। जिससे उसे एक पुत्र हुआ। उसका भोज्या के साथ विवाह किया गया।

।। श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।

❖

चौबीसवाँ अध्याय

यदुवंशी विदर्भ आदि राजाओं का वंशवर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! राजा विदर्भ के भोज्या नामक पत्नी में कुश, क्रथ और रोमपाद नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। आगे चलकर इसी वंश में चेदि, शिशुपाल, दशार्ह, मधु, वृष्णि, भोज, देवावृध, बभ्रु और अनमित्र नाम के राजा हुए। अनमित्र के दूसरे पुत्र निम्न हुए निम्न के पुत्र सत्राजित् और प्रसेन हुए। अनमित्र के दूसरे पुत्र शिनि के सत्यक् और सत्य के युयुधान (सात्यकि) हुए अनमित्र के तीसरे पुत्र वृष्णि थे, उनके पुत्र श्वफल्क हुए। श्वफल्क से गान्दिनी में अक्रूर प्रभृति १२ पुत्र हुए। आगे इस वंश में विदूरथ, कुकुर, अन्धकं और आहुक हुए। आहुक के पुत्र देवक और उग्रसेन हुए। देवक के देववान् आदि ४ पुत्र थे। इन पुत्रों की सात बहनें थी।

तेषां स्वसारः सप्तासन् धृतदेवादयो नृप ॥२२॥
शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता।
सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥२३॥

हे राजन्! इन सातों बहनों का विवाह वसुदेव से हुआ। उग्रसेन के कंस, सुनामा, आदि ९ पुत्र एवं कंसा कंसवती आदि ५ कन्याएँ हुई। उनका विवाह वसुदेव के

देवभाग आदि छोटे भाइयों के साथ हुआ। आगे चलकर इसी वंश में हृदीक के पुत्र देवमीढ़ हुए। देवमीढ़ के पुत्र शूर हुए। शूर के मारिषा पत्नी में वसुदेव, देवभाग आदि १९ पुत्र हुए। वसुदेव के जन्मकाल में देवताओं के नगाड़े एवं ढोलक स्वयं बजने लगे थे। इसी से इनका नाम 'आनंकदुन्दुभि' पड़ गया—

देवन्दुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि।
वसुदेवं हरेः स्थानं वन्दन्त्यानकन्दुन्दुभिम् ॥२९-३०॥

वसुदेव की पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ये ५ बहनें थीं। शूर ने अपने मित्र कुन्ति राजा को पुत्रहीन देखकर अपनी कन्या पृथा उन्हें दे दी थी, जिससे उसका कुन्ती नाम भी प्रसिद्ध हुआ। एक बार कुन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने उसे 'देवहूति' विद्या का उपदेश किया था। एक दिन कुन्ती ने उस विद्या की परीक्षा के लिए सूर्य का आवाहन किया, जिससे सूर्यदेव तुरन्त प्रकट हो गये। उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की और कहा—भगवन्! मैंने केवल परीक्षार्थ आपको बुलाया था, आप मुझे क्षमा करें। सूर्य ने कहा—देवि! मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। मेरे द्वारा तुम्हें एक पुत्र होगा। इतना कहते ही उनकी कृपा द्वारा कुन्ती के कर्ण से एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। कर्ण से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम कर्ण पड़ा। हे राजन्! तुम्हारे प्रपितामह पाण्डु से इसी कुन्ती का विवाह हुआ। वसुदेव की रोहिणी, पौरवी आदि और भी पत्नियाँ थीं जिनसे बलदेव, गद, सारण आदि सात पुत्र हुए। देवकी पत्नी से वसुदेव के कीर्तिमान् सङ्कर्षण आदि सात पुत्र हुए और आठवें पुत्र साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हुए जिनकी बहन सुभद्रा थी, जो तुम्हारी दादी रही। जब धर्म का नाश और पाप की वृद्धि होती है तभी दैत्यों का संहार एवं धर्म की स्थापना के लिए भगवान् अवतीर्ण होते हैं। भगवान् ने वज्र, गोकुल आदि नाना स्थानों में जो-जो अलौकिक लीलाएँ की उनके श्रवण से कर्मवासनाएँ निवृत्त हो जाती हैं एवं परम आनन्द की प्राप्ति होती है—

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणा-
मन्तःसमुत्थकलिना युधि भुपचम्वः।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य
प्रोच्योद्धवाय च परं समगात् स्वधाम ॥६७॥

भगवान् ने कौरवों के अन्तःकलह को निमित्त बनाकर युद्ध में अपनी दृष्टि से ही दुष्ट राजाओं का संहार कर पृथ्वी का भार उतारा और विजय के द्वारा अर्जुन की प्रतिष्ठा बढ़ायी। अन्त में उद्धव को ज्ञानोपदेश देकर भगवान् स्वधाम अपने गोलोक चले गये।

॥ श्रीमद्भागवत-कथा साप्ताहिक के नवम स्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥नवम स्कन्ध समाप्त॥

❖

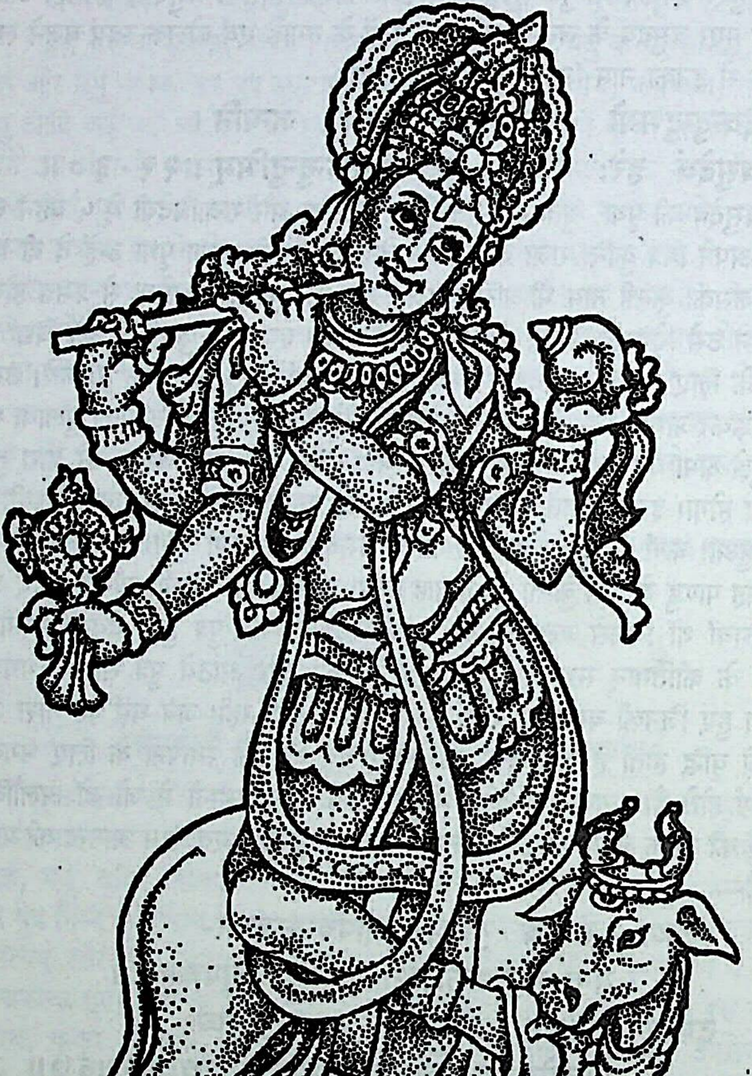

साप्ताहिक कथा का
महत्त्वपूर्ण
परिशिष्ट भाग

जनता का मुख्य कर्तव्य

हरि का भजन करो निशि वासर मन में उनका ध्यान धरो
हिंसा त्याग दीन दुखियों का अन्न वस्त्र दे पेट भरो।
सदाचार का पालन कर तुम पापकर्म से सदा डरो
दुर्लभ मानव जीवन पाकर आत्मा का उद्धार करो॥

अपने अपने धर्म में रहना जगत्पिता का है संवाद
कभी न इससे विचलित होना होगे जग में तुम आवाद।
प्रायश्चित्त करो पापों का शुद्ध हृदय से कर कर याद
दण्ड मिलेगा घोर अन्यथा मित्रों फिर मरने के बाद॥

॥ श्रीः ॥

अनसूया के पातिव्रत्य का प्रभाव

मृतक को जीवनदान

दृष्टान्त

मार्कण्डेय पुराण का प्रसंग है प्रतिष्ठानपुर में एक कौशिक नाम का ब्राह्मण रहता था। पूर्वजन्म के पापों के कारण उसके सारे शरीर में कुष्ठ हो गया था। उससे वह अत्यन्त व्याकुल रहता था। ऐसे घृणित रोग से युक्त होने पर भी उसकी पत्नी देवता की तरह उसे पूजती थी। वह पति के पैरों में तेल मलती, शरीर दबाती, स्नान कराती, सुन्दर-सुन्दर पकवान् खिलाती, इतना ही नहीं उसके थूक खखार तथा मल-मूत्र भी स्वयं अपने हाथों से साफ करती थी किन्तु उसे जरा सी भी घृणा नहीं होती थी। इतना होने पर भी उसका पति इतना क्रूर था कि वह अपनी पत्नी को हर समय डाँटता-फटकारता रहता था। कौशिक का शरीर इतना जर्जर था कि उससे चला फिरा भी नहीं जाता था।

एक दिन कौशिक ने अपने घर के पास ले जाती हुई एक वेश्या को देखा जो बड़ी सुन्दर थी। उसे देख वह अत्यन्त कामासक्त हो गया और पत्नी से बोला प्रिये! उस वेश्या के घर मुझे ले चलो। मुझमें जाने की शक्ति नहीं है। मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। तुम मेरी रक्षा करो। पति के ऐसे दीन वचन सुनकर उस पतिव्रता ने अपनी कमर कस ली और पति को कन्धे पर चढ़ा अधिक धन लेकर उस वेश्या के घर की ओर चल पड़ी।

रात्रि का समय था, आकाश मेघों से आच्छन्न था। मार्ग में एक सूली गड़ी थी, उसके ऊपर चोर के सन्देह में माण्डव्य ऋषि को भ्रम से चढ़ा दिया गया था। वे कुछ दुःख से पीड़ित हो रहे थे। कौशिक पत्नी के कन्धे पर चढ़ा था। घोर अन्धकार में देख न सकने के कारण उसने अपने पैरों के स्पर्श से उस सूली को हिला दिया जिससे कुपित हो माण्डव्य ऋषि ने क्रोधावेश में आकर कहा—जिसने पैर से इस सूली को हिलाकर मुझे कष्ट दिया है, वह पापात्मा नराधम सूर्योदय होते ही प्राण से रहित हो जाएगा। ऐसे दारुण शाप को सुनकर उसकी पत्नी ने दुःखित होकर पतिदेव का स्मरण कर कहा—यदि ऐसी बात है तो आज से अब सूर्योदय ही नहीं होगा।

तस्य भार्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम्।
प्रोवाच व्यथिता सूर्यो नैवोदयमुपैष्यति ॥१६/३१॥

तदनन्तर रात ही होने लगी सूर्योदय होना बन्द हो गया। इससे देवता घबड़ा उठे और सोचने लगे। दिन रात की व्यवस्था के बिना ऋतु का लोप हो जायेगा। उसके बिना दक्षिणायन, उत्तरायण का भी ज्ञान न हो सकेगा। फिर वर्ष का ज्ञान भी असम्भव होगा। इस प्रकार कालका ज्ञान होने के कारण सन्ध्या स्नान यज्ञ तर्पण दानादि सारी क्रियाओं का लोप होने से जगत् का नाश हो जाएगा। एकत्रित देवताओं की इस प्रकार वाणी सुनकर ब्रह्मा ने प्रकट होकर देवताओं से कहा—पतिव्रता के प्रभाव से अब सूर्य का उदय होना सम्भव नहीं। अतः तुम सब लोग महर्षि अत्रि की पतिव्रता पत्नी के समीप जाओ और सूर्योदय की कामना से उन्हें प्रसन्न करो। ब्रह्माजी के आदेशानुसार सब देवता अनसूयां के समीप पहुँचे और दीनतापूर्वक बोले देवि रक्षा करो, रक्षा करो हम बड़े कष्ट में हैं। अनसूया ने कहा आप लोग क्या चाहते हैं। देवताओं ने कहा देवि! सूर्योदय होना बन्द हो गया है वह पूर्ववत् होने लगे और रात-दिन की व्यवस्था हो जाय हम यही चाहते हैं। अनसूया ने कहा देवताओं पतिव्रता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता इसलिए मैं उसे मनाकर रात-दिन की सृष्टि करूँगी आप लोग चिन्ता न करें। मुझे अब ऐसा उपाय करना है जिससे पूर्ववत् सूर्योदय होने लगे और उसके पति का विनाश भी न हो।

देवताओं से इतना कहकर अनसूया उस ब्राह्मणी के घर गयी और परस्पर कुशल समाचार पूछने के बाद अनसूया ने कहा देवि! तुमने अपने पति की सेवा से इस लोक और परलोक में सब कुछ प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे वचन में बड़ी शक्ति है। पतिव्रता का प्रभाव संसार में प्रसिद्ध है उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता। पति की सेवा से बढ़कर स्त्री का दूसरा धर्म नहीं स्त्रियों के लिए पृथक् यज्ञ श्राद्ध या उपवास करने का शास्त्रीय विधान नहीं है। वह पति की सेवामात्र से दिव्य लोकों को प्राप्त कर लेती है। तुम्हारी पतिभक्ति से आकृष्ट होकर मैं तुम्हारे दर्शनार्थ यहाँ आयी हूँ। तुम्हारी पतिसेवा इसी प्रकार चलती रहे यही भगवान् से मनाया करती हूँ। आज तुम्हारे दर्शन से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

अनसूया के इस प्रकार मधुर वचन सुनकर ब्रांह्मणी ने बड़े प्रेम से उनका पूजन किया और कहा देवि! तुम्हारे उपदेश से मेरी पतिसेवा में और दृढ़ निष्ठा हो गयी। मुझे बड़ी शान्ति मिली। महाभागे! आज आप मेरे घर पर पधारी हैं अतः मुझसे अथवा मेरे पतिदेव से जो भी आपका कार्य हो बताने की कृपा करें।

अनसूया ने कहा देवि! तुम्हारे वचन से सूर्योदय होना बन्द हो गया है। उसके न होने के कारण दिन-रात की व्यवस्था भी लोप हो गयी है जिससे शुभकर्मों का अनुष्ठान बन्द हो गया है इसलिए इन्द्र आदि देवता दुःखी होकर मेरे पास आये हैं और प्रार्थना कर रहे हैं कि दिन-रात की व्यवस्था पहले की तरह अखण्डरूप से चलती रहे। मैं इसके लिए तुम्हारे पास आयी हूँ। ब्राह्मणी ने कहा—महाभागे! आपने ठीक तो कहा है किन्तु माण्डव्य ऋषि ने क्रोध में भरकर मेरे स्वामी को शाप दे दिया है कि सूर्योदय होते ही तेरी मृत्यु हो जायेगी। नेत्रों में अश्रु भरकर ब्राह्मणी बोली बताओं अब मैं क्या करूँ। अनसूया ने कहा कल्याणी! तुम चिन्ता न करो मैं पातिव्रत्य के प्रभाव से तुम्हारे पतिदेव को जीवित कर स्वस्थ एवं रोगमुक्त कर दूँगी। ऐसा कहने पर तथाऽस्तु कहकर ब्राह्मणी ने उनके वचन को स्वीकार कर लिया। तदनन्तर अनसूया ने हाथ में अर्घ्य पुष्प लेकर सूर्य का आवाहन किया। उस समय तक दस रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। आवाहन करते ही भगवान् भास्कर खिले कमल के समान लालिमा लिये हुए उदयाचल पर आरूढ़ हो सहसा प्रकट हो गये। सूर्य के उदय होते ही ब्राह्मणी का पति पृथ्वी पर गिर पड़ा किन्तु उसने तुरन्त उसे पकड़ लिया। ब्राह्मणी यह देखकर रोने लगी। अनसूया ने कहा—भद्रे! तुम विषाद न करो। मैंने पतिदेव की सेवा से जो तपोबल प्राप्त किया है उसका प्रत्यक्ष फल देखो इसमें विलम्ब न होगा।

अनसूया ने पतिदेव का ध्यान कर कहा—

मैंने जो रूप शील बुद्धि एवं मधुर भाषण आदि सद्‌गुणों से अपने पति के समान दूसरे किसी पुरुष को नहीं देखा है, उस सत्य के प्रभाव से यह ब्राह्मण रोग से मुक्त हो पुनः तरुण हो जाय और स्त्री के साथ सौ वर्षों तक जीवित रहे। यदि मैंने तन, मन, धन से पति की सेवा की है किसी भी अवस्था में उनकी अवहेलना नहीं की है। किसी देवता को भी उनके समान नहीं समझा हो तो उस सत्य के प्रभाव से यह ब्राह्मण रोग मुक्त होकर पुनः जीवित हो जाय। यदि मैंने जीवन में कभी भी किसी को कुदृष्टि से न देखा हो मन से भी किसी का अनिष्ट चिन्तन न किया हो, अतिथि अभ्यागत की सेवा की हो तो यह ब्राह्मण तत्क्षण पुनः जीवित हो जाय इतना कह अनसूया ने पतिदेव का स्मरण कर हाथ में जल लेकर जैसे ही उस ब्राह्मण पर छिड़का वह तुरन्त उठकर बैठ गया। देवता के समान उसका दिव्य रूप हो गया उसे देखकर ब्राह्मणी का हृदय गद्‌गद हो गया। नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं। सिद्ध गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर तथा देवगण सती अनसूया की जय-जयकार करते हुए पुष्पवृष्टि करने

---

१. नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम्।
भर्तृशुश्रुशयैवेतान् लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि।। (मार्कण्डेय पुराण)

लगे। बोलो सती अनसूया देवी की जय हो, जय हो, जय हो। इस प्रकार ३ बार ५ बार अथवा ७ बार जय-जयकार करें। और सती देवि—इस पद का सब मिलकर गान करें।

इस प्रकार सती अनसूइया देवी का महत्त्वपूर्ण चरित्र वर्णन किया गया। अब आगे का प्रसंग सुनें। अनसूया के इस कार्य से देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ। वे अनसूया के समीप जाकर बोले। तपस्विनी! आपने देवताओं का बहुत बड़ा कार्य किया है। हमसे आप कोई वर माँग लें। अनसूया ने कहा—यदि ब्रह्मा आदि देवता वर देना चाहते हैं तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीनों देवता मेरे पुत्र रूप में प्रकट होकर मुझे क्लेशनाशक आत्मतत्त्व का उपदेश करें। यह सुनकर ब्रह्मा आदि देवताओं ने तथाऽस्तु कहा और अनसूया का सम्मान कर वे सब अपने-अपने धाम चले गये।

चोरी के प्रसंग में शंख-लिखित का उपाख्यान (दृष्टान्त)

महाभारत शान्तिपर्व का एक प्रसंग है शंख और लिखित नामक दो सगे भाई थे जो बड़े ही तपस्वी थे। शंख बड़े लिखित छोटे थे। एक नदी के तट पर वे पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रम में रहा करते थे। आश्रम बड़े ही रमणीय और फल पुष्पादि से लदे रहते थे। एक दिन लिखित शंख के आश्रम पर आये। लिखित ने भाई की अनुपस्थिति में वहाँ के वृक्षों के कुछ पके हुए फल तोड़ लिये और वही बैठकर वे खा रहे थे। इतने में शंख वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने लिखित को फल खाते देखकर कहा, भैया! तुम्हें ये फल कहाँ से मिले। इस पर लिखित ने हँसते-हँसते अपने भाई से कहा ये तो मैंने इसी सामने वाले वृक्ष से तोड़े हैं। इस पर शंख ने कहा, तुमने बिना पूछे फल तोड़कर खाये हैं यह तो चोरी है इसका तुम्हें दण्ड मिलना चाहिए। इस पर लिखित ने कहा भैया! यदि यह भी शास्त्र में चोरी समझी जाती है तो आप मुझे इसका जो उचित हो दण्ड दे दें। शंख ने कहा, दण्ड देना तो राजा का काम है तुम उसके पास जाकर दण्ड की याचना करो।

भाई के आदेशानुसार लिखित राजा के समीप गये। उस समय के राजा सुद्युम्न थे। लिखित ने उनसे कहा राजन्! मैंने बिना आज्ञा लिए अपने बड़े भाई के फल खा लिये हैं। भाई ने इसे भी चोरी बतलाया है। उनका कहना है कि बिना पूछे किसी की जो भी चीज ली जाती है वह चोरी कही जाती है, अतः आप मुझे इसका दण्ड दीजिए। सुद्युम्न ने कहा प्रियवर! यदि आप दण्ड देने में राजा को प्रमाण मानते हैं तो क्षमा करने का भी राजा को अधिकार है, अतः मैं आपको क्षमा करता हूँ आप जाइये। लिखित ने भाई के समीप जाकर यह सारा समाचार कह सुनाया। इस पर शंख ने कहा, राजा ने अपनी धर्म का पालन किया है। किन्तु चोरी का दण्ड तो तुम्हें मिला नहीं, अतः पुनः

राजा के समीप जाकर दण्ड की याचना करो। लिखित ने जाकर अपने भाई का आदेश राजा को सुनाया। राजा ने चोरी का दण्ड देते हुए उसके दोनों हाथ कटवा दिये। लिखित पीड़ा से व्याकुल हो अपने भाई के पास आया और कहाँ भैया मुझे चोरी का दण्ड मिल गया अब आप मुझे क्षमा करें। शंख ने कहा भैया मैं तुम पर कुपित नहीं हूँ। तुमसे धर्म का उल्लंघन हो गया था। उसी का दण्ड तुम्हें मिला है। अच्छा अब तुम एक काम करो इसी नदी पर जाकर विधिपूर्वक! देवता और पितरों का तर्पण करो। भविष्य में कभी ऐसा न करना। लिखित ने कहा भैया! यह तुम क्या कह रहे हो मेरे हाथ तो है नहीं मैं तर्पण करूँगा कैसे? उत्तर में शंख ने कहा—मैं जो कह रहा हूँ उसका तुम पालन करो सोच विचार मत करो। लिखित ने भाई के आदेशानुसार उस नदी के पुनीत जल में स्नान किया और तर्पण करने को ज्योंही उद्यत हुआ तत्क्षण कमल के समान उसके दोनों हाथ निकल आये। लिखित के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। शंख ने कहा तुम आश्चर्य न करो यह तेरी तपस्या और नदी के प्रभाव से तुम्हारे दोनों हाथ निकले हैं। तभी से इस नदी का नाम बाहुदा पड़ गया। बाहू ददातीति बाहुदा। प्राचीन काल में चोरी का दण्ड यही दिया जाता था। इसीलिए लोक में तस्करता केवल सुनी जाती थी। श्रुतौ तस्करता स्थिता। कार्यरूप से परिणत नहीं थी। आज का शासन धर्मनिरपेक्ष होने के कारण नपुंसक है। उसमें राज्य संचालन की क्षमता नहीं। इसी से चोरी डकैती का साम्राज्य छाया हुआ है।

चाणक्य ने कहा है प्रथम बार चोरी का दण्ड साधारण हो दुबारा एक हाथ और तीसरी बार दोनों हाथ कटवा देना चाहिए। ऐसा करने से चोरी सदा के लिए देश से समाप्त हो जायेगी और प्रजा सुख शान्ति से अपना जीवन बिता सकेगी।

यह दृष्टान्त चतुर्थ स्कन्ध वेन के उपाख्यान अध्याय १४ में देना चाहिए।

द्रौपदी के पाँच पतियों का भ्रमनिवारण

मार्कण्डेय-पुराण का प्रसंग है एक समय व्यासजी के शिष्य महातपस्वी जैमिनि ने मार्कण्डेय मुनि के समीप जाकर पूछा भगवन्! व्यास द्वारा रचित महाभारत बड़ा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें कुछ स्थानों पर मुझे सन्देह है, कृपया आप इसका समाधान करें। मार्कण्डेयजी ने कहा मुनिवर! यह मेरे सन्ध्यावन्दन का समय है प्रश्नोत्तर में समय अधिक लग सकता है, मैं तुम्हें ऐसे पक्षियों का परिचय देता हूँ जो प्रश्नों का उत्तर देकर तुम्हारे सन्देह का निराकरण करेंगे। वे द्रोण नामक पक्षी के चार मुत्र हैं, जो धर्मपक्षी के नाम से विख्यात हैं। उनके नाम हैं—पिङ्गाक्ष, विरोध, सुव्रत और सुमुख। किसी भी प्रश्न का उत्तर देने में उनकी बुद्धि कभी कुण्ठित नहीं होती। वे चारों पक्षी

विन्ध्यपर्वत की कन्दरा में रहते हैं सुकृष मुनि के शाप से उनके चारों पुत्र-पक्षियोनि को प्राप्त हो गये हैं। जिन्हें समस्त शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान है वे मनुष्य की वाणी में बोलते हैं। उनका उच्चारण बड़ा ही स्पष्ट होता है। यह सुनकर जैमिनि को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मुनि के कथनानुसार विन्ध्यपर्वत की कन्दरा में पहुँचे। देखा तो धर्म पक्षी स्पष्ट उच्चारण के साथ वेद और पुराणों का पाठ कर रहे थे। सुनकर जैमिनि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उनके समीप में पहुँचकर कहा—धर्मपक्षिओं! आपका कल्याण हो। मैं व्यासजी का शिष्य जैमिनि हूँ। आपके दर्शन की इच्छा से यहाँ आया हूँ। मुझे महाभारत में कई स्थानों पर सन्देह है। मार्कण्डेय मुनि के आदेशानुसार आपके पास आया हूँ उन्होंने कहा—मुझे समय नहीं है तुम धर्मपक्षियों के पास चले जाओ वे तुम्हारे प्रश्नों का समुचित उत्तर देंगे जिससे तुम्हारा सन्देह निवृत्त हो जायेगा। पक्षियों ने कहा ब्रह्मन्! आपका स्वागत है जो सन्देह आपको हो उसे निर्भीक होकर पूछिये—जैमिनि ने कहा द्रौपदी-अकेली ही पाँचों पाण्डवों की पत्नी क्यों और कैसे हुई। पक्षियों ने कहा सुनिये।

पूर्वकाल में त्वष्टा प्रजापति के पुत्र विश्वरूप को पुरोहित बनाकर जब इन्द्र ने मार डाला तब ब्रह्महत्या ने उन पर आक्रमण किया जिससे वह निस्तेज हो गये उनका तेज धर्मराज में समा गया। पुनः त्वष्टा के पुत्र वृत्तासुर को जब इन्द्र ने पुनः मारा तब ब्रह्महत्या के कारण उनका बल नष्ट होकर वायु देवता में समा गया। जब इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर उनकी पत्नी अहल्या का सतीत्व भंग किया तब उनका रूप भी नष्ट हो गया जो अङ्ग-प्रत्यङ्ग का लावण्य था वह व्यभिचार से दूषित हो इन्द्र को छोड़कर अश्विनी कुमारों के पास चला गया इस प्रकार इन्द्र अपने धर्म, तेज, बल और रूप से नष्ट हो गये।

उन दिनों दैत्यों के भार से पृथ्वी पीड़ित थी। उसने मेरुपर्वत पर स्थित देवसभा में अपना दुःख निवेदन किया। पृथ्वी के यों कहने पर सब देवता अपने-अपने तेज के अंश से अवतीर्ण हुए। इन्द्र के तेज से जो प्राप्त हुआ था उसे स्वयं धर्मराज ने कुन्ती के गर्भ में स्थापित किया जिससे युधिष्ठिर का जन्म हुआ। फिर वायु देवता ने इन्द्र के ही बल को कुन्ती के उदर में स्थापित किया उसमें भीम उत्पन्न हुए। इन्द्र के आधे शरीर

---

१. शाप का कारण यह था—एक समय देवराज इन्द्र परीक्षा की इच्छा से वृद्ध पक्षी का रूप धारण कर हमारे पिताजी के समीप आये और अपनी भूख व्यक्त करते हुए मनुष्य का मांस माँगा। पिता ने जब हमारी ओर इसके लिए संकेत किया तो हम लोगों ने इसका निषेध किया, उसी से क्रुद्ध हो पक्षी होने का हमें शाप दे डाला पुनः प्रार्थना करने पर प्रसन्न हो पिता ने कहा पुत्रों! तुम चिन्ता न करो पक्षियोनि में भी तुम्हें किसी प्रकार का क्लेश न होगा। सब शास्त्रों का तुम्हें ज्ञान बना रहेगा। इस प्रकार पिता के आशीर्वाद से इस योनि में भी हमें कोई कष्ट नहीं है।

से अर्जुन का जन्म हुआ। इसी प्रकार इन्द्र का सुन्दर रूप अश्विनी कुमारों द्वारा माद्री के गर्भ में स्थापित किया गया। जिससे अतीव सुन्दर नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। इस प्रकार देवराज इन्द्र अपने पाँच रूपों में अवतीर्ण हुए थे। उनकी पत्नी शची दिव्य रूप से (इन्द्राणी) कृष्णा के रूप में अग्निकुण्ड से प्रकट हुई। अतः इन्द्राणी एकमात्र इन्द्र की पत्नी थी और किसी की नहीं। योगी भी अनेक शरीर धारण करने की क्षमता रखते हैं फिर इन्द्र तो देवराज हैं उनके विषय में सन्देह कैसा। इस प्रकार पाँचों पाण्डवों की एक ही पत्नी थी उसका रहस्य इस प्रकार आपको बताया गया।

मदालसा का महत्त्वपूर्ण चरित्र

मर्त्यलोक में शत्रुजित नाम के एक राजा थे उनके पुत्र ऋतध्वज थे जिन्हें कुवलयाश्व भी कहा जाता था। उनकी पत्नी मदालसा थी जो बड़ी ही विदुषी थी उन्होंने अपने पुत्रों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर संसार के बन्धन से मुक्त कर दिया था। उनके चार पुत्र थे। राजा ने उनके नाम रक्खे थे विक्रान्त, सुबाहु और अरिमर्दन। यह नाम सुनकर मदालसा मन्द-मन्द मुस्कराने लगी। राजा ने कहा देवि! यदि ये नाम तुम्हें पसन्द न हो तो चौथे पुत्र का नाम तुम ही रख लो। रानी ने उसका नाम अलर्क रक्खा। राजा ने हँसकर कहा—यह तो बिल्कुल अनर्थक है इसका अर्थ क्या होगा रानी ने कहा लौकिक व्यवहार के लिए कोई सा नाम रख लिया जाता है। इससे जीवात्मा का कोई सम्बन्ध नहीं। आपने जो नाम रक्खे हैं वे भी तो निरर्थक हैं। आपने प्रथम पुत्र का नाम विक्रान्त रक्खा है। यह 'क्रमु' पादविक्षेपे, धातु से बनता है, उसका अर्थ है गति। आत्मा सर्वव्यापक है उसकी गति कैसी। दूसरा नाम है सुबाहु ब्रह्म तो निराकार है उसकी बाहु कहाँ से आयी। तीसरे का नाम है अरिमर्दन। जब एक ही आत्मा है तो कौन किसका मित्र और किसका शत्रु होगा। मूर्तिमान् भूतों के द्वारा मूर्तिमान् भूतों का ही मर्दन होता है। आत्मा तो अमूर्त है उसका मर्दन कैसे इसलिए ये सब नाम असम्बद्ध होने से निरर्थक है। रानी की व्याख्या सुनकर राजा ने कहा अच्छा तो बताओ 'अलर्क' का क्या अर्थ है। रानी ने कहा—सुनिये महाराज! अलर्क यहाँ दो शब्द हैं अलं और अर्क अलम् अतिशयेन अर्क्यते स्तूयते राजभिः अर्च्यते पूज्यते वा अलर्कः 'अर्कस्तवने' अर्च पूजायां वा धातु से घञ् प्रत्यय। शकन्ध्वादित्वान्पररूपम्। तीसरा अर्थ अलं—शब्द पूर्णवाची अर्क प्रकाश का वाचक प्रकाशवान् पूर्णब्रह्म होता है।

राजा इस प्रकार का व्याख्यान सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ।

रानी प्रथम पुत्र को गोद में बैठाकर महत्त्वपूर्ण तत्त्वज्ञान का उपदेश करने लगी। हे बेटा! त्वं 'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि'। इत्यादि रूप से।

पुनः दूसरे और तीसरे पुत्र को भी इसी प्रकार निवृत्तिमार्ग का उपदेश देकर सांसारिक पदार्थों से उनकी आसक्ति निवृत्ति कर दी। बड़े होने पर तीनों ही संसार से विरक्त हो वन में जाकर भगवच्चिन्तन में लग गये। चौथे पुत्र अलर्क को भी जब मदालसा निवृत्तिमार्ग का उपदेश करने लगी तब राजा ने कहा देवि! ऐसा मत करो। यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो तो इसे प्रवृत्तिमार्ग का उपदेश करो जिससे वंश का उच्छेद न हो और राज्य की परस्परा यथावत् चलती रहे। रानी ने तथास्तु कहकर राजा की बात मान ली और अलर्क को राजनीतिक उपदेश देने लगी। सर्वप्रथम धर्मानुकूल राज्य की व्यवस्था करके राजा का मूलोच्छेद करनेवाले जो सात व्यसन हैं उनका सर्वथा त्याग करें।

(१) कटु वचन बोलना। (२) साधारण अपराध में कठोर दण्ड देना। (३) धन का अपव्यय करना। (४) मदिरा पीना। (५) स्त्रियों में विशेष आसक्ति रखना। (६) शिकार खेलने में व्यर्थ समय नष्ट करना। (७) और जुआ खेलना। ये राजा के सात व्यसन हैं। षड् गुणा नीतिवेदिनाम् इन छः गुणों के अनुसार राज्य की व्यवस्था करना।

(१) सन्धि, (२) विग्रह, (३) यान, (४) आसन, (५) द्वैधीभाव, और (६) समाश्रय ये छः गुण है। इनमें पक्ष कमजोर होने पर शत्रु से मेल रखना सन्धि। उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, आक्रमण करना यान, अवसर की प्रतीक्षा में बैठे रहना आसन, दुरंगी कूटनीति बरतना द्वैधीभाव और अपने से बलवान् राजा का आश्रय करना समाश्रय कहलाता है। किसी का भी पूर्ण विश्वास न करना। गुप्तचरों द्वारा अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग अधिकारियों का पता लगाते रहना। प्रजा की भी गतिविधि पर विशेष ध्यान रखना। धर्मविरुद्ध प्रचार करने वालों को कठोर दण्ड देना। इत्यादि-इत्यादि सम्पूर्ण राजनीतिक उपदेश देकर गुरुजनों ब्राह्मणों का सम्मान करना। नीति वेत्ताओं से यथासमय परामर्श लेते रहना। ऐसा उसे समझाया। तदनन्तर वृद्धावस्था आने पर राजा ने तपस्या करने के लिए वन में जाने का विचार किया और अलर्क का राज्याभिषेक कर दिया। उसी समय मदालसा ने उसकी विषयासक्ति हटाने के लिए उससे यह अन्तिम वचन कहा—बेटा!

राज्य का संचालन करते हुए यदि किसी प्रकार की शत्रु की बाधा उपस्थित हो जाय, कोषागार पर आक्रमण हो जाय, धन का नाश हो जाय और भी कोई असह्य दुःख आ पड़े तो मेरी दी गयी इस अंगूठी से उपदेश पत्र निकालकर जो रेशमी वस्त्र पर बहुत सूक्ष्म अक्षरों में लिखा गया है, उसे तुम अवश्य पढ़ना तदनुसार कार्य करना, उससे तुम्हारी दुःख निवृत्ति निश्चित हो जायेगी। इतना कहकर मदालसा ने अपने पुत्र को

सोने की अंगूठी दे दी और अनेकानेक आशीर्वाद दिए अनन्तर कुवलयाश्व अपनी पत्नी मदालसा के साथ तपस्या करने के लिए वन में चले गये।

इस प्रकार राज्य में आसक्त हुए अलर्क को अनेक वर्ष व्यतीत हो गये किन्तु राज्य से उनकी आसक्ति घटी नहीं उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही, विषय भोग से उनकी तृप्ति नहीं हुई। वन में निवास करते हुए उनके बड़े भाई सुबाहु ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने बहुत देर तक इस पर सोच-विचार किया कि अलर्क को किस प्रकार ज्ञान की प्राप्ति और विषयों से विरक्ति हो। अन्ततः उन्होंने यह निर्णय किया कि अलर्क से शत्रुता रखनेवाले किसी राजा की सहायता लेकर अलर्क पर चढ़ाई करा दी जाय। ऐसा निश्चित कर सुबाहु ने काशिराज के समीप जाकर कहा—राजन् मेरे छोटे भाई अलर्क ने मेरा सारा राज्य हड़प लिया है। आप मेरी सहायता करें। काशिराज ने इसे अनुचित समझ समस्त सेना सहित अलर्क की राजधानी पर चढ़ाई कर दी, उनके आस-पास के सभी राजाओं को अपने वशीभूत कर लिया। सेना ने उनके कोषागार सैन्यागार तथा शस्त्रागार सभी पर कब्जा कर लिया। नगर को चारों ओर से शत्रु सेना ने घेर लिया। यह देख अलर्क अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसे असह्य पीड़ा होने लगी। वह किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया।

तब सहसा उसे माता की दी हुई अंगूठी का स्मरण हो आया। उसने स्नान कर पवित्र हो ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन कराकर उस अंगूठी से उपदेश पत्र निकाला। उसे हृदय और मस्तक से लगाकर पढ़ा। पढ़ते ही उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो गया, हृदय गद्‌गद् हो गया नेत्रों से अश्रुधारा बह चली, कण्ठ रुध गया, चिरकाल तक माता का स्मरण ही करता रहा। अन्त में अंगूठी में जो उपदेश पत्र था उसमें दो श्लोक लिखे थे वे इस प्रकार हैं—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥

कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥

बेटा! संग का सर्वथा त्याग करना चाहिए, किन्तु यदि संग का त्याग न कर सके तो सत्पुरुषों का ज्ञानी महात्माओं का संग करना चाहिए क्योंकि सत्पुरुषों का संग सम्पूर्ण दुःखों की निवर्तक औषधि है कामनाओं को सर्वथा छोड़ देना चाहिए किन्तु यदि न छोड़ सके तो मोक्ष के प्रति कामना करना चाहिए, क्योंकि मुमुक्षा ही कामनाओं का नाश करने वाली दवा है।

इस उपदेश पत्र को अलर्क ने अनेक बार पढ़ा और पढ़कर सीधे दत्तात्रेय के शरण में चले गये और प्रणामकर बोले भगवन्! राज्य के सम्बन्ध से मैं अत्यन्त दुःखित हो रहा हूँ मेरा दुःख निवृत्त करें दत्तात्रेय के पूछने पर अलर्क ने सारी घटना ज्यों कि त्यों उन्हें सुना दी। इस पर दत्तात्रेय ने कहा राजन् घबड़ाओं नहीं मैं अभी क्षणमात्र में तुम्हारा दुःख दूर करता हूँ ऐसा कहकर उन्हें ज्ञान वैराग्य संवलित योगमार्ग का महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया। उसके अंग-प्रत्यङ्ग साधन धारणा ध्यान समाधि तथा विधि भी सरल पद्धति से बतला दी। योगसाधन में जो विघ्न बाधाएँ होती हैं उनके निराकरण का भी विस्तृत विवेचन किया उपाय भी बताया कहा राजन्! तुमने बहुत दिनों तक राज्य कर लिया है यह दुःख तुम्हारे सुख देने के लिए हुआ है इसे तुम दुःख मत समझो। इससे तुम आनन्दनिधि भगवान् को प्राप्त कर सकोंगे जो जीवन का मुख्य लक्ष्य है। जिसके कारण तुमको दुःख हुआ है उस राज्य का परित्याग कर दो। तुम्हारे बड़े भाई सुबाहु और काशिराज जहाँ हैं उनके पास जाकर राज्य समर्पण कर दो और कहो तुम्हारे भय से व्याकुल होकर मैं दत्तात्रेयजी की शरण में गया था उनके उपदेश से मेरी राज्यासक्ति सदा के लिए निवृत्त हो गयी है। मुझे अब राज्य नहीं करना है आप राज्य करें अब मैं आपका शत्रु नहीं हूँ आप कोई दूसरा शत्रु ढूँढ़ लें। मैं उनके उपदेशानुसार वन में जाकर भगवान् का चिन्तन करूँगा, तप करूँगा। बस इस समय तुम्हारा इतना ही कर्तव्य है।

दत्तात्रेयजी का यह अमूल्य उपदेश सुनकर अलर्क के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। वह गद्गद् हो उसी से उनके चरणों का अभिषेक करने लगे। दत्तात्रेय ने उनके मस्तक पर अपना वरद हस्त रखकर आशीर्वाद दिया और कहा—जाओ बेटा जाओ सानन्द जाओ तुम्हारा कल्याण हो। मैंने जो तुम्हें बताया है उसी के अनुसार ममता और अहङ्कार से रहित हो भगवत्प्राप्ति का साधन करो। अब तुम्हें कोई कष्ट न होगा।

दत्तात्रेयजी के ऐसा कहने पर अलर्क ने उन्हें प्रणाम किया और बड़ी उतावली के साथ उनका गुणगान करते हुए वहाँ गये जहाँ सुबाहु और काशिराज बैठे थे। उनके समक्ष हँसते हुए अलर्क ने शिष्टाचार के साथ कहा काशिराज अब आप राज्य का उपभोग करें अथवा मेरे बड़े भाई सुबाहु को दे डालें, मैं अब राज्य नहीं करूँगा। यह सुनकर दोनों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ काशिराज ने कहा—अलर्क तुम धर्म के ज्ञाता हो। बिना युद्ध के तुमने राज्य क्यों छोड़ दिया यह तो क्षत्रिय का धर्म नहीं। अलर्क ने कहा महाराज ठीक है आपका कहना पहले मेरे मन में ऐसी धारणा थी किन्तु तुम्हारे भय से अत्यन्त दुःख पाकर मैं योगीश्वर दत्तात्रेयजी के शरण में चला गया था। उनकी कृपा से मुझे कुछ ज्ञान प्राप्त हो गया। राज्याशक्ति भी निवृत्ति हो गई। अब मैं कुछ

त्यागकर वन में जाकर ब्रह्म का चिन्तन करूँगा। आपने तथा मेरे भाई ने ऐसी योजना बनाकर मेरा बड़ा उपकार किया है जो मुझे इस बन्धन से छुड़ा दिया। मैं आप दोनों को सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ मुझे आशीर्वाद दें जिससे मैं भगवत्प्राप्ति में सफलता प्राप्त कर सकूँ। यह कहकर अलर्क कृतज्ञता प्रकट करते हुए दोनों के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। सुबाहु अपनी भाई का इस प्रकार परिवर्तन देख प्रसन्न हो उठा और धन्य-धन्य कहकर भाई को गले लगा लिया और काशिराज से कहा मैं जो चाहता था वह मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। अब मैं वन में तपस्या करने जाता हूँ आपका कल्याण हो। मेरा यही मनोरथ था कि मेरा भाई इस राज्य बन्धन से निवृत्त हो मोक्ष साधना में लग जाय यह आपकी सहायता से मेरा कार्य पूर्ण हो गया आपको अनेकश: धन्यवाद है। अब मैं जाता हूँ तदनन्तर अलर्क अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक कर तपस्या करने पत्नी सहित वन में चले गये।

मृत्युसूचक अरिष्टों का वर्णन

धर्म-कर्महीन पापपरायण प्राणी परलोक में नरक की यानता न भोग सके अरिष्टों से मृत्यु का ज्ञान कर पापों का प्रायश्चित कर ले इसलिए अरिष्टों का वर्णन किया जाता है। हे राजन् जो मनुष्य देवमार्ग (आकाशगङ्गा) ध्रुव, अरुन्धती का तारा न देख सके वह एक वर्ष तक जीवित रहता है। जो पूर्ण सूर्यमण्डल की किरणों से रहित और अग्नि को किरणों से मण्डित देखता है वह मनुष्य ग्यारह महीनों तक जीवित रहता है। जो स्वप्न में वमन मूत्र विष्ठा के अन्दर सोना, चाँदी देखता है उसकी आयु दस महीने तक ही है। जो प्रेत पिशाच गन्धर्वगण तथा सुवर्ण के सदृश पीले रंग के वृक्ष देखता है वह नौ महीने तक जीवित रहता है। धूल का कीचड़ में जिसकी एड़ी या पैर का अग्रभाग खण्डित दिखाई दे उसका जीवन केवल सात मास शेष है। जिसके सिर पर गीध, उल्लू, कबूतर या नीले रंग का कोई पक्षी आकर बैठ जाय वह छ: मास आयु शेष रहने की सूचना देता है। यदि कौआ आकर सिर पर बैठ जाय तथा अपनी छाया छित्रयुक्त दिखाई दे उसका चार-पाँच महीने का ही जीवन है जिसे बिना बादल के दक्षिण दिशा में बिजली चमकती दिखाई दे रात्रि में इन्द्रधनुष देखे वह दो-तीन महीने का ही मेहमान है। जो घी, तेल, दर्पण अथवा जल में अपनी परछाई न देख सके अथवा देखें भी तो वे सिर की तो वह एक मास से अधिक जी नहीं सकता। जिसके शरीर में बकरे या मुर्दे की-सी दुर्गन्ध आने लगे वह केवल १५ दिन तक जीता है। स्नान करते ही जिसकी छाती और पैर सूख जाय जल पीने पर भी जिसका कण्ठ सूखने लगे वह केवल दस दिन तक जीवित रह सकता है। जिसके अन्दर की वायु पृथक् होकर मर्मस्थानों को छेदती जान पड़े जल के स्पर्श से भी जिसके शरीर में रोमाञ्च न हो उसकी मृत्यु पास

में खड़ी है ऐसा समझना चाहिए। जो स्वप्न में भालू या बानर की सवारी पर बैठकर गाता हुआ दक्षिण दिशा की ओर जाय उसकी मृत्यु समय की प्रतीक्षा नहीं करती। स्वप्न में लाल या काले कपड़े पहने हँसती गाती हुई स्त्री जिसे दक्षिण दिशा में ले जाय उसका जीवन एक-दो दिन का है। यदि स्वप्न में नंगा या मुण्डन किया हुआ बली पुरुष हँसता-कूदता उछलता हुआ दिखाई दे जाय तो समझना मौत आ गई। जो स्वप्न में पैर से लेकर चोटी तक कीचड़ के समुद्र में डूबा हुआ अपने को देखता है वह तत्काल मर जाता है।

जो स्वप्न में केश अंगारे भस्म फुफकारता हुआ सर्प बिना पानी की नदी देखता है उसका जीवन ग्यारह दिन तक है। जिसे स्वप्न में भयङ्कर विकराल काले रंग के पुरुष हाथों में शस्त्र लिये जिसको पत्थरों से मारते हैं, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। सूर्योदय के समय जिसके सम्मुख या दायें-बाँयें मृगाली रोती हुई जाय वह तत्काल मर जाता है। भोजन कर लेने पर भी जिसके हृदय में भूख का कष्ट मालूम पड़े और जो दाँतों से दाँतों को घिसता रहे उसकी आयु समाप्त समझो। जिसे दीपक के बुझने पर उसकी गन्ध का अनुभव न होता हो, जो बिना कारण रात-दिन डरता हो, दूसरे के नेत्र में अपनी परछाई न देखता हो उसका जीवन अब नहीं है। जो आधी रात को इन्द्रधनुष और दिन में तारों को देखे उसकी आयु समाप्त समझो। जिसकी नाक टेढ़ी और कान ऊँचे-नीचे हो जायँ बायें नेत्र से निरन्तर पानी गिरता रहे उसकी आयु समाप्त हो चुकी है। यदि मुख सब ओर से लाल और जिह्वा काली पड़ जाय तो उसकी आयु निकट समझो। यदि स्वप्न में ऊँट या गदहें पर बैठकर दक्षिण दिशा की ओर जाय तो उसकी दिन निकलते ही मृत्यु हो जाती है। दोनों कान बन्दकर जिसे प्राण का घोष सुनायी न दे तथा सहसा जिसकी नेत्र ज्योति नष्ट हो जाय वह कठिनता से दो-चार दिन जीवित रहता है। जो रात में किसी गड्ढे में गिर जाय निकलने का द्वार बन्द हो जाय फिर उसमें से निकल न सके तो उसी रात तक उसका जीवन है। जिसकी दृष्टि ऊपर की ओर उठे किन्तु वहाँ ठहर न सके, बार-बार लालिमा लिये घूमती रहे, मुख लाल और नाभि शीतल हो जाय, ये लक्षण शरीर परिवर्तन की सूचना देते हैं। जो स्वप्न में अग्नि या जल में प्रविष्ट होकर फिर उसमें से न निकल सके उसकी आयु का अन्त समझो। जिसे दुष्ट जीव रात में और दिन में भी मारें वह सात दिन के अन्तर निश्चित मृत्यु को प्राप्त होता है। जो अपने श्वेत वस्त्र को लाल या काला देखे उसकी भी मृत्यु निकट समझो। स्वभाव का सहसा विपरीत होना प्रकृति का बिल्कुल बदल जाना भी मृत्यु के निकट होने की सूचना देते हैं।

अरिष्टनाशक एवं आयुर्वर्धक सदाचार का वर्णन

आचारः परमो धर्मः, आचाराद् वर्धते ह्यायुः ।

आचार परम धर्म है, आचार से आयु बढ़ती है। इसके अनुसार यदि आयु की वृद्धि चाहते हों तो प्रत्येक मनुष्य को आचार का पालन करना चाहिए। आचारहीन पुरुषों को षडङ्ग सहित वेदों का अध्ययन भी पवित्र नहीं कर सकता, मृत्यु के समय वेद उसे त्याग देते हैं, जैसे पक्षी अपनी घोंसले का त्याग कर चला जाता है। परम्परागत श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण ही सदाचार कहलाता है। अब संक्षेप से हम सदाचार का वर्णन करते हैं। ध्यानपूर्वक उसका श्रवण और मनन करें।

सर्वप्रथम ब्राह्ममुहूर्त में ४ बजे उठने का अभ्यास करें क्योंकि सूर्योदय के पहले प्रातःकाल की निद्रा पुण्य का क्षय करती है और वह पुरुष प्रायश्चित्त का भागी हो जाता है। ब्राह्ममुहूर्त में लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही वर देने को बैठी रहती हैं जो जगा रहता है उनका ध्यान करता है उस व्यापारी को लक्ष्मी और विद्यार्थी को विद्या प्राप्त होती है। प्रातःकाल सोनेवाला पुरुष दोनों से हीन होकर संसार में कष्ट का अनुभव करता है। आयुर्वेद के अनुसार प्रातःकाल का उठना स्वास्थ्य के लिए भी अत्यन्त लाभदायक है।

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।

विस्तर से उठते ही सर्वप्रथम पृथ्वी को प्रणामकर क्षमा माँगे पादस्पर्शं क्षमस्व में, ऐसा कहकर। तदनन्तर अपने इष्टदेव तथा गुरुदेव का चिन्तन कर माता-पिता के चरणों में प्रणाम करे। यथा समय शौच से निवृत्त हो मृत्तिका से हस्त प्रक्षालन करें। १० बार वामहस्त को दोनों हाथ को मिलाकर सात बार मलना चाहिए। तभी हाथ की शुद्धि होती है अन्यथा हाथ की शुद्धि नहीं होती। शुद्धि बिना हाथ से जो संकल्पादि क्रियाएँ की जाती हैं वे सब व्यर्थ हो सकती हैं उनका कोई फल नहीं होता। पुराणों में हस्तशुद्धि पर बहुत जोर दिया गया है। 'हस्तशुद्धिर्गरीयसी'। 'पाणिशुद्धिर्गरीयसी' ऐसा कहकर। साबुन से हाथ की शुद्धि कभी नहीं हो सकती (मृदः शुद्धिमभीप्सता) इस पर ध्यान दें। अनन्तर शुद्ध जल से स्नानकर सन्ध्योपासन करें। कम से कम एक माला गायत्री का जप करें। फिर अपना स्वाध्याय करें। ११ से १२ बजे के अन्दर भोजन करें। थोड़ा विश्राम कर पुनः शाम तक अध्ययन करें। पुनः शौचादि से निवृत्त होकर सन्ध्योपासन करें। शौच दोनों समय जाना चाहिए 'षण्मूत्री द्विपुरीषकः' इसके अनुसार शौच में विलम्ब नहीं करना चाहिए। रात्रि का भोजन आठ बजे तक कर लेना चाहिए। १० बजे तक स्वाध्याय कर फिर शयन करना चाहिए। यह प्राचीन परम्परा है। इसका पालन करने से मनुष्य का अभ्युदय होता है। सामान्य रूप से द्विजाति मात्र की इस दिनचर्या का वर्णन किया गया। इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है।

अब सदाचार की विशेषताओं पर ध्यान दें

गृहस्थ को त्रिवर्ग का उपार्जन करना चाहिए। उससे दोनों लोकों में सुख की प्राप्ति होती है। अपनी आय का चतुर्थांश परलोक साधन के लिए संग्रह करें। आधे भाग से नित्य नैमित्तिक कार्य करते हुए अपने परिवार का भरण-पोषण करें तथा एक चौथाई भाग मूल पूँजी के रूप में रखकर उसे बढ़ायें। इससे धन सफल होता है। बुरी बातें झूठ कठोर वचन बोलना तथा नास्तिकवाद का अपनाना छोड़ दे। क्षमता होने पर सायं प्रात: हवन करें। इससे इन्द्र की प्रसन्नता होती है और वह यथा समय वर्षा करते हैं। अत: प्रतिवर्ष मिलकर सबको इन्द्र के निमित्त यज्ञ करना चाहिए। उदय और अस्त के समय सूर्यमण्डल का दर्शन न करें। बाल काटना, दर्पण देखना, दन्तधावन और देवतर्पण यह कार्य पूर्वाह्न में ही करना चाहिए। मार्ग में जाते हुए खेत में गोशाला में मल-मूत्र का त्याग न करें। अपनी विष्ठा पर दृष्टिपात न करें। परायी स्त्री को नग्न न देखें। रजस्वला स्त्री का दर्शन स्पर्श तथा उससे भाषण भी वर्जित है। पानी में मलमूत्र का त्याग तथा मैथुन न करें। रस्सी, वस्त्र तथा केवल पृथ्वी पर और मार्ग में न बैठें। बीच मार्ग में खड़े होकर बातचीत न करें। मार्ग को रोककर खड़े न होवें अन्यथा नरक में जाता है।

मार्गरोधकरा ये च ते वै नरकगामिनः ।

अतिथि अभ्यागत का अनादर न करें। उसे अवश्य कुछ न कुछ देना चाहिए अन्यथा अदाता का पुण्य लेकर और उसे अपना पाप देकर चला जाता है। भोजन के लिए उत्तर या पूर्व मुख करके आसन पर बैठें और हाथों को घुटनों के भीतर रखकर मौन भाव से भोजन करें। भोजन के साथ पृथक् नमक लेकर न खायें। अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त ठण्डा भोजन न करें। भोजन के साथ नात्युष्णं नातिशीतमश्नीयात्। आयुर्वेद। खड़े होकर या चलते-चलते मल-मूत्र का त्याग या कुछ भी भक्षण न करें। जूठे मुँह वार्तालाप तथा स्वाध्याय भी वर्जित है। जूठे हाथ से गौ ब्राह्मण अग्नि और अपने मस्तक का भी स्पर्श न करें। जूठी अवस्था में सूर्य, चन्द्रमा और तारों की ओर भी जान बूझकर न देखें। दूसरे के आसन शय्या और वर्तन का भी स्पर्श न करें। गुरुजनों के आने पर उन्हें बैठने को आसन दें आदर सत्कार करें जाते समय उनके पीछे जायँ, उससे आयु बढ़ती है। एक वस्त्र धारण करके भोजन तथा पूजन न करें। ब्राह्मणों से बोझा न ढुलायें। नग्न होकर स्नान तथा शयन न करें। दोनों हाथों से शिर न खुजलायें। सिर से स्नान कर फिर किसी अंग में तेल न लगायें। अनध्यायों में स्वाध्याय बन्द कर दें। ब्राह्मण गौ और सूर्य की ओर मुख करके पेशाब न करें। दिन में उत्तर की ओर और रात्रि में दक्षिण की ओर मुँह करके मल-मूत्र का त्याग करें। असुविधा होने पर इच्छानुसार करें। गुरु और छात्र (शिष्य) का परस्पर सापेक्षरूप

अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, वे कभी यह दूसरे से अलग नहीं हो सकते। छात्र माता-पिता का त्यागकर अध्ययन के लिए गुरु की शरण में आता है इसके माता-पिता सब कुछ गुरु ही हैं। माता-पिता, भाई-बन्धु सबसे बड़ा दर्जा गुरु का बताया गया है। विद्या प्राप्ति के लिए गुरु की सेवा मुख्य है। इसमें आरुणि और उपमन्यु का दृष्टान्त प्रसिद्ध है गुरु की इच्छानुसार शनैः शनैः थोड़ा-थोड़ा समझकर पढ़े। पढ़ने में आग्रह और त्वरा न करें। यह तीनों विद्या के शत्रु कहे गये है। इस पर विशेष ध्यान रक्खें।

आग्रहश्च त्वराऽऽधिक्यं विद्याया शत्रवस्त्रयः ।

गुरु के दुष्कर्म की चर्चा न करें उसे छिपावें। कभी भी उनकी निन्दा न करें और न सुने ही। यही छात्र का धर्म है। पाणिनि ने इसी दृष्टि से छात्र शब्द की सिद्धि के लिए एक पृथक् सूत्र बनाया है। 'छत्रादिभ्यो णः' इसके अर्थ पर विचार करें। **गुरोर्दोषाणां-मावरणं छत्रं तच्छीलमस्य स छात्रः।** गुरु के दोषों को जो छिपावें ऐसा शीलवान् शिष्य छात्र कहलाता है। आजकल के अनुशासनहीन अशिष्ट छात्र गुरु की निन्दा करते हैं, अपमान करते हैं, मारने तक की धमकी देते हैं, हूँ तुँ करते हैं। ये जन्म-जन्मान्तर विद्या से हीन हो नरक यातना भोगकर श्मशान के वृक्ष होते हैं, जिन पर चील, कौए, गिद्ध बैठकर विष्टा-मूत्र करते हैं। सभी कान खोलकर सुनलें—

गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः ।
श्मशाने जायते वृक्षः कङ्कगृद्ध्रोपसेवितः ॥

गुरु कामी हो तो उनमें कृष्ण की भावना, सत्यव्रत हो तो राम की भावना। क्रोधी हो तो नृसिंह की भावना। कपटी हो तो वामन की भावना करें, उनमें दोष की कल्पना करना अपराध है। ध्यान रक्खें—

हरे रुष्टे हरिस्त्राता हरौ रुष्टे हरस्तथा ।
सर्वरुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥

कामिनं कृष्णरूपं हि गुरुं मन्येत मानवः ।
सत्यव्रतं रामचन्द्रं नृसिंहं क्रोधिनं तथा ॥

कपटं वामनं विद्यात् दोषस्तं न गुरुं स्मरेत् ।
(आदिपुराण)

हर के रुष्ट होने पर हरि रक्षा करते हैं, हरि के रुष्ट होने पर हर रक्षा करते हैं, सबके रुष्ट होने पर गुरु रक्षा करते हैं और गुरु के रुष्ट होने पर कोई भी रक्षा नहीं कर

सकता। इसलिए गुरु का सर्वदा सम्मान करना चाहिए वह डाटे फटकारे मारे गारी दे उसे आशीर्वाद समझना। उससे शिष्य महत्त्व को प्राप्त होता है।

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिः सन्ताडिता यान्ति जना महत्त्वम्।

ब्राह्मण राजा रोगी विद्यावृद्ध गर्भिणी स्त्री बोझा से लदा हुआ पुरुष गूँगा, अन्धा, बहिरा यदि ये सामने से आते हों तो किनारे हटकर उन्हें मार्ग दे दें। वृद्ध गुरु और देवता इनको दाहिने करके चलें। दूसरों के धारण किये हुए जूते वस्त्र स्वयं न पहने। दूसरों के उपयोग में आये यज्ञोपवीत आभूषण और कमण्डलु का भी त्याग कर दें। चतुर्दशी अष्टमी पूर्णिमा तथा पर्व के दिन तैलाभ्यङ्ग एवं स्त्रीसहवास न करें। पैर को पैर से न धोयें। किसी को चुभती बात न कहें। निन्दा और चुगली करना छोड़ दें। लूले, लँगड़े और अन्धे की खिल्ली न उड़ायें। आसन को पैर से खींचकर न बैठे। पूर्व या उत्तर को मुँह करके दाँतुन न करें। उस समय मौन रहें। उत्तर और पश्चिम की ओर सिर करके कभी न सोयें। दक्षिण या पूर्व दिशा की ओर ही मस्तक करके सोयें। स्नान किये बिना चन्दन न लगावें। लाल रंग-विरंगे और काले रंग के कपड़े न पहने। कुत्ते की दृष्टि पड़ी हो किसी ने चाट लिया हो सार भाग निकालने से दूषित हो ऐसे अन्न को न खायें। बासी भात को न खायें। दूध की बनी हुई वस्तुएँ भी यदि बहुत दिनों की हों तो उन्हें न खायें। सूर्य के उदय और अस्त के समय शयन न करें। बिना नहाये, बिना बैठे शय्या पर बैठकर या सोकर केवल पृथ्वी पर बैठकर, किसी देखते हुए को बिना देकर कदापि भोजन न करें।

एक साथ अग्नि और जल को न लें। गुरु, देवता, पिता तथा ब्राह्मणों की ओर पैर फैलाकर न बैठें। बछड़े को दूध पिलाती गाय को न छेड़ें। अञ्जलि से पानी न पियें। शौच के समय में विलम्ब न करें। मुख से अग्नि को न फूँके। तवे की पहली और पिछली रोटी न खायें। पहली गोग्रास के लिए, पिछली कुत्ते आदि के लिए है, बचे हुए परथन से यह रोटी बनाई जाती है। कुछ लोग इस आटे को शुद्ध आटे में डाल देते हैं कुछ अग्नि में यह बहुत ही अनुचित है। पराई स्त्री से समागम न करें। इससे बढ़कर आंयुर्विघातक दूसरी चीज नहीं है। हाथ धोने की मिट्टी स्वच्छ हो। जल के भीतर की घर की बाँबी की चूहे के बिल की और शौच से बची हुई यह पाँच मिट्टियाँ सर्वथा त्याज्य है। अन्त में सबसे मुख्य और अत्यन्त आवश्यक बात बताते हैं। उन पर विशेष ध्यान दें वो यह हैं।

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥

मुण्डन करा देना, धन छीन लेना, स्थान से निकाल देना यह ब्रह्महत्या कहलाती है जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। अतः भूलकर भी ऐसा काम धन के मद से नहीं करना चाहिए अन्यथा घोर कुम्भीपाक नरक में जाता है। वहाँ से निकलकर नीचयोनि में जाकर महान् कष्ट का अनुभव करता है।

गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान् द्वेष्टि भारत।

भूल करके भी ब्राह्मणों से द्वेष न करें अन्यथा वह लक्ष्मी और आयु दोनों से हीन हो जाता है। ब्राह्मणों का सर्वदा सम्मान करना चाहिए। यदुवंशियों की सभा में भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको सम्बोधन करते हुए कहा था 'घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः। योऽन्यथा मे स दण्डभाक्। ब्राह्मण गाली दें मारे तुम उनको नमस्कार ही करना, जो ऐसा नहीं करेगा उसको मैं दण्ड दूँगा। राजन्! महत्त्व की एक बात और सुनो।

समर्थोऽप्यसमर्थश्चेत् राजन् सद्धर्मकर्मणि।
प्रेत्य लोभात् स जायेत धनहीनोऽन्यजन्मनि॥

जो धन से परिपूर्ण समर्थ होते हुए भी भागवतधर्म जैसे शुभकार्य में धन का विनियोग करने में लोभ से अपनी असमर्थता प्रकट करता है वह लोभी मरकर दूसरे जन्म में धनहीन रोगग्रस्त होता है। अतः धर्म के कार्य में श्रीमानों को कृपणता त्यागकर मुक्तहस्त से दान करना चाहिए।

बाजार की चाय न पियें। यदि पीना ही है तो कुल्हड़ से पियें चीनी के प्लेट या शीशे के गिलास में नहीं, वे सब उच्छिष्ट रहते हैं। इन पात्रों से पीने वाले और पिलानेवाले दोनों ही इस अनाचार से अपमृत्यु के शिकार बनकर कालान्तर में श्वानयोनि में जाते हैं। उच्छिष्टभोजिनः श्वानः 'नोच्छिष्टं कस्यचित् दद्याद्।' इस पर ध्यान दें।

वैदिक ब्राह्मण या कथावाचक मुँह में पान रखकर वेदपाठ, प्रवचन या अनुष्ठान न करें। पहले या बाद में खा सकते हैं। मुँह के छींटे पड़ने से देवता कुपित होते हैं वे अपना भाग ग्रहण नहीं करते। कालान्तर में वे मुखसम्बन्धी गलगण्ड आदि रोग से ग्रस्त रहते हैं। बाजार से पान खाने पर भी हाथ धो लेना चाहिए। मुख में सरस्वती का निवास रहता है 'कपोले वसते वाणी (अतः मुख में लहशुन, प्याज, मदिरा जैसी गन्दी वस्तु नहीं रखना चाहिए अन्यथा वह नीचयोनि में जन्म लेता है। अतः शुद्ध सात्त्विक पदार्थों का ही विशेष रूप से सेवन करना चाहिए।

अन्त में वैदिक विद्वानों का विशेष कर्तव्य

गंगा स्नान सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर पवित्र हो भगवान् शिव का अभिषेक करें। 'देवे देया गलन्तिका (इस काशीखण्ड के अनुसार शृङ्गी द्वारा भगवान् शिव का अभिषेक करें। अनुष्ठानों का विशेष क्रम इस प्रकार बताया गया है—

मध्ये शिवं प्रतिष्ठाप्य समन्ताद्वैदिकोत्तमाः ।
कुर्युः शिवार्चनं सर्वे घटस्थजलधारया ॥

अनुष्ठानेषु सर्वेषु न च शृङ्ग्या पृथक् पृथक् ।
अभिषेकः प्रकर्तव्यो घटधाराप्रियः शिवः ॥

अभिषेकात् परा शान्तिः पुत्रपौत्रादिसन्ततिः ।
इह मानः प्रतिष्ठा च परलोके च सद्गतिः ॥

इस प्रकार आप लोगों के समक्ष पुराणों के आधार पर महत्त्वपूर्ण सदाचार का संक्षिप्त वर्णन किया गया, इससे आयु की वृद्धि होती है, अपमृत्यु का निराकरण होता है। इसलोक में धन-धान्य से पूर्ण होकर मनुष्य परलोक में सद्गति को प्राप्त करता है।

पापों के अनुसार नीच योनियों का वर्णन

मार्कण्डेय पुराण-यमदूत राजा विपश्चित् से कहता है हे राजन्! पतित से दान लेने पर ब्राह्मण गदहे की योनि प्राप्त करता है। पतित का यज्ञ कराने वाला द्विज नरक से लौटने पर कीड़ा ह्वोता है। गुरु से छल करनेवाला कुत्ता होता है। माता-पिता का अपमान करनेवाला तथा कटुवचन कहने वाला मैना होता है। भाई की स्त्री का अपमान करने वाला कबूतर होता है तथा पीड़ा देनेवाला कछुआ होता है। जो मालिक का अन्न खाता है किन्तु उसका काम नहीं करता वह वानर होता है। धरोहर हड़पने वाला रिंगनेवाला कीड़ा होता है। गुणों में दोष दृष्टि रखनेवाला राक्षस होता है। विश्वासघाती पुरुष मछली होता है। जो अज्ञानवश गेहूँ, जौ, धान, मटर आदि अन्न की चोरी करता है वह नेवले के समान बड़े मुँह का चूहा होता है। परस्त्री के साथ समागम करने वाला भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गिद्ध सर्प तथा कौआ होता है। जो भाई की पत्नी के साथ बलात्कार करता है वह कोयल होता है। जो कामान्ध होकर राजा की पत्नी के साथ सहवास करता है वह सूअर होता है। यज्ञ, दान और विवाह में विघ्न डालनेवाला तथा कन्या का दुबारा दान करने वाला कीड़ा होता है।

जो देवता, पितर और ब्राह्मणों को दिये बिना अन्न भोजन करता है वह कौआ होता है। पिता के समान पूजनीय बड़े भाई का अपमान करता है वह क्रौंच नामकपक्षी होता है। ब्राह्मण की स्त्री के साथ सहवास कर यदि उसके गर्भ से सन्तान उत्पन्न करें तो वह नरक यातना भोगकर चाण्डाल होता है जो किसी के उपकार को नहीं मानता वह कृतघ्न क्रम से कीट, पतंग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और अन्त में चाण्डाल होता है। शस्त्र से पुरुष की हत्या करनेवाला गदहा होता है। स्त्री और बालकों की हत्या करनेवाला काठ का कीड़ा होता है। भोजन की चोरी करनेवाला मक्खी होता है। उससे भी जो भोजन के विशेष भेद हैं उन्हें चुराने वाले के पृथक्-पृथक् फल सुनिये—

साधारण अन्न चुरानेवाला बिल्ली होता है। तिल के लड्डू चुरानेवाला चूहा होता है। घी चुरानेवाला नेवला होता है। नमक की चोरी करनेवाला जलमुर्गा, दही चुरानेवाला कीड़ा और दूध की चोरी करनेवाला बगुला होता है। जो तेल चुराता है। वह तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। मधु चुरानेवाला डांस और पुआ चुरानेवाला चीटी होता है। हविष्यान्न चुरानेवाला विसतुइया (गिरगिट) होता है। लोहा चुरानेवाला कौवा होता है। चाँदी का बर्तन चुरानेवाला कबूतर होता है। सुवर्ण का पात्र चुरानेवाला कीड़ा होता है। रेशमी वस्त्र की चोरी करने पर चकवे की योनि तथा रेशम का कीड़ा होता है। सुगन्धित पदार्थों कीं चोरी करनेवाला छछुन्दर, वस्त्र का अपहरण करनेवाला खरगोश होता है। भूमि का अपहरण करनेवाला रौरव नरक से लौटकर बाँस का वृक्ष होता है। जो बैल के अण्डकोश का छेदन करता है वह नपुंसक होता है और फिर चाण्डाल आदि घृणित योनियों में जाकर लूला, लँगड़ा, अन्धा, बहिरा होकर यक्ष्मा तथा गुदा के रोग से पीड़ित रहता है। इस प्रकार नरक से लौटकर पापियों को ऐसी नीच योनियाँ मिलती है। उनका वर्णन किया गया।

एक विपश्चित् नामक बड़ा ही पुण्यात्मा धार्मिक राजा था। इससे एक साधारण छोटा-सा पाप हो गया था। यमराज ने भद्रमुख नामक यमदूत को आदेश दिया इन्हें नरकों का दर्शन कराकर स्वर्ग मार्ग पर ले जाओ। यमदुत ने राजा को क्रमशः सब नरकों का दर्शन कराया। राजा के पूछने पर यमदूत ने पाप योनियों का भी वर्णन किया। उस समय एक आश्चर्य यह हुआ कि राजा के नरक़ में जाते ही यातना बन्द हो गयी। कुम्भीपाक का खौलता हुआ तेल ठण्डा हो गया, असिपत्रवन के पत्ते टूटकर गिरने लगे अस्त्र-शस्त्र कुण्ठित हो गये। कोल्हू यन्त्र का चलना बन्द हो गया। पापियों को सुख की अनुभूति होने लगी। ऐसा क्यों हुआ यह राजा के पूछने पर दूत ने कहा तुम्हारे शरीर का स्पर्श कर बहनेवाली वायु के स्पर्श से हम नारकी जीवों की यातना बन्द हो गई। अब आप आगे चलिए इन्हें अपने कर्मों का फल भोगने दीजिए।

जब राजा चलने को उद्यत हुए तब सभी नारकी मनुष्य चिल्लाकर बोले—महाराज महाराज! थोड़ी देर और ठहर जाइए हम आपकी शरण में हैं, हमें इस नरक से बचाइये। आपके दर्शन से हमें बड़ी सुख-शान्ति प्राप्त हो रही हैं, आप हम लोगों पर कृपा करें। उनकी ऐसी दीन वाणी सुनकर राजा ने यमदूत से कहा—भद्रमुख! ये नारकी जीव मुझे देखकर त्राहि-त्राहि कहकर पुकार रहे हैं इन्हें छोड़कर अब मैं स्वर्ग में नहीं जाऊँगा। तबतक वहाँ धर्मराज और इन्द्र भी आ गये। उन्होंने राजा से कहा—महाराज! आपने मेरी बड़ी सेवा की है, आप यहाँ नरक में रहने योग्य नहीं है। आप मेरे साथ स्वर्ग में चलिए। इन्द्र ने भी इसी प्रकार चलने का आग्रह किया। इस पर राजा ने कहा—देवराज! इस आर्त प्राणियों को देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। मैं इन्हें छोड़कर स्वर्ग में जा नहीं सकता। आप कृपा कर इतना बतायें कि मेरा पुण्य कितना है।

धर्मराज ने कहा—राजन्! जितने समुद्र के जलबिन्दु, आकाश के तारे, वर्षा की धारायें, बालू के कण हैं उसी प्रकार आपके पुण्य को कोई नियत संख्या नहीं है। दूसरी बात यह है कि इन नारकी जीवों पर दया करने से तुम्हारा पुण्य लाखों गुना और बढ़ गया है। राजा ने कहा—यदि ऐसा है तो हे भगवन्! मेरे इस पुण्य के प्रभाव से ये सारे नारकी जीव यातना से मुक्त होकर दिव्य लोकों में चले जायँ। इतना कहते ही आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं देवता लोग राजा की जय-जयकार की ध्वनि करते हुए पुष्प वृष्टि करने लगे। चारों ओर दर्शकों की भीड़ से मेला का दृश्य उपस्थित हो गया। नारकी जीव रंग-बिरंगे विमानों पर चढ़कर स्वर्गलोक में जाने लगे। राजा विपश्चित को भगवान् विष्णु के पार्षद चमचमाते विमान पर बैठाकर वैकुण्ठलोक ले गये। बोले सब मिलकर विपश्चित् महाराज की जय हो जय हो जय हो। तीन बार।

नरक से आये हुए मनुष्यों की पहचान

दूसरे की निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरों के गुप्त भेद को खोलना, निष्ठुरता दिखाना, निर्दय होना, परस्त्री का सेवन करना, दूसरे का धन हड़प लेना, अपवित्र रहना, देवताओं की निन्दा करना, शठतापूर्वक मनुष्यों को ठगना, कंजूसी करना, मनुष्यों की हत्या करना और भी जितने निषिद्ध काम हैं उनमें सदा प्रवृत्त रहना। ये सब नरक भोगकर लौटे हुए मनुष्यों के लक्षण हैं ऐसा जानना चाहिए।

स्वर्ग से आयु हुए मनुष्यों की पहचान

जीवों पर दया करना, मधुर वचन बोलना, परलोक के लिए पुण्य कर्म करना, सत्य बोलना, प्राणीमात्र का हित सोचना, मन से भी किसी का अनिष्ट चिन्तन न करना, पूज्य गुरुजनों का आदर करना, सत्पुरुषों का संग करना, सत्कर्मों का अभ्यास

करना, सबके प्रति मित्रभाव रखना और भी जितने धार्मिक कार्य हैं उनमें सहयोग देना। याचना करने पर किसी को विमुख न करना ये सब स्वर्ग से लौटे हुए मनुष्यो के लक्षण है, ऐसा जाना चाहिए। (मार्कण्डेय पुराण से)

मृत्यु-समीक्षा

पुराणों में जीव की नौ अवस्थाओं का वर्णन किया गया है—

निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम्।
वयोमध्यं जरामृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥

निषेक वीर्याधान से लेकर मृत्युपर्यन्त ये नौ अवस्थाएँ शरीर की है, किन्तु देहाध्यास के कारण उनका बोध जीव को होता है। इसके पूर्व वृद्धावस्था है। यह वृद्ध ही नाजुक अवस्था है। इसमें मनुष्य दूसरे के अधीन हो जाता है। इसमें बड़ी सावधानी से रहना चाहिए। इसमें उपकार की भावना रखकर सबका हितचिन्तन करना चाहिए। किसी का अनिष्ट न करें। इसे प्रायश्चितावस्था भी कहते हैं। पूर्वावस्था में अज्ञानवश जो भी पाप किए हैं उनका इसमें प्रायश्चित कर लेना चालिए। अन्यथा परलोक में महान् कष्ट का अनुभव होता है। इस अवस्था से सभी डरते हैं। कोई मरना नहीं चाहता, किन्तु मरना अवश्य है। आप मृत्यु के अधीन हैं, मृत्यु आपके अधीन नहीं है। वह जब चाहे आपको मार सकती है। आपका कोई वश नहीं चल सकता। इसलिए इस भय से बचने के लिए धर्म का आचरण करना चाहिए मृत्यु केश पकड़कर खड़ी है ऐसा समझकर—

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।

जो धर्मनिरपेक्ष कहकर धर्म की अवहेलना करते हैं, धर्म के विरुद्ध आवाज उठाते हैं, धर्म किस चिड़िया का नाम है। उन्हें अन्तिम समय इसका अनुभव होगा कि धर्म क्या वस्तु है। जब रोग से मूर्च्छित हो खाट पर पड़े होंगे, सगे सम्बन्धी उसके चारों ओर बैठकर माई-बाप कह चिल्ला-चिल्लाकर रुदन् करेंगे। गली के कुत्ते भी भूकने लगेंगे, नाना प्रकार के अपशकुन होंगे। नेत्र से पश्चात्ताप के आँसू बहेंगे। उसी समय यमराज के विकराल दो दूत लाल-लाल नेत्र किए हाथ में हथौड़ा लिए आयेंगे, जिन्हें देखकर रोगी का हृदय काँप उठता है और मारे डर के टट्टी-पेशाब कर देता है। 'शकृन्मूत्रं विमुञ्चति। तब वह समझेगा कि धर्म वस्तुः क्या होती है। उस समय यमदूत उसके प्राण को खीचते हैं। शरीर के अन्दर जो गर्मी करने वाला पित्त है, वह तीव्र वायु से प्रेरित होकर अत्यन्त कुपित हो जाता है तत्पश्चात् उदान नामक वायु ऊपर की ओर उठती है। उसके आकर्षण से शरीर के मर्मस्थान विदीर्ण हो जाते हैं। ऊर्ध्वश्वास चलने

लगता है। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से चिपका हुआ है। सारी क्रियाएँ उसी शरीर से हो रही हैं। अंग-प्रत्यंग में वह व्याप्त रहता है। जैसे अग्नि पर रक्खा बर्तन चारों ओर से तप्त हो जाता है। ठीक उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के कारण सारे शरीर में चेतना रहती है मृत्यु के समय ऊर्ध्वश्वास होने से इडा पिङ्गला की गति बन्द हो जाती है। प्राणात्मक सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से खींचा जाता है; उस समय प्राणी को बड़ी वेदना होती है जैसे सौ विच्छू के एक साथ काटने पर होती है। जैसे दो पतले कागज गोंद से चिपका दिये जाय उनका पृथक् करना कठिन हो जाता है ठीक उसी तरह जिस अंग से सूक्ष्म शरीर का आकर्षण होता जाता है वहीं अंग निष्क्रिय ठण्डा होता जाता है। जब सब अंगों से आकर्षण हो गया तब सूक्ष्म शरीर अधार्मिक पापियों के नीचे अंगों से निकलता है। पुण्यात्माओं का ऊपरी अंगों से योगियों का ब्रह्मरन्ध्र से ऐसी शास्त्र की व्यवस्था है।

सूक्ष्म शरीर के निकल जाने पर स्थूल शरीर मृतक होकर पृथ्वी पर गिर जाता है। सूक्ष्म शरीर को यातना शरीर में प्रविष्ट कर यमदूत पाशों से बाँधकर उसे यमलोक ले जाते हैं। उसे अपने पूर्व शरीर का ही अनुभव होता है कि मैं वही हूँ—

यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात्।
नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥ (भा. ३)

यह शरीर वायु के सहारे चलता है और यातना भोगने के लिए ही मिलता है जो रूप, रंग और अवस्था में पूर्व शरीर के सदृश होता है। यह माता के गर्भ से उत्पन्न नहीं होता। यातना के लिए ही मिलता है।

यमलोक जाने के चार मार्ग हैं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। तीन मार्गों से पुण्यात्मा धार्मिक पुरुष जाते हैं और अधार्मिक पापी पुरुषों को यमदूत डण्डों से मारकर दक्षिणमार्ग से खींचकर ले जाते हैं। वहाँ की भूमि बहुत ही दुर्गम है।

कहीं काँटे फैले हैं, कहीं लोहे की कीलें गड़ी हैं, कहीं गड्ढे हैं तो कहीं अग्नि धधकती है। उसी मार्ग से ले जाते हैं। जो पशुओं को मारकर उनका मांस खाते हैं उनके शरीर के मांस को सैकड़ों गीदड़ियाँ नोंच-नोंचकर खाती है।

इस मार्ग से १२ दिन के अन्दर प्राणी यमलोक पहुँचाया जाता है। तब तक वह अपने घर की ओर देखता रहता है। जो इसके पारिवारिक जन पिण्डादि करते हैं। उसी से उनकी तृप्ति होती है। इसलिए उस समय पिण्ड अवश्य देना चाहिए।

इस मार्ग का वर्णन भगवान् कपिलदेव अपनी माता देवहूति से कहते हैं उसे भी जरा सुनिये—

क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः सन्तप्यमानः पथि तप्तबालुके।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके॥

भूख प्यास के व्याकुल सूर्य और दावानल की गरम-गरम वायु से तपता हुआ तपी हुई बालू के मार्ग पर विवश होकर चलना पड़ता है, नहीं चलने पर पीछे के कोड़ों की मार पड़ती है। उस मार्ग में न कहीं विश्राम स्थान है और न पीने को पानी मिलता है। इस प्रकार पापी पुरुष बड़े कष्ट से यमलोक पहुँचाया जाता है। वहाँ कर्मानुसार नरकों की यातना भोगकर फिर नीच योनि में जन्म लेता है। वहाँ लूले, लंगड़े, अन्धे होकर जीवन व्यतीत करता है धर्म हीन पापी पुरुष की इसी प्रकार दुर्गति हुआ करती है।

यह पापी अकेला ही यात्रा करता है। छल-कपट और अन्याय से दूसरों को ठगकर जो धन जोड़कर रक्खा है, वह तिजोरी में ही पड़ा रह जाता है। पशुवर्ग गोष्ठ में बँधा रहता है, जो अर्धाङ्गिनी पत्नी है वह दरवाजे पर खड़ी-खड़ी रोती रहती है, सगे सम्बन्धी श्मशान तक जाते हैं केवल धर्म ही साथ में जानेवाला है उसे आप मानते ही नहीं।

धर्मानुगो गच्छति जीव एकः।

धर्म तो धार्मिक प्राणियों के साथ जाता है। उसके विपक्ष में अधार्मिक पापियों को यमदूत नरक में ले जाते हैं और नाना प्रकार की यातना देते हैं। तब उसे ज्ञान होता है कि धर्म क्या वस्तु है।

पुण्यात्मा पुरुष को मृत्यु के समय बिल्कुल कष्ट नहीं होता वे सुखपूर्वक शरीर त्याग करते हैं और विमान द्वारा धर्मराज की पुरी में जाते हैं। जो द्रव्य का सदुपयोग करने हेतु विद्यालय, धर्मशाला और अन्न क्षेत्र खुलवाते हैं वे सुवर्ण के दिव्य विमानों में बैठकर धर्मराज के लोक में जाते हैं। जो जीविका रहित दीन दुर्बल गृहस्थ ब्राह्मणों को नाना प्रकार के पकवानों के साथ गोदान करते हैं वे मणि जड़ित विमानों द्वारा यात्रा करते हैं। जो जूता, छाता, शय्या, आसन, वस्त्र और आभूषण दान करते हैं। वे दिव्य भूषणों से अलंकृत होकर हाथी रथ और घोड़ों द्वारा यात्रा करते हैं। जो कूप, बावड़ी, तालाब, बाग-बगीचे निर्माण कराते हैं वे सुवर्ण और चाँदी के समान चमचमाते विमान द्वारा यात्रा करते हैं। इस प्रकार और भी उपयोग की जितना वस्तुएँ हैं उनका दान करनेवाले हीरे मोती जड़ित विमानों द्वारा यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक हलुआ, खीर, पूड़ी, मोदक, दूध, दही और घी का दान करते हैं वे विविधरत्नों की मालाओं से अलंकृत विमानों द्वारा धर्मराज के लोक की यात्रा करते हैं। धर्मराज उन पुण्यात्माओं को देखते ही सिंहासन से उठ खड़े होते हैं और प्रेम से अपने समीप बैठा

लेते हैं और आदर सत्कार कर दिव्य भोजन कराकर दिव्य विमानों द्वारा स्वर्ग को भेज देते हैं। तदून्तर वे स्वर्ग का उपभोग कर पुण्यात्मा श्रीमानों के यहाँ जन्म लेते हैं और सब प्रकार के सुखों का उपभोग करते हैं। यह पुण्यात्माओं की दिव्य गति का वर्णन किया गया।

श्राद्ध की कुछ विशेषताएँ

श्राद्ध एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जो एक वर्ष में आता है। उसका अवश्य ध्यान रखना चाहिए। सप्तम स्कन्ध के १४वें अध्याय में कुछ वर्णन किया जा चुका है। अब उसकी विशेषताओं पर विशेष ध्यान दें। शास्त्र में 'माता तीर्थं पिता तीर्थम्' (के अनुसार माता-पिता को तीर्थ कहा गया है। इनकी प्रसन्नता पर ही देवता प्रसन्न होते हैं और संसार में उनका अभ्युदय होता है इसलिए उनकी तिथि का विशेष ध्यान रखकर उनके निमित्त एकोदिष्ट श्राद्ध करना और पर्व तिथि पर पार्वण श्राद्ध करना चाहिए। स्वाभीष्ट चाहने वाले पुरुषों को तत्तत् नक्षत्रों में श्राद्ध करना चाहिए जैसे—

स्वर्ग सुख चाहने वाला कृत्तिका नक्षत्र में श्राद्ध करें। सन्तान चाहने वाला रोहिणी में श्राद्ध करें। मृगशिरा में श्राद्ध करने वाला तेजस्वी होता है। आद्रा में शौर्य तथा पुनर्वसु में सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होती है। पुष्य में अक्षय धन, आश्लेषा में पूर्ण आयु, मघा में सन्तान और स्वास्थ्य लाभ तथा फाल्गुनी में सौभाग्य की प्राप्ति होती है। उत्तरा फाल्गुनी में उत्तम सन्तान की प्राप्ति होती है। हस्त नक्षत्र में शास्त्रज्ञान में प्रवीण होता है। चित्रा में रूप, तेज और सन्तति मिलती है। स्वाती में श्राद्ध से व्यापार में लाभ होता है। विशाखा में पुत्र की अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। अनुराधा में चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है ज्येष्ठा में मनुष्यों का प्रभुत्व प्राप्त करता है। मूल में उत्तम आरोग्य लाभ करता है। सूर्य के कन्या राशि पर रहते जिन-जिन कामनाओं का चिन्तन कर श्राद्ध करते हैं वे सब पूर्ण हो जाती है। वृश्चिक राशि के बीत जाने पर भी जब कोई श्राद्ध नहीं करता तो पितर लोग दुःसह शाप देकर खेदपूर्वक लम्बी-लम्बी साँस लेते हुए अपनी पुरी को लौट जाते हैं। पितर दो प्रकार के होते हैं अमूर्त और मूर्तिमान्। नान्दीमुख नाम वाले पितर अमूर्त होते हैं और पार्वण श्राद्ध वाले मूर्तिमान् होते हैं। एकोदिष्ट श्राद्ध ग्रहण करने वाले पितरों की संज्ञा प्रेत होती है। इस प्रकार पितरों के तीन भेद बताये गये हैं। विधिपूर्वक श्राद्ध करने वाला प्राणी सबको तृप्त करता है। जैसे—

मदालसा अपने पुत्र अलर्क से कहती है—बेटा!

मनुष्य जो पृथ्वी पर अन्न बिखेरते हैं उससे पिशाच योनि में पड़े हुए पितरों की तृप्ति होती है। स्नान के वस्त्र से जो जल पृथ्वी पर टपकता है उससे वृक्षयोनि में पड़े

हुए पितर तृप्त होते हैं। नहाने पर अपने शरीर से जो जल के कण पृथ्वी पर गिरते हैं उनसे उन पितरों की तृप्ति होती है जो देवभाव को प्राप्त हो रहे हैं पिण्डों के उठाने पर जो अन्न के कण पृथ्वी पर गिरते हैं उनसे पशु-पक्षी की योनि में पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। जो बालक कुल में श्राद्धकर्म के योग्य होने पर भी संस्कार से वञ्चित रह गये हैं या जलकर मर गये हैं वे बिखरे हुए अन्न या सम्मार्जन के जल से सद्गति को प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण लोग भोजन करके जब हाथ मुँह धोते हैं और चरणों का प्रक्षालन करते हैं उस जल से भी अन्यान्य पितर जो किसी भी निकृष्ट योनि में हैं तृप्त होकर स्वर्ग में चले जाते हैं। विशेष क्या लिखें। अन्यायोपार्जित धन से भी यदि श्राद्ध किया जाता है तो उससे चाण्डाल आदि योनियों में पड़े हुए पितर तृप्त हो जाते हैं इसलिए पुत्र को उचित है कि पिता माता की तिथि पर एकोद्दिष्ट और यथासम्भव पार्वण श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। अन्यथा वह पुत्र कहलाने योग्य नहीं।

कुछ मनुष्यों का कथन है कि मुक्त प्राणी के लिए श्राद्ध करने की क्या आवश्यकता है। गया, काशी, ब्रह्मकपाली, बदरिकाश्रम आदि स्थानों में पिण्ड देने से वह मुक्त हो जाता है। इस पर कहना है कि प्राणी मुक्त हो गया यह आप कैसे जाने। इसके उत्तर में आप कह सकते हैं कि शास्त्र की आज्ञा है। शास्त्र का तात्पर्य समझना अत्यन्त कठिन है इसमें बड़े-बड़े विद्वानों को भी व्यामोह हो जाता है, साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या?

अतः मुक्तात्मा प्राणी के लिए भी श्राद्ध करने का विधान है हमलोग जो भी पितरों के लिए पिण्डदानादि करते हैं वह पहले दिव्य पितरों को प्राप्त होता है। हमारे दिव्य पितर भीष्म सनकादिक हैं वे अपनी दिव्य दृष्टि से देखते हैं कि वह प्राणी कहाँ गया। जहाँ भी जिस योनि में वह होता है और जो भी वस्तु उसे प्रिय होती है वह उसी रूप में उनके आशीर्वाद से कई गुणित होकर उसके पास पहुँचा दी जाती है। यदि कदाचित् वह प्राणी मुक्त हो गया तो उसे तो आवश्यकता है नहीं ऐसी स्थिति में हमारे पर पूज्य दिव्य पितरों के द्वारा उसे अपने आशीर्वाद से शतगुणित अधिक करके उसके परिवार वालों को प्रच्छन्नरूप से भेज दी जाती है जिससे उसका पूरा परिवार धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादि से समृद्ध होकर चिरकाल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। उसके परिवार में किसी की अपमृत्यु नहीं होती। वह पूर्णायु प्राप्त करता है। उसके परिवार में सब उदार होते है कोई कृपण नहीं होता। अतः हर अवस्था में प्रत्येक को श्राद्ध करना चाहिए। इस पर व्यर्थ अनर्गल कल्पना तर्क करना उचित नहीं।

पुत्र की परिभाषा

पुन्नामक नरक से जो श्राद्ध द्वारा पिता का त्राण करता है ब्रह्मा ने उसे पुत्र कहा है।

पुन्नाम्नो नरकात् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।।

अथवा

जीवतो वाक्यकरणात् मृताहे भूरिभोजनात् ।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ।।

जीवित दशा में पिता की आज्ञा पालन करता है, मृततिथि पर खूब ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराता है तभी वह पुत्र कहलाने योग्य होता है।

अथवा

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्त्तोच्चरितं पितुः ।।

मन की बात जानकर बिना कहे जो काम करें वह उत्तम पुत्र का लक्षण है जो कहने पर करे वह मध्यम श्रेणी का जो अश्रद्धा से करें वह अधम श्रेणी का और जो कहने पर भी न करें वह पिता के मल के समान त्याज्य है पुत्र नहीं। अतः खूब सोच-विचारकर, पुत्र को श्राद्ध करना चाहिए, उपेक्षा नहीं।

जो भिक्षुक है भिक्षा से ही अपना पेट पालता है। श्राद्ध के लिए कोई साधन नहीं है, वह एकान्त जङ्गल में जाकर दोनों हाथ ऊपर उठाकर पितरों से दीनतापूर्वक विनती प्रार्थना करें। हे मेरे पितर मेरे पास श्राद्ध करने को कुछ नहीं है मैं विवश हूँ मुझे क्षमा करे इतना कहकर दो आँसू भी बहा देता है। पितर उसपर प्रसन्न हो आशीर्वाद देकर चले जाते हैं जन्मान्तर में वह धनधान्य से परिपूर्ण हो जाता है। यह शास्त्रीय व्यवस्था है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

सात्त्विक भोजन दूध, दही, खीर, पूड़ी, मोदक, हलुआ, मालपुआ, फल, मेवा, दहीबड़ा, चटनी आदि श्राद्ध में देना चाहिए। विशेष चर्परे खट्टे तीते राजसी तामसी पदार्थ नहीं यह राक्षसों का भोजन है। खीर में मेवा के साथ थोड़ा मधु घृत अवश्य डालें। घी शुद्ध हो, डालडा नहीं वह अशुद्ध है उसे देवता तथा पितर ग्रहण नहीं करते बीच में से असुर उसे ले जाते हैं। पितर देवता देखते रहते हैं, 'पितरस्तत्र गृह्णन्ति,

देवतास्तत्र गृह्णन्ति। इस पर विशेष ध्यान रक्खे। पहले यह डालडा बाजारों की दुकानों पर अखाद्य तेल करके लिखा जाता था, वह भी खाने योग्य नहीं था। आज उसमें विटामिन बताया जाता है। यह है बुद्धि की प्रखरता का नमूना क्या कहा जाय इनके व्यापारियों को, बल्कि इससे लाख दर्जा अच्छा सरसों या मूँगफली का तेल है।

पितरों को चाँदी अत्यन्त प्रिय है, इसलिए यथाशक्ति चाँदी का कुछ दान अवश्य करना चाहिए।

श्राद्ध में सत्पात्र कर्मनिष्ठ वैदिक ब्राह्मण को जो यथासमय सन्ध्योपासन तथा गायत्री जप करने वाले हों उन्हें भोजन कराना चाहिए। जिस कन्या का विवाह गौरी अष्ट वर्ष की अवस्था में हुआ हो उससे उत्पन्न पुत्र, योगी तथा गयाश्राद्धी इन तीनों को भोजन कराने से पितर अनन्तकाल तक तृप्त रहते हैं।

दौहित्र, जामाता, भानजा, मामा, गुरुभक्त, शिष्य सम्बन्धी ये सभी श्राद्ध में उत्तम माने गये हैं। इन्हें निमन्त्रित करना चाहिए। श्राद्ध का निमन्त्रण एक दिन पहले ही देना चाहिए। उस समय से श्राद्धकर्ता और ब्राह्मणों को संयम से रहना चाहिए। दोनों ही स्त्री सहवास न करें अन्यथा उनके रजवीर्य में पितरों को शयन करना पड़ता है।

यदि इतना संयम न कर सकें तो श्राद्ध के दिन प्रातःकाल ही निमन्त्रण देना चाहिए। यदि कदाचित् संन्यासी आ जायँ तो उसे भी प्रेमपूर्वक बैठाकर अलग भोजन करायें। ब्राह्मणों के साथ में नहीं।

श्राद्ध में सर्वथा त्याज्य वस्तु

श्राद्ध में मांस का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए अन्यथा उस प्राणी की बड़ी दुर्गति होती है। शास्त्र में कहीं भी मांस भक्षण का विधान नहीं। विधान अप्राप्ति में होता है। 'विधिरत्यन्तमप्राप्तौ' मद्य-मांस और मैथुन यह तो प्राणियों को रागतः स्वत प्राप्त है इनका शास्त्र में विधान नहीं। जो मांस खाते हैं और पितरों को देते हैं वे दोनों ही निकृन्तन नामक नरक में डाले जाते हैं वहाँ यमदूत तीक्ष्ण छुरों से उनके अंग-प्रत्यङ्ग काटते हैं और उन्हीं को भूख लगने पर खिलाते हैं। तब आपको अनुभव होगा कि मांस खाने का क्या फल होता है। भागवत में देखें।

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित्।
मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिस्तथा न पशुहिंसया॥

---

१. लहसुन, प्याज, लौकी, गाजर, मूली, बैंगन, शलगम, सत्तू इनका उपयोग न करें।

श्राद्ध में मांस न दें और न स्वयं खायें ही। सात्त्विक अन्न से जो तृप्ति होती है वह पशुहिंसा से नहीं। ऐसे लोग कुत्ता, बिल्ली, भेड़िया, गीदड़ आदि निकृष्ट योनि में जाते हैं। दूसरी बात-मांस शब्द के अर्थ पर विचार करें। मनु जी कहते हैं—

मांसभक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्त्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

इस लोक में जो जिसका मांस खाता है। परलोक में वह उसका मांस खाता है। यह मांस की परिभाषा और लक्षण है। ध्यान रहे यदि तुम सुखी होना चाहते हों तो दूसरों को सुख पहुँचाओ। दूसरे को दुःख देने वाला कभी सुखी नहीं रह सकता। पूर्व समय की स्त्रियाँ कितनी बुद्धिमती थी। उन पर विचार करें। ध्रुव की माता सुनीति अपने पुत्र से कहती है—बेटा!

माऽमङ्गलं तात परेष्वमंस्था भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥

शत्रु का भी अमङ्गल (अनिष्ट) मत सोचो। जो दूसरे को दुःख देगा वह स्वयं ही दिये हुए दुःख को स्वयं भोगता है। क्या आदर्श है भारतीय महिलाओं का? मांस राक्षसों का भोजन हैं मनुष्यों का नहीं। जिनकी मांस खाने में प्रवृत्ति है वे स्यवं दूसरे जन्म में भेड़, बकरे बनेंगे और उसी तरह तड़पा तड़पा कर मारे जायेंगे। यमराज के आदेश से ये निकृन्तन नामक नरक में डाले जाते हैं वहाँ यमदूत तीक्ष्ण कुठारों से इनकी बोटी-बोटी काटते हैं तब उन्हें मांस खाने का फल मिलता है। मांस खाने वालों की तामसी वृत्ति हो जाती है जिससे देश में अशान्ति फैलती है और ये ही लोग मार-काटकर जनता को कष्ट देते हैं, ऐसे लोगों का संग भी वर्जित है। जो मद्य-मांस, मदिरा का सेवन नहीं करते वे बड़े ही पुण्यात्मा है। वे सुन्दर विमानों में बैठकर धर्मराज के नगर में सुखपूर्वक यात्रा करते हैं उनकी सेवा में सिद्ध गन्धर्व विद्याधर खड़े रहते हैं। जो एक हजार गौओं का दान करता और जो कभी मांसभक्षण नहीं करता वे दोनों समान फल के भागी होते है। यह बात पूर्व काल में साक्षात् ब्रह्माजी ने कही थी। ब्राह्मणों! सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने का जो पुण्य मिलता है और सम्पूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही पुण्य और फल की प्राप्ति मांस न खाने वाले पुण्यात्मा को होती है।

ब्रह्माजी कहते हैं कि—

ये च मांसं न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः ।
तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः ॥

गोसहस्त्रं तु यो दद्यात् यस्तु मांसं न भक्षयेत्।
समावेतौ पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदां वरः॥
(ब्रह्म.पु.)

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तस्य च तत्समम्॥
(ब्रह्म. पु. २२)

इन पुण्यात्माओं के यमलोक पहुँचने पर धर्मराज उनका स्वागत करते हैं अर्घ्यपाद्य तथा प्रिय वचनों द्वारा उनका सम्मान करते हैं और मणि जटित विमानों द्वारा स्वर्ग को भेज दते हैं। मांस न खाने वालों की इस प्रकार सद्गति होती है। सृष्टि कर्ता पितामह जी यह कहते हैं उनका आदेश मानकर मांस खाना सर्वदा के लिए छोड़ देना चाहिए।

यदि परलोक में सुख प्राप्त करना चाहते हैं। आश्चर्य है दूध, रबड़ी, मलाई, मक्खन, घी तथा सुस्वादु फलों मेवा के रहते उदर के अन्दर विष्ठा मूत्र से संसिक्त घृणित मांस को खाते हैं छिः छिः धिक्कार है ऐसे नराकार पशुओं को। ये प्राणी नरक यातना भोगकर पुनः भेड़, बकरों की योनि में जन्म लेते हैं। फिर वे ही बकरे जिनका मांस इन्होंने खाया है वे मनुष्य बनकर इनका मांस खाते हैं। इनकी यही परम्परा जारी रहती है कभी भी इनकी सद्गति नहीं होती।

न कदापि भवेद् राजन् सद्गतिर्मांसभोजिनाम्।

सवत्सा गौसेवा का अनन्त फल

गौसेवा एक परम धर्म है। सद्गृहस्थ को अवश्य गौसेवा करनी चाहिए। उससे ऐहिक पारलौकिक समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है। जिसके पुत्र न होता हो गौसेवा से पुत्र की निश्चित प्राप्ति हो सकती है। राजा दिलीप इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। चक्रवर्ती राजा होते हुए भी उन्होंने किस प्रकार गौसेवा की थी और परिक्षा में भी उत्तीर्ण हुए उसी से उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुयी थी। संसार में उन्होंने गौसेवा का एक आदर्श उपस्थित किया था। जिसके पुत्र न होता हो स्त्री में कोई रोग न हो तो गौसेवा से प्रार्थना करने पर पुत्र अवश्य हो सकता है। सच्ची भावना हो गौ पर विश्वास हो तो। गौ में समस्त देवताओं का निवास रहता है। उसी से दूध से प्राण की रक्षा होती है और जीवनपर्यन्त ही माता की तरह दूध पिलाकर स्वास्थ्य को बनाये रखती है। उस गौ की रक्षा करना मनुष्यमात्र का परम कर्तव्य है। साथ ही साथ उसके बच्चे की भी रक्षा करना उचित है।

आयुर्वेद की दृष्टि से वत्सशेष दूध निर्दोष और विशेष लाभदायक होता है। इसलिए सबसे पहले बच्चे को पिलाना अत्यन्त आवश्यक है बच्चे को जब छोड़ते हैं तब गौ जैसे ही पिनहाती है तुरन्त बच्चे को बुरी तरह से खींच लेते हैं। वह दूध के लिए छटपटाता रहता है। बाद में भी दूध नहीं छोड़ते। ऐसी अवस्था में वह कैसे जीवित रह सकता है। भूसा खा नहीं सकता। वह भूख के कारण सूख-सूखकर मर जाता है। यह कितना भारी अनर्थ है और कितना पाप है इसका स्वयं विचार करें। गृहस्थ तो कुछ दूध छोड़कर बच्चों को बचाने की चेष्टा भी करते हैं किन्तु काशी का आभीर वर्ग तो कसाई का काम करता है। वह तो दुहने के पहले और बाद में एक बूँद भी दूध नहीं छोड़ता जान-बूझकर बच्चों को मार डालता है यह कितना भारी अनर्थ है गौ हत्या से भी बढ़कर यह वध कहलाता है। इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं जो है भी उसे मनुष्य कर नहीं सकता।

अतः आरम्भ में जबतक बच्चा भूसा न खा सके तबतक थोड़ा-थोड़ा दूध अवश्य पिलाना चाहिए जिससे उसकी प्राण रक्षा हो सके। अन्यथा ऐसे प्राणियों को महान् कष्ट होता है और घोर नरक की प्राप्ति होती हैं। आभीरवर्ग कान खोलकर सुन लें।

क्रौर्येणाकृष्य गोवत्सान् न दुग्धं पाययन्ति ये।
ते पामरा नराः प्रेत्य कुम्भीपाकं व्रजन्ति हि।
कुलं सन्ततिहीनं स्यादेषां राजन्न संशयः॥

जो अत्यन्त क्रूरतापूर्वक बछड़ों को खींचकर दूध नहीं पीने देते हैं वे नीच मनुष्य मरकर कुम्भीपाक नरक में डाले जाते हैं जहाँ खौलते हुए तेल की कड़ाई में पड़े तड़पते रहते हैं। ऐसी भीषण यातना दी जाती है और इनका कुल भी सन्तति से हीन हो जाता है। इसलिए जब तक बच्चा भूसा खाने लायक न हो तबतक थोड़ा-थोड़ा दूध दोनों समय अवश्य पिलाना चाहिए।

धनी मानी सेठों का कर्तव्य है कि सब मिलकर एक विशिष्ट कमेटी बना ले और द्रव्य एकत्रित कर गौ रक्षा की समुचित ढंग से व्यवस्था करें प्रत्येक नगर में धन का यही सदुपयोग बताया गया है।

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशूरैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

गौ, ब्राह्मण, वेद, पतिव्रता स्त्री, सत्यवादी, उदार और दानवीर इन सातों के द्वारा पृथ्वी टिकी हुई है। अतः इनकी रक्षा करना परम कर्तव्य है। कुछ आधुनिक अल्पवयस्क धनी वर्ग कुवासनाओं की पूर्ति में धन का दुरुपयोग करते हैं जिससे उनकी

चित्तवृत्ति भगवान् से विमुख हो जाती है और उसके पतन की सम्भावना होती हैं। दुर्लभ मानव जीवन पाकर नश्वर क्षणिक विषयों में आसक्त होना बुद्धिमत्ता नहीं। जीवन का लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है उसका मूल धर्म है और धर्म का मूल धन है अतः धन का उपयोग धर्म कार्य में लगाना चाहिए। यदि नहीं करेंगे तो सब यहीं पड़ा रह जायगा, कोई साथ में नहीं जायगा। साथ में जाने वाला तो केवल धर्म है इस पर ध्यान दें।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

यह महत्त्वपूर्ण श्लोक भावी संकट के बचाने वाला है। इसे शीशे में मढ़ाकर अपने आवास गृह तथा आफिसों में लगा देना चाहिए जिससे मन धर्म की ओर हर समय आकृष्ट होता रहे। व्यासजी ने आपके कल्याण के वास्ते जो लिखा है वह सर्वथा सत्य है, उस पर विश्वास करना चाहिए, अन्यथा परलोक में भारी कष्ट उठाना पड़ेगा इसमें सन्देह नहीं।

एकादशी दो क्यों?

यह भगवान् का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण व्रत है। इससे स्वास्थ्य लाभ, अन्तःकरण की शुद्धि पाप की निवृत्ति और नारकी यातना नहीं होती। इसके व्रत करने वाले सीधे वैकुण्ठ चले जाते हैं उनको किसी प्रकार की मार्ग में रुकावट नहीं होती। इस सम्बन्ध में कुछ वर्ष पूर्व कल्याणपत्र में एक सच्ची घटना निकली थी। जनता के विश्वासार्थ उसका उल्लेख यहाँ किया जाता है, उस पर ध्यान दें।

पश्चिमी प्रान्त में किसी ग्राम में एक मुखिया रहते थे, जो बड़े ही परोपकारी जनता की सेवा में तत्पर रहा करते थे। उनका एक नौकर विरदू नामक था जो उनके खेत की देख-रेख करता था। दैवयोग से उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के लगभग छः मास बाद वह उसी ग्राम में आता हुआ दिखायी दिया। दूर से मुखिया ने भी देखकर उसे पहचान लिया कि वह तो वही विरदू है। अरे यह तो मर गया था यहाँ कैसे आ रहा है। उन्हें कुछ भय-सा-मालूम हुआ कहीं यह भूत-प्रेत तो नहीं आ रहा है। धीरे-धीरे वह उन्हीं के पास चला आया और बाबू पाँव लागी कहकर उनकी खाट के पास बैठ गया। मुखिया ने कहा—विरदू! उसने उत्तर दिया हाँ बाबू। फिर मुखिया ने पूछा विरदू तुम मर गये थे न कैसे कहाँ आ गये? विरदू ने कहा बाबू मर तो मैं जरूर गया था किन्तु मेरी अब यमदूतों में ड्यूटी लग गयी हैं, मैं यमदूतों का कार्य करता हूँ। यह सुनकर मुखिया कुछ भयभीत होने लगा यह देख विरदू ने कहा बाबू आप डरें नहीं।

पास के ग्राम में एक बीमार पड़ा है उसे हम लेने आये हैं। वह कल मर जायेगा। आप अपनी चिन्ता न करें कभी-कभी हमें ले जाने में धोखा हो जाता है तो कड़ी डाँट पड़ती है इसलिए हम लोग एक दिन पहले आकर समझ-बूझकर ले जाते हैं। इतनी बात सुनकर जब मुखिया कुछ स्वस्थ हुआ तब पूछता है। भैया तुम तो यमलोक में रहते हो यह तो बताओं वहाँ जाने पर क्या पूछा जाता है और क्या व्यवस्था होती है। यमदूत कहता है बाबू हम मूर्ख हैं और कुछ तो जानने हैं नहीं। केवल दो बातें विशेषरूप से पूछी जाती हैं। इसने एकादशी व्रत किया है या नहीं और बैंगन खाया है या नहीं। इससे सिद्ध होता है कि एकादशी व्रत करना अत्यन्त आवश्यक है और बैंगन का भी पुराणों में निषेध मिलता है वृन्ताकानपि खाद मा' अतः यह भी त्याज्य है। कहीं-कहीं मासभेद से भी इसका निषेध किया गया है।

नारद पुराण का प्रसङ्ग है रुक्माङ्गद नाम का एक बड़ा ही धार्मिक आस्तिक राजा था। उसकी प्रजा भी वैसी ही थी 'यथा राजा तथा प्रता। (जो राजा कर (टेक्स) प्रजा से लेकर प्रजा को धर्म में प्रवृत्त नहीं करता उसे प्रजा के पाप का फल भोगना पड़ता है और अपने ऐश्वर्य से भी वह च्युत हो जाता है।

य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन्।
प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं स्वं च जहाति सः॥

ऐसा समझकर उसने अपने राज्य में एक घोषणा की थी कि १० वर्ष के बालक से लेकर ८० वर्ष के वृद्ध तक सबको एकादशी का व्रत करना होगा अन्यथा जो व्रत नहीं करेगा वह दंण्ड का भागी होगा। इस तरह उसकी सारी प्रजा व्रत का पालन करती थी। राजा के कर्मचारी दूत पता लगाने गये कि राजा के इस आदेश का प्रजा में यथावत् पालन हो रहा है या नहीं, जब जाकर देखा तो व्रत करने वाले कहीं भगवन्नाम का कीर्तन कर रहे हैं कहीं जप कर रहे हैं कथा कह रहे हैं कहीं अनुष्ठान कर रहे हैं, कहीं गान कर रहे हैं तो कहीं नृत्य कर रहे हैं। सारे देश में धर्म की पताका फहरा रही थी। सर्वत्र ही जनता में परस्पर धर्म की चर्चा हो रही थी। मालूम होता था कि संसार में अधर्म का नाम निशान सदा के लिए लोप हो गया है। किसी की भी पापकर्म में प्रवृत्ति नहीं रही, सत्ययुग का दृश्य उपस्थित हो गया था। परिणाम यह हुआ यमलोक खाली हो गया। यमदूत हाथ-पर हाथ रखकर बैठ गये कोई काम नहीं रहा। यमराज गद्दी पर सुस्त होकर बैठे हैं। कुछ देर बाद अपना वही खाता जिसमें सब जीवों का लेखा रहता है उसे लेकर ब्रह्माजी के पास पहुँचे, प्रणाम कर नीचे बैठ गये। ब्रह्माजी ने पूछा कहो धर्मराज क्या समाचार है, उत्तर मिला बहुत खराब। ब्रह्मा ने कहा बताओ तो सही क्या हुआ। धर्मराज ने कहा महाराज आप सब जानते हैं फिर भी आपके आदेश से बता रहा हूँ।

रुक्माङ्गद राजा की सारी प्रजा भगवान् के भजन कीर्तन में लगी रहती है। कोई पापी नहीं जो मेरे यहाँ आ सके। सब मरकर दिव्य विमानों पर बैठकर वैकुण्ठ चले जा रहे हैं, मेरी ओर कोई ताकता भी नहीं। ऐसी स्थिति में मैं अब क्या करूँगा लीजिए अपना बही खाता मैं जाता हूँ। ब्रह्माजी ने सान्त्वना देकर धर्मराज को बिदा किया। अनन्तर ब्रह्मा ने अपना एक पद्मदल तोड़कर आकाश में फेंक दिया उससे एक बड़ी ही सुन्दरी कन्या उत्पन्न हो गयी। जिसके शरीर में सुमधुर सुगन्ध निकल रही थी। वह सुन्दरी मन्द गति से धीरे-धीरे राजा रुक्माङ्गद से बगीचे में जा पहुँची और इधर-उधर घूमने लगी। उसके शरीर की दिव्य सुगन्ध से सारा उपवन सुवासित हो उठा। राजा प्रतिदिन के अनुसार जब भ्रमण करने उपवन में गया तो एक अतीव सुन्दरी बगीचे में घूम रही थी। उसका अद्‌भुत सौन्दर्य देख राजा कामासक्त हो उसके पास जाकर बोला—देवि! तुम कौन हो कहाँ से आयी हो और क्या चाहती हो। सुन्दरी ने कहा—राजन् आपका गुणानुवाद सुनकर मैं ब्रह्मलोक से यहाँ आयी हूँ मेरा नाम मोहिनी है और आप मुझे स्वीकार करें। राजा बड़े प्रेम से उसे अपने राजभवन में ले आया और उससे विवाहकर दोनों आमोद-प्रमोद के साथ विहार करने लगे। जब एकादशी का दिन आया तब राजा ने व्रत के निमित्त भगवान् की कथा पूजन आदि की बड़े धूम-धाम के साथ समुचित व्यवस्था की। मोहिनी ने इसका विरोध किया यह आप क्या करते हैं? हम लोगों की यह अवस्था व्रत उपवास करने की नहीं है। इसमें भोग-विलास किया जाता है। आप इस व्रत का ढोंग छोड़ दीजिए इससे शरीर में दुर्बलता होगी, भोग विलास में भी बाधा पहुँचेगी। राजा को अन्दर से कुछ क्रोध तो हुआ किन्तु उसे किसी तरह समझा बुझाकर उस दिन का व्रत पूर्ण किया। इस प्रकार जब-जब एकादशी आयी बराबर विरोध करती रही, कलह की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही राजा का चित्त हर समय दुःखी रहने लगा। उसे खाना-पीना भी कठिन हो गया। कहाँ से यह दुष्टा आ गयी जो मेरे व्रत में बाधा पहुँचाती है। जब राजा के पुत्र धर्माङ्गद को यह समाचार मालूम हुआ तो उसने भी मोहिनी के बहुत समझाया किन्तु उसने एक नहीं सुनी।

इस प्रकार चिरकाल तक उनका विवाद चलता रहा। एक दिन राजा की पत्नी ने मोहिनी से कहा तू अपना हठ किस तरह छोड़ सकती है इस पर मोहिनी ने कहा—अपने पुत्र का सिर काटकर मुझे दे दो।

धर्माङ्गदशिरश्चारु चन्द्रबिम्बोपमं शुभम्।
छित्वा शीघ्रं पातयतु ममोत्सङ्गे सुलोचने॥

(ना. पु.)

अथवा एकादशी के दिन भोजन करो।

भोजनं वासरे विष्णोर्वधो वा तनयस्य ते।

राजा के सामने कठिन समस्या हो गयी। आज्ञाकारी सुशील निरपराध पुत्र का वध अनुचित है और एकादशी को भोजन करना भी उचित नहीं क्या करूँ। अन्त में राजा ने विचार किया धर्म की रक्षा करने पर धर्म मेरी रक्षा करेगा।

धर्मत्यागाद्वरं मन्ये पुत्रस्य विनिपातनम्।

(ना. पु.)

ऐसा निश्चित कर एकादशी के दिन भरी सभा में पुत्र के सिर काटने की योजना बनायी गयी। सब प्रजा उपस्थित हुई। आकाश में देवमण्डल भी यह दृश्य देखने को उत्सुक था।

सभा में धर्माङ्गद बुलाया गया। राजा पुत्र को देखते ही उसके मोह से कुछ विरत होना चाहता था। यह देख पुत्र ने कहा पिताजी अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग न करें। यह शरीर नश्वर है। एक दिन तो नष्ट हो ही जायेगा। भगवान् के कार्य में इसका विनियोग हो जाय इससे बढ़कर और पुण्य कार्य क्या होगा। इतना कह सभा के मध्य में भगवान् का ध्यान करते हुए सिर झुकाकर नीचे बैठ गया।

राजा ने खड्ग लेकर ज्योंही पुत्र के मारने को हाथ उठाया भगवान् ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया और कहा—राजन् बस-बस बहुत हो चुका इसने तुम्हें बहुत कष्ट दिया। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम सपरिवार मेरे लोक को चलो। इस दुष्टा को यहाँ से निकाल दो। राजदूतों ने मोहिनी को तुरन्त घर से निकाल दिया। इतना कहकर पुत्र सहित राजा को वरदान देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। मोहिनी इधर-उधर मारी-मारी फिरती रही किसी ने बैठने तक को उसे स्थान नहीं दिया। ऋषियों के आश्रम में गयी वहाँ से भी भगा दी गयी। फिर स्वर्ग लोक में गयी देवदूतों ने डण्डे से उसे मारकर भगा दिया और कहा—

हरिवासरलोपिन्या वासस्ते न त्रिविष्टपे।
धर्मतो विमुखानां च नरके वास इष्यते॥

एकादशी व्रत का लोप करनेवाली तेरा स्वर्ग में रहना न होगा तू नरक में जा। अनन्तर मोहिनी सब लोकपालों के लोग में गयी वहाँ से भगायी गयी। फिर पाताल में गयी वहाँ से भी निकाली गयी।

पातालस्थैर्निवारिता।

ज़ब कहीं स्थान नहीं मिला तो यमलोक में गयी। वहाँ के नारकी जीव इसे देख घबड़ा उठे और हाथ जोड़कर यमराज से बोले—हे भगवन्! इस दुष्टा को यहाँ से शीघ्र निकाल दो इसके साथ हम नरक में नहीं रह सकते। हे नाथ! इसे निकालो! निकालो!! इसके स्पर्श की वायु से तो हम भस्म ही हो जायेंगे। यातना भोगने लायक भी नहीं रहेंगे।

यस्याः स्पर्शनतो नाथ भस्मभूताः क्षणादहो।

यह सुन यमराज को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने दूतों से कहा—इसे शीघ्र यहाँ से मारकर निकाल दो।

निःसार्या मम मन्दिरात्।

दूतों ने अस्त्र-शस्त्र से मारकर उसे तुरन्त भगा दिया। अनन्तर सब जगह से निराश होकर वह ब्रह्मा के समीप जाकर बोली—तात!

तात तन्नास्ति मे स्थानं त्रैलोक्ये सचराचरम्।
यत्र यत्र तु गच्छामि तत्र तत्र क्षिपन्ति माम्॥

(ना. पु.)

हे तात! मैं जहाँ-जहाँ जाती हूँ सब मेरी निन्दा करते हैं और मारकर भगा देते हैं। ब्रह्माण्ड में मेरे रहने को कोई स्थान नहीं।

मोहिनी के दीन वचन सुनकर ब्रह्मा, इंन्द्रादि देवताओं के साथ मोहिनी को आगे कर ऋषियों से समीप गये। उसका सारा वृत्तान्त सुनाने पर ऋषियों ने मोहिनी से कहा तूने एकादशी का विरोध किया है तू ब्रह्माण्ड में कहीं रह नहीं सकती। अतः दशमीविद्धा एकादशी में तेरा निवास होगा। तू अब वहीं रहेगी।

सर्वेष्वपि च लोकेषु विदिता दशमी तिथिः।
यमस्य तस्याः प्रान्ते तु स्थितिःकार्या त्वयाऽनघे॥

ध्यान दें! जिसे नरक में भी रहने का स्थान न मिल सका उसका विद्धा में निवास हुआ इसी से अनुमान कर सकते हैं यह तिथि कैसी है। इसी मोहिनी के कारण एकादशी दो मानी गयी है और स्मार्त वैष्णवों का झगड़ा आज तक चला आ रहा है। वहीं यह भी लिखा है विंद्धा का व्रत करने वालों का फल मोहिनी को मिलेगा भगवान् से कोई सम्बन्ध नहीं।

विद्धं त्वयैकादशिकाव्रतं ये कुर्वन्ति कर्तार इह प्रयत्नात्।
तेषां भवेद्यत्सुकृतं फलं शुभे भुङ्क्ष्व प्रसन्ना भव भूसरे त्वम्॥

प्रयत्नात् हठात्॥ (ना. पु. ३७/१८)

इस प्रकार दो एकादशी होने का रहस्य आप लोगों के समक्ष वर्णन किया गया। इसी प्रकार जन्माष्टमी व्रत भी दो माने हैं। कोई सम्प्रदाय प्रेमी तीन भी मानते हैं। यह सब अशास्त्रीय व्रत है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में स्पष्ट लिखा है उस पर ध्यान दें।

सा सर्क्षापि न कर्तव्या सप्तमी सहिताष्टमी।

रोहिणी नक्षत्र से युक्त भी अष्टमी यदि सप्तमी विद्धा हो तो वह व्रत करने योग्य नहीं। इस प्रमाण से सभी सम्प्रदाय वालों को एक ही दिन व्रत करना चाहिए।

धर्मराज का आदर्श न्याय

यमसंहिता का प्रसंग है—विश्वजित् नाम का एक बड़ा प्रतापी धार्मिक राजा था। उसका एक मन्त्री जिसका नाम बुद्धिजीवी था जो बड़ा ही बुद्धिमान् तीक्ष्ण बुद्धि का था। वह अपने तर्क-वितर्क से प्रजा के अभियोग में झूठ को सत्य और सत्य को झूठ सिद्ध कर देता था। कुछ घूसखोर भी था। राजा के लेखा का काम करता था। राजा-प्रजा सभी उसके कार्य की प्रशंसा करते थे। कुछ प्रच्छन्न पाप भी करता था जिसे कोई जान नहीं सकता था। जनता का धन भी हड़प लेता था। स्त्रियों को वशीभूत करने में बड़ा कुशल था।

दैवयोग से उसकी मृत्यु हो गयी। यमदूतों द्वारा यमलोक पहुँचाया गया। यमराज के समक्ष जब उसके पुण्य-पाप के लेखा की जाँच की गयी तो पहले उसके पाप के निर्णय में १४ साक्षिओं ने गवाही दी उनकी गणना इस प्रकार है।

सूर्योऽग्निः खं मरुद् गावः सोमः संध्याहनी दिशः।
कं कुः कालो धर्म इत ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः॥

सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, गौ (वाणी), सरस्वती, चन्द्रमा, संन्ध्या, रात-दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म यह १४ पुण्य-पाप के साक्षी हैं। सबने एक-एक करके कहा—इसने जो भी पाप किये हैं हमने देखा है। तुमने ये पाप किये है इस प्रकार यमराज के पूछने पर बुद्धिजीवी ने उत्तर दिया मैंने पाप नहीं किये हैं। यह सब झूठ बोल रहे हैं। ये साक्षी दें कि मैंने किसके सामने पाप किये हैं। मैं इनको साक्षी नहीं मानता। यमराज ने कहा—अहो यह तो साक्षी की भी साक्षी चाहता है बड़ा विचित्र

है अच्छा चित्रगुप्त को बुलाओ, चित्रगुप्त आये। यमराज ने कहा यह इनकी साक्षी नहीं मानता तुम प्रमाणित करो इसने पाप किये हैं या नहीं। चित्रगुप्त ने कहा महाराज मैं अभी इसी से सिद्ध करा देता हूँ कि इसने कौन-कौन पाप किये हैं। इतना कहकर चित्रगुप्त ने उसके जीवन के सभी चित्र दिखाना आरम्भ किये जैसे सिनेमा में आप लोग देखते हैं। चित्रगुप्त यमराज के मन्त्री हैं। वे चित्र सबके पुण्य पाप को गुप्त करके रखते हैं। इसी से इसका नाम चित्रगुप्त पड़ा है मृत्यु के समय ये सभी चित्र दिखाकर उसकी भी स्वीकृति ली जाती है। उसकी स्वीकृति होने पर ही दण्ड का विधान किया जाता है यह है धर्मराज के न्याय का आदर्श।

बुद्धिजीवी को सारे चित्र क्रम से दिखाये गये। जिनमें राजद्रव्य चुराने के, परस्त्री गमन के, मद्यपान के, निरपराधों को दण्ड देने के घूस लेने के, दूसरों को ठगने के माता तथा गुरुओं के अपमान करने दान करते समय राजा को रोकने के इत्यादि-इत्यादि सभी चित्र दिखा दिये और उससे कहा यदि तुमने यह कर्म नहीं किये तो यह चित्र बने कैसे। उसने सब स्वीकार कर लिया और धर्मराज के चरणों में गिरकर क्षमा याचना करने लगा तब धर्मराज ने कहा अच्छा इसका पुण्य तो देखो कितना है।

चित्रगुप्त बही का पन्ना उलटकर पुण्य का लेखा देखते हैं तो उसमें लिखा था, इसने अपने द्रव्य से एक विशाल अन्नसत्र खोला था जिसमें १०० ब्राह्मण छात्र तथा महात्मा भोजन करते थे और इससे धर्म-शालाका भी निर्माण कराया था जिसमें भगवान् शिव और विष्णु का एक ही विग्रह था स्कन्धपुराण के अनुसार उसे स्थापित किया था।

शिवश्चैर्वार्द्धदेहेन विष्णुरर्द्धेन चाभतव् ।
एकतो विष्णुचिह्नानि हरचिह्नानि चैकतः ॥

(स्क. पु.)

और उसके निरवच्छिन्न प्रबन्ध के लिए एक बगीचा तथा विपुल धनराशि भी जमा की थी। ३ पुण्य एक बार किसी मेला में नदी के किनारे एक विशाल दल-दल में गौ फँस गयी थी, उसे किसी को निकालने का साहस नहीं हुआ, गौ मरणासन्न अवस्था में हो गयी थी। यह साहस कर उसमें कूद पड़ा और इसने अपने प्राणों की परवाह न कर गौ की प्राण रक्षा की थी।

धर्मराज यह सुनकर चकित रह गये और धन्य-धन्य कहकर उसकी प्रशंसा कर उसे हृदय से लगा लिया और चित्रगुप्त से कहा यह नरक में जाने योग्य नहीं रहा। इस पुण्य के प्रभाव से इसका तीन हिस्सा पाप कट गया केवल एक हिस्सा थोड़ा सा रह गया था। इसे दूर से ही नरक का दर्शन कराकर विमान द्वारा सीधे वैकुण्ठ लोक में भेज

दो। धर्मराज के इतना कहते ही आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवता लोग जय-जयकार करते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे। बुद्धिजीवी विमान द्वारा स्वर्ग होते हुए सीधे वैकुण्ठ चला गया। सब मिलकर बोले—महाराज धर्मराज की जय ३ बार ४ बार ७ बार। अब अन्त में हम पुनः धर्म का स्मरण कराते हुए इस प्रसङ्ग को समाप्त करते हैं।

धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति।
आयुश्च कीर्तिं च तपश्च धर्मं धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः॥

धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य धर्मः सखा चात्र परे च लोके।
त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च धर्मादृते नास्ति तु किञ्चिदेव॥

इन श्लोकों को शीशे में मढ़ाकर अपने आवास गृह में लगा देना चाहिए जिससे मन सर्वदा धर्म की ओर आकृष्ट रहे। मरने के बाद साथ में जानेवाला केवल धर्म ही है और कोई नहीं। इसे भूले नहीं।

गुरुसेवा की महिमा में आरुणि और उपमन्यु का उपाख्यान

पूर्वकाल में गुरुशिष्य की ऐसी परम्परा थी कि छात्र विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल में जाकर निवास किया करते थे। गुरु की सेवा से ही विद्या प्राप्त करते हुए 'गुरुशुश्रूषया विद्या। इस सूक्ति को चरितार्थ करते थे। गुरु कृपा से उन्हें समस्त शास्त्रों का ज्ञान बड़ी सरलता से हो जाता था और ऐहिक पारलौकिक सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती थी इसी सन्दर्भ में एक मनोरम कथा आप लोगों के समक्ष उपस्थित करते हैं उस पर ध्यान दें।

आयोदधौम्य नाम के एक महर्षि वन में आश्रम बनाकर रहते थे। उनके दो शिष्य थे आरुणि और उपमन्यु। आरुणि गुरुदेव की सेवा में दिन रात लगा रहता था। उन्हें कुछ कहना नहीं पड़ता था। उनके बिना कहे ही जो अपेक्षित वस्तु होती थी उसे स्वयं उपस्थित कर देता था। एक दिन रिमझिम वर्षा हो रही थी। गुरुदेव ने खेत की मेड़ बाँधने के लिए आरुणि से कहा—बेटा खेत की मेड़ बाँध आओ, सुनते ही अच्छा गुरुदेव जो आज्ञा इतना कहकर खेत की मेड़ बाँधने चल दिया। वहाँ जाकर उसने मेड़ बाँधने का अथक प्रयास किया किन्तु बाँध फिर भी बँध न सका वह तंग हो गया तो उसे एक उपाय सूझा। वह मेड़ के स्थान पर स्वयं लेट गया उससे पानी का बहना बन्द हो गया। वह रात भर वहीं पड़ा रहा, वर्षा उसके ऊपर होती रही। प्रातःकाल आचार्य ने शिष्यों से पूछा अरे आरुणि कहाँ है? शिष्यों ने कहा—भगवन्! आपने ही तो उसे खेत की मेड़ बाँधने के लिए भेजा था। आचार्य ने कहा रात बीत गयी वह पानी में भींगता होगा चलो उसे देखा जाय। वहाँ जाकर आचार्य ने पुकारा आरूणि-आरूणि तुम

कहाँ हो बेटा आओ। आचार्य की आवाज पहचान कर उठ खड़ा हुआ और उनके पास जाकर बोला—भगवन् मैं यहाँ हूँ। खेत से जल बहा जा रहा था। जब किसी प्रकार वह रुक न सका तो मैं वहीं मेड़ के स्थान पर लेट गया। आपकी आवाज सुन मेड़ तोड़कर आपकी सेवा में आया हूँ क्या आज्ञा है कहिये। आचार्य ने कहा—बेटा! तुम मेड़ के बाँध को तोड़-ताड़कर उठ खड़े हुए इसलिए आज से तुम्हारा नाम उद्दालक होगा फिर गुरुदेव ने कृपादृष्टि करते हुए कहा तुमने मेरी बड़ी सेवा की और आज्ञा का पालन किया इसलिए तुम्हें सारे वेद, शास्त्र और पुराण ज्ञात हो जायेंगे। तुम्हें कुछ पूछना नहीं पड़ेगा। दूसरी बात-वृष्टि का जल सहन करने से इन्द्र और वरुण देवता भी तुम पर बड़े प्रसन्न हैं वे तुम्हें जलस्तम्भ विद्या दे रहे हैं इसे ग्रहण करो। अब तुम जल पर खड़े होकर नदी पार कर सकते हो जल तुम्हें डूबा न सकेगा। जाओ बेटा तुम्हारी गुरुसेवा सफल हो गयी, तुम्हारा भविष्य मङ्गलमय होगा। आरुणि इस प्रकार आचार्य का आशीर्वाद (वरदान) प्राप्त कर गुरुकुल से बिदा हुआ।

दूसरा शिष्य उपमन्यु

आचार्य ने इस शिष्य को गौओं की रक्षा में नियुक्त किया था। यह नियम से गौओं को चराने जाता था। मध्याह्न में भिक्षा माँगकर लाता था उसे आचार्य को निवेदन कर देता था। जो उसे दे देते वही खा लेता नहीं देते तो वैसे भूखा रहकर गौ चराता था। दिन भर गौ चराने के बाद सायंकाल आश्रम पर आकर उन्हें प्रणाम करता था। एक दिन आचार्य ने उसे खाने को भिक्षा का अन्न नहीं दिया फिर भी वह पूर्ववत् गौ चराने गया शाम को आश्रम में आने पर आचार्य ने उससे पूछा बेटा आज तुम प्रसन्नवदन दीख पड़ते हो तुमने क्या खाया पिया। उपमन्यु ने कहा—भगवन्! पहली भिक्षा आपको निवेदन करके दुबारा भिक्षा लाकर खा पी लेता हूँ। आचार्य ने कहा बेटा यह तो अनुचित हैं। इससे दूसरे भिक्षार्थियों को बाधा पहुँचेगी। उपमन्यु ने कहा—गुरुदेव ग़लती हो गयी क्षमा करें अब ऐसा नहीं करूँगा।

तीसरे दिन फिर शाम को प्रणाम करने जब आचार्य के समीप पहुँचा तब उन्होंने पूछा बेटा मैंने तुम्हारा भोजन तो बन्द कर दिया फिर भी तुम हट्टे-कट्टे जान पड़ते हो, अब क्या खाते-पीते हो। उपमन्यु ने कहा भगवन्! मैं जङ्गल में गौ चरा रहा था। एक गौ को पीठ सहलाने लगा। उसे न जाने कैसे पता चला कि यह भूखा है। उसने अपने सीगों से स्तनों की तरफ इशारा किया दूध पी ले मैं समझ गया और दूध पी लिया। आचार्य ने कहा—बेटा मेरी आज्ञा के बिना दूध पीना भी उचित नहीं है। उपमन्यु ने इसे भी स्वीकार किया और उस दिन से दूध पीना भी छोड़ दिया चौथे दिन शाम को पूर्ववत्

जब प्रणाम करने पहुँचा तो आचार्य ने कहा—बेटा मैंने तुम्हारा भोजन दूध सब कुछ बन्द कर दिया अब क्या खाते-पीते हो। उपमन्यु ने कहा गुरुदेव! बछड़े दूध पीते समय जो मुँह से फेन उगलते हैं उसे चाट लेता हूँ। मेरी उसी से तृप्ति हो जाती है। आचार्य ने कहा बेटा! बछड़े दयालु होते हैं। तुम्हें देखकर वे अधिक फेन उगल देंगे वे भूखे रह जायेंगे ऐसा करना उचित नहीं। उपमन्यु ने फेन पीना भी छोड़ दिया किन्तु गौ चराना बन्द नहीं किया। पाँचवें दिन जब गौ चराने वन में गया तो वह भूख से व्याकुल होकर छटपटाने लगा। खाने को कुछ मिला नहीं विवश होकर कड़वे-कड़वे रूखे आक के पत्ते खा लिए उससे उसकी नेत्र ज्योति नष्ट हो गयी। अन्धा होकर वन में भटकता हुआ एक कुएँ में जा गिरा। उसके गिरते ही कुएँ का पानी सूख गया। रात भर कुएँ में पड़े-पड़े गुरुदेव का स्मरण करता रहा। प्रातःकाल आचार्य को स्मरण आया अरे शाम को उपमन्यु आया नहीं क्या हुआ? चलो वन में उसे ढूँढ़े।

आचार्य शिष्यों के साथ वन में गये और बड़े जोर से उसे पुकारा उपमन्यु, उपमन्यु आओ बेटा। तुम जल्दी आओ कहाँ हो। आचार्य की आवाज पहचानकर वह भी जोर से बोला मैं कुएँ में गिर पड़ा हूँ। आचार्य ने पूछा बेटा तुम कुएँ में कैसे गिरे। उपमन्यु ने कहा—भूख लगने पर मैंने आक के पत्ते खा लिए उसी से अन्धा होकर मैं इस कुएँ में गिर पड़ा। इतना सुनते ही आचार्य के नेत्रों में आँसू झलक आये और बोले बेटा घबड़ाओं नहीं तुम वेद की ऋचाओं से अश्विनी कुमार की स्तुति करो वे तुम्हारी आँखें ठीक कर देंगे। उपमन्यु ने ऋचाओं द्वारा जैसे ही उनकी स्तुति की अश्विनीकुमार तत्क्षण वहाँ प्रकट हो गये और बोले बेटा! यह दिव्य रसायन से पुटित पुए हैं इन्हें तुम खा लो तुम्हारी आँखें तुरन्त ठीक हो जायेंगी। उपमन्यु ने कहा—देववर! क्षमा करें। आचार्य के आदेश बिना खाने में असमर्थ हूँ। दैवात् तभी आचार्य भी वहाँ पहुँच गये। उसी समय किसी अदृश्य पुरुष ने उपमन्यु का हाथ पकड़ कुएँ के बाहर निकाल दिया। आचार्य के आदेश से उसने वे पुए खा लिए, उसकी आँखें तुरन्त ठीक हो गयी। अश्विनीकुमार उसकी गुरु-भक्ति से प्रसन्न हो नीरोगता का आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये।

अन्त में आचार्य ने कहा बेटा! तुम्हारी सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। सारे वेद शास्त्र तुम्हारी बुद्धि में स्वयं स्फुरित हो जायेंगे। भगवान् का अनुग्रह प्राप्त कर तुम जीवन्मुक्त होकर संसार में विचरते रहोगे। उपमन्यु इस प्रकार आचार्य का आशीर्वाद लेकर गुरुकुल से विदा हो गया।

।।परिशिष्ट भाग समाप्त।।

◆

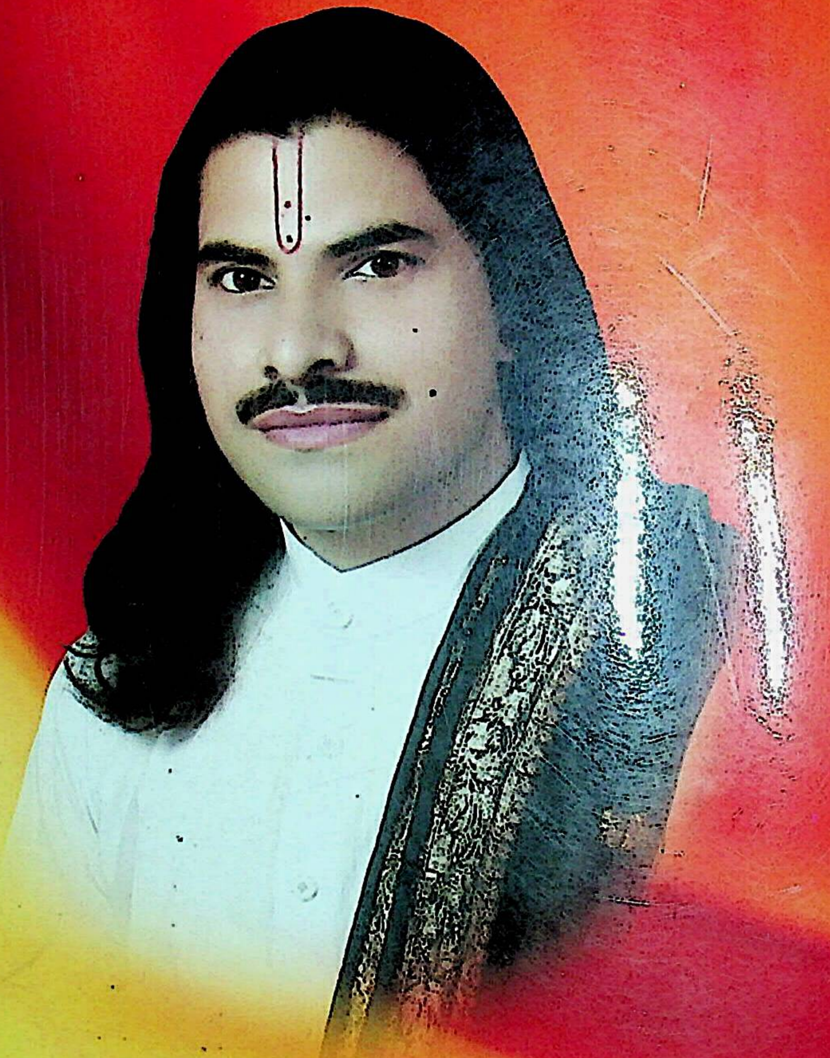

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त
प्रवक्ता
श्री दिनकर जी महाराज 'पौराणिक'